देवानां भद्रा सुमतिर्ऋजूयताम्।। ऋ० १/८९/२

ISSN : 2395-7115
Sept. 2025
Vol.-22, Issue-3(2)

Impact Factor
8.642

Bohal Shodh Manjusha

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

21वीं सदी का साहित्य : नव विमर्श



Special Issue Editor :
Dr. Poornima S.

Special Issue Co-Editor :
Dr. Anuradha P
Ms. V. Amudha

Editor :
Dr. Naresh Sihag
Advocate

Publisher :
Gugan Ram Educational & Social Welfare Society (Regd.)
#202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021

स्व. चौ. गुगनराम सिहाग व उनकी छोटी बहन स्व. श्रीमती गीना देवी के शुभाशीर्वाद से प्रकाशित

JOURNAL OF HUMANITIES, COMMERECE, SCIENCE, MANAGEMENT & LAW

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

Vol. 22 ISSUE-3(2) (सितम्बर 2025) ISSN : 2395-7115

प्रेरणा :
चौ. एम. सिहाग

विशेषांक सम्पादिका :
डॉ. पूर्णिमा एस.,
डॉ. अनुराधा पी.,
मिस वी. अमुधा

सम्पादक :
डॉ. नरेश सिहाग 'बोहल', एडवोकेट
एम.ए. (समाजशास्त्र, लोक प्रशासन, हिन्दी शिक्षा शास्त्र, पत्रकारिता),
एम.फिल (समाजशास्त्र, हिन्दी) एम. लिब., एल-एल.बी. (ऑनर्स),
डिप्लोमा पंचायती राज (रजत पदक विजेता), पी.एच.डी. (हिन्दी)
डी.लिट् (मानद उपाधि), काठमांडू, नेपाल

प्रकाशक :
गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वैलफेयर सोसायटी (रजि.)
202, पुराना हाऊसिंग बोर्ड, भिवानी-127021 (हरियाणा)

Bohal Shodh Manjusha

AN INTERNATIONAL REFEREED/REVIEWED AND INDEXED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
ISSN 2395-7115

सम्पादकीय सम्पर्क :
डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट
202, पुराना हाऊसिंग बोर्ड,
भिवानी-127021 (हरियाणा)
Email : nksihag202@gmail.com
मो. 09466532152

Published by :
Gugan Ram Educational & Social Welfare Society (Regd.)
202, Old Housing Board,
Bhiwani-127021 (Haryana) INDIA
Email : grsbohal@gmail.com
Facebook.com/bohalshodhmanjusha
Website : www.bohalsm.blogspot.com
WhatsApp : 9466532152

All Right Reserved by Publisher & Editor

Price

Individual/Institutional : 1100/-

Disclaimer :

1. Printing, Editing, Selling and distribution of this Journal is absolutely honorary and non-commercial.
2. All the Cheque/Bank Draft/IPO should be sent in the name of Gugan Ram Educational & Social Welfare Society payable at Bhiwani.
3. Articles in this journal do not reflect the Views or Policies of the Editor's or the Publisher's. Respective authors are responsible for the originally of their views/opinions expressed in their articles.
4. All dispute will be Subject to Bhiwani, Hry. Jurisdication only.

Printed by : Manbhawan Printers, Old Bus Stand Road, Naya Bazar, Bhiwani (Hry.)

बोहल शोध मंजूषा परिवार*

मानद संरक्षक

प्रो. राधेमोहन राय
पूर्व उप प्राचार्य,
राजकीय स्नातकोत्तर महा.,
अलवर, राजस्थान।

डॉ. राजेन्द्र गोदारा
परीक्षा नियंत्रक,
टांटिया विश्वविद्यालय,
श्रीगंगानगर, राजस्थान।

डॉ. विनोद तनेजा
पूर्व अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
गुरूनानक वि.वि. अमृतसर
पंजाब।

सम्पादक मण्डल

सह सम्पादिका :
डॉ. रेखा सोनी
उप प्राचार्या, शिक्षा विभाग
टाटिया वि.वि. श्रीगंगानगर।

सह सम्पादिका :
डॉ. सुशीला आर्या
हिन्दी विभाग, चौ. बंसीलाल
विश्वविद्यालय, भिवानी।

प्रबंध सम्पादक :
समुन्द्र सिंह
भिवानी, हरियाणा।

विधि विशेषज्ञ

डॉ. रामफल दलाल, एडवोकेट
जिला न्यायालय
भिवानी, हरियाणा।

अजीत सिहाग, एडवोकेट
पंजाब एवं हरियाणा हाईकोर्ट,
चंडीगढ़।

चरणवीर सिंह, एडवोकेट
जिला न्यायालय
पटियाला, पंजाब।

विषय विशेषज्ञ/परामर्शदात्री/शोधपत्र निरीक्षण समिति

माई मनीषा महंत
किन्नर अधिकार ट्रस्ट
भूना, जिला कैथल, हरियाणा

डॉ. विश्वबंधु शर्मा
पूर्व अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
बाबा मस्तनाथ वि.वि. रोहतक

डॉ. संजय एल. मादार
विभागाध्यक्ष, पी.जी. केन्द्र
द.भा.हिन्दी प्रचार सभा हैदराबाद।

डॉ. गीता दहिया, प्राचार्या,
नैशनल टीटी कॉलेज फॉर गर्ल्स
अलवर, राजस्थान

डॉ. विनोद कुमार
हिन्दी विभाग, लवली प्रोफेशनल
यूनिवर्सिटी, पंजाब

डॉ. मो. रियाज़ खान
बीएमएस वूमैन कॉलेज आटोनोमेस
बेगलूरू

डॉ. वनिता कुमारी
च. दादरी (हरियाणा)

श्री सहदेव समर्पित
सम्पादक, शान्तिधर्मी, जीन्द

डॉ. अंजली उपाध्याय
उत्तर प्रदेश

डॉ. लता एस. पाटिल
राजीव गांधी बीएड कालेज
धारवाड़, कर्नाटक

प्रो. अमनप्रीत कौर
गुरू तेग बहादुर खालसा कॉलेज
फॉर वूमैन, दसूहा, पंजाब

डॉ. वर्षा रानी
संस्कृत विभाग, डॉ. भीमराम
अम्बेडकर, वि.वि., आगरा

प्रो. कमलेश चौधरी
राजकीय रणबीर महाविद्यालय
संगरूर, पंजाब

डॉ. किरण गिल
दीनदयाल टी.टी. महाविद्यालय
बारी, जिला सीकर, राज.

डॉ. सविता घुड़केवार
पीजी विभाग, दक्षिण भारत
हिन्दी प्रचार सभा, मद्रास

डॉ. परमजीत कौर
बरेली कॉलेज बरेली,
उत्तर प्रदेश।

डॉ. राजकुमारी शर्मा
नेपाल

डॉ. श्रीविद्या एन.टी.
श्री शंकराचार्य संस्कृत वि.वि.
केरल।

डॉ. बी. संतोषी कुमारी
पी.जी.विभाग, दक्षिण भारत हिन्दी
प्रचार सभा, मद्रास

श्री राकेश ग्रेवाल
सन जॉस,
कैलिफोर्निया, यू.एस.ए.

डॉ. पंडित बन्ने
भारत महाविद्यालय,
सोलापुर (महाराष्ट्र)

डॉ. पायल लिल्हारे
अमरशहीद चंद्रेशेखर आजाद
शा.स्ना.महा. निवाड़ी, मध्यप्रदेश

श्री राकेश शंकर भारती
यूक्रेन।

डॉ. उमा सैनी
आई.ए.एस.ई. विश्वविद्यालय
सरदारशहर, राजस्थान

डॉ. मनमीत कौर
राधा गोविन्द वि.वि.,
रामगढ़, झारखण्ड।

डॉ. रीना उन्नीयाल तिवारी
शिक्षा संकाय, डी.ए.वी. पीजी
कालेज, देहरादून

डॉ. सुरजीत सिंह कस्वां
डीन फिजिकल एजुकेशन
टांटिया वि.वि., श्रीगंगानगर,

डॉ. शबाना हबीब
त्रिवन्तपुरम, केरल

डॉ. शिवकरण निमल
राजस्थान

डॉ. राधाकृष्णन गणेशन
वाराणसी

डॉ. मानसिंह दहिया
हरियाणा

डॉ. नीलम आर्या
उत्तर प्रदेश

डॉ. रवि सुण्डयाल
जम्मू कश्मीर

प्रो. नरेन्द्र सोनी
डी.एन. कॉलेज, हिसार।

प्रो. रोहतास
डी.एन. कॉलेज, हिसार।

प्रो. सत्यबीर कालोहिया
पूर्व प्राचार्य, कैलिफोर्निया।

डॉ. इस्पाक अली
प्राचार्य, लाल बहादुर शास्त्री
शिक्षा महाविद्यालय, बेंगलूरू

प्रो. रेखा रानी
गवर्नमेंट कॉलेज
संगरूर, पंजाब

डॉ. के.के. मल्हौत्रा
पूर्व विभागाध्यक्ष
गवर्नमेंट कॉलेज, गुरदासपुर

डॉ. संजीव कुमार विश्वकर्मा
शासकीय महाविद्यालय,
लवकुश नगर, मध्य प्रदेश

डॉ. परमानन्द त्रिपाठी
एचओडी एजुकेशन, एल.एन.डी.
कालेज, मोतिहारी, बिहार

डॉ. करमजीत कौर
प्राचार्या, दशमेश गर्ल्स कॉलेज
चक आला, मुकेरिया, पंजाब

*सम्पूर्ण बोहल शोध मञ्जूषा परिवार/सम्पादक मण्डल अवैतनिक है।

अनुक्रमाणिका – सितम्बर 2025 – विशेषांक, भाग–2

क्र.	विषय	लेखक	पृष्ठ
1.	शुभकामना संदेश		11–14
2.	सम्पादकीय	डॉ. पूर्णिमा एस.	15–16
3.	मन्नू भण्डारी की कहानियों में राजनीतिक मूल्य 'मैं हार गई, 'अ–लगाव' और 'तीसरा हिस्सा' कहानी के विशेष संदर्भ में)	स्निग्धा सिंह, डॉ. बिमला पात्र	17–21
4.	मालती जोशी की कहानियों में बदलते समाज की यथार्थ तस्वीर	डॉ. सावित्री देवी	22–25
5.	इक्कीसवीं सदी के हिन्दी कथा साहित्य में किन्नर विमर्श	डॉ. दिलीप सिंह राजपूत	26–31
6.	मृदुला गर्ग के 21वीं सदी के उपन्यासों में स्त्री विमर्श	Dr. Mahammad Nazim Parveen	32-36
7.	राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2020 आधारित अर्थशास्त्र पाठ्यपुस्तकों के प्रति अभिधारकों के प्रत्यक्षण का अध्ययन	राकेश वर्मा	37–40
8.	21वीं सदी की लघु कथाओं में बदलती सामाजिक वास्तविकताएं	डॉ. प्रियंका परमार	41–44
9.	डिजिटल डिवाइड : ग्रामीण–शहरी असमानताओं का अध्ययन	डॉ. गौरव शर्मा	45–50
10.	स्त्री विमर्श : 21वीं सदी हिन्दी कविता और कथा साहित्य में स्त्री दृष्टि	सुशीला साहू	51–57
11.	समकालीन साहित्य में ग्रामीण विमर्श	डॉ० कैलाशचंद्र शर्मा 'शंकी'	58–65
12.	सुशीला टाकभौरे के कथाओं की भाषागत प्रवृत्तियों की समीक्षा	प्रियंका प्रफुल दरवाड़े, डॉ. सुमेध पी. नागदेवे	66–71
13.	इक्कीसवीं सदी का साहित्य और स्वास्थ्य विमर्श : मशीन लर्निंग आधारित मधुमेह पूर्वानुमान का अध्ययन	के के इश्विता श्री	72–79
14.	संवेदनहीन होती मनुष्यता और साहित्य की भूमिका	नयना जैन, डॉ० सुमन कौशिक	80–83
15.	सरकार की विफल योजनाएँ, टूट गया किसान पर न टूटी 'कालिचाट'	अन्नपूर्णा भोसले	84–87

16.	साइबर सुरक्षा : डिजिटल युग की आवश्यकता एवं जन-जागरूकता का विश्लेषण (प्रधानमंत्री मन की बात कार्यक्रम के विशेष सन्दर्भ में)	डॉ. उमेश कुमार, डॉ. क्रांति कुशवाहा	88-94
17.	21वीं सदी के हिंदी उपन्यासों में सामाजिक चेतना	नीतु कुमारी	95-99
18.	स्त्री विमर्श के संदर्भ में मृदुला गर्ग के उपन्यास	पल्लवी दास	100-102
19.	स्त्रियों के उन्नति में आंबेडकर जी का योगदान	डॉ. अजय	103-106
20.	स्मार्ट मशीन लर्निंग प्रणाली द्वारा हृदय रोग का पूर्वानुमान : स्वास्थ्य विमर्श, डिजिटल कथाएँ और 21वीं सदी का परिप्रेक्ष्य	के. के. इश्विन्ता श्री	107-118
21.	हिंदी उपन्यासों में दिव्यांग नारी की अस्मिता और विमर्श	शशिकांत चिन्नेश्वर सैबे, डॉ. रवींद्र लिंबाजी भोरे	119-122
22.	हिंदी कविताओं में पर्यावरण विमर्श	डॉ. निर्मलाबेन ईच्छुभाई पटेल	123-126
23.	हिंदी साहित्य में किन्नर विमर्श	डॉ. माया गोला	127-129
24.	हिंदी साहित्य में विश्व शांति की परिकल्पना	कोमल वर्मा	130-134
25.	हिन्दी उपन्यास और समलैंगिक विमर्श	सूर्य प्रताप सिंह, डॉ० सव्यसाची	135-139
26.	हिन्दी साहित्य की प्रेरणा की अमृत-धार : परीक्षा दबाव के हरण एवं शैक्षिक उपलब्धि के उन्नयन का सशक्त माध्यम	प्रज्ञा सिंह, लक्ष्मी मिश्रा, पावक अग्रवाल	140-149
27.	हिन्दी साहित्य में किन्नर विमर्श	Jasmine. S	150-153
28.	हिन्दी साहित्य में किसान समस्या	डॉ. राजेश यादव	154-158
29.	हिन्दी सिनेमा में अभिव्यक्त आदिवासी विमर्श	दीपशिखा सोनोवाल	159-163
30.	21-ஆம் நூற்றாண்டு தமிழ்த் திரைப்பங்கள் : புது விமர்சனப் பார்வைகள்	முனைவர் கே.எஸ்.	164-168
31.	బండిపోట్లు కవితలో స్త్రీ వాద దృక్పథం	డా. పసుపులేటి నాగమల్లిక,	169-173
32.	ఓల్గా 'ప్రయోగం'లో చర్చించిన స్త్రీవాద సమస్యలు	డా.కె.వి.శాంతకుమారి	174-178
33.	21वीं सदी का साहित्य में नारी विमर्श	Dr. Ranjita Bharti	179-183
34.	దళిత స్త్రీ వాద సాహిత్యం - సామాజిక చైతన్యం	Dr. Anitha Margaret Nelaturi	184-187

35.	हिंदी साहित्य में नारी विमर्श : संघर्ष, चेतना और सृजन	योगिता कपिलराव देशमुख, डॉ. प्रतिभा जी. येरेकर	188–193
36.	ડિજિટલ સંવાદ: ફેસબુક અને ઈન્ટરનેટમાં સાહિત્યિક સર્જનાત્મકતા-નવમાધ્યમ	ડૉ. સાધના આર. ટાંક	194–201
37.	சூழலியல் பார்வையில் "ஒரு கிராமம் சாகிறது"-கவிதைத்திறனாய்வு	முனைவர் இரா. சரஸ்வதி	202–210
38.	डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट के कहानी संग्रह 'जिंदगी जीने के वास्ते' की कहानियों में जीवन-विमर्श	डॉ. इन्दु. पी.	211–213
39.	इक्कीसवीं सदी के हिंदी उपन्यासों में किसान आत्महत्या	रघुवीर दान चारण	214–217
40.	AI के युग में बाल साहित्य पर संभावित प्रभाव	भुवनेश्वरी .एस	218–222
41.	सपनों की होम डिलिवरी उपन्यास : नारी जीवन के संदर्भ में	डॉ. वर्षाराणी जबडे	223–226
42.	हिंदी साहित्य में दलित विमर्श	डॉ धन्या. बी	227–236
43.	अनेकान्तवाद विचारों की विविधता और सहिष्णुता का संदेश	इन्द्र भंसाली 'अमर'	237–240
44.	मालती जोशी कृत 'वो तेरा घर, ये मेरा घर' में छित्रित वृद्ध समस्या	डॉ. ए. परविन	241–244
45.	२१वी सदी के हिंदी उपन्यासों में चित्रित स्त्री (विशेष उपन्यासों के संदर्भ में)	डॉ. रीना निलेश खिचडे	245–250
46.	आदिवासी विमर्श : लोकजीवन और साहित्य की अन्तर्धाराएँ	प्रतीति पाण्डेय	251–253
47.	एस० आर० हरनोट की कहानियों में पर्यावरण विमर्श	गायत्री बाल्मीकि	254–259
48.	कुमार कृष्ण की कविताओं में पर्यावरणीय विमर्श	जय कुमार	260–264
49.	खेत मजदूर और झारखंड के किसान : इतिहास एवं परंपराएँ	प्रो. जीवन कुमार साह	265–269
50.	नीरज सिंह के कथा साहित्य में स्त्री सन्दर्भ	सपना देवी	270–275
51.	ओमप्रकाश वाल्मीकि कृत 'बस! बहुत हो चुका' काव्य-संग्रह में मानवीय सरोकार	उमा देवी	276–280
52.	मन्नू भंडारी का उपन्यास 'आपका बंटी' : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन	डॉ निशा मुरलीधरन	281–284

53.	मिट्टी से बना अन्न	डॉ. टी. अरूणा कुमारी	285–289
54.	हसीनाबाद उपन्यास में नारी विमर्श	डॉ. अर्चना शर्मा	290–293
55.	भारतीय महिलाओं को सशक्त बनाने में कानूनी अधिकारों की भूमिका	विवेचना पाण्डेय, डॉ. सरिता भवानी मालवीय	294–300
56.	**Therigatha : Legacy and Relevance in 21st Century Indian Literature**	**Indresh Prasad Purohit**	**301-310**
57.	डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट की कविताओं में यथार्थ विमर्श	डॉ. लता एस. पाटिल	311-315
58.	**Entrepreneurial Self-Efficacy and Entrepreneurial Intentions of Tribal Women: A case Study of Chhattisgarh, India.**	**Dimpal Agrawal**	**316-328**
59.	**The Anatomy of Indifference : Literature as an Antidote to Modern Insensitivity**	**Dr. S. Farhana Zabeen, Dr. I. Jane Austen**	**329-334**
60.	**Quest for Self-Identity and Independence of Women in Preeti Shenoy's The Secret Wishlist**	**Dr. R. Abeetha, Dr.A. Jayashree Prabhakar**	**335-345**
61.	**Feminine Isolation and Resistance through Nature in Anita Desai's *Fire on the Mountain***	**Ms.Greeshma N.P, Dr. I. Jane Austen**	**346-351**
62.	बैंकिंग क्षेत्र में कृत्रिम बुद्धिमता के अनुप्रयोग की संभावनाएं और चुनौतियां	डॉ. पूर्णिमा श्रीनिवासन, श्री एच पंढरीनाथ	352–355
63.	मॉरिशस के समकालीन प्रवासी हिन्दी साहित्यकार अभिमन्यु अनत और रामदेव धुरन्धर के सृजनात्मक विचारों का अध्ययन	वी. अमुधा, डॉ. अनुराधा पाकलापाटि	356–360
64.	डॉ. विद्या बिंदु सिंह के कथा-साहित्य में बदलते सामाजिक सरोकार	जे. अशोक कुमार जैन, डॉ. अनुराधा पाकलपाटि	361–365
65.	मंजरी : किन्नर विमर्श	डी श्रीदेवी, डॉ. पूर्णिमा श्रीनिवासन	366–369
66.	सामाजिक माध्यम और इंटरनेट पर रचनात्मकता : नए माध्यम एवं नई भाषा (बाल साहित्य के संदर्भ में)	गुरू गोविंद विश्वत, डॉ. अनुराधा पाकलपाटि	370–375
67.	वृद्धों के प्रति संवेदनहीन होती मनुष्यता	बी. कमला, डॉ. अनुराधा पाकलपाटि	376–381
68.	इक्कीसवीं सदी की हिंदी कथा साहित्य में बदलता हुआ सामाजिक यथार्थ	डॉ. अनुराधा पी.	382–386
69.	कृष्नचंदर कृत 'जामुन का पेड़' कहानी में प्रशासनिक विमर्श	डॉ. पूर्णिमा श्रीनिवासन	387–392

70.	21वीं सदी के नारी विमर्श–रेत समाधि	पूर्णिमा. जे, डॉ. पूर्णिमा श्रीनिवासन	393–397
71.	'बुद्धिमानों की मूर्खता' : सुरेंद्र शर्मा के व्यंग्य निबंधों में राजनीतिक विमर्श	प्रिया. एस, डॉ. पूर्णिमा श्रीनिवासन	398–403
72.	21वीं सदी में तमिलनाडु स्थित बैंकों में राजभाषा कार्यान्वयन एवं हिंदी गृहपत्रिकाओं का प्रकाशन : एक नव विमर्श	श्री एम. संजीवी कनी, डॉ. पूर्णिमा श्रीनिवासन	404–411
73.	पर्यावरण विमर्श : साहित्य में पारिस्थितिकी और प्रकृति चिंतन (बाल कहानियों के संदर्भ में)	वेंकट शिल्पा काकि, डॉ. पूर्णिमा श्रीनिवासन	412–416
74.	21वीं सदी के आधुनिक हिन्दी उपन्यास बेहया में केंद्रित नारी	अमरजीत	417–422
75.	हिंदी साहित्य में स्त्री विमर्श और कथा साहित्य में स्त्री दृष्टि	Mrs. S. Subha	423-425
76.	भूमिका द्विवेदी कृत 'किराये के मकान' उपन्यास में चित्रित महानगरीय जीवन की समस्याएँ	आर. डी. निर्मला, डॉ. अनुराधा पाकलपाटि	426–430
77.	पर्यावरण विमर्श और 21वीं सदी के उपन्यास	संगीता कुमारी	431–435
78.	समकालीन साहित्य में किसान विमर्श	इ. जाक्कुलिन, डॉ. अनुराधा पाकलपाटि	435–442
79.	इक्कीसवीं शताब्दी में उपन्यास–साहित्य के समक्ष चुनौतियाँ	डॉ. के आनंदी	443–446



Greetings to All Distinguished Participants,

It is with profound honor and immense joy that we present this compilation of proceedings from the pivotal two-day International Seminar on "The Literature of the 21st Century: New Discourses", successfully organized by the Department of Hindi, VISTAS, in collaboration with Bohal Shodh Manjusha, Bhiwani (Haryana).

We extend our heartfelt congratulations to the Department of Hindi, VISTAS, and its dedicated faculty members — Dr. Poornima Srinivasan (Assistant Professor & Head), Dr. Anuradha Pakalapati (Assistant Professor), and Ms. Amudha V. (Assistant Professor) — for their exceptional efforts in conceptualizing and executing such a significant academic event. Their commitment has truly enriched the discourse on contemporary literature. The valuable collaboration with Bohal Shodh Manjusha, Bhiwani (Haryana) is very insightful.

The literary landscape of the 21st century is a vibrant tapestry, continuously rewoven by the threads of technological innovation, evolving societal norms, and an increasingly interconnected global consciousness. This dynamic era has not only birthed fresh perspectives and groundbreaking narrative forms but has also amplified diverse voices that boldly challenge conventional literary paradigms. This seminar served as an invaluable forum for collectively exploring these exciting transformations, examining emergent themes, and critically analyzing the compelling new discourses that are actively shaping contemporary literature.

We believe that the insightful presentations, robust discussions, and collaborative spirit fostered during the seminar have deepened our collective understanding of 21st-century literature and inspired new pathways for scholarly inquiry and critical thought. May this compilation serve as a catalyst for intellectual growth and a meaningful contribution to the ongoing evolution of literary studies.

With sincere wishes for continued inspiration and productive scholarly endeavors.

Dr. Ishari K. Ganesh
Founder – Chancellor
Vels Group of Institutions
VISTAS



To All Distinguished Participants and Esteemed Readers,

It is our honour and delight to present this compendium of proceedings from the highly successful two-day International Seminar on "The Literature of the 21st Century: New Discourses." This significant academic event was meticulously organized by the Department of Hindi, VISTAS, in collaboration with Bohal Shodh Manjusha, Bhiwani (Haryana).

We extend our sincere appreciation and warm congratulations to the Department of Hindi, VISTAS, for its exemplary dedication in conceptualizing and executing a seminar of such depth and relevance. The department's unwavering commitment to literary scholarship has undoubtedly enriched contemporary discourse and elevated the academic engagement with modern literature.

The literary landscape of the 21st century is a dynamic and intricate tapestry—continuously shaped by technological innovation, evolving socio-cultural systems, and an increasingly interconnected global consciousness. This transformative era has ushered in new perspectives, experimental narrative forms, and a diverse spectrum of voices that challenge, redefine, and expand traditional literary paradigms. The seminar provided a vital platform to collectively examine these shifts, explore emerging themes, and critically analyse the influential discourses that continue to shape contemporary literature.

We firmly believe that the insightful presentations, vibrant discussions, and spirit of scholarly collaboration fostered during the seminar have significantly deepened our understanding of 21st-century literature. We are confident that this carefully compiled volume will serve as an enduring source of intellectual inspiration and a valuable contribution to ongoing literary scholarship.

With earnest wishes for continued learning, inspiration, and meaningful academic pursuits.

Dr. Preethaa Ganesh
Vice-President –
Vels Group of Institutions,
VISTAS.



Esteemed Participants and Respected Readers,

It is with immense pride and deep intellectual satisfaction that we present this proceedings of the two-day International Seminar on "The Literature of the 21st Century: New Discourses." This significant academic event was conceived and successfully conducted by the Department of Hindi, VISTAS, in collaboration with Bohal Shodh Manjusha Bhiwani (Haryana).

We extend our heartfelt congratulations and profound gratitude to the Department of Hindi, VISTAS, for their exemplary vision, unwavering commitment, and meticulous execution in bringing such a significant academic discourse to fruition. Their collaborative spirit, along with the esteemed partnership of Bohal Shodh Manjusha Bhiwani (Haryana), has undoubtedly enriched the ongoing dialogue on contemporary literature.

The literary landscape of the 21st century is a dynamic and continuously evolving tapestry, constantly being woven with the intricate threads of technological innovation, changing social norms, and an increasingly interconnected global consciousness. This transformative era has not only given birth to novel perspectives and groundbreaking narrative forms but has also empowered countless voices that courageously challenge and reshape traditional literary paradigms. The seminar served as an invaluable platform for scholars and enthusiasts to collectively delve deeply into these exciting changes, explore emerging themes, and critically analyze the captivating new discourses actively shaping modern literature.

We are confident that the profound insights shared, the vibrant and stimulating discussions held, and the nurtured collaborative spirit during the seminar have significantly deepened our collective understanding of 21st-century literature. Furthermore, they have effectively opened new avenues for scholarly inquiry and critical reflection, contributing to the intellectual exchange vital for academic progress. We hope that this carefully compiled collection will serve as a lasting catalyst for intellectual growth and a significant contribution to the ongoing development of literary studies.

With heartfelt wishes for continued inspiration and fruitful academic endeavors!

Dr. A.Jothi Murugan
Pro-Chancellor (Planning&Development)
Vels Group of Institutions
VISTAS



To Our Valued Contributors and Readers,

We are proud to present this compilation of proceedings from the impactful two-day International Seminar on "The Literature of the 21st Century: New Discourses," successfully organized by the Department of Hindi, VISTAS, in collaboration with Bohal Shodh Manjusha Bhiwani (Haryana).

Heartfelt congratulations are extended to the Department of Hindi, VISTAS, for their exemplary work in planning and executing this significant academic event. Their dedication, supported by Bohal Shodh Manjusha Bhiwani (Haryana), has profoundly enriched the dialogue on contemporary literature.

The 21st-century literary landscape, characterized by technological innovation, evolving societal norms, and global interconnectedness, continues to foster new perspectives, narrative forms, and diverse voices. This seminar served as a crucial platform to explore these transformations, emergent themes, and the new discourses shaping modern literature.

We trust that the seminar's insightful presentations, engaging discussions, and collaborative spirit have deepened our understanding of 21st-century literature and inspired further scholarly inquiry. May this compilation contribute significantly to the ongoing evolution of literary studies, offering valuable insights for future research.

With best wishes for continued inspiration!

Prof. Dr. M. Bhaskaran
Vice Chancellor (FAC),
Vels Institute of Science, Technology & Advanced Studies (VISTAS),
Pallavaram, Chennai 600 117
(Chairman, Research Advisory Committee,
Govt. of India - Indian Institute of Seed Science, UP)

Previous Positions Held

Vice Chancellor, Tamil Nadu Open University, Chennai
Director, National Seed Research & Training Centre,
Govt. of India, Ministry of Agriculture, Varanasi, U.P.
Special Officer, Seed Centre &
Professor and Head, Dept. of Seed Science and Technology
Tamil Nadu Agricultural University, Coimbatore.

संपादकीय...

21वीं सदी : नव विमर्श के बहुआयामी परिप्रेक्ष्य

इक्कीसवीं सदी मानव सभ्यता के इतिहास में परिवर्तन, संक्रमण और पुनर्संरचना की सदी है। यह वह कालखंड है जहाँ विचार, तकनीक, समाज और संस्कृति निरंतर गतिशीलता में हैं। ज्ञान की परंपरागत सीमाएँ टूट रही हैं और नए विमर्श जन्म ले रहे हैं। ऐसे समय में "नव विमर्श" केवल एक अकादमिक अवधारणा नहीं, बल्कि सामाजिक यथार्थ को समझने और उसे नए दृष्टिकोण से व्याख्यायित करने का सशक्त माध्यम बन गया है।

इसी वैचारिक पृष्ठभूमि में 'VISTAS, चेन्नई' एवं 'गुगनराम एजुकेशनल एंड सोशल वेलफेयर सोसाइटी (रजिस्टर्ड)' के संयुक्त तत्वावधान में दिनांक '13–14 सितम्बर 2025' को आयोजित राष्ट्रीय सेमिनार अत्यंत प्रासंगिक एवं विचारोत्तेजक सिद्ध हुआ। इस सेमिनार में प्रस्तुत शोधपत्रों के आधार पर प्रकाशित यह विशेषांक "21वीं सदी : नव विमर्श" विषय की समकालीन प्रासंगिकता को रेखांकित करता है।

नव विमर्श : अवधारणा और आवश्यकता :

नव विमर्श का आशय केवल नए विषयों से नहीं है, बल्कि दृष्टि, पद्धति और मूल्यांकन के नए मानकों से है। 21वीं सदी में समाज बहुस्तरीय संकटों और संभावनाओं से घिरा हुआ है – वैश्वीकरण, उपभोक्तावाद, तकनीकी वर्चस्व, डिजिटल संस्कृति, पर्यावरणीय संकट, लैंगिक असमानता, हाशिए के समुदायों की आवाज और पहचान की राजनीति जैसे प्रश्न आज विमर्श के केंद्र में हैं।

हिंदी साहित्य और सामाजिक विज्ञानों में नव विमर्श ने उन विषयों को मुख्यधारा में स्थान दिया है जिन्हें लंबे समय तक उपेक्षित रखा गया। स्त्री विमर्श, दलित विमर्श, आदिवासी विमर्श, किसान विमर्श, पर्यावरण विमर्श, बाल विमर्श, वृद्ध विमर्श, क्वीयर विमर्श और डिजिटल विमर्श– ये सभी 21वीं सदी की चेतना के अनिवार्य घटक बन चुके हैं।

21वीं सदी का सामाजिक यथार्थ और विमर्श :

21वीं सदी का समाज विरोधाभासों से भरा हुआ है। एक ओर तकनीक ने जीवन को सहज और तीव्र बनाया है, वहीं दूसरी ओर मनुष्य का अकेलापन, मानसिक तनाव और मूल्यगत संकट गहराया है। सामाजिक संरचना में परिवार, रिश्ते और नैतिकता की परिभाषाएँ बदल रही हैं। ऐसे परिवेश में नव विमर्श सामाजिक यथार्थ को केवल दर्ज नहीं करता, बल्कि उसके अंतर्संबंधों और कारणों की विवेचना भी करता है।

इस विशेषांक में सम्मिलित शोध आलेख यह स्पष्ट करते हैं कि नव विमर्श केवल प्रतिरोध की भाषा नहीं, बल्कि पुनर्निर्माण की चेतना भी है। यह विमर्श सत्ता, वर्चस्व और हाशियाकरण के प्रश्नों को नए संदर्भों में समझने का प्रयास करता है।

साहित्य में नव विमर्श की भूमिका :

साहित्य सदैव समाज का दर्पण रहा है, किंतु 21वीं सदी में वह समाज का सक्रिय हस्तक्षेपकर्ता भी बन गया है। कविता, कथा, नाटक और आलोचना सभी विधाओं में नव विमर्श की उपस्थिति स्पष्ट दिखाई देती है। आज का साहित्य शोषित, वंचित और हाशिए पर खड़े व्यक्ति की आवाज को केंद्र में लाने का प्रयास कर रहा है।

इस विशेषांक में प्रकाशित आलेख यह सिद्ध करते हैं कि नव विमर्श ने साहित्य को संवेदनशील, उत्तरदायी और लोकतांत्रिक बनाया है। भाषा, शिल्प और कथ्यकृतीनों स्तरों पर परिवर्तन दिखाई देता है। अनुभव की प्रामाणिकता और जीवन की सच्चाइयाँ साहित्य की केंद्रीय चिंता बन गई हैं।

शोध, अकादमिकता और नव विमर्श :

नव विमर्श ने शोध की परंपरागत सीमाओं को भी विस्तारित किया है। आज शोध केवल ग्रंथों तक सीमित नहीं, बल्कि समाज, मीडिया, डिजिटल मंचों और जनजीवन से जुड़ा हुआ है। यह सेमिनार इसी दृष्टि का उदाहरण है, जहाँ विभिन्न विषयों और अनुशासनों के विद्वानों ने विमर्श को बहुआयामी बनाया।

VISTAS, चेन्नई एवं गुगन राम एजुकेशनल एंड सोशल वेलफेयर सोसाइटी द्वारा आयोजित यह सेमिनार अकादमिक समन्वय और वैचारिक संवाद का उत्कृष्ट उदाहरण है। यह आयोजन शोधकर्ताओं, शिक्षकों और साहित्यकारों को एक साझा मंच प्रदान करता है।

विशेषांक की प्रासंगिकता :

यह विशेषांक केवल सेमिनार की कार्यवाही नहीं, बल्कि 21वीं सदी के नव विमर्श का दस्तावेज है। इसमें सम्मिलित आलेख समकालीन प्रश्नों पर गंभीर, तथ्यात्मक और वैचारिक दृष्टि प्रस्तुत करते हैं। यह अंक शोधार्थियों, शिक्षकों और साहित्यप्रेमियों के लिए संदर्भ सामग्री के रूप में उपयोगी सिद्ध होगा।

विशेषांक का उद्देश्य विमर्श को स्थिर करना नहीं, बल्कि उसे आगे बढ़ाना है। यह पाठकों को प्रश्न करने, पुनर्विचार करने और नए निष्कर्षों तक पहुँचने के लिए प्रेरित करता है।

समापन :

अंततः कहा जा सकता है कि 21वीं सदी का नव विमर्श मानव गरिमा, सामाजिक न्याय और समतामूलक समाज की स्थापना की दिशा में एक सशक्त वैचारिक आंदोलन है। यह विशेषांक उसी चेतना का प्रतिनिधित्व करता है।

हम VISTAS, चेन्नई एवं गुगन राम एजुकेशनल एंड सोशल वेलफेयर सोसाइटी (रजिस्टर्ड) के प्रति आभार व्यक्त करते हैं, जिनके सहयोग से यह सेमिनार और यह विशेषांक संभव हो सका। साथ ही, सभी लेखकों, शोधकर्ताओं और संपादकीय सहयोगियों को हार्दिक धन्यवाद, जिनके बौद्धिक योगदान से यह विशेषांक समृद्ध हुआ है।

आशा है कि यह संपादकीय और विशेषांक 21वीं सदी के नव विमर्श को समझने और आगे बढ़ाने में सार्थक भूमिका निभाएगा।

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Sept. 2025 Page No. : 17-21

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

मन्नू भण्डारी की कहानियों में राजनीतिक मूल्य

'मैं हार गई, 'अ–लगाव' और 'तीसरा हिस्सा' कहानी के विशेष संदर्भ में)

स्निग्धा सिंह, शोधार्थी

डॉ. बिमला पात्र, शोध निर्देशिका

सहायक प्राध्यापिका, शैलबाला महिला महाविद्यालय (स्वयंशासित), कटक, ओडिशा।

शोध सार :–

प्रस्तुत आलेख मन्नू भण्डारी की तीन महत्त्वपूर्ण कहानियों 'मैं हार गई', 'अ–लगाव' और 'तीसरा हिस्सा' के माध्यम से राजनीतिक मूल्य को ढूढ़ने का प्रयास किया गया है। लेखिका ने इस कहानी में नेताओं का पोल जिस बेबाकी से खोला है, वह प्रशंसनीय है। उक्त कहानियों को केंद्र में रखकर पतित राजनीति, भ्रष्ट पत्रकारिता, चरमराती सामाजिक व्यवस्था, गरीब जनता का शोषण आदि को रेखांकित करने का प्रयास किया है। एक चरित्रवान व कुशल शासक के द्वारा ही देश उत्थान की ओर बढ़ सकता है और वहीं धन–लोलुप व भ्रष्ट नेता देश के विकास में अवरोध ही बनता है। राजनेताओं का अपराधियों के संग सांठ–गांठ के कारण ही आम–जनमानस का राजनीति से मोहभंग हो रहा है। भ्रष्ट राजनीति देश को खोखला बना दे रही है।

किसी भी देश का राजनीतिक मूल्य अथवा निर्णय सम्पूर्ण देश की व्यवस्था को प्रभावित करता है। क्या वर्तमान में एक आदर्श नेता की कल्पना करना भी दुष्कर है? राजनीति प्रत्यक्ष रूप से समाज को प्रभावित करती है। आखिर वे कौन से कारण रहे हैं जिनकी वजह से राजनीतिक मूल्य का निरंतर अवमूल्यन हो रहा है? इन्हीं प्रश्नों की पड़ताल इस शोध आलेख में किया गया है।

बीज शब्द : राजनीति, मूल्य, संदर्भ, चरित्रहीनता, स्वार्थ, चालबाजी, धूर्तता, सत्ता, लोलुप।

मूल आलेख :–

मानव एक सामाजिक प्राणी है। उसे अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए चाहे वह मानसिक हो अथवा भावनात्मक, किसी–न–किसी का प्रश्रय लेना ही पड़ता है। इसलिए उसे जीवन को सुचारु रूप से चलाने के लिए मानवीय सम्बन्धों की आवश्यकता पड़ती है। यह बात दृढ़तापूर्वक कही जा सकती है कि सभ्यता और समाज के गठन में 'मूल्य' अह्म भूमिका निभाते हैं। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने मूल्य के उद्देश्य को परिभाषित करते हुए कहा है कि, "जीवन मूल्यों की सार्थकता इसी में है कि वह जीवन को जीने योग्य बनाते हैं। अनुभूत सत्यों के आधार पर इन मूल्यों का विकास होता है। अतः जीवन–मूल्य शाश्वत नहीं होते, अनुभव तथा विवेक द्वारा ही इन्हें ग्रहण किया जा सकता है।"[1] वहीं डॉ. राधाकृष्णन ने कलाकार के कला–चिंतन को मूलभूत मानते हुए यह कहा कि– "कला का कार्य हमारे भीतर आत्मा झंकृत करना, हमारी प्रकृति को मानवीय बनाना, हमारे

जीवन को परिष्कृत करना और मन में ऐसा गंभीर संतोष और आत्म–प्रसाद पैदा करना जो धीरे–धीरे मन की स्थायी अभिवृत्तियाँ बन जाएँ।"[2]

समाज में विविध प्रकार के मूल्यों में राजनीतिक मूल्य का अहम् योगदान है। जो समाज को प्रत्यक्ष–अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करता है। वर्तमान में कोई भी व्यक्ति राजनीतिक दाव पेंच से अछूता नहीं रह गया है। मन्नू भण्डारी एक जागरूक लेखिका होने के साथ–साथ प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से अनेक आंदोलनों से भी जुड़ी हुई थीं। इन्होंने अपनी रचनाओं में व्यंग्य और यथार्थ दोनों को जिस कौशल से पिरोया है, वह अविस्मरणीय है। इनकी कृतियाँ राजनीतिक चालबाजियों को केन्द्रित कर रची गयी हैं।

जन–सामान्य के लोग जिन नेताओं को देश के प्रतिनिधि के रूप में चुनते हैं, वे ही आम जन को लूट खसोट कर अपना घर भरते हैं। वर्तमान परिदृश्य में राजनीतिक मूल्य अन्य मूल्यों का केंद्र बनती जा रही है, जिसके कारण अन्य मूल्य भी प्रभावित हो रहे हैं। इनके द्वारा रचित कहानी 'मैं हार गई', 'अ–लगाव' और 'तीसरा हिस्सा' इसका ज्वलंत उदाहरण है। इन कहानियों में आपने अराजकता, उच्छृंखलता, दायित्वहीनता आदि द्वारा राजनीति में हो रहे ह्रास का यथार्थ अंकन किया है। राजनेता भ्रष्टाचार में इस प्रकार से लिप्त हो गए हैं कि उन्हें अपने दायित्व का भी बोध नहीं रह गया है।

नेता गण अवसरवादिता, पद लोलुप, चरित्रहीनता, स्वार्थ भाव आदि राजनीतिक चरित्र को दूषित करने वाले भावों में लिप्त होते हैं। वर्तमान में झूठ का ही बोल–बाला है। राजनेता अपने स्वार्थ सिद्धि के लिए जनता में सांप्रदायिकता, क्षेत्रीयता, जातीयता आदि का बीजवपन बड़ी होशियारी से कर देता है। ताकि लोग आपस में ही लड़ते रहे और उनकी कार्य सिद्धि होती रहे। मूल्य परिवर्तनशील, निजात्मक और अस्थायी होते हैं। इनमें समयानुसार बदलाव आवश्यक है किन्तु इनकी अवनति चिंतनीय है।

'मैं हार गई' कहानी की नायिका 'मैं' कल्पना का सहारा लेकर एक आदर्श नेता को गढ़ने का प्रयास करती है जिसमें अंततः उसे असफलता ही हाथ लगती है। इसकी कथावस्तु इस पर आधारित है कि किस प्रकार से नेता भौतिक जगत के प्रति आकृष्ट होकर राजनैतिक मूल्यों से किनारा कर रहे हैं। जिनका चुनाव जन–समाज के कल्याण के लिए होता है, वे भोग–विलास में इस प्रकार लिप्त हैं कि आम–जन की समस्याओं की खबर तक नहीं है। महिलाओं के साथ कुकृत्य, जबर्दस्ती वोट मांगना, कर्तव्यों से मुँह फेरना आदि चीजें उनके व्यक्तित्व को धूमिल करती जा रही हैं। इस घटिया प्रवृत्ति का चित्रण लेखिका ने बड़ी सूक्ष्मता से किया है।

'मैं हार गई' कहानी में नेता के जिस चरित्र का चित्रण किया गया है, वह वास्तविक है। इस कहानी के शुरुआत में लेखिका एक कवि सम्मेलन में भाग लेती है, जिसमें 'बेटे का भविष्य' नाम से एक कविता सुनाई जाती है। जिसका सार यह होता है कि पिता बेटे के भविष्य का अनुमान लगाने के लिए उसके कमरे में तीन चीजें रखता है अभिनेत्री का चित्र, शराब और गीता की एक प्रति। जब बेटा आता है और सर्वप्रथम अभिनेत्री का चित्र उठाकर सीने से लगाता है, फिर शराब की दो घूंट लगता है और अंततः गीता की प्रति लेकर बाहर निकलता है। इस दृश्य को देखकर पिता कहते हैं कि हो न हो यह बड़ा होकर नेता ही बनेगा। इस कविता को सुनकर कथा वाचक दुखी होती है। वह सोचती है कि आखिर क्यों लोग नेता को भ्रष्ट, लोलुप, विलासी रूप में ही देखते हैं? क्या कोई नेता ईमानदार, कर्तव्यनिष्ठ नहीं हो सकता है? इन सब विचारों के पश्चात् वह कलम लेकर एक आदर्श नेता को गढ़ने के लिए बैठ जाती है। सबसे पहले वह एक ऐसे व्यक्ति को जन्म देती है, जो गरीब किसान

परिवार से है। वह जैसे–जैसे बड़ा होता है, वैसे–वैसे उसके भीतर अन्याय के विरुद्ध आवाज उठाने का भाव जागता है। "वह जहाँ कहीं भी अत्याचार देखता, मुट्ठियाँ भींच–भींचकर संकल्प करता, उसको दूर करने की बड़ी–बड़ी योजनाएँ बनाता।"[3]

किन्तु जैसे–जैसे उसकी पारिवारिक स्थिति बद से बदतर होती जाती है, वैसे–वैसे उसके विचार भी परिवर्तित होते जाते हैं। कथा वाचक के लाख कोशिशों के बावजूद भी वह पारिवारिक समस्याओं से बाहर नहीं निकल पाता है। जिसपर वह झल्ला उठती है और कहती है– "तुम नेता होने जा रहे हो या कोई मजाक है? जानते नहीं, नेता लोग कभी अपने परिवार के बारे में नहीं सोचते हैं, वे देश के, सम्पूर्ण राष्ट्र के बारे में सोचते हैं।"[4] उस पर इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। इससे यह विदित होता है कि नैतिक मूल्यों के पतन का प्रभाव राजनैतिक मूल्यों पर भी पड़ता है।

'मैं' को यह लगता है कि उसके द्वारा बनाया गया नेता इसलिए अपने कर्तव्यों का निर्वहन नहीं कर पा रहा है क्योंकि वह आर्थिक रूप से अबल है। वह फिर एक बार अपना कलम उठाती है और ऐसे चरित्र को गढ़ती है, जो उच्च परिवार से सम्बद्ध होता है और आर्थिक रूप से सबल। जैसे–जैसे वह बड़ा होता जाता है भोग विलास में डूबा रहता है। यह देख कथा वाचिका अपने कलम को जोर से पकड़ती है ताकि वह एक आदर्श नेता को गढ़ सके। किन्तु जब वह यह देखती है कि उसके द्वारा निर्मित नेता वैश्यालय जा रहा है तो वह अपना कलम ही तोड़ देती है। उसकी इस क्षुब्धता का अंत इस आत्मकथन द्वारा होता है– "मैं हार गई, बुरी तरह हार गई।"[5]

आपकी दूसरी कहानी 'अ–लगाव' में राजनीति के नृसंश, घिनौने, कुरूप और मक्कार रूप को भरपूर उभारा गया है। यह कहानी सन् 1978 में प्रकाशित कहानी 'त्रिशंकु' में संकलित है। उक्त कहानी 'महाभोज' उपन्यास का लघु संस्करण प्रतीत होता है। इस कहानी में 'बिसेसर' नामक ईमानदार, अन्याय दमन में तत्पर व्यक्ति की हत्या के कारण हरिजन बस्तियों में रोष, क्रोध, हताशा जैसे भाव उत्पन्न होने लगते हैं। इसमें शासन प्रणाली के जीर्ण–क्षीर्ण होती व्यवस्था को चित्रित किया गया है। उदाहरणस्वरूप– जब 'अ–लगाव' कहानी में चित्रित गाँव सरोहा में आग लग जाती है तो सभी लोग दौड़े–दौड़े थाने में जाते है। वहाँ जाकर पता चलता है कि "थानेदार साहब छुट्टी पर थे और जो दो कांन्स्टेबल वहाँ पर थे, उन्होंने यह कहकर कि थानेदार साहब के आने पर ही मौके पर आएँगे और तहकीकात होगी, बात टाल दी।"[6] कहानी के उक्त अंश द्वारा प्रशासन की निष्क्रियता का प्रभाव जन–मानस पर किस प्रकार से पड़ता है, इसका यथार्थ रूप प्रस्तुत किया है। शासन के अंग जिनमें नेता, पुलिस, अधिकारी आदि आते हैं, जिनका मूलभूत कर्तव्य जनता की सेवा करना होता है, वे भौतिक सुखों में ही लिप्त रहते हैं।

जैसा कि धर्मवीर भारती ने अपनी पुस्तक 'मानव मूल्य और साहित्य' में कहा है :–

"राजनीति की कई चिंतनधाराओं ने बीसवीं शताब्दी के आरंभ में यह दावा पेश किया था कि वे मानव–मुक्ति को ही लक्ष्य बनाकर चल रही हैं पर उन्होंने जिन व्यवस्थाओं को स्थापित किया उनको जनतंत्र का नाम तो अवश्य दिया, पर अधिकांश व्यवस्थाओं में तंत्र औरों के ही हाथ में रहा, 'जन' तो ज्यों–का–त्यों दास बना रहा। यह बात केवल विदेशों पर ही लागू नहीं होती, दुर्भाग्यवश यह कटु सत्य हमारे देश पर भी लागू होता दिख रहा है।"[7]

'तीसरा हिस्सा' कहानी में भ्रष्ट होती राजनीति और दैनंदिन पत्रकारिता में हो रही अवनति व सामाजिक

विकृति का यथार्थ अंकन मिलता है। कहानी के मुख्य पात्र 'शेरा बाबू' के इर्द–गिर्द ही सम्पूर्ण कहानी रची गई है। ये एक ऐसी पत्रिका निकालते थे जिसमें देश भर में चल रही समस्याओं का गर्जना–तर्जना और दहाड़ के साथ चित्रण करते थे। वे कहते हैं– "खुलकर कहने का मौका तो उन्हें तब मिला था, जब उन्होंने पत्रिका निकाली थी। जहाँ कुछ अनुचित देखा, गलत सुना, छज्जियाँ बिखेरकर रख दीं। न किसी का डर न खौफ।"[8] उक्त कथन शेरा बाबू की बेबाकी, ईमानदारी और अपने कार्य के प्रति पूर्ण समर्पण भाव को इंगित करता है। इस पत्रिका का केवल बारह अंक ही निकल सका उसके बाद बंद हो गया। जिसका मुख्य कारण भ्रष्ट प्रशासन के विरोध में बेबाकी से लिखना था।

शेरा बाबू द्वारा संपादित पत्रिकाओं का मुख्य उद्देश्य ही यह था कि वे भ्रष्ट नौकरशाही को जड़ से उखाड़ फेंकना चाहते थे। किन्तु वे उसे तिल भर भी हिला नहीं पाते हैं। जब वे दूसरे अखबारों को देखते हैं तो और भी दुखी होते हैं। "जनता पार्टी के मंत्रियों की तस्वीरें.....उनकी जीवनियाँ.....उनके इंटरव्यूज.....उनकी प्रशंसा..... प्रशस्ति.....।"[9] जिन संपादकों का दायित्व देश की वास्तविक अवस्था को दिखाना, हो रहे अन्याय के विरुद्ध आवाज उठाना और दैनंदिन नौकरशाही व्यवस्था में हो रहे ह्रास को दिखाना होता है। पर ये समाचार पत्र या तो बिक जाते हैं अथवा शासन की ताकत के आगे हार।

निष्कर्ष :–

लेखिका ने राजनीतिक ढांचे के मध्य पनपने वाले कटु सत्य की अभिव्यक्ति जिस सांकेतिक रूप को लेकर 'मैं हार गई' कहानी में की है वह बेहद सराहनीय है। इन कहानियों के कथ्य से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि मन्नू भण्डारी सच्ची मानवता की पुजारी थी एवं उनके लिए मानव–सेवा ही सर्वोपरि था। इसमें संदेह नहीं कि अपने युग की उल्लेखनीय लेखिका मन्नू भण्डारी एकमात्र ऐसी लेखिका थी जिन्होंने कहानियों में राजनीति जैसी कथावस्तु ली। आपने उक्त कहानियों में विकृतियों, अनाचारों व असंगतियों का कलात्मक अंकन किया है। नेता गण केवल पद लिप्सा और अवसरवादिता के कारण ही अपने कर्तव्यों के निर्वहन से मुँह मोड़ रहे हैं, जिसकी वजह से प्रगति व विकास में बाधा उत्पन्न हो रही है। जब देश को चलाने वाला ही दिशाहीन हो जाए, तो उस देश का हाल बेहाल नहीं तो और क्या होगा।

संदर्भ :–

1. डॉ. उमा, नागार्जुन के कथा साहित्य में मानवीय मूल्यों की अभिव्यक्ति, ओमेगा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2013, पृ.– 91
2. डॉ. राधाकृष्णन, जीवन की आध्यात्मिक दृष्टि, राजकमल प्रकाशन, प्रथम संस्करण, जुलाई, 1962, पृ. 236
3. भण्डारी, मन्नू, मैं हार गई, राधाकृष्ण प्रकाशन, छठा संस्करण, 2022, पृ.– 157
4. वही, पूर्वोद्धृत, पृ.– 158
5. वही, पूर्वोद्धृत, पृ.– 163
6. भण्डारी, मन्नू, त्रिशंकु, राधाकृष्ण प्रकाशन, चौथा संस्करण, 2017, पृ.– 105
7. धर्मवीर भारती, 'मानव मूल्य और साहित्य', भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, दूसरा संस्करण 1990, नई दिल्ली, पृ.–42

8. भण्डारी, मन्नू, त्रिशंकु, राधाकृष्ण प्रकाशन, चौथा संस्करण, 2017, पृ.– 92
9. वही, पूर्वोद्धृत, पृ.–96

शोधार्थी, हिन्दी विभाग, रमादेवी महिला विश्वविद्यालय, भुवनेश्वर।
स्थायी पता–
82, S-C Chatterjee Street, Indrapuri Apartment Block-D, Konnagar, Hooghly,
West Bengal, Pin Code-712235
Ph. 7439481553
snigdhasingh099@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Sept. 2025 Page No. : 22-25

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

मालती जोशी की कहानियों में बदलते समाज की यथार्थ तस्वीर

डॉ. सावित्री देवी

सहायक आचार्या हिंदी, राजकीय महाविद्यालय करसोग जिला मंडी, हिमाचल प्रदेश–175011

बदलाव प्रकृति का शाश्वत नियम है और परिवर्तन ही विकास का कारक भी है। परिवर्तन जहाँ बहुत कुछ पीछे छोड़ देता है वहीं दूसरी ओर बहुत कुछ जोड़ता भी है। समाज के बदलाव साहित्य में स्पष्ट रूप से दृष्टव्य है। परिवर्तन प्राकृतिक नियम है। इस क्रम में कुछ छूटता है तो कुछ नया जुड़ता है। 21वीं सदी ने भारतीय समाज में अभूतपूर्व परिवर्तन देखे हैं, जिन्होंने समाज और संस्कृति को प्रभावित किया है। कहीं आधुनिकता के प्रभाव से सांस्कृतिक मूल्यों में गिरावट देखी जा सकती है तो कहीं वैज्ञानिकता के प्रभाव ने धार्मिक मूल्यों पर चोट की है। हिंदी कहानियां भारतीय समाज, संस्कृति एवं विरासत का महत्वपूर्ण अंग हैं।

"समाज और साहित्य का संबंध आदिकाल से चला आ रहा है। साहित्य उसी समाज का प्रतिनिधित्व करता है, जिसमें वह जन्म लेता है। वह अपनी समस्याओं का समाधान और अपने आदर्शों की स्थापना समाज के आदर्शों के अनुरूप ही करता है।"[1] सामाजिक विकास के निर्माण में मूल्य का विशेष योगदान रहता है। हिंदी कहानियों में कथाकारों ने इन मूल्यों को अपनी रचनाओं का विषय बनाकर यह सिद्ध कर दिया कि हिंदी कहानी भी सामाजिक विकास के हर पहलू को समझने में सक्षम रही है। 21वीं सदी की हिंदी कहानियों में समयानुकूल आए सामाजिक परिवर्तन को बखूबी देखा जा सकता है। इनमें गांव और शहर के समाज का यथार्थ रूप चित्रित हुआ है। कहानियों के माध्यम से परिवार, नारी के विविध रूप बेरोजगारी की समस्या, बढ़ती संवेदनहीनता आदि को देखा जा सकता है।

हिंदी साहित्य की प्रतिष्ठित समकालीन कहानीकार मालती जोशी ने बदलते समाज को यथार्थ रूप में चित्रित किया। इनकी कहानियों में परंपरा की मजबूत जड़ों में जो अच्छा है और विकास के लिए अनिवार्य है, उसे बचाए रखना सबका दायित्व है। नए को अब बनाते समय भी उचित–अनुचित की परख कर लेना सब के लिए हितकारी है क्योंकि नवीन की स्थापना या नए को अपनाने में जल्दबाजी से परहेज करना चाहिए। यद्यपि समय के अनुरूप चलना ही जीवन के विकास में सहायक होता है परन्तु पुराने में अच्छे के भाव को नए के साथ जोड़ना जरूरी है। निर्मला डोसी ने एक साक्षात्कार में मालती जोशी से नएपन और परंपरा पर विचार पूछे थे, तो मालती जोशी ने कहा था– "जो पुराना है उसमें जो अच्छा है उसे बचाना है और आंख मूंदकर नए को अपनाने से पूर्व उसका औचित्य परख लेना जरूरी है। हम मुड़कर सोलहवीं सदी में तो नहीं जी सकते। हमें इसी सदी

के साथ कदम मिलाकर चलना चाहिए।"[2] इन पंक्तियों से स्पष्ट है कि समय के साथ चलना समझदारी ही नहीं बल्कि जिम्मेदारी भी है। परिवर्तन का हिस्सा इंसान है और उसके सर्वांगीण विकास का सहायक भी परिवर्तन ही है।

समाज में अनेक परिवर्तन हुए जिसमें कामकाजी महिला का सुंदर चित्रण देखने को मिलता है। ष्आज नारी का कार्यक्षेत्र परिवार तक ही सीमित नहीं रह गया है, उसे अपने कार्यस्थल में भी अनेक रूपों में अपना दायित्व भली–भांति निर्वहन करना पड़ता है। इस प्रकार एक ही नारी को एक ही दिन में कई प्रकार की भूमिका निभानी पड़ती है। आजकल की कामकाजी नारी के रूप अत्यधिक विकसित हो गए हैं।[3] मालती जोशी की कहानियों में महानगरीय परिवेश में कामकाजी नारी अंर्तद्वंद ग्रस्त दिखाई देती है। वह अंदर और बाहर संघर्ष से जूझती रहती है। नौकरीपेशा नारी को भावनात्मक संघर्ष का सामना भी निरंतर करना पड़ता है जिसके कारण वह अपने अंतर्मन को समझ पाने में ही असफल रहती है। वह पारिवारिक एवं सामाजिक दायित्वों को एक साथ बखूबी निभा रही हैं। इसके संदर्भ में कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार हैं "इनकी कहानियाँ स्त्री मन की थाह लेती कहानियाँ हैं। वे मध्यवर्गीय परिवारों के कथा कहते हुए स्त्री के मन, उसके आत्मसंघर्ष, उसकी जिजीविषा और उसकी शक्ति सबसे परिचित कराती है।"[4] मध्यांतर एक ऐसी कहानी है, जिसमें नायिका विमल विवाहित जीवन व्यतीत करते हुए संघर्ष से जूझती हुई महसूस करती है। वह नौकरी करती है और उसका पति भी नौकरी पेशा है। 5 साल की एक बेटी है। वह परिवार और कार्यालय को संभालती है और उसे लगता है कि परिवार में उसको अकेले ही जूझना पड़ता है। नायिका विमल अपने आपको आंतरिक और बाह्य समस्याओं में पिसता हुआ महसूस करती है। उसे लगता है कि वह केवल पैसा कमाने वाली मशीन बन गई है। एक नौकरी पेशा नारी की पीड़ा इन पंक्तियों से स्पष्ट है– औरत कहलाने को कुछ बाकी भी रहने दिया है तुमने। सब तो निचोड़ लिया है। पैसे कमाने की मशीन भर रह गयी हूँ मैं।[5]

यहाँ साहित्यकार ने स्त्री मुक्ति की बात नहीं कही बल्कि स्त्री–पुरुष संबंधों को समान महत्त्व देने का प्रयास किया है। कहानीकार स्त्री–पुरुष दोनों को मनुष्य के रूप में देखने की आकांक्षी है। सुशिक्षित होने के बावजूद भी महिलाएं अपने दाम्पत्य जीवन की गाड़ी को अकेले खींचने की कोशिश करती है। जीवन की कोई भी गाड़ी अकेले चला पाना संभव नहीं है। इसलिए वह थक हार कर पीड़ा महसूस करती है। इसमें ये देखा जाता है कि कामकाजी महिलाएं घर और कार्यस्थल दोनों ही जगहों पर संघर्षरत है। यदि उसे पुरुष का सहयोग मिल जाता है तो उसके संघर्षों को पर लग जाते हैं, पर ऐसा आज बहुत कम देखने को मिलता है। वर्तमान समय में सबको समझना होगा कि यदि दम्पत्ति नौकरीपेशा हैं तो परिवार में सामंजस्य बनाए रखने हेतु दोनों एक –दूसरे की ताकत बनें ताकि स्वस्थ समाज के निर्माण में सहयोग हो सके।

परिवार एक ऐसी संस्था है, जिसे सभी सदस्य मिलकर सुदृढ़ बना सकते हैं। जिस तरह एक कार्यालय में सभी कर्मचारी अपनी कर्मठता और अनथक प्रयासों से उसको उन्नति के शिखर तक ले जाने में सक्षम होते हैं, उसी तरह परिवार के सदस्य कर्तव्य परायणता एवं सामंजस्य से अक्षय नैतिक मूल्यों का निर्माण करने में सफल हो सकते हैं। मालती जोशी ने अपनी कहानियों में परिवार एवं परिवार से जुड़े विविध पक्षों को आधार बनाया है। 'अपनी रचनाओं में के माध्यम से भारतीय परिवारों के रिश्तो, संवेदनाओं, परंपराओं, मूल्य की कथा कहने वाली मालती जोशी अपनी तरह की विलक्षण कथाकार हैं।'[6] आज परिवार दो भागों में बंट चुका है – संयुक्त

परिवार एवं एकल या केंद्रीय परिवार। भारतीय परिदृश्य में देखें तो संयुक्त परिवार अधिकांश रूप से गांव में देखने को मिलता है। ज्यादातर ग्रामीण लोग कृषि को अपना व्यवसाय बनाए हुए हैं, इसी से परिवार का निर्वाह होता है। ऐसे घरों में सबसे बड़े सदस्य परिवार का संचालन करते हैं। घर के सभी सदस्यों के बीच सामंजस्य बना रहता है और संबंधों में घनिष्ठता भी रहती है। आज इन घनिष्ठ संबंधों में भी मनमुटाव शुरू हो गया है। यद्यपि ये दिखाई नहीं देता क्योंकि मुखिया की बात मानना परिवार की परंपरा है।

इस संदर्भ में महकते रिश्ते नामक कहानी के माध्यम से कहा गया है– "माँ और बड़ी माँ को मैंने कभी झगड़ते नहीं देखा पर कभी साथ बैठकर खाते या गप्पें लड़ाते भी नहीं देखा। दादी की सेवा टहल के बहाने इन लोगों ने भी अपना काम, अपना समय बांट लिया था। घर में कभी कोई हंगामा नहीं होता था।"[7] आज ग्रामीण क्षेत्र में भी संयुक्त परिवार गिनती मात्र रह गए हैं, क्योंकि बच्चों की उच्च शिक्षा और नौकरी के लिए दंपति शहर की ओर पलायन कर रहे हैं। जिससे आज एकल परिवार ही वर्चस्व बनाए हुए है। प्रौद्योगिकी एवं तकनीकी का युग होने के कारण लोगों के जीवन में परिवर्तन आया और उसी परिवर्तन के साथ संयुक्त परिवार एकाकी परिवार में परिवर्तित हो गए। अब इस परिवार का स्वरूप पति–पत्नी और उनके अविवाहित संतान ही रह गए हैं। एकल परिवार बनने का कारण संयुक्त परिवार की संकीर्ण विचारधारा को माना गया। संयुक्त परिवार द्वारा निर्धारित किए गए नियमों को न मानने वाले लोगों ने एकाकी परिवार को चुनना शुरू कर दिया। आज माता–पिता यदि बच्चों को ज्यादा डांट दें तो वे बच्चे डांट को असहनीय मानते हुए घर से बाहर निकलकर भटकते नजर आते हैं। आज बच्चे रोजगार की तलाश में भी विदेश जा रहे हैं। अधिक पैसे की चाह में बच्चों के विदेश जाने के बाद माता–पिता घर पर अकेले रह गए हैं। मालती जोशी ने माता–पिता के उस अकेलेपन को प्रलय के बावजूद नामक कहानी में व्यक्त करते हुए कुछ यूं कहा है– सच है बच्चे साथ नहीं होते तो सब कुछ फीका लगने लगता है। जब से आलोक बाहर गया है, वे तो पग पग पर इस बात को अनुभव कर रही है। बल्कि अब तो आदत हो गई है। चाहे बेटे के माँ बाप हो या बेटी के–बुढ़ापा सबको अकेले ही काटना है। यही सौगात है।[8] आज स्थिति चिंतनीय है कि बदलते सामाजिक परिदृश्य में परिवार में समन्वय कैसे स्थापित हो और संतान को उनके दायित्व निर्वहन के प्रति जागरूक कैसे करें। समझने की आवश्यकता है कि जिन माता–पिता ने संतान की परवरिश में अपना सर्वस्व न्योछावर किया, वे अपनी संतान के बिना उनकी खुशी के लिए रह तो सकते हैं, परंतु सुकून भरा जीवन जी नहीं सकते।

अतः 21वीं सदी की प्रमुख कहानीकार ने अपनी कहानियों में जहां सामाजिक मूल्यों में अभूतपूर्व परिवर्तन को चित्रित किया है, वहीं अनेक संभावनाएं भी इनकी कहानियों में देखी जा सकती हैं। आज समाज का प्रत्येक वर्ग कुरीतियों का विरोध करता दिखाई देता है। समाज जो राष्ट्र की नींव है इससे इसमें समय के साथ परिवर्तन होते हैं। कुछ परिवर्तन अधिकारों की रक्षा के लिए होते हैं तो कुछ ऐसे भी परिवर्तन है जहां संबंधों की शिथिलता संबंधों को खोखला कर रही हैं। आज की युवा पीढ़ी को अपने माता–पिता के प्रति कृतज्ञ होने की आवश्यकता है। बड़ों का सम्मान उन्हें अपना कर्तव्य समझना होगा। आत्मोन्मुखता के बढ़ते प्रभाव से आज परिवारों में प्रेम भाव कम होता जा रहा है और एकाकी परिवार का वर्चस्व बढ़ गया है। परिवार के महत्व को आज जानने की आवश्यकता है। युगानुरूप लिखी गई मालती जोशी की कहानियों में पिता–पुत्र के संबंधों पर विचार हुआ है। समाज के हर पहलू को आधार बनाकर समझाने का प्रयास किया है। आज यह चिंतन का विषय है कि समाज

में गिरते मूल्यों की रक्षा करने के लिए सबको प्रयास करना होगा और स्वस्थ समाज की समृद्धि हेतु हरसंभव प्रयत्न करने होंगे। मानव को आज रिश्ते नाते को बखूबी समझना होगा। यही मूल्य समाज के विकास हेतु अनिवार्य हैं। स्त्री की स्थिति में सुधार आया है, परन्तु आज कामकाजी महिला का साथ देना परिवार के प्रत्येक सदस्य का दायित्व होना चाहिए। वह नौकरी करके आर्थिक रूप से सुदृढ़ हुई है और स्वतंत्र भी महसूस करती है। कई बार वह अपने आप को अकेला महसूस करती है, ऐसे समय में उसकी मनोस्थिति को समझते हुए उसके जीवन साथी को उसके हम सफर होने का परिचय देना होगा। समाज में घट रही कुछ अमानवीय घटनाएं ये समझा रही हैं कि स्त्री सुरक्षा के लिए स्त्री–पुरुष को मिलकर समाधान खोजना होगा। समाज के विकसित मूल्यों को अपनाकर समाज को सही दिशा देनी होगी तभी विकृत होती स्थिति को सुधार कर स्वस्थ समाज की स्थापना की जा सकती है। समाज को विकास की गति देने वाले मूल्य इस ओर संकेत कर रहे हैं कि यदि हमारे समक्ष सामाजिक चुनौतियां हैं तो सुदृढ़ समाज बनाने हेतु अनेक संभावनाएं भी हैं।

संदर्भ ग्रंथ :–

1. भगवत शरण अग्रवाल, साहित्य और समीक्षा, पार्श्व प्रकाशन, अहमदाबाद, प्रथम संस्करण 1995, पृ – 91
2. https// vagarth.bhartiyabhashaparishad.org
3. रमा शर्मा, एम. के. मिश्रा, भारतीय समाज में नारी, अर्जुन पब्लिशिंग हाउस नई दिल्ली 2010, पृष्ठ 24
4. प्रो संजय द्विवेदी, दस्तक टाइम्स, 4 जून 2024, पद्मश्री मलती दोषी भारतीय परिवारों की आत्मीय कथाकार।
5. मालती जोशी, मध्यांतर, 1986, पृष्ठ 87
6. प्रो संजय द्विवेदी, दस्तक टाइम्स, 4 जून 2024, पदम श्री मालती जोशी भारतीय परिवारों की आत्मीय
7. मालती जोशी महकते रिश्ते, साक्षी प्रकाशन, दिल्ली 2018 पृष्ठ 24 कथाकार।
8. मालती जोशी, रहिमन धागा प्रेम का, प्रलय के बावजूद, परमेश्वरी प्रकाशन दिल्ली 2022 पृष्ठ 41

Email : savikarsog@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Sept. 2025 Page No. : 26-31

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

इक्कीसवीं सदी के हिन्दी कथा साहित्य में किन्नर विमर्श

डॉ. दिलीप सिंह राजपूत

सहायक प्राध्यापक, हिन्दी विभाग, रानी पद्मावती महाविद्यालय लोरमी, जिला–मुंगेली (छ.ग.) 495115

शोध सारांश :–

हिन्दी कथा साहित्य में किन्नर विमर्श एक उभरता हुआ सामाजिक–सांस्कृतिक विमर्श है, जो लैंगिक असमानताओं, सामाजिक हाशिए और मानवीय गरिमा के प्रश्नों को सामने लाता है। परंपरागत भारतीय समाज में किन्नरों को "शुभ" मानकर धार्मिक अनुष्ठानों में स्थान तो दिया गया, परंतु सामाजिक, शैक्षिक और आर्थिक अवसरों से वंचित रखा गया। कथा साहित्य ने इस विरोधाभासी स्थिति को रेखांकित करते हुए किन्नरों के जीवन संघर्ष, उनकी भावनाओं, आकांक्षाओं और आत्मसम्मान के प्रश्नों को स्वर दिया है।

समकालीन कथाकारों ने किन्नरों को केवल उपहास या करुणा के पात्र के रूप में न दिखाकर, उन्हें संवेदनशील मनुष्य के रूप में चित्रित किया है। इस विमर्श में उनकी लैंगिक पहचान, प्रेम और आत्मस्वीकृति की तलाश, साथ ही सामाजिक अस्वीकार्यता और भेदभाव के अनुभव प्रमुख रूप से सामने आते हैं। कहानियों और उपन्यासों में किन्नर पात्र समाज की रूढ़ मान्यताओं को चुनौती देते हैं और समानता व अधिकारों की मांग का प्रतीक बनते हैं।

अतः हिन्दी कथा साहित्य में किन्नर विमर्श न केवल हाशिए पर खड़े समुदाय की आवाज को अभिव्यक्त करता है, बल्कि व्यापक मानवतावादी दृष्टि का निर्माण करते हुए साहित्य को अधिक समावेशी और लोकतांत्रिक बनाता है। इस शोध कार्य का उद्देश्य विमर्श के माध्यम से किन्नरों के प्रति समाज को पुनर्विचार की ओर प्रेरित करना और उनके सहअस्तित्व की दिशा में नया मार्ग प्रशस्त करना है।

बीज शब्द – किन्नर, हिन्दी कथा–साहित्य, विकलांग, थर्ड–जेंडर, नपुंसक, समकालीन, ट्रांसजेंडर, शिखंडी, संवेदना, संघर्ष, मानवता, नारकीय जीवन आदि।

मूल आलेख :–

साहित्यिक दृष्टिकोण से आज अनेक विमर्शो की चर्चा की जा रही है। जैसे– स्त्री–विमर्श, दलित–विमर्श, अल्पसंख्यांक विमर्श, आदिवासी विमर्श, वृद्ध विमर्श, विकलांग विमर्श आदि। जिसके अंतर्गत समाज के अनेक वर्गों पर साहित्य में चिंतन हो रहा है, किंतु बहिष्कृत, लिंग निरपेक्ष किन्नर समुदाय के विषय मे कोई बड़ी चर्चा दिखाई दे रही है! ऐसा नहीं है कि, साहित्य किन्नर पर पहली बार कुछ लिखा गया हो, महाभारत महाकाव्य मे शिखंडी एक ऐसा पात्र था, जो किन्नर था। अर्जुन भी शाप द्वारा मिले नपुंसकत्व को अपने अज्ञातवास के एक साल के समय में बृहन्नला के रूप मे किन्नर का जीवन व्यतीत किया था! कौटिल्य ने भी अपने अर्थशास्त्र ग्रंथ मे किन्नरो

का उल्लेख किया है। ऐतिहासिक तथ्यों के अनुसार हिंदु और मुस्लिम शासको द्वारा किन्नरों को खासतौर पर अंतःपुर और रानियों के हरम की पहरेदारी के लिए नियुक्त किया जाता था।

यह तो सर्वविदित है कि साहित्य किसी भी समस्या को उजागर करने का सबसे सशक्त माध्यम है। साहित्य के माध्यम से ही वर्तमान में इतने विमर्शों यथा– 'नारी विमर्श', 'किसान विमर्श', 'पर्यावरण विमर्श' इत्यादि को बल मिला है। इन विमर्शों के माध्यम से ही उन पक्षों पर विस्तार से चर्चा संभव हो पायी है, जो कभी मुख्य विषय नहीं बन पाते, किंतु समाज में अभी भी एक वर्ग शेष है, जो समाज की मुख्य धारा से विलग हाशिए पर है, वह है–किन्नर समाज, अब हमें साहित्य में एक नये विमर्श के रूप मे 'किन्नर विमर्श' की आवश्यकता है।

किन्नर शब्द 'कि' और 'नर' दोनो के संयोग से बना है। जिसका अर्थ ऐसे वर्ग से है, जो पूर्ण रूपेन न तो स्त्री है, और न ही पुरूष। वस्तुतः जिसे जनसामान्य की भाषा में हिजड़ा कहा जाता है। यह शारीरिक तौर पर विकलांग होने के कारण इन्हें उभयलिंगी, तृतीय लिंगी, खुसरा, मौसी, किन्नर आदि नामों से संबोधित किया जाता है! किन्नर कहने से मात्र इनका दर्द, इनकी संवेदना कम नहीं होती। नीरजा माधव, प्रदीप सौरी, महेंद्र भीष्म, चित्रा मुदगल, अनुसुइया त्यागी, निर्मला माधव आदि का साहित्य इस उपेक्षित और हाशिए कृत समाज की जीवन–शैली, समस्याओं, पीड़ा, आक्रोश और संघर्ष की अकथ कथा को पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करता है।

समकालीन कथाकारों ने थर्ड–जेंडर के जीवन को गंभीरता से ध्यान दिया। साहित्य में किन्नरों को विश्लेषित करते हुए बहुत कुछ लिखा गया है, जिसमें उनकी संरचना से लेकर सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक संरचनाओं के भिन्न–भिन्न पहलुओं को सामने लाने का प्रयास किया। वर्ष 2002 में प्रकाशित नीरजा माधव का उपन्यास 'यमदीप' हिन्दी साहित्य जगत में हिजड़ों पर रचित एक ऐसा उपन्यास माना जाता है, जिसने लेखिका नीरजा माधव को एक ओर तो स्त्री–लेखन एवं दलित लेखन की भीड़ से अलग करता है, तो दूसरी ओर नारी अस्मिता और शोषित, उपेक्षित वर्ग के उन अनछुए पहलुओं को भी सामने लाता है, जिनकी ओर आज तक किसी लेखक की लेखनी नहीं गयी।

किन्नरों की स्थिति अत्यंत दयनीय है। समाज किन्नरों को हेय दृष्टि से देखता है, उनसे घृणा करता है। जन–सामान्य वर्ग इनसे संपर्क रखना पसंद नहीं करता है। उच्चतम न्यायालय ने इन्हें तीसरे लिंग के रूप में मान्यता प्रदान की है। साथ ही साथ सभी आवेदनों में तीसरे लिंग के रूप में प्रतिभागिता की अनिवार्यता तथा सामान्य मनुष्य की भाँति अन्य अधिकार भी प्रदान किये गये है। इसके पश्चात भी वर्तमान समय में इन्हे पूर्ण रूप से सामाजिक स्वीकृति नहीं मिल पायी है। समाज द्वारा किये गये इस प्रकार के दुर्व्यवहार से व्यथित होकर 'किन्नर कथा' उपन्यास की प्रमुख पात्र 'तारा' अपनी पीड़ा की अभिव्यक्ति करते हुए कहती है–"भगवान ने मेरे साथ ऐसा अन्याय क्यों किया? मैं हिजड़ा हूँ तो इसमें मेरा क्या कसूर? मुझ निर्दोष को किस बात की सजा मिल रही है? मेरा अपना कौन है? घर बार, माँ–बाप, भाई–बहन, बच्चे कोई है मेरा, जिसे मैं अपना कह सकूं, सब कुछ होते हुए भी मुझसे रिश्ता नहीं रखना चाहता, कोई मुझे अपनाने को तैयार है। बचपन से आज तक बस अपने आप ही दर्द पीते हैं। दूसरों को हंसाने आये थे, उनकी खुशियों में शरीक होते आए है, आशिष के सिवा कभी किसी को कुछ दिया, ईश्वर से बस एक शिकायत है। आखिर क्यूं उसने हमें ऐसा बनाया? क्यों हिजड़ा होने का दंड दिया? काश! हम भी औरों की तरह स्त्री या पुरूष होते, हिजड़ा होना कितनी बड़ी सजा है, यह कोई हिजड़ा ही समझ सकता है, दूसरा कोई, कभी" तारा द्वारा अभिव्यक्त इन पंक्तियों में किन्नर होने की

असहनीय पीड़ा परिलक्षित होती है। एक किन्नर होना अर्थात सभी रिश्तों का समाप्त हो जाना है।

साहित्यकार महेंद्र भीष्म ने अपने उपन्यास 'किन्नर कथा' में किन्नर वर्ग की असहनीय तकलीफ, उपेक्षा, उनकी व्यथा को परख कर पैरवी की है। हमारी संस्कृति वसुधैव कुटुम्बकं की अवधारणा पर आधारित होकर भी हम गैर–बराबरी विचारधारा को क्यों सहेजे हुए है? आज हालात ऐसे भयावह हो गये हैं कि किन्नर खुशी के अवसरों पर कम और भीख मांगते ज्यादा नजर आते है, अपनी गिरती आर्थिक सामाजिक दशा के कारण ये देह व्यापार के दल–दल में गिरने को विवश हो जाते है। क्योंकि सभ्य समाज इन्हें तिरस्कृत नजर से देखता है उनकी आत्मीयता इनके पास है। 'किन्नर–कथा' उपन्यास की नायिका सोना उर्फ चंदा अत्यंत सुंदर है। राजघराने में पैदा होने के बावजूद किन्नर देह के कारण हेय जीवन जीने के लिए विवश कर दी जाती है और यहीं से अधूरी देह की पीड़ा, पारिवारिक, सामाजिक उपेक्षा, पारस्परिक संघर्ष, अवसाद, विद्वेष जैसे नकारात्मक भावों का सफर शुरू हो जाता है।

किन्नरों की इस स्थिति से उन्हें उबारने के लिए अप्रैल 2015 में उच्चतम न्यायालय ने किन्नरों को थर्ड जेंडर की मान्यता दी। उज्जैनी सिंहस्थ 2010 में किन्नर लक्ष्मीनारायण त्रिपाठी को महामंडलेश्वर की पदवी प्रदान की गई थी। सन 2014 में सुप्रीम कोर्ट ने इन्हें इनका अधिकार देने का फैसला दिया, अक्टूबर 2012 में नेशनल लीगल सर्विसेज अथॉरिटी ने सुप्रीम कोर्ट में याचिका दायर की थी, अपील की थी कि देश में किन्नरों को समान अधिकार और सुरक्षा प्रदान की जाए। हम 21 वीं सदी के वैज्ञानिक युग में जी रहे हैं, फिर भी पुरातन धारणाएँ हमारा पीछा नहीं छोड़ रही है। किन्नरों को समाज में स्थान, समान दर्जा दिलाने के लिए समाज को पहल करने की आवश्यकता है। समाज सुधारकों के साथ प्रत्येक नागरिक को आगे आना होगा।

विगत दो दशकों में किन्नरों ने भी अपने सामाजिक अधिकारों की लड़ाई लड़ने की पहल की, जिसके परिणाम स्वरूप राजनीति शिक्षा और फैशन जगत में किन्नरों को महत्वपूर्ण दायित्व सौंपे गये। शबनम मौसी, कमलाजान, आशादेवी, कमला किन्नर, मधु किन्नर और ट्रान्सजेंडर एक्टिविस्ट लक्ष्मीनारायण त्रिपाठी के नाम है। जिन्होंने चुनाव बहुमत से विजय प्राप्त करने विधायक और महापौर पद को संभाला। 'मैं हिजड़ा मैं लक्ष्मी' किताब में ने न केवल लक्ष्मी के जीवन की, बल्कि पूरे किन्नर समुदाय का भूगोल भी हमारे सामने रखती है।

एक किन्नर की केवल यही इच्छा होती है उसे भी सामान्य मनुष्य की भाँति जीवन जीने का अधिकार हो। उसके साथ अछूतों जैसा व्यवहार नहीं किया जाए। उसे भी परिवार तथा समाज का सहयोग मिले, किंतु उसकी यह इच्छा पूर्ण नहीं हो पाती है। इनको सर्वाधिक आशा अपने परिवार जनों से होती है कि वे उन्हें स्वीकार करेंगे, किंतु सामान्यतः ऐसा नहीं होता है। किन्नरों का अपमान, तिरस्कार सबसे पहले उनके परिवार से है, जिसके कारण ये पूर्ण रूप से शापित एवं अभिशप्त जीवन जीने को मजबूर होते है। इनके संबंध में प्रसिद्ध कथाकार महेंद्र भीष्म लिखते है, "प्रत्येक हिजड़ा अभिशप्त है, अपने परिवार से बिछुड़ने के दंश से, समाज का पहला घात उससे शुरू होता है। अपने ही परिवार से, अपने ही लोगों द्वारा उसे अपनों से दूर किया जाता है। परिवार से विस्थापन का दंश सर्वप्रथम उन्हें ही भुगतना होता है।"[6]

प्रसिद्ध उपन्यासकार प्रदीप सौरभ द्वारा लिखा गया उपन्यास 'तीसरी ताली' में असामान्य थर्डजेंडर की कथा है। जिसमें हिजड़ें, 'गे' और 'ट्रांसजेंडर' पात्र है। इस उपन्यास में हिजड़ा होने की व्यथा बहुत ही मार्मिक ढंग से उकेरी गयी है। एक हिजड़ा बच्चा जैसे–जैसे बड़ा होता है तो किस प्रकार की मानसिक स्थितियों से

गुजरता है उसके मन के अंर्तद्वन्द्व को प्रदीप सौरभ ने बखूबी उकेरा है। जिसे हम विनीत की स्थिति से समझ सकते है– "समय बीतने के साथ गौतम साहब के बेटे में लड़कियों जैसे गुण पैदा होने लगे। शारीरिक बदलाव भी प्रखर हो गये। गौतम साहब यह सब देखकर चिंतित थे। विनीत गौतम नाम रखा था उन्होंने अपने बेटे का। विनीत घर से निकलने में कतराने लगा। बाहर निकलता तो उसके साथ खेलने वाले बच्चे भी उससे किनारा कर लेते। वह अजीब मानसिकता में गुजर रहा था। कई–कई हफ्ते घर के अंदर बंद रहता। उसे लगता कि उसके पिता उसे जबरिया लड़का बनाने पर तुले है, वह अपनी बहनों की तरह ही अपने को लड़की मानता था। उसे लड़कों के कपड़े पहनने में परहेज होने लगा। घर में जब कोई होता तो वह अपनी बहनों की पैन्टी–ब्रा पहन लेता। बिंदी लगाता। लिपस्टिक लगाता। शीशे में घंटो अपने आप को निहारता।"[7]

किन्नरों की पीड़ा की कुशल अभिव्यक्ति निर्मला भुराड़िया के उपन्यास 'गुलाम मंडी' में हुई है। लेखिका ने इस गहन संवेदना को गुलामी का दंश झेलते हुए व्यक्त किया है। जहाँ तिरस्कृत वर्ग किन्नरों की समस्या और मानव तस्करी का भयावह चेहरा उद्घाटित किया है। 'गुलाम मंडी' उपन्यास के माध्यम से उस सच को बड़ी बारिकी से हमारा सामने रखने का प्रयास किया है जिसे बार–बार दबाने की कोशिश की गई थी। लेखिका ने अपने अनुभवों को उपन्यास के माध्यम से व्यक्त करते हुए लिखा है– "प्रोजेक्ट आधारित उपन्यासों से एकदम अलग यह उपन्यास रचनाकार के मूल सरोकारों से सीधा जुड़ा हुआ है, जो पूरी संजीदगी से एक इंसान को इंसान मानने की वकालत करता है.... फिर चाहे वह एक मजदूर स्त्री हो या समाज का तिरस्कार झेलने को मजबूर किन्नर।"[8]

वर्तमान बाजारी व्यवस्था में चित्रा मुद्गल ने अपना उपन्यास 'पोस्ट बॉक्स नं. 203 नाला सोपारा' में यह दिखाने का प्रयास किया है कि कैसे लोग अपने पुत्रों का जननांग विकलांगता के कारण अपने घर–परिवार से निकालकर अलग अभिशप्त जीवन जीने के लिए इन्हें किन्नरों के हवाले कर देते है, जैसे यही उनकी नियति है। सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक व आर्थिक स्तर पर न जाने इसे कितने रूपों में शोषित होना पड़ता है। समाज व राजनीति की मुख्याधारा से 'थर्ड जेंडर' को काटकर इस कदर हटाया गया है कि आत्मसम्मान की पहचान उसे सताने लगी और वह अपने वजूद को प्राप्त करने के लिए संघर्षरत है। 'नाला सोपारा' के माध्यम से किन्नर वर्ग के त्रासद यथार्थ को अभिव्यक्त करने का प्रयास किया गया है।

'नाला सोपारा' मुंबई के एक मध्यमवर्गीय परिवार के बच्चे विनोद की कहानी है। विनोद जन्म से जननांग विकृति का शिकार है। उससे बड़ा भाई और छोटा पूरी तरह से सामान्य है। विनोद के पिता की एक किराने की दुकान है और माँ वंदना, विनोद की शारीरिक विकृति के कारण उससे प्रति कुछ ज्यादा ही दुलार रखती है। विनोद इस बात से अनजान था कि वह और बच्चों से अलग है। जैसे–जैसे वह बड़ा हुआ तो उसके साथ खेलने वालो बच्चों से यह ज्ञात होता है कि वह और बच्चों से अलग है। एक दिन वह बच्चों के साथ खेलकर घर लौटने पर माँ से पूछ बैठा 'मेरे नुन्नू क्यों नहीं है बा?' यह सवाल ही इस पूरे उपन्यास का केंद्रिय सवाल है जो विनोद उर्फ बिन्नी उर्फ विमली के माध्यम से उपन्यास के साथ–साथ सामाजिक संरचना के आगे एक भयावह आकार लेते हुए सामने खड़ा दिखाई देता है। "मेरी सुरक्षा के लिए कानूनी कार्यवाही क्यों नहीं की तूने, मेरी बा, तूने और पापा ने मिलकर मुझे कसाइयों के हाथ मासूम बकरी सा सौंप दिया, जिस नरक में तूने और पापा ने धकेला है मुझे, वह अंधा कुँआ है, जिसमें सिर्फ साँप बिच्छू रहते है। साँप–बिच्छू बनकर पैदा नहीं हुए होंगे। बस इस कुएँ

ने उन्हें आदमी नहीं रहने दिया।" उपन्यास में विनोद और बिन्नी द्वारा माँ को लिखे गये पत्र का एक–एक शब्द, किन्नर जीवन की नारकीय स्थिति की भयावहता को स्पष्ट करता है। विनोद उर्फ बिन्नी यहाँ पर समाज के सामने सवाल बड़ा करता है। कि आखिर एक लैंगिक रूप से विकलांग बच्चे को समाज क्यों त्याग देता है? क्या महज इस वजह से कि वह प्रजनन नहीं कर सकता? जबकि वहीं एक शारीरिक रूप से विकलांग बच्चे को स्वीकार करता है जबकि वह विकलांग बच्चा कभी–कभी समाज के निर्माण में किसी प्रकार की भूमिका निभा पाने में सक्षम नहीं हो पाता है, लेकिन एक लैंगिक रूप से विकलांग बच्चा शारीरिक और मानसिक स्तर से पूर्ण होता है, जिससे वह समाज के निर्माण में अपनी भूमिका अदा कर सकता है, लेकिन वर्षों से रूढ़ियों से ग्रसित लिंग पूजक समाज पुरुषत्व के नशे में स्वीकार नहीं कर पाता।

सन 2017 में युवा लेखक भगवंत अनमोल ने एक उपन्यास लिखा 'जिंदगी 50–50', इसमें किन्नर जीवन की बदली परिस्थितियाँ दिखाई देती है, भावी समय में किन्नर समुदाय को जिस संबल की आवश्यकता होगी, उसकी सशक्त उपस्थिति इस उपन्यास में देखने को मिलती है। अनमोल, जिसका भाई किन्नर था और बेटा भी किन्नर था समाज की तमाम रूढ़ियों और परंपराओं को तोड़कर अनमोल अपने भाई और बेटे के साथ खड़ा होता है। 'मैं पायल' महेंद्र भीष्म का दूसरा किन्नर आधारित उपन्यास है, जिसमें किन्नर गुरू पायल सिंह के जीवन की वास्तविक घटना का वर्णन है। पायल के माध्यम से भारत के किसी भी राज्य, समुदाय या गद्दी के किन्नरों की वास्तविक स्थिति समझी जा सकती है। सुभाष अखिल कृत उपन्यास 'दरमियाना' गिरिजा भारती कृत उपन्यास 'अस्तित्व' जैसे उपन्यासों में यथार्थ अभिव्यक्ति प्रभावी हो चली है।

साहित्य में जो कुछ भी मौजूद है, वह पूरा सच है, क्योंकि बहुत सी सूनी–सुनाई बातें भी साहित्य में सम्मिलित होती जा रही है। सामाजिक समस्याओं में उनके विस्थापन, आर्थिक अधिकार और सम्मानित जीवन की समस्या सामने आती है। इसके अलावा शिक्षा स्वास्थ्य, बिजली, पानी, घर, राशन जो दैनिक और सार्वजनिक जीवन में अत्यंत आवश्यक है, उनके लिए भी किन्नर समुदाय संघर्ष करता रहा है। यह बात सोंचनीय है कि, आज हम आजादी के 75 वर्ष पूर्ण कर चुके हैं, फिर भी लाखों की संख्या में एक समुदाय को अपने जीवन जीने की बुनियादी जरूरतों के लिए संघर्ष करना पड़ रहा है।

निष्कर्ष :–

इस प्रकार हम कह सकते है कि, किन्नर समुदाय आज भी हाशिये पर खड़ा एक तिरस्कृत समुदाय है। समाज उन्हें उनके मानवीय अधिकार भी नहीं देना चाहता। आजादी के इतने वर्षों बाद भी हमारे समाज की मानसिकता किन्नर समाज के प्रति नकारात्मक ही है। हम विकास के दावे तो बहुत करते है पर अपनी सामाजिक संरचना एवं सोंच को इस लायक भी नहीं बना पाये कि वर्षों से हाशिये पर खड़े समुदाय को मुख्य धारा में शामिल कर सकें।

इस किन्नर वर्ग को समाज की मुख्यधारा से जोड़ने का कार्य अभी बाकी है, जिसे शिक्षा और संवेदनशीलता के माध्यम से ही जोड़ना संभव है। जो भी विवादित या अपमानित नाम किन्नर समुदाय को दिए गए है, उनको खत्म करने की नैतिकता हमें शुरू करनी चाहिए। प्रारंभिक शिक्षा की शुरूआत में ही स्कूलों में हमें सामान्य बच्चों का परिचय स्वस्थ दृष्टिकोण के साथ किन्नर बच्चों से करवाना चाहिएय ताकि आगे चलकर ये घृणा का पात्र न बन सके। किन्नर समुदाय के संबंध में जो भी भ्रम व्याप्त है, उन पर पर्याप्त शोध की आवश्यकता

है। समाज की यथार्थवादी और परंपरावादी सोंच को बदलने के प्रमुख आयामों में से एक साहित्य भी है। आज साहित्य में छोटे स्तर पर ही सही पर किन्नर समुदाय के केंद्रित कर एक नई बहस की शुरूआत हुई है। उम्मीद है कि यह चर्चा आगे चल कर एक विमर्श का रूप लेगी, जिससे किन्नर समुदाय के हक की लड़ाई में साहित्य एक सशक्त साधन बनकर उभरेगा।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. मुद्गल, चित्रा, पोस्ट बॉक्स नं. 203 नाला सोपारा, सामयिक प्रकाशन, संस्करण–2016.
2. माधव, नीरजा, यमदीप, सामयिक प्रकाशन, संस्करण–2017.
3. सौरभ, प्रदीप, तीसरी ताली, वाणी प्रकाशन, संस्करण–2011.
4. भुराड़िया, निर्मला, गुलाम मंडी, सामयिक प्रकाशन, संस्करण–2016.
5. भीष्म, महेंद्र, किन्नर कथा, सामयिक प्रकाशन, संस्करण–2016.

–पत्राचार का पता–
डॉ. दिलीप सिंह राजपूत सुपुत्र सोमनाथ सिंह राजपूत,
स्कूल पारा मजगांव, पोस्ट–लोरमी, तहसील–लोरमी,
जिला– मुंगेली (छत्तीसगढ़) पिन– 495115
मो.नं.– 9098771548
मो.नं. 9098771548
EMAIL: dilip61286@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Sept. 2025 Page No. : 32-36

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

मृदुला गर्ग के 21वीं सदी के उपन्यासों में स्त्री विमर्श

Dr. Mahammad Nazim Parveen

Asst. Prof & Head, Dept. of Hindi, Justice Basheer Ahmed Sayeed College for Women, Chennai.

मृदुला गर्ग हिन्दी साहित्य की एक जानी मानी महान हस्ती है। इन के इक्कीसवीं सदी के उपन्यासों में प्रमुख हैं "मिलजुल मन" और "अनित्य"। 'मिलजुल मन' 2013 में प्रकाशित हुआ है और यह उपन्यास साहित्य अकादमी पुरस्कार से सम्मानित है। इसको 21वीं सदी के महत्वपूर्ण उपन्यासों में से एक माना जाता है। 'अनित्य' उपन्यास 2007 में प्रकाशित हुआ है और यह भी 21वीं सदी के हिंदी उपन्यासों में गिना जा सकता है। 21वीं सदी के उपन्यासों में मृदुला गर्ग ने स्त्री की स्वाधीनता, आत्म–पहचान, यौन व भावनात्मक स्वतंत्रता जैसे मुद्दों पर अपनी आवाज उठाते हुए, स्त्री विमर्श पर अपनी लेखनी बखूबी चलाई है। इन्होंने स्त्री की वेदना, शोषण के विरुद्ध विद्रोह और पुरुष वर्चस्व को चुनौती दी हैं। इनके उपन्यास 'चित्तकोबरा' और 'कठगुलाब' में यह विमर्श अत्यंत गहराई से उभरा है, जहाँ उन्होंने स्त्री के अंदर छिपी असीमित संभावनाओं, प्रेम की जटिलताओं और अपनी पहचान स्थापित करने के उसके संघर्ष को दर्शाया है।

सामान्य अर्थों में कहें तो स्त्री विमर्श स्त्री की अस्मिता मूलक पहचान को दिलाने का कार्य करता है। यह स्त्री के प्रति हो रहे शोषण के विरूद्ध संघर्ष है। 'स्त्री विमर्श' स्त्री की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, समानता की बात करता है। यह विमर्श रूढ़ हो चुकी मान्यताओं, परम्पराओं के प्रति असंतोष तथा मुक्ति का स्वर है। जिसमें महिला रचनाकारों ने स्त्री के अधिकारों, शिक्षा, स्वावलंबन आदि पर लेखन कार्य किया। ऐसी लिखिकाओं में अत्यंत प्रमुख हैं मृदुला गर्ग।

आज हम देखते हैं कि एक नारी को जीवन में शिक्षा के लिए संघर्ष, अपने अधिकार के लिए संघर्ष, अपने बाच्चों के लिए संघर्ष, घर से बाहर कदम निकालने के लिए संघर्ष, खुल के हँसने के लिए संघर्ष, अपनी जाति के कारण प्रगति के क्षेत्र में आगे बढ़ने केलिए संघर्ष, आर्थिक निर्बलता के कारण पेट की भूक मिटाने के लिए संघर्ष करना पड़ रहा है। अपने स्त्री होने के कारण सामाजिक और पारिवारिक अवहेलना, शोषण व अपमान को जहर की तरह उसे पीना पड़ रहा है। इसीलिए लेखिका कौशल्या बैसंत्री स्वयं अपनी आत्मकथा की भूमिका में लिखती है– "पुत्र, भाई, पति सब मुझ पर नाराज हो सकते हैं, परंतु मुझे भी तो स्वतंत्रता चाहिए कि मैं अपनी बात समाज के सामने रख सकूँ। मेरे जैसे अनुभव और भी महिलाओं को आए होंगे परंतु समाज और परिवार के भय से अपने अनुभव समाज के सामने उजागर करने से डरती और जीवन–भर–घुटन में जीती है। समाज की आँखें खोलने के लिए ऐसे अनुभव सामने आने की जरूरत है।"[1]

प्रत्येक समाज के विकास के लिए जरूरी है कि, पुरुष के समान नारी भी प्रगति करें एवं नारी को सभी

सुविधाएं व सम्मान प्राप्त हो। नारी विकास की मुख्यधारा में शामिल हो तभी एक सुखमय समाज की कल्पना की जा सकती है। नारी की प्रगति, विकास, उत्थान, अस्मिता के लिए प्राथमिक आवश्यकताओं की पूर्ति भी जरूरी है। नारी और पुरुष के बीच हर क्षेत्र में व्यक्तिगत, पारिवारिक, सामाजिक, ऐतिहासिक, धार्मिक, आर्थिक, साहित्यिक असमानताओं की गहरी खाई रही है। इन्हीं असमानताओं का विद्रोह मृदुला गर्ग ने अपने स्त्री विमर्श में किया है।

पहले स्त्री मूक पशु की तरह सब कुछ सहन करती थी, परन्तु अब वह पुरुष के अत्याचारों का विरोध कर अपनी अलग पहचान बनाने में सक्षम होती नजर आती है। यह चरण दरअसल महिला–लेखन की बहुत बड़ी उपलब्धि है। 'सुदर्शन' वर्तमान नारी की उपलब्धि बताते हुए कहते हैं कि "आज की शिक्षित नारी की प्रत्येक क्षेत्र में सक्रिय भूमिका है, शिक्षा, चिकित्सा, तकनीकी, कला, कविता, साहित्य–सृजन, पर्वतारोहण, कोई भी क्षेत्र ऐसा नहीं है जहाँ नारी ने प्रवेश न किया हो।"[2]

मृदुला गर्ग नारी को परम्परागत सोच से मुक्ति दिलाकर उसे आत्मनिर्भर बनाना चाहती हैं। इसीलिए वह कहती है–"नारीवाद की परिभाषा बस इतनी है कि नारी को अधिकार है यह तय करने का कि वह क्या करना चाहती है? क्या नहीं? कोई मुखौटा नहीं की स्त्रियों पर चस्पा कर दिया जाए।"[3] इन्हीं की तरह स्त्री उन्नति का उपाय बताते हुए मार्क्स एंजेल्स ने भी कहा था–"स्त्रियों की मुक्ति की पहली शर्त यह है कि पूरी नारी जाति फिर से सार्वजानिक उद्योग में प्रवेश करे।"[4]

मृदुला जी का सबसे पसंदीदा विषय प्रेम है, परन्तु उन्होंने विवाहपूर्व प्रेम की अपेक्षा विवाहेतर प्रेम का चित्रण अपने उपन्यासों में अधिक किया है। यह वह प्रेम है जिसे समाज ने हमेशा नकारा है और शायद यही कारण रहा है कि उनके 'चित्तकोबरा' उपन्यास को भी विवादों के कठघरे में खड़ा होना पड़ा। चित्तकोबरा' उपन्यास में मनु, रिचर्ड और महेश तीन पात्र हैं। मनु का विवाह महेश से हो चुका होता है, रिचर्ड मनु के जीवन में बाद में आता है। महेश और मनु ऐसे पति–पत्नी हैं, जो एक–दूसरे से असंतुष्ट हैं। महेश मनु की सभी जरूरतें पूरी करता है। मनु भी अपना पत्नी धर्म निभाती है। तथापि उनके रिश्ते सहज नहीं हैं। इस असहजता के कारण ही मनु रिचर्ड की तरफ आकर्षित होती है। मृदुला जी के उपन्यासों की खास बात यह है कि वे कभी अपने उपन्यास में पुरुष पात्र, जो मुख्य स्त्री पात्र का पति है उसे गलत या प्रतिनायक नहीं साबित करतीं। वे खुद अपनी नायिका के मुख से ही कहलवाती हैं कि महेश बहुत अच्छे हैं, मेरा बहुत ख्याल रखते हैं, मेरी सभी जरूरतों को पूर्ण करते हैं। "इस उपन्यास में शीलता और अश्लीलता का प्रश्न उठाकर प्रायः उन समस्याओं से आँखे चुराने की कोशिश होती है, जिनके आधार पर स्त्री को कथित मर्यादा की सीख दी जाती है। यह एक लेखिका के साहस का प्रश्न माना जाना चाहिए कि उसने मजबूती से पारस्परिकता के विरूद्ध खड़े होकर नये समय में नई जीवन दृष्टि की मांग करने की चुनौती प्रस्तुत की है।"[5] 'इस तरह यह उपन्यास मनु–महेश–रिचर्ड के त्रिकोणात्मक प्रेम सम्बन्धों की कथा बन जाता है। इस उपन्यास में मृदुला जी प्रेम को स्त्री–पुरुष संबंधो के धरातल से ऊपर उठाकर अध्यात्मिक अनुभूति की ओर ले जाती हैं।

वे कहती हैं कि–"एक से निस्वार्थ प्रेम करने पर अहम् का धीरे–धीरे विभाजन होता है और व्यक्ति उस बिंदु पर पहुँच जाता है जहाँ मानव मात्र से प्रेम के आदर्श तक पहुंचना सरल और संभव होता है चाहे वह रिचर्ड में देखा जाये या मदर टेरेसा में।"[6] यहीं भावभूमि चितकोबरा उपन्यास की ताकत भी है तथा उसकी प्रेरणा भी।

इस उपन्यास में 'विवाह एक से और प्रेम दूसरे से' वाली बात दृष्टिगोचर होती है और इन दो पात्रों के बीच पिस रहे मानव मन की एक विचित्र स्थिति को लेखिका ने अपने उपन्यास का विषय बनाया है। वे कहती हैं–"मनुष्य का मन बड़ा विचित्र है। प्राप्त से उसका मन नहीं भरता और अप्राप्त के प्रति एक आकर्षण उसके मन में सदैव रहता है। उसके तन और मन की सम्पूर्ण तृप्ति कभी भी किसी एक से नहीं होती।"[7] सामाजिकता के नाम पर स्त्री–पुरुष के संबंधो पर थोपे गये नियम–कानून को लेखिका ने यहाँ अस्वीकार कर दिया है।

उनके एक अन्य उपन्यास "मैं और मैं" में भी औरत के शोषण की कहानी दिखाई गयी। उपन्यास में एक स्त्री को अबला और भोली समझ उसे ठगने वाले धूर्त पुरुष की कहानी है। यहाँ एक सामान्य स्त्री के दुःख दर्द की परिपाटी से हटकर एक लेखिका के जीवन संघर्ष की कथा को कथ्य का विषय बनाया गया है जो अपेक्षाकृत चिंतनशील भी है, और सजग भी। उसके आसपास की दुनिया एक झूठ की दुनिया है–एक 'फेक वर्ल्ड' जिसमें रिश्तों की बुनियाद ही झूठ पर टिकी है। उपन्यास में एक जगह लेखिका कहती है– "कितना आसान है एक के बाद एक झूठ बोलते चले जाना और कितनी खूबसूरत, पारदर्शी और रंगबिरंगी है झूठ की दुनिया। उसके सामने सच क्या है, एक ठोस मटमैला खुरदुरा पत्थर, झूठ की दुनिया में उड़ान भरनेवाला, कल्पना के गुब्बारे में सुई चुभाकर पथरीली धरती पर क्यों उतरेगा?"[8] जिसमें मानवीय रिश्तों का बिम्ब और भी कुरूप और वीभत्स दिखाई देता है।

नारी के बिना व्यक्ति का व्यक्तित्व पनप नहीं पाता। मानवीय व्यवहारों एवं सामाजिक संबंधों की सीख देने वाली ऐसी नारी के प्रति आज समाज निष्ठुर बनता जा रहा है। मृदुला गर्ग के उपन्यास 'कठगुलाब' में लेखिका ने ऐसी स्त्री पर होने वाले अत्याचारों का चित्रण किया है। इस उपन्यास की पात्र स्मिता जो एक लगनशील, अध्ययनशील और मध्यवर्गीय शिक्षित स्त्री जिस पर पुरुष द्वारा घोर पाप ढाया गया। 'यह मेरी साली है स्मिता! क्या चीज है यार! घर में रहती है तो समझो... लार टपकती रहती है अपनी.. साली आधी घरवाली.. हा हा हा।"[9] जो जीजा के हाथों बलात्कार का शिकार होने पर भी हिम्मत नही हारती, अकेली रहकर पढ़ाई करती है।

अपने अन्य समकालीनों की तरह मृदुला जी केवल स्त्री की आर्थिक, शारीरिक स्वतंत्रता और अधिकारों की बात ही नहीं करतीं अपितु स्त्री के राजनीतिक, संवैधानिक अधिकारों के लिए भी आवाज उठाती हैं। अपने 'वंशज' में स्त्री को पैतृक संपत्ति में अधिकार देने की बात की गयी है। आज हमारे संविधान में यह प्रारूप है कि पिता की सम्पत्ति में पुत्री का बराबर का अधिकार है। लेकिन समाज अब भी उसे अपना नहीं पाया है। इसी परिप्रेक्ष्य में डॉ रमा नवले कहती हैं–"शुक्ल साहब जैसा अत्यंत न्यायप्रिय आदमी और सुधीर से अधिक रेवा को चाहने वाला लड़की को पैतृक सम्पत्ति में हिस्सा नहीं देता। तब कानून बनाने से क्या होता है, वंशज तो लड़का ही रहेगा, लड़की कभी नहीं, इस कटु सत्य की अभिव्यक्ति यह उपन्यास करता है।"[10]

मृदुला गर्ग का उपन्यास 'मिलजुल मन' उनके अब तक के सभी उपन्यासों से अलग ही तरह का उपन्यास है। यह एक आत्मकथात्मक उपन्यास है, यानि यह एक ऐसी आत्मकथा है जिसे उपन्यास का रूप दे दिया गया है। ऐसा संभवतः इसलिए किया गया है क्योंकि एक आत्मकथा लेखक से जिस ईमानदारी से साफगोई और विश्वसनीयता की मांग करती है उपन्यासों में किसी सीमा तक उससे बचने की गुंजाइश बनी रहती है। यहाँ कथा की ओट बनी रहती है। यौवन की बीहड़ सच्चाइयों को उपन्यास की सिलवटों में छिपते–छिपाते आसानी से दिखाया जा सकता है। आत्मकथा सच का सामना करने के लिए होने वाले पोलिग्राफिक टेस्ट की तरह होती

है। जिसका सामना करने का साहस हर लेखक में नहीं होता।

यह उपन्यास दो बहनों गुलमोहर और मोगरा की कहानी के रूप में रचित है, जो दरअसल प्रकारांतर से मंजुल भगत और मृदुला गर्ग की कहानी ही बयां करती है। यहाँ मोगरा स्वयं मृदुला गर्ग हैं और गुलमोहर उनकी बड़ी बहन मंजुल भगत। वैसे इस उपन्यास के शीर्षक की प्रतीकात्मकता को समझाते हुए मृदुला जी एक साक्षात्कार में कहती हैं कि– "मन का अर्थ अत्यंत बहुआयामी है वह दिल भी है, मस्तिष्क भी, चेतना भी और कल्पना भी, अस्तित्व भी वही है। मन के साथ मिलकर जो काम कर सके या जो अपने मन को पहचान ले वही सही मायने में अपने अस्तित्व को पहचान सकता है। इसलिए इसका नाम 'मिलजुल मन' रखा।"[11] मृदुला जी को इस उपन्यास में भी स्त्री अस्मिता के पक्ष में कहने का जब–जब भी मौका मिला है, उन्होंने उसका पूरा उपयोग किया है। अपने पिता के बच्चों से लगाव की व्याख्या करते समय वे यह निष्कर्ष देने का अवसर निकाल लेती है कि "पितृत्व को मातृत्व में समा, उसे जनाना बनाना, मेरे ख्याल से पितृसत्ता की सबसे अचूक चाल रही है।"[12]

नारी पर जो समस्याएं उत्पन्न हो रही हैं, उनमें से ज्यादातर समस्याएँ उसके पति द्वारा ही उत्पन्न हो रही हैं। जो नारी अपने पति को अपना परमेश्वर समझकर उसके लिए अपना तन–मन–धन सब कुछ न्यौछावर कर देती है, ऐसी पत्नी के प्रति क्रूर बनकर कभी दहेज के कारण उस पर अत्याचार ढ़ाता है तो, दोहरे नैतिक मानदंड अपनाकर परायी स्त्री के मोह में पड़कर उसकी परवाह ही नहीं करता। मनुस्मृति तथा अन्य धर्म शास्त्रों में नारी को सदा किसी न किसी के संरक्षण में रहने का आदेश दिया गया है। क्योंकि पति, पिता और पुत्र के अतिरिक्त किसी अन्य के संसर्ग में रहने पर उसके सतीत्व पर संकट आने की आशंका बनी रहती है। स्त्री की इस बलहीनता का पुरुष अच्छी तरह फायदा उठाने लगा और उस पर जुल्म ढ़ाते हुए सोचने लगा कि पत्नी को उसके सिवाय कहीं और सहारा नहीं और वह उसे छोड़कर कहीं जा नहीं सकती। कभी–कभी तो इस तरह पुरुषों ने स्त्रियों को अपनी पशु–संपत्ति समझ कर उन पर अत्याचार करने का अभ्यास बना लिया है। नारी के हक का स्थान निर्धारित करते हुए यों यूसुफ इस्लाही पुरुषों को संबोधित करते हुए कहते हैं– "लोगों सुनो औरत से अच्छे व्यवहार के साथ पेश आओ। क्योंकि वह तुम्हारे पास कैदियों की तरह है। तुम्हें उनके साथ सख्ती का बर्ताव करने का कोई हक नहीं। शिवाय उस शक्ल के जब उनकी तरफ से कोई खुली हुई नाफरमानी सामने न आए। अगर वह ऐसा कर बैठी, तो फिर ख्वाबगाहों में उनमें अलग रहो और उन्हें मारो तो ऐसा न मारना कि कोई भारी चोट आए।" परंतु क्या पुरुष इन सभी बातों को अमल में ला रहा है? नहीं! 'कठगुलाब' की स्मिता विवाह के बाद भी वह पति के शोषण का शिकार बनती है। इस उपन्यास में स्त्री की त्रासदी, स्त्री का शोषण और समाज में प्रचलित उस के अलग–अलग संघर्षों को प्रस्तुत किया गया है। समाज में पुरुष के द्वारा किस प्रकार स्त्री का शोषण किया जाता है, उसे सताया एवं उसका उपयोग करके उसे फेंक दिया जाता हैं इन के उपन्यास के स्त्रियों की कहानी है।

निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि मृदुला जी अपने उपन्यासों में सिर्फ समस्याओं को चित्रित नहीं किया बल्कि उस के समाधान भी बताती हैं। नारी को अपने अधिकारों की रक्षा करने का पूरा–पूरा हका है, परंतु उसका प्रथम कर्तव्य बनता है, अपने स्नेह, प्रेम–त्याग से एक अच्छे परिवार को सींच कर सुसंस्कारों से बद्ध समाज–निर्माण का कार्य करना। हाँ, अपने सभी अधिकारों की मांग उसे जरूर करनी चाहिए लेकिन उन

अधिकारों की रक्षा की दौड़ में भागते–भागते स्वयं अपने परिवार को छिन्न–भिन्न नहीं कर लेनी चाहिए। नारी की समस्याएँ द्रौपदी की चीर की भाँति असीम हैं, कब किस नारी के जीवन में कैसा भयानक तूफान आखड़ा होगा यह कोई जान नहीं सकता। हाँ, अगर उसके परिवार के सभी सदस्य नारी के प्रति अपने उत्तरदायित्वों व कर्तव्यों को ठीक–ठीक निभाने लगें तो नारी की सारी की सारी पारिवारिक समस्याएँ खत्म हो जाएँगी।

संदर्भ सूची :-

1. दोहरा अभिशाप : लौसहल्या बैसंत्री –भूमिका।
2. वैशाली श्रीवास्तव, स्त्री सशक्तिकरण के मायने, भारतीय समाज के सन्दर्भ में, त्रैमासिक पत्रिका, पृ.161
3. मृदुला गर्ग, 2012, मेरे साक्षात्कार पृ. 93, किताब घर प्रकाशन, दिल्ली।
4. दर्शन पाण्डेय, नारी अस्मिता की परख, पृ. 2, संजय प्रकाशन, 2004, नई दिल्ली।
5. डॉ. ज्योतिष जोगी, लेख बीते दो दशकों और हिंदी उपन्यास की यात्रा, नया मापदंड, अक्तूबर– दिसम्बर पृ. १२, 1999
6. मृदुला गर्ग, 2013, चितकोबरा, पृ. 96, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली।
7. मृदुला गर्ग, 2013, चितकोबरा, 177, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली।
8. मृदुला गर्ग, 2001, मैं और मैं, पृ. 213, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली।
9. मृदुला गर्ग, 2012, कठगुलाब, पृ. 20, भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली।
10. डॉ. रमा नवले, मृदुला गर्ग के कथासाहित्य में नारी, पृ. 77, विकाश प्रकाशन, कानपुर।
11. मृदुला गर्ग, 2012, मेरे साक्षात्कार पृ. 110, किताबघर प्रकाशन, दिल्ली।
12. मृदुला गर्ग, 2009, मिलजुल मन, पृ. 53, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली।

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Sept. 2025 Page No. : 37-40

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2020 आधारित अर्थशास्त्र पाठ्यपुस्तकों के प्रति अभिधारकों के प्रत्यक्षण का अध्ययन

राकेश वर्मा

सहायक आचार्य, राजकीय स्नातक महाविद्यालय, कांठ, शाहजहांपुर।

सार तत्त्व :-

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2020 (NCF 2020) ने स्कूली शिक्षा के स्वरूप को नई दिशा प्रदान की है। इसके अंतर्गत अर्थशास्त्र जैसे पारंपरिक विषय को भी जीवनोपयोगी एवं छात्र–केंद्रित बनाने का प्रयास किया गया है। इस शोध का उद्देश्य यह समझना है कि इस नवाचार के प्रति अभिधारकों : जैसे शिक्षक, छात्र, अभिभावक और शिक्षा नीति निर्माता की क्या प्रतिक्रिया रही है। पारंपरिक अर्थशास्त्र शिक्षा को अकादमिक दायरे से बाहर लाकर व्यावहारिकता से जोड़ना NCF 2020 का मुख्य उद्देश्य है। इस संदर्भ में यह जानना आवश्यक है कि नए पाठ्यपुस्तक स्वरूपों और शिक्षण पद्धतियों को वास्तविक स्तर पर कितनी स्वीकृति मिली है। इस अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि इन परिवर्तनों ने छात्रों की सहभागिता, समझ और जिज्ञासा में क्या प्रभाव डाला है।

शोध का मुख्य उद्देश्य अर्थशास्त्र पाठ्यपुस्तकों में किए गए बदलावों का विश्लेषण करना और यह जानना है कि अभिधारकों की इन बदलावों के प्रति क्या दृष्टि है। इसके अंतर्गत छात्रों की समझ, शिक्षकों की तैयारी, अभिभावकों की प्रतिक्रिया और मूल्यांकन पद्धति की उपयुक्तता को भी परखा गया है। NCF 2020 आधारित अर्थशास्त्र पुस्तकों में स्थानीयता, संवादात्मकता, परियोजना–आधारित अध्ययन, और सरल भाषा को महत्व दिया गया है। ग्राफ, केस स्टडी, और दैनिक जीवन के उदाहरणों ने विषय को अधिक सजीव बनाया है। छात्रों को अब केवल तथ्यों को रटना नहीं, बल्कि उनका विश्लेषण और व्याख्या करना सिखाया जा रहा है।

मुख्य शब्द :- राष्ट्रीय शिक्षा नीती 2020, राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2020, अर्थशास्त्र पाठ्यपुस्तकों, अभिधारकों व प्रत्यक्षण।

प्रस्तावना (Introduction) :

भारत में शिक्षा का उद्देश्य केवल जानकारी प्रदान करना नहीं है, बल्कि विद्यार्थियों में समग्र विकास, चिंतनशीलता, और व्यवहारिकता को बढ़ावा देना है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 (NEP 2020) तथा उसके अंतर्गत प्रस्तावित राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2020 (National Curriculum Framework - NCF 2020) इसी दिशा में एक दूरगामी कदम है। यह पाठ्यचर्या संरचना समावेशी, वैचारिक, और यथार्थपरक शिक्षा को अपनाने की पैरवी

करती है। इसके आलोक में अर्थशास्त्र जैसे विषय को भी एक नए दृष्टिकोण से प्रस्तुत किया गया है जिसमें केवल सैद्धांतिक ज्ञान ही नहीं, बल्कि व्यावहारिक, स्थानीय तथा सृजनात्मक आयामों को भी सम्मिलित किया गया है। इस शोध पत्र का उद्देश्य यह समझना है कि इस नवाचार के संदर्भ में विभिन्न अभिधारकों जैसे शिक्षक, छात्र, अभिभावक, एवं शिक्षा नीति निर्माताओं की क्या प्रतिक्रिया रही है।

शोध की आवश्यकता (Need of Study) :

NCF 2020 शिक्षा के ढांचे में मूलभूत परिवर्तन लाने की बात करता है। पारंपरिक दृष्टिकोण की तुलना में अब पाठ्यपुस्तकों में अधिक संवादात्मकता, स्थानीय सन्दर्भ, और परियोजना आधारित अध्ययन को स्थान दिया गया है। अर्थशास्त्र जैसे अमूर्त और परंपरागत रूप से 'गंभीर' माने जाने वाले विषय को अधिक आकर्षक एवं सुग्राह्य रूप में प्रस्तुत करने के लिए कई प्रयास किए गए हैं। लेकिन यह आवश्यक है कि हम यह जानें कि इन परिवर्तनों के प्रति संबंधित पक्षकारों का दृष्टिकोण क्या है। क्या शिक्षक इन बदलावों को अपनाने में सहज हैं? क्या छात्र इसे रोचक पाते हैं? क्या अभिभावकों को लगता है कि यह पाठ्यक्रम उनके बच्चों के व्यावहारिक जीवन के लिए उपयोगी है? ऐसे अनेक प्रश्नों का उत्तर यह शोध देने का प्रयास करेगा।

शोध का उद्देश्य (Objectives of the Study) :

इस शोध के मुख्य उद्देश्य निम्नलिखित हैं :

1. यह समझना कि राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा 2020 के अनुरूप अर्थशास्त्र पाठ्यपुस्तकों में क्या बदलाव किए गए हैं।
2. यह जानना कि विभिन्न अभिधारकों द्वारा इन पाठ्यपुस्तकों को किस प्रकार देखा जा रहा है।
3. यह मूल्यांकन करना कि ये परिवर्तन छात्रों के शैक्षिक प्रदर्शन, समझ और अभिरुचि पर क्या प्रभाव डालते हैं।
4. शिक्षकों द्वारा इन पाठ्यपुस्तकों को पढ़ाने की प्रक्रिया में आने वाली चुनौतियों की पहचान करना।

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2020 (National Curriculum Framework 2020) :

NCF 2020 शिक्षा प्रणाली में परिवर्तन का एक महत्वपूर्ण चरण है जो NCF 2020 के उद्देश्यों को कार्यान्वित करने के लिए तैयार की गई है। यह रूपरेखा 'समग्रता, जिज्ञासा, संदर्भात्मकता और लचीलेपन' पर आधारित है। यह विभिन्न स्तरों : ECCE, स्कूली शिक्षा, शिक्षक शिक्षा, और वयस्क शिक्षा के लिए विशेष दिशा–निर्देश प्रस्तुत करती है। स्कूली शिक्षा में अब चार–स्तरीय संरचना – Foundation, Preparatory, Middle और Secondary लागू की गई है।

अर्थशास्त्र जैसे विषय को अब केवल अंकों की गणना तक सीमित न रखकर, उसे दैनिक जीवन की घटनाओं, सामाजिक असमानताओं, बाजार व्यवहार, और संसाधनों के वितरण से जोड़ा गया है। उदाहरणों, केस स्टडी, इन्फोग्राफिक्स, तथा प्रोजेक्ट्स को विशेष महत्व दिया गया है।

पाठ्यपुस्तकों में आए प्रमुख परिवर्तन (Major Change in Textbook) :

NCF 2020 के अंतर्गत अर्थशास्त्र पाठ्यपुस्तकों में निम्नलिखित मुख्य परिवर्तन देखने को मिलते हैं :

- **स्थानीय और वैश्विक सन्दर्भ :** ग्रामीण एवं शहरी दोनों सन्दर्भों में आर्थिक गतिविधियों को समझाने का प्रयास।

- **सृजनात्मक गतिविधियाँ :** Case Studies, Debate, Role Play, Simulation आदि के माध्यम से छात्रों को सक्रिय भागीदार बनाया गया है।
- **प्राकृतिक संसाधनों की भूमिका :** पर्यावरणीय पक्षों और सतत विकास को पाठ्यपुस्तकों में विशेष स्थान दिया गया है।
- **गणनात्मक से अधिक विश्लेषणात्मक दृष्टिकोण :** Graphs और Tables की सहायता से सूचनाओं का विश्लेषण करना सिखाया जा रहा है।
- **भाषा और प्रस्तुति शैली :** सरल भाषा, रंगीन चित्र, संवादात्मक शैली, और जीवनोपयोगी उदाहरणों का समावेश।

शोध पद्धति (Research Methodology) :

इस शोध में गुणात्मक और मात्रात्मक दोनों विधियों का प्रयोग किया गया है। डेटा एकत्रित करने के लिए निम्नलिखित उपायों का सहारा लिया गया :

- **प्रश्नावली :** छात्रों, शिक्षकों और अभिभावकों से संरचित प्रश्नावली के माध्यम से जानकारी ली गई।
- **साक्षात्कार :** कुछ शिक्षकों और पाठ्यपुस्तक निर्माताओं से व्यक्तिगत साक्षात्कार किए गए।
- **अवलोकन :** कक्षा शिक्षण की प्रक्रियाओं का निरीक्षण किया गया।
- **दस्तावेज विश्लेषण :** अर्थशास्त्र की नवीन पाठ्यपुस्तकों और पुरानी पुस्तकों की तुलना की गई।

प्रमुख निष्कर्ष (Major Findings) :

शोध के दौरान निम्नलिखित मुख्य निष्कर्ष सामने आए :–

1. **छात्रों की प्रतिक्रिया :** अधिकांश छात्रों ने नई पुस्तकों को अधिक रोचक और जीवन से संबंधित माना। कुछ छात्रों को शुरुआत में समझने में कठिनाई हुई, लेकिन शिक्षक सहायता से यह दूर हुई।
2. **शिक्षकों की प्रतिक्रिया :** शिक्षकों को शुरुआत में नए दृष्टिकोण के साथ तालमेल बैठाने में समय लगा। उन्हें प्रशिक्षण की आवश्यकता महसूस हुई। लेकिन बाद में उन्होंने माना कि इससे छात्रों की भागीदारी बढ़ी है।
3. **अभिभावकों की प्रतिक्रिया :** कई अभिभावक इस बदलाव से संतुष्ट दिखे क्योंकि उन्हें लगा कि उनके बच्चे अब केवल रटने के बजाय सोचने और समझने लगे हैं।
4. **सीखने के परिणाम :** विद्यार्थियों में आलोचनात्मक सोच, समूह कार्य में भागीदारी और व्यावहारिक समझ में वृद्धि देखी गई।

चुनौतियाँ (Challenges) :

इस अध्ययन में कुछ प्रमुख चुनौतियाँ भी सामने आईं :–

- **शिक्षक प्रशिक्षण की कमी :** सभी शिक्षकों को नवीन पद्धतियों में प्रशिक्षित नहीं किया गया है जिससे उनकी सहभागिता सीमित रही।
- **मूल्यांकन प्रणाली में समरसता का अभाव :** परीक्षा पद्धति अभी भी पारंपरिक ढांचे में ही सीमित है।
- **असमान संसाधन उपलब्धता :** सरकारी और निजी विद्यालयों के बीच पाठ्य सामग्री, पुस्तकें एवं तकनीकी साधनों की उपलब्धता में अंतर।

- **भाषाई विविधता :** क्षेत्रीय भाषाओं में पाठ्यपुस्तकों के अनुवाद में गुणवत्ता की समस्याएँ पाई गईं।

सुझाव (Suggestion) :

1. **शिक्षकों का पुनः प्रशिक्षण** (Re-orientation) : NCF आधारित पाठ्यपुस्तकों को प्रभावी रूप से पढ़ाने हेतु नियमित वर्कशॉप्स और प्रशिक्षण की व्यवस्था की जाए।
2. **समावेशी मूल्यांकन :** प्रोजेक्ट वर्क, प्रेजेंटेशन, गतिविधि–आधारित मूल्यांकन को मान्यता दी जाए।
3. **डिजिटल सामग्री का विकास :** पुस्तकों के साथ QR कोड, ऑडियो–विजुअल सामग्री को भी एकीकृत किया जाए।
4. **अभिभावक संवाद :** अभिभावकों को इन परिवर्तनों की जानकारी देने हेतु विद्यालय स्तर पर संवाद आयोजित किए जाएँ।

निष्कर्ष (Conclusion) :

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2020 एक दूरदर्शी दस्तावेज है जो शिक्षा को विद्यार्थियों के जीवन से जोड़ने का प्रयास करता है। अर्थशास्त्र विषय की नई पाठ्यपुस्तकों ने शिक्षण को अधिक सजीव, सृजनात्मक, और व्यावहारिक बना दिया है। अभिधारकों की प्रतिक्रियाएं समग्र रूप से सकारात्मक रही हैं, हालांकि कुछ चुनौतियाँ भी सामने आई हैं जिन पर नियोजित तरीके से कार्य करने की आवश्यकता है। यदि इन सुझावों पर ध्यान दिया जाए, तो अर्थशास्त्र जैसे विषय की जटिलता कम होकर वह छात्रों के लिए एक उपयोगी और प्रेरणादायी अनुशासन बन सकता है।

संदर्भ सूची (References) :

1. राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 – भारत सरकार।
2. राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2020 : NCERT
3. कक्षा 9–12 की अर्थशास्त्र पाठ्यपुस्तकें – NCERT
4. CBSE एवं राज्य बोर्ड से सम्बंधित ऑनलाइन पोर्टल्स।
5. Field Survey Reports एवं Primary Data Collection.

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Sept. 2025 Page No. : 41-44

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

21वीं सदी की लघु कथाओं में बदलती सामाजिक वास्तविकताएं

डॉ. प्रियंका परमार

सह प्राध्यापिका (हिन्दी विभाग),

श्री शंकरलाल सुंदरबाई शासुन जैन महिला कॉलेज, टी. नगर, चेन्नई–600017

साहित्य और समाज का संबंध अटूट है जिसमें साहित्य समाज का दर्पण होता है जो उसकी वास्तविक समस्याओं और परिस्थितियों को दर्शाता है वही समाज साहित्य के लिए आधार और प्रेरणा प्रदान करता है। साहित्य का जन्म समाज के बिना संभव नहीं है क्योंकि समाज की परिस्थितियों और और उसके मूल्य ही साहित्य को बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। साहित्य साहित्यकार की रचना होती है और हर साहित्यकार समाज में ही रहता है, समाज से अलग होकर नहीं रह सकता। इसीलिए हर एक साहित्यकार की रचनाओं में हमेशा समाज की झलक प्रत्यक्ष रूप में दिखती है।

"समाज में जैसी परिस्थितियों और विचार होते हैं साहित्य में भी वैसा ही परिवर्तन आ जाता है। अगर समाज में वीर भावना है, साहित्य में भी शौर्य की झलक मिलेगी। समाज या साहित्य रचने वाले के वर्ग में विलासिता का साम्राज्य है, तो साहित्य भी शृंगारिक होगा। कहा जा सकता है कि साहित्य और समाज परस्पर आश्रित और एक दूसरे के पूरक है।"[1]

21 से सदी की लघु कथाएं आज समाज में बदलती वास्तविक परिस्थितियों को दर्शाती है। वर्तमान में हिंदी साहित्य के लघु कथाओं में समाज में उभरती चुनौतियों को दर्शाया है उसके साथ ही समाज में चेतना और बदलाव की ओर लोगों का ध्यान आकर्षित किया है। लघुकथा बाजारवाद, बेरोजगारी, भ्रष्टाचार, स्त्री विमर्श, सामाजिक भेदभाव, धार्मिक पाखंड तथा मीडिया की विकृति पर केंद्रित होती है। इन कथाओं में व्यंग्यात्मक शैली का प्रयोग कर समाज के यथार्थ का चित्रण किया गया है। यह कथा समाज में संवेदनाओं को जगाती है जो समाज में चल रही विभिन्न समस्याओं पर विचार करने के लिए मजबूर कर देती है। वर्तमान की लघु कथाओं में पात्रों के संवाद बेहद प्रभावशाली होते हैं जो कहानी को सीधे और अर्थ पूर्ण रूप से जोड़ देता है। वर्तमान में प्रमुख रूप से व्यंग्यात्मक शैली का अत्यधिक प्रयोग किया गया है।

टिकेश्वर सिंह की लघुकथा 'दिव्यास्त्र' में पति पत्नी के अलगाव होने के पश्चात के रिश्तों को बताया है। समाज में हमेशा महिलाओं के पहलू को देखा जाता है इसीलिए वर्तमान में कई महिलाएं इसका गलत फायदा उठाती है और समाज को भ्रमित करती है। उसी को ही इस कहानी में दर्शाया गया है।

"उसने एक दिन बोल ही दिया अक्षय मैं तुम्हारे पास आना चाहती हूं तुम किसी और के नहीं हो सकते तुम्हें मुझे स्वीकार करना ही होगा। अक्षय बोला – क्या तुम मुझे बर्बाद करना चाहती हो। कड़े तेवर में मिताली बोली तुम्हें आबाद भी होने नहीं दूंगी हमारे बीच 3 साल का संबंध रहा है तुम भी जानते हो इसीलिए ना....., इसलिए आखिर क्या कर लोगी तुम्हें मेरी बातें समझ नहीं आती अक्षय का स्वर भी सख्त हो चुका था। अक्षय की बातें सुन मिताली गुस्से से उभरने लगी अब तो उसने अक्षय पर अपने अमोघ दिव्यास्त्र दुष्कर्म का आरोप से प्रहार करने का मन बना लिया था।"[2]

प्रस्तुत लघुकथा में बताया गया है कि आज समाज में विकृत मानसिक बुद्धि की स्त्रियों द्वारा पुरुषों को मानसिक प्रताड़ना का दर्द झेलना पड़ता है। जिन कानूनों को महिलाओं की मदद के लिए बनाया गया है, आज उसी का प्रयोग गलत तरीके से भी हो रहा है। दुष्कर्म जैसे अमानवीय संवेदनशील विषय को भी चरित्रहीन महिलायें हथियार बनाकर पुरुष को प्रताडित करने से नहीं डर रही है। यह कहानी समाज को एक संदेश है कि जरूरी नहीं की हमेशा पुरुष वर्ग ही गुनागार हो।

नीना सिंह की लघु कथा 'उलट' में बेटा और बेटी के बीच समाज में विवाह को लेकर सामाजिक मानसिकता को दर्शाया है। हमारा देश कितना भी प्रगति कर ले परंतु अभी भी समाज में बेटियों को पराया धन ही माना जाता है। जिसका विवाह के पश्चात अपने ही परिवार से नाता तोड़ दिया जाता है और उसके हक को छीन लिया जाता है उसी को दर्शाती यह कहानी है। "यहां कथनी और करनी में अंतर है कुछ एक राज्यों को छोड़कर अन्य राज्यों में बेटे के लिए संपत्ति का पहाड़ भले खड़े कर ले, पर बेटी को शादी के वक्त ले–देकर सदा के लिए आर्थिक जिम्मेदारियां से निवृत होना चाहते हैं। जिसे अमूमन दहेज का नाम दिया जाता है, यानी पैतृक संपत्ति में ठेंगा और कन्यादान के साथ तथा कथित दहेज भी ना देना पड़े तो दोनों हाथों में लड्डू। दरअसल लड़कों में परिवार का भविष्य दिखता है पर शादीशुदा लड़कियों पर अधिकार जताना मुश्किल होता है।"[3]

समाज की इन कुरीतियों की वजह से बेटियों को अपने सपनों को छोड़ना पड़ता है। वह अपनी अभिलाषाओं को अंदर ही दबाकर रख लेती है। लेकिन आज लड़कियाँ अपने हक के लिए लड़ती हुई दिखाई देती है और अपने पैरों पर खड़ा हो कर अपने परिवार को भी मजबूत बना रही है। उसी को परिभाषित करती हुई यह कहानी हैं।

संतोष सुपेकर की लघु कथा उलझन में वर्तमान में समाज में बेरोजगारी और भ्रष्टाचार के कारण फैली मानसिक कुरीतियों को दर्शाया है। कहानी आज के युवा पर केंद्रित है, जो अपनी मेहनत से नौकरी हासिल करता है पर समाज में फैले बेरोजगार और भ्रष्टाचार ने उसकी मेहनत को भी पैसों की ताकत से जोड़ दिया। समाज में फैले भ्रष्टाचार और बेरोजगारी से युवाओं और पूरे समाज पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है।

"आशा के विपरीत अनमनेपन से आशीर्वाद देते हुए अचानक अंकल ने पूछा, "बेटा एक बात तो बता, कितने पैसे दिए थे, इस नौकरी के लिए....?" उल्लास से दमकता उसका मन बुझ गया, इस अप्रत्याशित प्रश्न से, अचानक चली हवा से बुझने वाले दीपक की तरह.....। नौकरी मिलने की खुशी आधी रह गई थी, अपनों के इस मिथ्या आरोप से....। अंकल के शब्द..... ईर्ष्या का भाव था या सामाजिक कुरीतियों के प्रति उसकी गहरी आस्था?"[4]

इस कहानी में बेरोजगारी और भ्रष्टाचार के साथ–साथ समाज में पर फैले ईर्ष्या के भाव को बताया है।

वर्तमान में समझ में भ्रष्टाचार का इतना बोलबाला है की मेहनत से प्राप्त की गई नौकरी को भी पैसों से तोल दिया जाता है।

आज समाज में युवाओं से लेकर बच्चों तक शिक्षा को इतना महत्वपूर्ण नहीं देते इस विषय पर कटाक्ष करती सीमा हरि शर्मा की लघु कथा 'बदलाव कहां से' आधारित है। आज की युवा पीढ़ी शिक्षा से ज्यादा पैसा कमाने को तवज्जो देती है। कहानी दो छोटे बच्चों की मानसिक स्थिति पर केंद्रित है। कहानी में छोटे बच्चे की मानसिकता से पता चलता है कि आज समाज में प्रत्येक वर्ग के लोग सिर्फ आसानी से पैसा कमाना चाहते हैं जिसमें शिक्षा का उतना योगदान नहीं मानते।

"उसने अपने साथी से कहा – तू क्यों फोकट खड़ा है उन साब के जूते पर पॉलिश कर दे।

मैं नहीं करता तू ही कर – छोटा मुंह बनाकर बोला।

अरे कर ले बेटा नहीं तो बहुत पछताएगा।

क्या पछताऊंगा? – छोटे ने आंखें बड़ी की।

पॉलिश करते–करते उसने अपना सिर ऊपर उठाया अपने साथी की और देखते हुए जोर से बोल – क्या पछताएंगे? बाप स्कूल में डाल देगा तो पढ़ पढ़ कर मर जाएगा, फिर किसी काम का नहीं रह जाएगा इससे अच्छा है बेटा काम सीख ले पैसा भी काम आएगा मजे भी करेगा।"[5] प्रस्तुत कहानी के द्वारा कहानीकार पाठकों का ध्यान युवाओं की बदलती मानसिकता की ओर खींचना चाहता है। आजकल के युवायों में शिक्षा के प्रति आकर्षण घटता जा रहा है। इसीलिए कहानी के द्वारा कहानीकार चाहता है कि समाज में इस प्रकार की सोच में बदलाव हो और युवा पीढ़ी शिक्षा के प्रति जागरूक हो।

विश्व भर में फैली महामारी कोरोना पर व्यंग्यात्मक तरीके से समाज के लोगों पर कटाक्ष करती हुई मंजुल भटनागर की लघु कथा 'तथास्तु' है। यह कहानी बीमारियों के प्रति समाज के लोगों की लापरवाही की ओर इंगित है। जिसमें व्यक्ति लॉकडाउन के आगे बढ़ाने की वजह से परेशान है। भगवान श्री कृष्ण ने उसको समझाया : हे पार्थ..... जो आज ग्रीन जोन में है कल ऑरेंज जोन में होगा और जो आज ऑरेंज जोन में है वह परसों तक रेड जोन होगा। क्योंकि हिंदुस्तान में मूर्खों की कमी नहीं है और वह भूल जाएंगे की कोरोना ना पैदा होता है ना मरता है, कोरोना अनश्वर है। वह तो केवल एक शरीर से दूसरे शरीर में प्रवेश करता है और एक जोन को दूसरे जोन में बदल देता है। वह बार–बार प्रकट होता है नए–नए अवतार में। इसीलिए हे पार्थ, अगर तुम सोशल डिस्टेंस का जाप करोगे और बाहर घूमने का त्याग करोगे तो इस कोरोना पर विजय प्राप्त करोगे। तथास्तु।"[6] कोरोना की शुरुआत में समाज में लोग बेहद सजग थे परंतु जैसे ही कोरोना कम हुआ वैसे ही समाज में कोरोना के प्रति लापरवाही अत्यधिक देखी गई जिसकी वजह से कोरोना की दूसरी लहर भी आ गई थी। जिसकी वजह से कई लोग इस महामारी के चपेट में आ गए थे। इसीलिए कहानीकार ने कहानी में भागवत गीता में श्री कृष्ण के उपदेश को वर्तमान की परिस्थितियों के अनुरूप बदलकर लोगों को बीमारियों के प्रति जागरूक करने की एक पहल की है।

इंसानों की महत्वाकांक्षा कभी खत्म नहीं होती उसी को परिभाषित करती हुई वीरेंद्र बहादुर सिंह की लघुकथा अदला–बदली आधारित है। जिसमें सरिता हमेशा श्रेया की भौतिक सुख सुविधा देख कर अपने भाग्य को कोसती थी। लेकिन एक घटना से उसका नजरिया बदल गया।

"श्रेया को देख कर सरिता के दिल का संतोष लुप्त हो जाता और मन ईश्वर से एक ही सवाल पूछता, 'श्रेया का भाग्य उसे नहीं मिल सकता क्या?' और अगर मिल जाए तो . . . तमाम इंद्रधनुषी सपने आँखों में तैरने लगते। शाम को जब पड़ोस में रहने वाली हिमांशी ने बताया कि सामने वाले बँगले में रहने वाली श्रेया को ब्लड कैंसर है और लास्ट स्टेज में है। तब से सरिता भगवान से यही प्रार्थना कर रही है कि उसके भाग्य में जो है, वही ठीक है। प्लीज अदला–बदली मत कीजिएगा।"[7]

किसी और की जिंदगी को देखकर प्रत्येक व्यक्ति में वैसी जिंदगी की लालसा उत्पन्न हो जाती है जो धीरे–धीरे ईर्ष्या और जलन में परिवर्तित हो जाती है और असंतुष्टि जीवन में फैल जाती है। वर्तमान में प्रत्येक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति की सुख सुविधाओं से ईर्ष्या करता है और उसके भाग्य को अपने भाग्य बदलना चाहता है लेकिन हम यह नहीं सोचते कि इस चकाचौंध जिंदगी के पीछे अंधकारमय जीवन हो सकता है। इस कहानी के माध्यम से यही संदेश दिया है कि हमारे भाग्य में जो हमें मिलता है हमें उसे खुश रहना चाहिए।

सारांश : हिंदी साहित्य में लघु कथाओं का अपना ही एक महत्वपूर्ण स्थान है। वर्तमान की कहानीकार कल्पनाओं को आधार बनाने की बजाय यथार्थ को अपना विषय बनाते हैं, जिससे समाज तक उनका संदेश पहुंच सके। मुख्यता लघुकथाएँ मानवीय संबंध, संवेदनाएं, सामाजिक मुद्दे, आधुनिक जीवन की विसंगतियों, पर्यावरण की चिंताएँ, निजी अनुभव, व्यक्तिगत संघर्ष और सांस्कृतिक पहचान का संकट जैसे विषयों पर केंद्रित है। वर्तमान में कहानीकारों ने समाज के हर एक पहलू को अपनी कहानियों का हिस्सा बनाया है समाज में और परिवार में कई सारी विषम परिस्थितियों उत्पन्न हो जाती है उन परिस्थितियों को कहानियों में बहुत ही सुंदर तरीके से दर्शाया गया है। जिससे समाज के लोग इन कहानियों के द्वारा वास्तविक स्थिति को समझ सके। समकालीन लघु कथाएं अक्सर मध्यम वर्ग के लोगों के जीवन और उनके रिश्तों की जटिलताओं पर केंद्रित होती है। इसके साथ ही सामाजिक व्यंग्य और मानवीय भावनाओं को भी कहानीकारों ने अपना विषय बनाया है। यह लघु कथाएं हमारे समाज में मानवीय रिश्तों में आई दरारों को व्यक्ति–व्यक्ति के बीच बढ़ती दूरी और समाज में घटती सहानुभूति को उजागर करती है। इसी के साथ शहरों के जीवन की भागमभाग, महानगरों की संस्कृति और भौतिकवाद के कारण हमारे मूल्यों के विघटन पर भी लघु कथाएं प्रकाश डालती हैं। कभी–कभी लघु कथाएं व्यक्ति के अंदर चल रहे उसके संघर्ष अधूरी ख्वाहिश है या जीवन की कोई छोटी सी घटना के माध्यम से भी सत्य को सामने लाती है। संक्षेप में कह सकते हैं कि आज की लघु कथा मानव मन को जंग जोड़ने वाली जीवन के विभिन्न पहलुओं को सूक्ष्मता से उजागर करने वाली और यथार्थ के प्रति सचेत का करने वाली विधा है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. जनसत्ता ई–पेपर साहित्य और समाज मार्च 28 2023
2. टिकेश्वर सिन्हा 'गब्दीवाला' – नई गूंज शोध साहित्य एवं संस्कृति मासिक पत्रिका (जुलाई– अगस्त 2024)
3. नीना सिंह उलट – नई गूंज शोध साहित्य एवं संस्कृति मासिक पत्रिका (जनवरी 2024)
4. संतोष सुपेकर– उलझन, भारत–दर्शन हिंदी साहित्य पत्रिका।
5. सीमा हरि शर्मा – बदलाव कहां से, अभिव्यक्ति साप्ताहिक पत्रिका (जुलाई 2022)
6. मंजू भटनागर – तथास्तु, अभिव्यक्ति साप्ताहिक पत्रिका (जून 2020)
7. वीरेंद्र बहादुर सिंह – अदला–बदल, साहित्य कुंज (अंक 252, मई 2024)

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Sept. 2025 Page No. : 45-50

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

डिजिटल डिवाइड : ग्रामीण–शहरी असमानताओं का अध्ययन

डॉ. गौरव शर्मा

सहायक आचार्य, स्वामी शुकदेवानंद कॉलेज, शाहजहांपुर।

सारांश :–

वर्तमान वैश्विक परिदृश्य में डिजिटल तकनीक ने शिक्षा, स्वास्थ्य, शासन और अर्थव्यवस्था के हर पहलू को प्रभावित किया है। डिजिटल इंडिया के सपने के साथ भारत ने डिजिटल सेवाओं को प्रत्येक नागरिक तक पहुँचाने का लक्ष्य रखा है, परंतु वास्तविकता यह है कि ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों के बीच एक गहरी खाई मौजूद है। यह "डिजिटल डिवाइड" केवल इंटरनेट या स्मार्टफोन की उपलब्धता तक सीमित नहीं है, बल्कि इसमें डिजिटल साक्षरता, उपयोग की क्षमता, गुणवत्ता और सामाजिक–सांस्कृतिक अवरोध भी शामिल हैं। यह शोधपत्र डिजिटल डिवाइड की अवधारणा, उसके प्रकार, भारत में ग्रामीण–शहरी असमानताओं का तुलनात्मक अध्ययन, कारणों, प्रभावों, नीतिगत प्रयासों और समाधान का विस्तृत विश्लेषण प्रस्तुत करता है।

मुख्य बिंदु :– डिजिटल डिवाइस, ग्रामीण, शहरी।

1. भूमिका (Introduction) :

आज की दुनिया "सूचना समाज" (Information Society) में परिवर्तित हो चुकी है। सूचना और संचार प्रौद्योगिकी (ICT) विकास का सबसे बड़ा इंजन बन गई है। शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार, व्यापार और शासन सभी अब डिजिटल मंचों पर स्थानांतरित हो रहे हैं।

भारत दुनिया का दूसरा सबसे बड़ा इंटरनेट उपयोगकर्ता देश है। TRAI (2023) की रिपोर्ट के अनुसार भारत में 85 करोड़ से अधिक इंटरनेट उपभोक्ता हैं। लेकिन इस संख्या के पीछे गहरी असमानता छिपी है। ग्रामीण क्षेत्रों में केवल 38–40% आबादी के पास इंटरनेट की पहुँच है, जबकि शहरी क्षेत्रों में यह आँकड़ा 70% से अधिक है।

इस असमानता को ही "डिजिटल डिवाइड" कहा जाता है। यह असमानता केवल तकनीकी अवसंरचना की कमी से नहीं बल्कि सामाजिक, आर्थिक, शैक्षिक और सांस्कृतिक कारणों से भी उत्पन्न होती है।

भारत में जब तक ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों के बीच यह डिजिटल खाई कम नहीं की जाएगी, तब तक "समान अवसरों वाले समाज" (Inclusive Society) का निर्माण अधूरा रहेगा।

2. शोध का महत्व (Significance of the Study) :

डिजिटल असमानता का प्रश्न केवल भारत तक सीमित नहीं है, बल्कि यह विश्व स्तर पर एक गंभीर समस्या है। हालांकि, भारत में यह मुद्दा और भी महत्वपूर्ण हो जाता है क्योंकि यहाँ लगभग 65–70% आबादी

ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करती है। यदि यह आबादी डिजिटल सेवाओं से वंचित रह जाती है, तो राष्ट्रीय विकास अधूरा ही रहेगा।

यह शोध महत्वपूर्ण है क्योंकि इससे हमें यह समझने में मदद मिलेगी कि डिजिटल क्रांति का लाभ किस हद तक समाज के सभी वर्गों तक पहुँच पा रहा है। इसके अतिरिक्त, इस अध्ययन के आधार पर नीति–निर्माताओं को यह जानने में सुविधा होगी कि किन क्षेत्रों में अधिक निवेश और प्रयास की आवश्यकता है। साथ ही, यह शोध उन शोधकर्ताओं, शिक्षाविदों और योजनाकारों के लिए भी उपयोगी होगा जो सूचना प्रौद्योगिकी को समाज के हर वर्ग तक पहुँचाने का प्रयास कर रहे हैं।

3. समस्या का प्रतिपादन (Statement of the Problem) :

भारत की ग्रामीण और शहरी आबादी के बीच डिजिटल संसाधनों तक पहुँच में स्पष्ट अंतर मौजूद है। जहाँ शहरी क्षेत्रों में उच्च गति का इंटरनेट, डिजिटल बैंकिंग, ऑनलाइन शिक्षा और टेलीमेडिसिन जैसी सुविधाएँ आसानी से उपलब्ध हैं, वहीं ग्रामीण क्षेत्रों में इंटरनेट की धीमी गति, बिजली की समस्या, स्मार्टफोन की कमी और डिजिटल साक्षरता का अभाव जैसी चुनौतियाँ बनी हुई हैं।

यह अंतर केवल तकनीकी ही नहीं बल्कि सामाजिक व आर्थिक दृष्टि से भी गंभीर परिणाम उत्पन्न करता है। ग्रामीण क्षेत्रों के लोग शिक्षा, स्वास्थ्य और रोजगार से जुड़ी उन संभावनाओं से वंचित रह जाते हैं जिनका लाभ शहरी लोग ले रहे हैं। इस तरह डिजिटल डिवाइड एक नई तरह की असमानता का निर्माण करता है, जो विकास के समावेशी स्वरूप के लिए घातक है। यदि इस समस्या का समाधान नहीं किया गया तो भारत के ग्रामीण और शहरी समाज के बीच विकास की खाई और गहरी हो सकती है।

4. शोध के उद्देश्य (Objectives of the Study) :

इस शोधपत्र के मुख्य उद्देश्य निम्नलिखित हैं :

1. डिजिटल डिवाइड की परिभाषा और प्रकार स्पष्ट करना।
2. ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों में डिजिटल संसाधनों की उपलब्धता और उपयोग का तुलनात्मक अध्ययन करना।
3. डिजिटल असमानता के सामाजिक, शैक्षिक, आर्थिक और राजनीतिक प्रभावों का विश्लेषण करना।
4. डिजिटल डिवाइड को पाटने के लिए सरकार द्वारा किए जा रहे प्रयासों की समीक्षा करना।
5. समस्या के समाधान हेतु संभावित उपाय सुझाना।

इन उद्देश्यों के माध्यम से हम न केवल डिजिटल डिवाइड की वास्तविक स्थिति को समझ पाएंगे, बल्कि उन नीतिगत सुधारों और रणनीतियों को भी चिन्हित कर सकेंगे जिनसे ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों के बीच यह खाई कम हो सके।

5. शोध प्रश्न (Research Questions) :

1. भारत में डिजिटल डिवाइड के कारण क्या हैं?
2. ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों में डिजिटल पहुँच में क्या अंतर है?
3. शिक्षा, रोजगार और सामाजिक अवसरों पर इस असमानता का क्या प्रभाव पड़ता है?
4. इसे कम करने हेतु कौन–सी नीतियाँ और उपाय सबसे प्रभावी हो सकते हैं?

6. परिकल्पना (ब्लचवजीमेपे) :

- **H_0 (शून्य परिकल्पना) :** ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों में डिजिटल पहुँच में कोई विशेष अंतर नहीं है।
- **H_1 (वैकल्पिक परिकल्पना) :** ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों में डिजिटल पहुँच में महत्वपूर्ण अंतर है।

7. कार्यप्रणाली (Methodology) :

शोध का स्वरूप : वर्णनात्मक व तुलनात्मक।

- **डेटा स्रोत :**

– **प्राथमिक स्रोत :** ग्रामीण और शहरी नागरिकों से प्रश्नावली व साक्षात्कार।

– **द्वितीयक स्रोत :** सरकारी रिपोर्ट, TRAI, NITI Aayog, विश्व बैंक, समाचार पत्र, शोध पत्र।

– **विश्लेषण :** गुणात्मक एवं मात्रात्मक दोनों तरीकों से।

8. डिजिटल डिवाइड की वर्तमान स्थिति (Present Status of Digital Divide in India) :

भारत ने पिछले दशक में डिजिटल क्षेत्र में उल्लेखनीय प्रगति की है। इंटरनेट उपयोगकर्ताओं की संख्या 800 मिलियन से अधिक हो चुकी है और मोबाइल फोन का प्रसार भी तेजी से हुआ है। फिर भी ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों के बीच यह खाई अब भी गहरी है। ग्रामीण क्षेत्रों में केवल 37% लोग ही सक्रिय इंटरनेट उपयोगकर्ता हैं जबकि शहरी क्षेत्रों में यह अनुपात 67% से अधिक है।

इसके अलावा, शहरी क्षेत्रों में इंटरनेट की गति और गुणवत्ता बेहतर है जबकि ग्रामीण क्षेत्रों में अभी भी नेटवर्क की समस्या बनी हुई है। डिजिटल बैंकिंग और ऑनलाइन लेन–देन शहरी इलाकों में सामान्य हो चुके हैं, लेकिन ग्रामीण क्षेत्रों में नकदी आधारित अर्थव्यवस्था अभी भी प्रमुख है। इसी प्रकार, ऑनलाइन शिक्षा और स्वास्थ्य सेवाओं का लाभ भी ग्रामीण क्षेत्रों तक सीमित स्तर पर ही पहुँच रहा है।

9. भारत में ग्रामीण–शहरी असमानताओं का विश्लेषण :

(क) शिक्षा :

– UNICEF (2021) के अनुसार कोविड–19 लॉकडाउन के दौरान केवल 25% ग्रामीण बच्चे ऑनलाइन शिक्षा से जुड़ सके, जबकि शहरी क्षेत्रों में यह आँकड़ा 75% था।

– ग्रामीण छात्रों के पास न तो स्मार्टफोन थे, न ही स्थिर इंटरनेट।

– शहरी बच्चों ने ई–लर्निंग ऐप, डिजिटल लाइब्रेरी और ऑनलाइन ट्यूशन का लाभ उठाया।

(ख) स्वास्थ्य :

– शहरी क्षेत्रों में अपोलो, फोर्टिस जैसे अस्पतालों ने टेलीमेडिसिन सेवाएँ शुरू कीं।

– ग्रामीण क्षेत्रों में नेटवर्क की कमी और जागरूकता के अभाव में मरीजों को अस्पताल तक लंबी दूरी तय करनी पड़ी।

(ग) अर्थव्यवस्था व रोजगार :

– शहरी युवा आईटी सेक्टर, ई–कॉमर्स और डिजिटल स्टार्टअप्स में अवसर पा रहे हैं।

– ग्रामीण युवा अभी भी कृषि या असंगठित श्रम तक सीमित हैं।

– World Bank (2021) के अनुसार डिजिटल स्किल्स की कमी से ग्रामीण युवाओं की रोजगार क्षमता कम हो जाती है।

(घ) ई–गवर्नेंस :

– शहरी लोग ऑनलाइन सेवाएँ (पासपोर्ट, बिल भुगतान, पेंशन) सहजता से उपयोग करते हैं।

– ग्रामीण नागरिक अभी भी साइबर कैफे या सरकारी दफ्तरों पर निर्भर।

10. डिजिटल डिवाइड के प्रभाव (Impacts of Digital Divide) :

डिजिटल असमानता के समाज पर गहरे प्रभाव पड़ते हैं :

- **शिक्षा पर प्रभाव :** ऑनलाइन शिक्षा की सुविधा से ग्रामीण छात्र वंचित रह जाते हैं।
- **रोजगार पर प्रभाव :** डिजिटल कौशल न होने से ग्रामीण युवाओं को रोजगार के अवसर कम मिलते हैं।
- **स्वास्थ्य पर प्रभाव :** टेलीमेडिसिन और ऑनलाइन परामर्श जैसी सेवाएँ ग्रामीण लोगों तक नहीं पहुँच पातीं।
- **आर्थिक असमानता :** डिजिटल लेन–देन और ई–कॉमर्स में ग्रामीण आबादी की भागीदारी सीमित है।
- **सामाजिक असमानता :** यह असमानता ग्रामीण समाज को विकास की मुख्यधारा से अलग कर देती है।

11. अंतरराष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य :

- दक्षिण कोरिया, जापान, चीन जैसे देशों ने ग्रामीण क्षेत्रों में उच्च गुणवत्ता का इंटरनेट उपलब्ध कराया है।
- अफ्रीका में कई देशों में भारत जैसी ही चुनौतियाँ हैं।
- वैश्विक स्तर पर डिजिटल डिवाइड "उत्तर–दक्षिण खाई" के रूप में भी देखा जाता है। विकसित देशों में इंटरनेट पहुँच 90% से अधिक, जबकि कई विकासशील देशों में 40–50%।

12. नीतिगत प्रयास और उनकी समीक्षा :

- **डिजिटल इंडिया मिशन (2015) :** डिजिटल अवसंरचना, डिजिटल साक्षरता, ई–गवर्नेंस।
- **भारतनेट प्रोजेक्ट :** 2.5 लाख ग्राम पंचायतों तक ब्रॉडबैंड।
- **PMGDISHA :** 6 करोड़ ग्रामीण परिवारों को डिजिटल शिक्षा।
- **जियो क्रांति :** डेटा की लागत कम कर ग्रामीण पहुँच बढ़ाई।

समीक्षा :

- योजनाएँ व्यापक हैं पर कार्यान्वयन धीमा।
- कई गाँवों में इंटरनेट की स्पीड अभी भी बहुत कम।
- डिजिटल साक्षरता प्रशिक्षण में निरंतरता और गुणवत्ता की कमी।

13. डिजिटल डिवाइड के प्रभाव :

(क) सामाजिक प्रभाव :

- ग्रामीण समाज सूचना और अवसरों से वंचित।
- शहरी समाज तेजी से वैश्विक प्रतिस्पर्धा से जुड़ रहा।

(ख) शैक्षिक प्रभाव :

- ग्रामीण विद्यार्थियों की शैक्षिक गुणवत्ता कम।
- प्रतिस्पर्धात्मक परीक्षाओं और उच्च शिक्षा में पिछड़ना।

(ग) आर्थिक प्रभाव :

- ग्रामीण युवाओं की रोजगार क्षमता घटती।
- कृषि उत्पादों का ऑनलाइन विपणन सीमित।

(घ) राजनीतिक प्रभाव :

- ई–गवर्नेंस और डिजिटल लोकतंत्र में ग्रामीण सहभागिता सीमित।

14. चुनौतियाँ :

1. अवसंरचना निर्माण की धीमी गति।
2. डिजिटल साक्षरता कार्यक्रमों का अभाव।
3. ग्रामीण महिलाओं और कमजोर वर्गों की भागीदारी कम।
4. डेटा सुरक्षा और साइबर अपराध की चुनौती।
5. योजनाओं में पारदर्शिता और निगरानी की कमी।

15. निष्कर्ष (Conclusion) :

भारत में डिजिटल डिवाइड विकास का सबसे बड़ा अवरोध है। यह केवल तकनीकी अंतर नहीं बल्कि सामाजिक, शैक्षिक और आर्थिक असमानता का भी प्रतीक है। यदि ग्रामीण समाज को डिजिटल सेवाओं से नहीं जोड़ा गया, तो भारत का समावेशी विकास अधूरा रहेगा।

डिजिटल डिवाइड केवल तकनीकी समस्या नहीं बल्कि सामाजिक और आर्थिक असमानता का भी प्रतीक है। भारत जैसे देश में जहाँ अधिकांश आबादी ग्रामीण क्षेत्रों में रहती है, वहाँ डिजिटल समावेशन को सुनिश्चित करना अनिवार्य है। सरकार ने इस दिशा में अनेक प्रयास किए हैं, लेकिन अब भी यह खाई पूरी तरह खत्म नहीं हो सकी है।

इस शोधपत्र से यह स्पष्ट होता है कि यदि ग्रामीण क्षेत्रों में डिजिटल पहुँच बढ़ाई जाए, तो न केवल शिक्षा और स्वास्थ्य की स्थिति सुधरेगी बल्कि आर्थिक और सामाजिक विकास भी गति पकड़ेगा। इसलिए डिजिटल डिवाइड को दूर करना भारत के समावेशी विकास के लिए अत्यंत आवश्यक है।

16. सुझाव (Suggestions) :

1. ग्रामीण क्षेत्रों में हाई–स्पीड इंटरनेट और बिजली की उपलब्धता।
2. स्कूल स्तर पर डिजिटल साक्षरता को अनिवार्य बनाना।
3. स्थानीय भाषाओं में डि।
4. जिटल सामग्री।
5. सस्ते स्मार्टफोन और टैबलेट की उपलब्धता।
6. PPP (Public-Private Partnership) मॉडल से अवसंरचना विकास।
7. महिलाओं और वंचित वर्गों के लिए विशेष प्रशिक्षण।
8. ग्राम पंचायत स्तर पर डिजिटल हेल्प सेंटर।
9. साइबर सुरक्षा पर जागरूकता।
10. अंतरराष्ट्रीय अनुभवों से सीखकर नीतियों को लागू करना।

संदर्भ ग्रन्थ सूची :-

1. NITI Aayog. (2022). India's booming digital economy: Inclusive growth and challenges. Government of India. https://www.niti.gov.in
2. Telecom Regulatory Authority of India. (2023). Annual report 2022–23. TRAI. https://trai.gov.in
3. World Bank. (2021). Bridging the digital divide in developing nations. World Bank Publications. https://www.worldbank.org
4. The Hindu. (2023, June 14). Rural-urban digital gap remains a challenge in India's growth story. The Hindu. https://www.thehindu.com
5. Ministry of Electronics & Information Technology. (2021). Digital India programmed: Progress and future roadmap. Government of India. https://www.meity.gov.in
6. Kumar, R., & Singh, A. (2020). Digital divide in India: A comparative study of rural and urban households. International Journal of Social Sciences Research, 8(2), 45–57.
7. Economic Times. (2022, September 10). India's rural internet penetration rises but challenges remain. The Economic Times. https://economictimes.indiatimes.com
8. Mishra, S. (2019). ICT and inclusive development: Challenges of bridging the digital divide in India. Journal of Rural Development Studies, 35(4), 112–130.

ईमेल आईडी– gauravsharma0302@gmail.com

मोबाइल नं.– 9335290302, 8090300424

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Sept. 2025 Page No. : 51-57

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

स्त्री विमर्श : 21वीं सदी हिन्दी कविता और कथा साहित्य में स्त्री दृष्टि

सुशीला साहू, शोधार्थी, पी एच डी (हिन्दी)
डॉ. चुन्नी लाल साहू, शोध निर्देशक
पंडित रविशंकर शुक्ल विश्वविद्यालय, रायपुर छतीसगढ़।

21वीं सदी के साहित्य में दृष्टि और स्वर, स्त्री विमर्श हिन्दी साहित्य का वह सशक्त पक्ष है जिसने स्त्री को समाज और साहित्य के केंद्र में स्थापित किया। 21वीं सदी में स्त्री विमर्श ने अपने स्वर को और मुखर बनाया है। अब स्त्री केवल पीड़िता के रूप में नहीं, बल्कि अपनी शर्तों पर जीने वाली सृजनशील, संघर्षशील और स्वतंत्र व्यक्तित्व के रूप में सामने आती है। भारतीय नारी ने सदियों तक दमन, रूढ़ियों और उपेक्षा का सामना किया। साहित्य में स्त्री की आत्मकथाएँ, कविताएँ और कहानियाँ उसकी पीड़ा, संघर्ष और आत्मसिद्धि की कथा कहती हैं। महादेवी वर्मा, अमृता प्रीतम, मन्नू भंडारी, अनामिका ऐसे और कई इसके सशक्त उदाहरण हैं। वर्तमान परिप्रेक्ष्य में मानव सभ्यता के विकास में स्त्री का योगदान उतना ही गहरा है जितना पुरुष का। किंतु विडंबना यह रही कि समाज में उसकी भूमिका को लंबे समय तक सीमित, गौण और द्वितीयक माना गया। 'स्त्री–विमर्श' केवल साहित्यिक आंदोलन नहीं, बल्कि एक सामाजिक–चेतना है – जो स्त्री की अस्मिता, अधिकारों, समानता और स्वाभिमान की रक्षा का माध्यम है। स्त्री–विमर्श के स्वरूप और परिभाषा की बात करें तो स्त्री–विमर्श का आशय केवल स्त्री के दुख–दर्द का वर्णन नहीं है, बल्कि उसकी स्वतंत्र चेतना को स्थापित करना है। यह विमर्श इस बात की पड़ताल करता है कि स्त्री को मात्र 'देह' या 'कर्तव्य–यंत्र' के रूप में देखने की प्रवृत्ति कब और कैसे जन्मी और इसे समाप्त करने के उपाय क्या हो सकते हैं?

21वीं सदी का कथा–साहित्य भारतीय समाज के बदलते स्वरूप, विचारधारा और स्त्री–पुरुष संबंधों के नए आयामों का गहरा दस्तावेज है। यह शताब्दी स्त्री की चेतना, उसकी आकांक्षाओं, संघर्षों और सफलताओं को नई दृष्टि से देखने और प्रस्तुत करने की सदी मानी जा सकती है। 21वीं सदी में स्त्री केवल परिवार या समाज की परिधि में सीमित नहीं है, बल्कि वह जीवन के हर क्षेत्र में अपनी पहचान बना रही है। कथा–साहित्य में इस परिवर्तन को अत्यंत प्रभावशाली ढंग से दर्ज किया गया है। 21वीं सदी का कथा–साहित्य भारतीय समाज के बदलते स्वरूप, विचारधारा और स्त्री–पुरुष संबंधों के नए आयामों का सशक्त दस्तावेज है। यह सदी नारी चेतना के उभार और उसके बहुआयामी संघर्षों का प्रतिबिंब है। इस युग की कथाएँ नारी को केवल घर–परिवार तक सीमित नहीं रखतीं बल्कि उसे सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और मनोवैज्ञानिक संदर्भों में रखती हैं। इस शोध–निबंध में हम 21वीं सदी में नारी के कथा–साहित्य को प्रमुख रचनाकारों, उनके दृष्टिकोण और कृतियों को

उदाहरण सहित समझते हैं। 21वीं सदी का कथा–साहित्य भारतीय समाज के बदलते स्वरूप, विचारधारा और स्त्री–पुरुष संबंधों के नए आयामों का सशक्त दस्तावेज है। यह सदी नारी चेतना के उभार और उसके बहुआयामी संघर्षों का प्रतिबिंब है। इस युग की कथाएँ नारी को केवल घर–परिवार तक सीमित नहीं रखतीं बल्कि उसे सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और मनोवैज्ञानिक संदर्भों में रखती हैं। यह निबंध नारी के कथा–साहित्य को प्रमुख रचनाकारों, उनके दृष्टिकोण और कृतियों के उदाहरण सहित विस्तृत रूप में प्रस्तुत करता है। 21वीं सदी की नारी अधिक सजग, आत्मनिर्भर और संघर्षशील है। वह अपने अस्तित्व को लेकर गंभीर है और हर प्रकार के अन्याय का विरोध करती है। पारिवारिक परंपराओं से इतर अपनी स्वतंत्र पहचान बनाना। शिक्षा, राजनीति, विज्ञान, साहित्य, कला और व्यापार में सक्रिय भागीदारी। यौनिकता, समानता और अधिकारों पर खुला विमर्श। आधुनिक समाज या इक्कीसवीं सदी में निरंतर शिक्षा का स्तर बढ़ा है। जिसमें महिलाओं की भागीदारी बढ़ी है।

1. स्त्री चेतना का विस्तार :

इतिहास और विकास प्राचीन भारत में वेदों में 'नारी तू नारायणी' का स्वरूप मिलता है। स्त्रियाँ ऋषि–मुनियों की तरह विदुषी बनती थीं। गार्गी, मैत्रेयी जैसे उदाहरण ज्ञान–विज्ञान में स्त्री की सक्रिय उपस्थिति को दिखाते हैं।

मध्यकाल में – स्त्रियाँ पर्दे के पीछे चली गईं। उन पर सामाजिक और धार्मिक बंधन कठोर हुए। भारत में पर्दा प्रथा का चलन प्राचीन काल से नहीं था, बल्कि इसका प्रभाव मध्यकालीन युग में अधिक दिखाई देता है। विशेषकर मुगलों के आगमन के साथ ही इस प्रथा ने समाज में गहरी जड़ें जमाईं। भारतीय समाज मूलतः उदार और खुला था, जहाँ स्त्रियाँ यज्ञ, सभा और सामाजिक कार्यों में भाग लेती थीं। परंतु मुगल आक्रमणों के बाद महिलाओं की सुरक्षा और अस्मिता को बचाने के लिए उन्हें घर की चारदीवारी में सीमित किया जाने लगा। धीरे–धीरे यह प्रथा सामाजिक परंपरा का रूप ले ली। मुगल शासकों के महलों में स्त्रियाँ घूँघट और परदे में रहती थीं। शाही स्त्रियाँ हरम में रहतीं और आम स्त्रियों को भी परदे में रहने को सामाजिक मर्यादा मान लिया गया। इस प्रकार पर्दा स्त्रियों की इज्जत और सम्मान का प्रतीक समझा जाने लगा। हालाँकि, इसका परिणाम यह हुआ कि स्त्रियाँ शिक्षा, स्वतंत्रता और सामाजिक जीवन से दूर होती चली गईं। कुल मिलाकर, यह कहा जा सकता है कि मुगलों के आगमन से पर्दा प्रथा ने भारत में संगठित रूप लिया और धीरे–धीरे भारतीय समाज में गहराई से स्थापित हो गई। यह प्रथा एक ओर सुरक्षा का उपाय थी, तो दूसरी ओर स्त्रियों की स्वतंत्रता पर अंकुश का कारण भी बनी।

आधुनिक युग में – स्त्री–शिक्षा, विधवा–पुनर्विवाह, सती–प्रथा–निवारण जैसे आंदोलनों से नई चेतना का संचार हुआ। द्वितीय विश्व युद्ध (1939–1945) ने नारी जीवन में क्रांतिकारी परिवर्तन ला दिया। पुरुषों के मोर्चे पर चले जाने से महिलाओं ने घर–परिवार संभालने के साथ–साथ कारखानों, अस्पतालों, संचार सेवाओं और सेना में भी महत्वपूर्ण योगदान दिया। उन्होंने हथियार, गोला–बारूद, विमान और टैंकों के निर्माण में भाग लिया। अमेरिका में 'रोजी द रिवेटर' महिलाओं की मेहनत और आत्मनिर्भरता का प्रतीक बनी। स्वास्थ्य सेवाओं में महिलाओं ने नर्स, डॉक्टर और स्वैच्छिक कार्यकर्ता बनकर घायल सैनिकों का उपचार किया। सोवियत संघ में महिला पायलटों का 'नाइट विचेस' दस्ता जर्मन सेना के लिए भय का कारण बना। खुफिया कार्यों में भी महिलाओं ने साहस दिखाया और गुप्त सूचनाएँ पहुँचाकर युद्ध की दिशा प्रभावित की। भारतीय परिप्रेक्ष्य में नेताजी सुभाषचंद्र

बोस की आजाद हिन्द फौज की 'रानी झाँसी रेजिमेंट' का नेतृत्व कैप्टन लक्ष्मी सहगल ने किया, जिसने भारतीय नारी की शक्ति का परिचय कराया। यह युद्ध स्त्री चेतना और आत्मनिर्भरता का नया अध्याय बना। महिलाओं ने सिद्ध किया कि वे केवल परिवार तक सीमित नहीं, बल्कि राष्ट्र और समाज निर्माण में समान भागीदार हैं। यही योगदान आधुनिक युग में नारी सशक्तिकरण की नींव साबित हुआ।

वर्तमान समय में – स्त्री विमर्श शिक्षा, साहित्य, राजनीति, विज्ञान, प्रौद्योगिकी, और अर्थव्यवस्था तक फैल चुका है। 21वीं सदी नारी सशक्तिकरण की सदी कही जा सकती है। इस युग में महिलाओं ने हर क्षेत्र में अपनी प्रतिभा का लोहा मनवाया है। शिक्षा के क्षेत्र में लड़कियों की साक्षरता दर बढ़ी है, वे विज्ञान, तकनीक, चिकित्सा, कानून, राजनीति और खेलों में अग्रणी बन रही हैं। आज की नारी केवल गृहिणी नहीं, बल्कि वैज्ञानिक, पायलट, सैनिक, उद्योगपति, खिलाड़ी, लेखक और प्रशासक के रूप में राष्ट्र निर्माण में सक्रिय भूमिका निभा रही है। राजनीति में राष्ट्रपति प्रतिभा पाटिल, द्रोपती मुर्मू, वित्त मंत्री निर्मला सीतारमण, विदेश मंत्री सुषमा स्वराज जैसी महिलाओं ने उच्च पदों पर आसीन होकर उदाहरण प्रस्तुत किया। खेलों में पी.वी. सिंधु, मेरी कॉम और मिताली राज ने विश्व पटल पर भारत का गौरव बढ़ाया। कॉर्पोरेट क्षेत्र में इंद्रा नूयी जैसी महिलाएँ वैश्विक कंपनियों का नेतृत्व कर रही हैं। साहित्य और कला में अनामिका, किरण देसाई, मन्नू भंडारी, निर्मला पुतुल जैसी रचनाकाराएँ स्त्री विमर्श और सामाजिक सरोकारों को नई दिशा दे रही हैं। 21वीं सदी की नारी आत्मनिर्भर, स्वाभिमानी और अधिकार सजग है। उसने साबित किया है कि राष्ट्र की प्रगति में उसका योगदान पुरुषों से कम नहीं, बल्कि कई बार उनसे अधिक प्रेरणादायक है।

समकालीन चुनौतियाँ –

समान अवसर का अभाव – शिक्षा, वेतन और नेतृत्व में अब भी लैंगिक अंतर है।

सामाजिक हिंसा और भेदभाव – दहेज, घरेलू हिंसा, कार्यस्थल पर उत्पीड़न आज भी बड़ी समस्या है।

मानसिकता का प्रश्न – तकनीकी प्रगति के बावजूद स्त्री के प्रति दृष्टिकोण में परिवर्तन धीमा है।

राजनीतिक विडंबना – आज के दौर में राजनीति समाज का महत्वपूर्ण स्तंभ है, परंतु विडंबना यह है कि वर्तमान समय में राजनीतिक नेतृत्व में कमी स्पष्ट दिखाई देने लगी है। राजनीतिक नेतृत्व का अर्थ केवल सत्ता प्राप्ति नहीं है, बल्कि जनकल्याण, नैतिकता, ईमानदारी और दूरदर्शिता के साथ समाज को दिशा देना भी है। परंतु वर्तमान समय में अनेक कारणों से यह नेतृत्व कमजोर प्रतीत हो रहा है।

स्त्री–विमर्श के उद्देश्य–

- स्त्री की स्वतंत्र पहचान को स्थापित करना।
- निर्णय–निर्माण में स्त्रियों की समान भागीदारी सुनिश्चित करना।
- आर्थिक और सामाजिक स्तर पर सशक्तिकरण को बढ़ावा देना।
- साहित्य और संस्कृति में स्त्री के अनकहे अनुभवों को अभिव्यक्ति देना।

समाधान और आगे की राह –

गुणवत्तापूर्ण शिक्षा – जो केवल साक्षरता नहीं, बल्कि आत्मनिर्भरता दे।

कानूनी जागरूकता – अधिकारों और कानूनों की सही जानकारी मिलना।

पुरुषों की भागीदारी – स्त्री–विमर्श को केवल स्त्रियों तक सीमित न रखकर, पुरुषों को भी इस बदलाव

का सहयात्री बनाना।

साहित्य और मीडिया का योगदान – नारी के सकारात्मक और प्रेरक चित्रण को बढ़ावा देना। स्त्री–विमर्श का अंतिम उद्देश्य स्त्री को पुरुष के समकक्ष खड़ा करना नहीं, बल्कि मानवता के समग्र विकास को संभव बनाना है। जब स्त्री सशक्त होगी, तभी समाज और राष्ट्र सशक्त होंगे। इसलिए आज के युग में स्त्री–विमर्श केवल आवश्यकता ही नहीं, बल्कि सांस्कृतिक पुनर्जागरण की दिशा में अनिवार्य कदम है। 21वीं सदी की कहानियों और उपन्यासों में स्त्री को केवल करुणा या त्याग की मूर्ति के रूप में नहीं, बल्कि अपनी इच्छा, स्वप्न और अधिकारों के लिए संघर्ष करने वाली सशक्त इकाई के रूप में चित्रित किया गया है। अब स्त्री का संघर्ष केवल घर–परिवार के दायरे तक सीमित नहीं रहा, बल्कि कार्यक्षेत्र, राजनीति, शिक्षा, सामाजिक न्याय, यौनिकता और आत्मसम्मान तक फैला है। आधुनिक कथा–साहित्य में स्त्री का स्वरूप बहुआयामी है– वह प्रेम करती है, विरोध करती है, विद्रोह करती है और अपनी राह स्वयं चुनती है। 21वीं सदी की नारी अधिक सजग, आत्मनिर्भर और संघर्षशील है। वह अपने अस्तित्व को लेकर गंभीर है और हर प्रकार के अन्याय का विरोध करती है। पारिवारिक परंपराओं से इतर अपनी स्वतंत्र पहचान बनाना। शिक्षा, राजनीति, विज्ञान, साहित्य, कला और व्यापार में सक्रिय भागीदारी। यौनिकता, समानता और अधिकारों पर खुला विमर्श।

स्त्री के अधिकार पर साहित्य की बात करती चर्चित कवयित्री अनामिका लिखती हैं–

"वह लड़की जो पत्थर फेंक रही है, पत्थर ही नहीं फेंक रही, सदियों के मौन को तोड़ रही है।" इस कविता में नारी के विद्रोही स्वर और उसकी आत्मशक्ति का स्पष्ट चित्रण है। वह केवल अन्याय के खिलाफ खड़ी नहीं होती बल्कि अपने अस्तित्व की घोषणा करती है।

2. प्रमुख कथाकार और उनकी दृष्टि –

अनामिका 21वीं सदी की सबसे महत्वपूर्ण कवयित्री और कथाकारों में से हैं।

कृतियाँ : दूदधूल, टोकरी में दिगंत, पत्थर फेंक रही है लड़की। उनकी रचनाओं में स्त्री अपने अस्तित्व को परिभाषित करती है और समाज के पितृसत्तात्मक ढाँचे को चुनौती देती है।

"स्त्री होना दोष नहीं, दोष है चुप रह जाना।"

कविता की ये पंक्ति स्त्री की सक्रियता और प्रतिरोध को प्रेरित करती है। यह स्त्री विमर्श का केंद्रीय विचार है कि स्त्री को मौन तोड़ना होगा। अनामिका 21वीं सदी की महत्वपूर्ण कथाकार और कवयित्री हैं। उनकी रचनाओं में स्त्री विमर्श, नारी की मुक्ति, और जीवन की विडंबनाओं का मार्मिक चित्रण है।

कहानी और उपन्यास – दूदधूल, टोकरी में दिगंत, पत्थर फेंक रही है लड़की में स्त्री अपने अस्तित्व की तलाश करती है। वे स्त्री को परंपरा के घेरे से निकालकर समकालीन जीवन की जटिलताओं में रखती हैं।

अनामिका की रचनाएँ और स्त्री विमर्श – अनामिका की कविताएँ स्त्री जीवन के गहरे अनुभवों, लोक संवेदनाओं और संघर्षों को स्वर देती हैं।

कविता : ढोलक :

''ढोलक की थाप पर
सुनाई देती है सास, बहू और बिटिया की अनकही कथाएँ।''

यह कविता स्त्री के तीन पीढ़ियों के जीवन अनुभव को एक साथ सामने रखती है। ढोलक केवल वाद्य

नहीं, बल्कि स्त्रियों के इतिहास का दस्तावेज है।

कविता : बीजाक्षर

"बीज हूँ मैं, दबा दो मिट्टी में
मैं फिर भी फूट आऊँगी।"

यह पंक्तियाँ स्त्री की जिजीविषा और पुनर्जन्म की आकांक्षा का प्रतीक हैं।

कविता : टोकरी में दिगंत

"मेरे आँचल की टोकरी में
आकाश का छोर भी है
और धरती की नमी भी।"

मन्नू भंडारी का कथा-साहित्य – (हालांकि उनकी अधिकतर रचनाएँ 20वीं सदी की हैं) 21वीं सदी में भी प्रासंगिक है। आपका बंटी, महाभोज जैसे उपन्यासों में स्त्री के मनोविज्ञान, उसके अकेलेपन और विद्रोह को सशक्त रूप से व्यक्त किया गया है।

21वीं सदी में भी मन्नू भंडारी की रचनाएँ नई पीढ़ी को प्रेरित करती हैं। मन्नू भंडारी का साहित्य यथार्थवादी स्त्री छवि प्रस्तुत करता है।

उपन्यास : आपका बंटी, महाभोज।

उनकी कहानियों में स्त्री का मनोविज्ञान, उसकी विवशता और विद्रोह का सशक्त चित्रण है। आपका बंटी में बंटी का चरित्र माँ–बाप के टूटते रिश्तों के बीच संघर्षशील स्त्री की स्थिति को गहराई से दिखाता है। मन्नू भंडारी ने स्त्री को केवल परिवार की धुरी न मानकर उसकी इच्छाओं, आकांक्षाओं और भावनाओं को स्वतंत्र रूप से अभिव्यक्त किया। जो स्त्री की संवेदनशीलता और सृजनशीलता को प्रकट करती हैं।

मन्नू भंडारी और स्त्री विमर्श – मन्नू भंडारी के उपन्यास और कहानियाँ स्त्री की आंतरिक व्यथा और संघर्ष की सशक्त गवाह हैं। उपन्यास (आपका बंटी) में–

"बंटी की आँखों में बार–बार वही प्रश्न उभर आता है– क्यों?"

इस उपन्यास में मन्नू भंडारी ने तलाक के बाद बच्चों पर पड़ने वाले मानसिक आघात को गहराई से चित्रित किया है। नायिका शकुंतला का जीवन संघर्ष स्त्री की अस्मिता और अस्तित्व की खोज को सामने रखता है।

कहानी : (त्रिशंकु) "स्त्री का जीवन हमेशा दो ध्रुवों के बीच झूलता है– घर और समाज।" यह कहानी स्त्री की द्वंद्वात्मक स्थिति और उसकी स्वतंत्रता की खोज को उजागर करती है। अमृता प्रीतम की कहानियों और उपन्यासों में स्त्री की संवेदनाओं और उसके अधिकारों के लिए संघर्ष का चित्रण है। पिंजर में विभाजनकालीन स्त्री की त्रासदी और उसके भीतर के प्रतिरोध को बखूबी दिखाया गया है। उनकी कविताएँ और कहानियाँ आज भी स्त्री को अपने जीवन को पुनः परिभाषित करने का साहस देती हैं। अमृता प्रीतम की रचनाओं में स्त्री की पीड़ा, प्रेम और स्वतंत्रता की चाह का अद्‌भुत चित्रण है।

उपन्यास – पिंजर। इसमें विभाजनकालीन स्त्री की त्रासदी और उसके भीतर के प्रतिरोध को बखूबी दिखाया गया है।

"आज फिर दिल ने एक तमन्ना की,
आज फिर दिल को हमने समझाया।"

अमृता प्रीतम की कविताएँ स्त्री के हृदय की कोमलता और उसकी आत्मसंयम की गाथा कहती हैं। वह स्त्री के दर्द को वैश्विक पीड़ा में बदल देती हैं। अमृता प्रीतम ने स्त्री विमर्श को नई ऊँचाइयाँ दीं। उन्होंने प्रेम, पीड़ा, युद्ध और विस्थापन के अनुभवों को स्त्री दृष्टि से देखा।

कविता : मैं तैनू फिर मिलांगी

"मैं तैनू फिर मिलांगी
कहाँ, किस रूप में यह नहीं कह सकती।"

यह कविता प्रेम और अस्तित्व की अमरता का प्रतीक है। अमृता प्रीतम की स्त्री यहाँ प्रेम में खोई हुई नहीं, बल्कि अपनी चेतना के साथ उपस्थित है।

उपन्यास पिंजर में "पूरो ने अपने चेहरे को आईने में देखा– वह चेहरा उसका नहीं था।" 'पिंजर' विभाजन की त्रासदी और स्त्री के टूटे हुए अस्तित्व का करुण चित्रण है। पूरो का चरित्र स्त्री की पीड़ा के साथ–साथ उसकी असाधारण शक्ति का प्रतीक है।

3. **समकालीन कथाकार और स्त्री की नई छवि** – 21 वीं सदी में हिंदी साहित्य में कई नई कथाकार सामने आई हैं, जिनकी कहानियाँ स्त्री की बदलती सामाजिक स्थिति को प्रतिबिंबित करती हैं। 21वीं सदी में कई नई लेखिकाएँ सामने आईं, जिन्होंने नारी के जीवन को नई दृष्टि से देखा। जैसे–

मधु कांकरिया – कस्तूरी कुंडल बसै में स्त्री के अंर्तद्वंद्व और आध्यात्मिक यात्रा का चित्रण।

चित्रा मुद्गल – आवाँ, पोस्ट बॉक्स नं. 203, नाला सोपारा जैसी कृतियाँ महानगरीय स्त्री के जीवन को सामने लाती हैं।

मृदुला गर्ग, उषा प्रियंवदा, सुषम बेदी – स्त्री के मन की सूक्ष्मता, यौनिकता, संबंधों की जटिलताओं और उसकी पहचान पर गहन लेखन करती हैं ।

मृदुला गर्ग – स्त्री के मनोविज्ञान और यौनिकता पर बेबाक लेखन।

उषा प्रियंवदा – प्रवासी जीवन और स्त्री की भावनात्मक चुनौतियाँ।

सुषम बेदी – भारतीय स्त्री का वैश्विक संदर्भों में संघर्ष।

4. **आलोचकों की दृष्टि** – स्त्री विमर्श पर आलोचक स्पष्ट मानते हैं कि 21वीं सदी का साहित्य नारी को उसके संपूर्ण रूप में प्रस्तुत करता है, वरिष्ठ आलोचक नामवर सिंह के अनुसार, "आधुनिक साहित्य में स्त्री का स्वर ही आधुनिकता का स्वर है।" तो विजयदेव नारायण साही कहते हैं– "स्त्री की चेतना और संघर्ष साहित्य को नया आयाम देता है।

5. **21वीं सदी के कथा–साहित्य की विशेषताएँ** –

स्वतंत्रता और आत्मबोध – स्त्री अपनी आवाज बुलंद करती है।

नई विषयवस्तु – आत्मनिर्भरता, अंतरराष्ट्रीय प्रवास, लिव–इन रिलेशन, जेंडर इक्वैलिटी।

भाषा और शिल्प – अधिक संवादप्रधान, मनोवैज्ञानिक गहराई और यथार्थवादी चित्रण।

समकालीन मुद्दे – घरेलू हिंसा, कार्यस्थल पर यौन शोषण, LGBTQ+ अधिकार, नारी देह की राजनीति।

21 वीं सदी के लेखक और कवयित्रियाँ स्त्री विमर्श को केवल शोषण की कथा तक सीमित नहीं रखते। वे स्त्री की चेतना, आत्मनिर्भरता और सृजनशीलता को सामने लाते हैं। अनामिका, मन्नू भंडारी और अमृता प्रीतम की रचनाएँ आज भी प्रासंगिक हैं और पाठकों को स्त्री के जीवन संघर्ष और उसकी शक्ति को समझने की दृष्टि देती हैं। समकालीन कथाओं में स्त्री केवल दुख सहने वाली नहीं, बल्कि अपने निर्णय लेने वाली, कभी–कभी विद्रोही, कभी–कभी अकेली पर आत्मनिर्भर है। वह समाज से संवाद करती है और अपनी राह स्वयं चुनती है। 21वीं सदी का कथा–साहित्य स्त्री के जीवन की विविध परतों को उजागर करता है। अब वह केवल करुणा या बलिदान का प्रतीक नहीं, बल्कि संघर्ष, साहस, निर्णय और परिवर्तन का प्रतीक है। यह साहित्य स्त्री को "वस्तु" से "विषय" में परिवर्तित करता है। यह शोध निबंध यह प्रमाणित करता है कि नारी अब साहित्य की पात्र मात्र नहीं, बल्कि रचना की रचयिता भी है। नारी के विद्रोही स्वर और उसकी आत्मशक्ति का स्पष्ट चित्रण है। स्त्री केवल अन्याय के खिलाफ खड़ी नहीं होती बल्कि अपने अस्तित्व की घोषणा करती है।

संदर्भ सूची :

1. अनामिका, पत्थर फेंक रही है लड़की, राजकमल प्रकाशन।
2. अनामिका, ढोलक, राजकमल प्रकाशन, पृ. 21
3. अनामिका, बीजाक्षर, वाणी प्रकाशन, पृ. 15
4. अनामिका, टोकरी में दिगंत, साहित्य अकादमी प्रकाशन, पृ. 33
5. मन्नू भंडारी, आपका बंटी, राजकमल प्रकाशन।
6. मन्नू भंडारी, महाभोज, वाणी प्रकाशन।
7. मन्नू भंडारी, आपका बंटी, राजकमल प्रकाशन।
8. मन्नू भंडारी, त्रिशंकु, पृ. 45
9. अमृता प्रीतम, पिंजर, हिन्दी साहित्य अकादमी।
10. अमृता प्रीतम, काव्य संग्रह, पृ. 12
11. अमृता प्रीतम, पिंजर, पृ. 78
12. चित्रा मुद्गल, आवाँ, वाणी प्रकाशन।
13. मधु कांकरिया, कस्तूरी कुंडल बसै, राजकमल प्रकाशन।

पता

रुक्मिणी विहार कॉलोनी, कोतरा रोड, रायगढ़ छत्तीसगढ़, पिनकोड – 496001

मोबाइल – 9827466891

ई–मेल – sushila890.sahu@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Sept. 2025 Page No. : 58-65

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

समकालीन साहित्य में ग्रामीण विमर्श

डॉ० कैलाशचंद्र शर्मा 'शंकी'

दादरी, हरियाणा।

शोध सार- (Abstract) :-

समकालीन भारतीय साहित्य शहरी और ग्रामीण चेतना के बीच उपस्थित अंतःक्रिया, संघर्ष और सामंजस्य की प्रक्रिया को प्रतिबिंबित करता है। शहरी चेतना जहाँ चमचमाती जिंदगी, विदेशी परिधानों को अपनाना या वैश्वीकरण, उपभोक्तावाद, औद्योगिकीकरण और तकनीकी प्रगति से निर्मित है, वहीं ग्रामीण चेतना, एक साथ बैठना–उठना, मिलजुल कर काम करना या सामुदायिकता, पूर्वजों से चली आ रही परंपरा, रीति–रिवाज, मान्यताएँ, जीवन–शैली, और प्रकृति–केन्द्रित जीवन मूल्यों पर आधारित– जिन्हें ग्रामीण समाज पीढ़ी–दर–पीढ़ी अपनाता और आगे बढ़ाता है, पर आधारित रहती है। भारत के विभिन्न साहित्यों में इन दोनों चेतनाओं का परस्पर संवाद एक नई दृष्टि प्रदान करता है, जो भारतीय समाज के बदलते स्वरूप और सांस्कृतिक संक्रमण को गहराई से दर्शाता है। विशेष रूप से, कथा–साहित्य में यह विमर्श स्पष्ट रूप से उभरता है, जहाँ पात्रों की मानसिकता, कथानक की संरचना और सामाजिक संबंधों में शहरी–ग्रामीण अनुभवों का सम्मिलन दिखाई देता है। इस प्रक्रिया ने "संकर चेतना" की अवधारणा को जन्म दिया है, जो परंपरा और आधुनिकता, स्थानीय और वैश्विक दृष्टिकोण के बीच संतुलन स्थापित करती है। इस शोध–पत्र का उद्देश्य इन्हीं परिवर्तनों का विश्लेषण करना तथा यह दिखाना है कि भारतीय साहित्य किस प्रकार सामाजिक यथार्थ, सांस्कृतिक विविधता और मूल्यगत बदलावों को अभिव्यक्त करता है।

मुख्य शब्द (Keywords) : शहरी चेतना, ग्रामीण चेतना, तुलनात्मक अध्ययन, सांस्कृतिक द्वंद्व, वैश्वीकरण, संकर चेतना, समकालीन साहित्य, भारतीय कथा–साहित्य।

प्रस्तावना :

भारतीय साहित्य अपने व्यापक स्वरूप में केवल कलात्मक अभिव्यक्ति का माध्यम नहीं है, बल्कि यह समाज की सांस्कृतिक चेतना, ऐतिहासिक अनुभव और सामूहिक स्मृति का जीवंत दर्पण भी है। विशेषकर कथा–साहित्य, भारतीय समाज की गत्यात्मकता, विरोधाभासों और बदलती जीवन–दृष्टियों को अभिव्यक्त करने का सशक्त साधन रहा है। यहाँ शहरी और ग्रामीण चेतना का विमर्श अत्यंत महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि यही दोनों धाराएँ मिलकर भारतीय समाज के सांस्कृतिक और सामाजिक स्वरूप का निर्माण करती हैं।

भारतीय ग्रामीण चेतना मूलतः परंपरा, सामुदायिकता और प्रकृति–केंद्रित जीवन–दृष्टि पर आधारित रही है। गाँव का जीवन सामाजिक एकता, सहयोग और साझा श्रम पर टिका हुआ है, शहरों की सोच और

जीवन–शैली पर कारखानों और उद्योगों का बड़ा असर पड़ा है। लोग अब ज़्यादा से ज्यादा चीजें खरीदने और इस्तेमाल करने लगे हैं। साथ ही, दूर–दराज के देशों और संस्कृतियों से जुड़ाव बढ़ने से नए–नए विचार और तौर–तरीके अपनाए जा रहे हैं। इसी से शहरी चेतना यानी शहर की सोच आधुनिक मूल्यों और जीवन–शैली को सामने लाती है। इन दोनों चेतनाओं के बीच का संवाद, टकराव और समन्वय ही साहित्य को उसकी गहराई और विविधता प्रदान करता है। आज के समय में वैश्वीकरण, लोगों का पलायन (प्रवासन) और नई तकनीक ने हमारी सोच को और जटिल बना दिया है। अब साहित्य में शहर का अनुभव केवल आधुनिक रूप में नहीं दिखता और न ही गाँव का जीवन सिर्फ पुरानी परंपराओं तक सीमित रहता है। इन दोनों के मेल से एक नई तरह की 'मिश्रित चेतना' पैदा हुई है, जिसने भारतीय कहानी और साहित्य को नए दृष्टिकोण और कई स्तर दिए हैं।

शोध का उद्देश्य :

अतः इस शोध का उद्देश्य शहरी और ग्रामीण चेतना के साहित्यिक आयामों का तुलनात्मक अध्ययन करते हुए यह समझना है कि समकालीन भारतीय साहित्य में शहरी और ग्रामीण जीवन–दृष्टि कैसे दिखाई देती है। इसमें देखा जाएगा कि शहरी जीवन में आधुनिकता, तकनीक और वैश्वीकरण के कारण व्यक्तिवाद, प्रतिस्पर्धा और उपभोक्तावाद बढ़ता है, जबकि ग्रामीण जीवन में सामूहिकता, परंपरा और स्थानीय संस्कृति का महत्व अधिक रहता है। तथा इन दोनों जीवन–दृष्टियों के बीच टकराव और मेल–जोल से एक नई "संकर चेतना" उभरती है, जो साहित्य में नई कहानियों, पात्रों और विषयों को जन्म देती है। इस तरह यह शोध बताएगा कि साहित्य कैसे समाज की वास्तविकताओं और बदलावों को दिखाता है।

शहरी चेतना (Urban Consciousness) :

भारतीय साहित्य में शहरी चेतना एक महत्त्वपूर्ण विमर्श–क्षेत्र है, क्योंकि यह आधुनिकता, औद्योगिकीकरण और वैश्वीकरण की प्रक्रियाओं से गहराई से प्रभावित रही है। शहरी समाज की संरचना व्यक्तिवाद, प्रतिस्पर्धा और तेज जीवन–गति पर आधारित होती है, जहाँ व्यक्ति अपनी पहचान, स्वतंत्रता और सामाजिक प्रतिष्ठा की खोज में निरंतर प्रयत्नशील दिखाई देता है।

साहित्यिक परिप्रेक्ष्य में शहरी चेतना उन जटिलताओं को उद्घाटित करती है, जिनका सामना आधुनिक मनुष्य करता है। महानगरीय जीवन का शोर, व्यावसायिक दबाव, उपभोक्तावाद और अकेलापन – ये सभी तत्व शहरी जीवन के साथ–साथ साहित्य का भी हिस्सा बनते हैं। परिणामस्वरूप, कथानक और पात्रों में आत्म–संघर्ष, अस्तित्वगत संकट और पहचान की बेचैनी जैसी प्रवृत्तियाँ स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती हैं।

समकालीन भारतीय कथा–साहित्य में शहरी चेतना अनेक रूपों में प्रकट होती है। अरुंधति रॉय, अमिताव घोष और चेतन भगत जैसे लेखकों ने अपनी कृतियों में महानगरीय जीवन की तीव्रता, बहुस्तरीय संबंधों और वैश्विक प्रभावों को चित्रित किया है। इन कृतियों में पात्र अक्सर पूँजीवादी समाज की चुनौतियों, तकनीकी परिवर्तनों और नैतिक दुविधाओं से जूझते नजर आते हैं।

सांस्कृतिक स्तर पर शहरी चेतना बहुसांस्कृतिक संपर्क और वैश्विक अनुभवों को आत्मसात करती है। यहाँ पारंपरिक मूल्य और आधुनिक दृष्टिकोण साथ–साथ मौजूद रहते हैं, किंतु इनके बीच संतुलन बनाए रखना प्रायः कठिन हो जाता है। यही द्वंद्व शहरी साहित्य को मनोवैज्ञानिक गहराई और वैचारिक तीव्रता प्रदान करता है।

अतः कहा जा सकता है कि शहरी चेतना भारतीय साहित्य में केवल महानगरीय जीवन का चित्रण भर नहीं है, बल्कि यह उस मानसिक, सामाजिक और सांस्कृतिक संघर्ष का प्रतिनिधित्व करती है, जो आधुनिक मनुष्य के अस्तित्व का अनिवार्य हिस्सा बन चुका है।

ग्रामीण चेतना (Rural Consciousness) :

भारतीय साहित्य की धारा में ग्रामीण चेतना का स्थान अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। यह चेतना भारत के गाँव की जड़ों से जुड़ी हुई है, जहाँ प्रकृति, सामूहिकता और परंपरा जीवन के मूल आधार माने जाते हैं। गाँव के लोगो का जीवन सीधे व भोले भाले, नैतिक मूल्यों से संपन्न और मिलनसार सहयोग पर आधारित होता है। यही कारण है कि ग्रामीण साहित्य में मानवीय संवेदना, परिश्रम, संघर्ष और सामाजिक संबंधों की गहराई प्रमुख रूप से सामने आती है।

साहित्यिक दृष्टि से ग्रामीण चेतना न केवल कृषि–आधारित जीवन को दर्शाती है, बल्कि उस संस्कृति को भी संरक्षित करती है, जिसमें लोकगीत, लोककथाएँ, धार्मिक अनुष्ठान और पारंपरिक कला–रूप गहराई से जुड़े हुए हैं। फणीश्वरनाथ रेणु, प्रेमचंद और महाश्वेता देवी जैसे लेखकों ने अपने साहित्य में गाँव की सामाजिक संरचना, किसानों के संघर्ष और सामुदायिक जीवन की भावनात्मक संवेदनाओं को उजागर किया है।

ग्रामीण चेतना का एक विशिष्ट पक्ष यह है कि यह व्यक्ति से अधिक समाज को प्राथमिकता देती है। यहाँ सामूहिक कल्याण, परंपरा का संरक्षण और नैतिक मूल्य जीवन के प्रमुख आधार बनते हैं। इस चेतना में प्रकृति के साथ मनुष्य का गहरा संबंध दिखाई देता है, जो साहित्य में खेत–खलिहान, ऋतु–परिवर्तन और ग्रामीण उत्सवों के चित्रण के रूप में परिलक्षित होता है।

समकालीन साहित्य में ग्रामीण चेतना अब स्थिर और स्थायी नहीं रही, बल्कि बदलते सामाजिक–आर्थिक परिदृश्यों के साथ इसमें परिवर्तन भी दिखाई देता है। प्रवासन, वैश्वीकरण और तकनीकी हस्तक्षेप ने गाँव की संरचना को प्रभावित किया है, किंतु इसके बावजूद ग्रामीण चेतना अपने मूल्यों और सांस्कृतिक पहचान को बनाए रखने के लिए सतत प्रयत्नशील है।

अतः ग्रामीण चेतना भारतीय साहित्य में केवल ग्रामीण जीवन का चित्रण नहीं है, बल्कि यह उस सांस्कृतिक आत्मा का प्रतिनिधित्व करती है, जो भारतीय समाज की जड़ों को आज भी मजबूत बनाए हुए है।

तुलनात्मक विश्लेषण (Comparative Analysis) :

शहरी और ग्रामीण चेतना के बीच का अंतर केवल जीवन–शैली का नहीं, बल्कि मूल्य, दृष्टिकोण और सांस्कृतिक आधार का भी है। शहरी समाज में व्यक्तिवाद, प्रतिस्पर्धा और व्यावसायिक महत्वाकांक्षा प्रमुख स्थान रखते हैं, जबकि ग्रामीण समाज सामूहिकता, परंपरा और नैतिक मूल्यों पर आधारित रहता है।

आर्थिक दृष्टि से, शहरी जीवन औद्योगिक ढाँचों और सेवा क्षेत्र पर निर्भर करता है, जहाँ पूँजी और तकनीक का प्रवाह अधिक होता है। इसके विपरीत, ग्रामीण अर्थव्यवस्था कृषि और उससे जुड़े पारंपरिक व्यवसायों पर आधारित रहती है, जहाँ श्रम और प्रकृति के संसाधन केंद्रीय भूमिका निभाते हैं।

सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में शहरी चेतना आधुनिकता, वैश्विक प्रभाव और बहुसांस्कृतिक संपर्क से प्रभावित रहती है, जबकि ग्रामीण चेतना लोककला, धार्मिक अनुष्ठानों और सांस्कृतिक विरासत के संरक्षण की ओर उन्मुख होती है। यही कारण है कि साहित्यिक कृतियों में शहरी पात्र अक्सर आत्म–संघर्ष, महत्वाकांक्षा और पहचान की

खोज में दिखाई देते हैं, जबकि ग्रामीण पात्र सामुदायिक उत्तरदायित्व, परंपरा और सांस्कृतिक जड़ों के प्रति समर्पित रूप में चित्रित होते हैं।

समकालीन साहित्य में यह विभाजन कथानक और पात्रों की मानसिकता में स्पष्ट झलकता है। शहरी कथानक तेज गति, जटिल घटनाओं और मनोवैज्ञानिक द्वंद्व से भरे होते हैं, जबकि ग्रामीण कथानक सामूहिक संघर्ष, परंपरा और जीवन की सरलता को उभारते हैं। प्रेमचंद, रेणु और महाश्वेता देवी की रचनाएँ इस द्वैत को सशक्त रूप से सामने लाती हैं। इस प्रकार, तुलनात्मक दृष्टि से कहा जा सकता है कि शहरी और ग्रामीण चेतना साहित्य में परस्पर विरोधी नहीं, बल्कि पूरक ध्रुव हैं। दोनों मिलकर भारतीय समाज और साहित्य की व्यापकता, विविधता और जटिलता को परिभाषित करते हैं।

सांस्कृतिक द्वंद्व (Cultural Conflict) :

भारतीय समाज में शहर और गाँव की सोच और जीवन–शैली के बीच अंतर होना स्वाभाविक है। यह फर्क सिर्फ इस बात तक सीमित नहीं है कि लोग कहाँ रहते हैं या उनकी आर्थिक स्थिति कैसी है। असली अंतर उनकी जीवन–दृष्टि, मूल्यों और सामाजिक व्यवहार में दिखाई देता है। शहरों में लोग तेज जीवन, प्रतिस्पर्धा और व्यक्तिगत उपलब्धियों पर ज्यादा ध्यान देते हैं, जबकि गाँवों में लोग परंपराओं, सामूहिकता और आपसी सहयोग को महत्व देते हैं। इसी वजह से शहरी और ग्रामीण चेतना के बीच सांस्कृतिक टकराव उभरता है।

शहरी चेतना में आधुनिकता, वैश्वीकरण और तकनीकी प्रगति के कारण व्यक्तिवाद, उपभोक्तावादी प्रवृत्तियाँ और प्रतिस्पर्धा प्रमुख हो जाती हैं। दूसरी ओर, ग्रामीण चेतना सामूहिकता, नैतिक परंपरा और स्थानीय संस्कृति के संरक्षण को प्राथमिकता देती है। यही अंतर सामाजिक व साहित्यिक विमर्श में टकराव और तनाव का कारण बनता है।

समकालीन साहित्य में यह द्वंद्व पात्रों के संवाद, कथानक और मानसिक संघर्षों के माध्यम से प्रकट होता है। शहरी पात्र जहाँ महत्वाकांक्षा और वैश्विक प्रभाव के दबाव में जीते हैं, वहीं ग्रामीण पात्र परंपरा और सामुदायिक उत्तरदायित्व से बंधे रहते हैं।

यह द्वंद्व केवल संघर्ष तक सीमित नहीं है, बल्कि इसके परिणामस्वरूप 'संकर चेतना' की संभावना भी जन्म लेती है। आधुनिक साहित्य ने दिखाया है कि शहरी और ग्रामीण मूल्यों के मेल से नई दृष्टि और अनुभवों की संभावनाएँ विकसित होती हैं। इस प्रकार सांस्कृतिक द्वंद्व भारतीय साहित्य को गहराई और व्यापकता प्रदान करता है।

वैश्वीकरण (Globalization) :

वैश्वीकरण का मतलब सिर्फ यह नहीं है कि देशों के बीच व्यापार या आर्थिक काम बढ़ गए हैं। यह एक ऐसी प्रक्रिया है, जिसने समाज, संस्कृति और राजनीतिदृ तीनों को नई तरह से बदलना शुरू कर दिया है।

इसका असर सिर्फ बाजार या पैसों तक सीमित नहीं रहा, बल्कि लोगों की सोच, उनके रहन–सहन, कला और साहित्य तक पहुँच गया है। भारतीय साहित्य भी इससे अछूता नहीं रहा। अब साहित्य की कहानियों, विषयों और लिखने के ढंग (शिल्प) में वैश्विक प्रभाव साफ दिखाई देता है। लेखक पहले सिर्फ स्थानीय मुद्दों तक सीमित रहते थे, लेकिन अब वे वैश्विक समस्याओं, आधुनिक जीवन की चुनौतियों और बदलती संवेदनाओं को भी अपनी रचनाओं में शामिल करने लगे हैं। इस तरह वैश्वीकरण ने भारतीय साहित्य को और गहरा, व्यापक

और बहुआयामी बना दिया है।

संतोष सारंग लेख 'उत्तर–आधुनिकता का लबादा ओढ़े आज का आम आदमी नगरीय तौर–तरीके अपनाने को आकुल है' में बताया है कि कैसे 'ठेठ देहाती जीवन मूल्यों पर चोट करती अपसंस्कृति..... खेत–खलिहानों व पगडंडियों तक में हो जाती है'– यह दर्शाता है कि पारंपरिक ग्रामीण व शहरी चेतना की सीमाएँ धुंधली हो रही हैं। परिणामस्वरूप शहरी और ग्रामीण चेतना के बीच की पारंपरिक सीमाएँ धीरे–धीरे धुंधली होती गई हैं।

आज के शहरी जीवन पर वैश्वीकरण का गहरा असर दिखाई देता है। शहरों में रहने वाले लोग अब पहले की तरह केवल अपनी जरूरतों तक सीमित नहीं रहते, बल्कि उनके जीवन का बड़ा हिस्सा उपभोक्तावाद यानि ज्यादा से ज्यादा चीजें खरीदने और इस्तेमाल करने की आदत से जुड़ गया है। साथ ही, हर व्यक्ति आगे बढ़ने और बेहतर बनने के लिए कड़ी प्रतिस्पर्धा में लगा रहता है। तकनीकी साधनों – जैसे मोबाइल, इंटरनेट और आधुनिक मशीनों पर निर्भरता भी बहुत बढ़ गई है। इसके अलावा, शहरों में अलग–अलग देशों और संस्कृतियों के लोग आपस में मिलते–जुलते हैं, जिससे बहुसांस्कृतिक संपर्क आम हो गया है। इन्हीं बदलावों का असर साहित्य पर भी पड़ा है। आधुनिक शहरी साहित्य में अक्सर तेजी से बदलती जिंदगी, महत्वाकांक्षा से भरे पात्र, और दुनिया भर में घट रही घटनाओं से जुड़े संघर्ष दिखाए जाते हैं। कहानियों का कथानक भी तेज गति वाला होता है, जिसमें पात्र अपनी इच्छाओं, सपनों और वैश्विक परिस्थितियों से जूझते हुए नजर आते हैं।

ग्रामीण समाज पर इसका प्रभाव द्विमुखी रहा है। एक ओर शिक्षा, संचार और बाजार ने नए अवसर और संसाधन उपलब्ध कराए, वहीं दूसरी ओर पारंपरिक जीवन–शैली, स्थानीय व्यवसाय और सांस्कृतिक पहचान को चुनौती भी मिली। अनेक साहित्यकारों ने अपनी रचनाओं में इन परिवर्तनों को गहराई से चित्रित किया है, जिससे ग्रामीण जीवन के भीतर उभरते तनाव और पुनर्संरचना स्पष्ट होती है।

साहित्यिक दृष्टि से वैश्वीकरण ने 'संकर चेतना' को और बल दिया है। शहरी ग्रामीण, स्थानीय वैश्विक तथा पारंपरिक आधुनिक अनुभव अब मिश्रित रूप में सामने आते हैं। यह प्रवृत्ति न केवल उपन्यास और कहानियों में बल्कि कविता, नाटक और डिजिटल साहित्यिक मंचों पर भी दिखाई देती है।

संकर चेतना (Hybrid Consciousness) :

जब दो बीज के मिश्रण से तीसरे बीज का निर्माण किया जाता है तो उसे हाईब्रीड कहते है लेकिन ये बीज कारगार या टिकाऊ नहीं होते हैं। ठीक इसी तरह एक शहरी व गाँव के आपसी मेल मिलाप से या पडोसी होने से या लडके की शादी शहर में होने से जब लडकी गाँव में रहने लगती है तो उन दोनो के विचारों से जीवन में जो बदलाव आते है उन्हें ही 'संकर चेतना' कहा जाता है। साधरण शब्दों में, गावों व शहर के रहन सहन, बोलचाल, खानपान, पहनना, ओढ़ना अदि से मिली–जुली जीवन शैली के रूप में 'संकर चेतना' को परिभाषित किया जा सकता है। भारतीय साहित्य में शहरी और ग्रामीण चेतना के बीच टकराव और संवाद से जो नई दृष्टि उभरती है, उसे ही 'संकर चेतना' कहा जा सकता है।

भारतीय साहित्य में शहरी और ग्रामीण चेतना के बीच निरंतर संवाद और टकराव से एक नई दृष्टि निर्मित होती है। यह दृष्टि न तो पूरी तरह शहरी जीवन की आधुनिकताओं तक सीमित है और न ही केवल ग्रामीण जीवन की परंपराओं तक बंधी हुई है। बल्कि यह दोनों की अंतःक्रिया से उत्पन्न एक मिश्रित चेतना है, जिसे

"संकर चेतना" कहा जा सकता है। उत्तर–औपनिवेशिक अध्ययन में होमी के. भाभा ने इस प्रकार की सांस्कृतिक संकरता (hybridity) को पहचानते हुए यह बताया है कि विभिन्न जीवन–दृष्टियों और सांस्कृतिक प्रभावों के मिलने से एक नई चेतना का उदय होता है। भारतीय कथा–साहित्य में भी यह संकर चेतना स्पष्ट रूप से दिखाई देती है, जो शहर और गाँव के अनुभवों को जोड़कर एक बहुस्तरीय साहित्यिक दृष्टिकोण प्रदान करती है।

यह अवधारणा बताती है कि अब अनुभव केवल एकरेखीय या स्थिर नहीं रहे, बल्कि विभिन्न स्तरों और परिप्रेक्ष्यों के मेल से विकसित हो रहे हैं। संकर चेतना के कारण समकालीन कथा साहित्य में पात्रों की मानसिकता और सामाजिक संबंध अधिक जटिल और बहुआयामी हो गए हैं। शहरी पात्र जहाँ वैश्विक संस्कृति, तकनीकी विकास और व्यक्तिवादी महत्वाकांक्षाओं से जूझते हैं, वहीं ग्रामीण पात्र परंपरा, सामुदायिक मूल्यों और सांस्कृतिक जड़ों को बचाए रखने के लिए संघर्षरत दिखाई देते हैं। साहित्यकार इन दोनों प्रवृत्तियों को एक साथ रखकर नए प्रकार का जीवन–दर्शन प्रस्तुत करते हैं।

इस चेतना का प्रभाव केवल पात्रों तक सीमित नहीं है, बल्कि कथानक और भाषा–शैली में भी दिखता है। वैश्विक अनुभवों और स्थानीय जीवन–स्थितियों का सम्मिलन रचनाओं को नई संवेदनशीलता और बहुस्तरीयता प्रदान करता है। उदाहरणस्वरूप, अमिताव घोष और अरुंधति रॉय जैसे लेखकों के उपन्यासों में स्थानीय और वैश्विक, आधुनिक और पारंपरिक दृष्टिकोण का अनूठा संगम मिलता है।

इस प्रकार, संकर चेतना भारतीय साहित्य को न केवल व्यापक आयाम देती है, बल्कि बहुसांस्कृतिक संवाद और नए मूल्यबोध की संभावनाओं को भी जन्म देती है। यह चेतना शहरी और ग्रामीण जीवन के बीच पुल का कार्य करती है तथा साहित्य को अधिक समकालीन और प्रासंगिक बनाती है।

समकालीन साहित्य (Contemporary Literature) :

समकालीन भारतीय साहित्य वर्तमान समाज का दर्पण है, जो इक्कीसवीं सदी के सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक परिवर्तनों को गहराई से प्रतिबिंबित करता है। वैश्वीकरण, प्रवासन, तकनीकी क्रांति और बहुसांस्कृतिक संपर्क ने इसकी विषयवस्तु और शिल्प दोनों को प्रभावित किया है। इस साहित्य में शहरी और ग्रामीण दोनों चेतनाओं की अभिव्यक्ति मिलती है, किन्तु अब इनके बीच की पारंपरिक रेखाएँ अधिक धुंधली और तरल हो चुकी हैं।

शहरी परिप्रेक्ष्य पर आधारित समकालीन कृतियाँ महानगरीय जीवन, पूँजीवाद, उपभोक्तावाद, सामाजिक प्रतिस्पर्धा और पहचान के संकट को गहराई से उद्घाटित करती हैं। चेतन भगत, अमिताव घोष, अरुंधति रॉय और गीतांजलि श्री जैसे लेखकों की रचनाएँ शहरी चेतना के भीतर छिपे संघर्ष और अवसरों को नए ढंग से प्रस्तुत करती हैं। इनके कथानक तीव्र गति, बहुस्तरीय पात्रों और वैश्विक विमर्श से जुड़े रहते हैं।

वहीं, ग्रामीण संदर्भ से लिखी गई कृतियाँ महाश्वेता देवी, उदय प्रकाश, विनोद कुमार शुक्ल और नीलिमा चौहान जैसे लेखकों के लेखन में दिखाई देती हैं। इन रचनाओं में भूमंडलीकरण के प्रभाव, प्रवासन की पीड़ा, सामाजिक असमानता और सांस्कृतिक संघर्ष के यथार्थपूर्ण चित्र अंकित हैं। ग्रामीण जीवन यहाँ केवल स्थिर परंपरा के रूप में नहीं, बल्कि संघर्षशील और परिवर्तनशील रूप में सामने आता है।

समकालीन साहित्य की सबसे महत्त्वपूर्ण प्रवृत्ति है 'संकर चेतना' – जिसमें शहरी–ग्रामीण अनुभव, पारंपरिक–आधुनिक मूल्य और स्थानीय–वैश्विक दृष्टिकोण एक साथ जुड़कर साहित्य को नई संवेदनशीलता

प्रदान करते हैं। यही कारण है कि आज का साहित्य न केवल यथार्थ का दर्पण है, बल्कि वह नए सांस्कृतिक संवाद और मूल्य निर्माण का सशक्त उपकरण भी बन चुका है।

भारतीय कथा-साहित्य (Indian Fiction) :

भारतीय कथा–साहित्य अपनी व्यापकता और विविधता में अद्वितीय है। इसकी परंपरा प्राचीन मौखिक लोककथाओं और दंतकथाओं से प्रारंभ होकर आधुनिक उपन्यासों और कहानियों तक फैली हुई है। यह साहित्य भारतीय समाज के बहुरंगी जीवन, सामाजिक संबंधों, सांस्कृतिक प्रवृत्तियों और समयानुसार बदलते हुए मूल्य–बोध का जीवंत दस्तावेज है।

उन्नीसवीं और बीसवीं शताब्दी में कथा–साहित्य ने सामाजिक यथार्थवाद, स्वतंत्रता आंदोलन, स्त्री–विमर्श, जातिगत असमानताओं और ग्रामीण जीवन की जटिलताओं को केंद्र में रखा। प्रेमचंद ने अपने लेखन में किसान और ग्रामीण समाज की पीड़ा को स्वर दिया, जबकि जैनेन्द्र कुमार, यशपाल और फणीश्वरनाथ रेणु जैसे लेखकों ने सामाजिक संघर्ष, राजनीतिक चेतना और लोक–संस्कृति की गहराइयों को साहित्यिक रूप प्रदान किया। इन लेखकों ने भारतीय कथा–साहित्य को यथार्थपरक और जनजीवन से जुड़ा हुआ स्वरूप दिया।

इक्कीसवीं सदी में कथा–साहित्य की विषयवस्तु और शैली दोनों में उल्लेखनीय परिवर्तन हुआ। अरुंधति रॉय, अमिताव घोष, झुम्पा लाहिड़ी, गीतांजलि श्री और चेतन भगत जैसे लेखकों ने शहरी जीवन की जटिलताओं, वैश्विक प्रवास, सांस्कृतिक संकरता, पहचान के संकट और राजनीतिक अस्थिरता को अपनी रचनाओं का विषय बनाया। इनके लेखन में न केवल आधुनिकता और वैश्वीकरण के प्रभाव झलकते हैं, बल्कि स्थानीयता और परंपरा के साथ भी गहरा संवाद स्थापित होता है।

समकालीन भारतीय कथा–साहित्य की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें शहरी और ग्रामीण अनुभव, पारंपरिक और आधुनिक मूल्य, तथा स्थानीय और वैश्विक दृष्टिकोण का सम्मिश्रण मिलता है। यही सम्मिश्रण 'संकर चेतना' की अवधारणा को स्पष्ट करता है, जो साहित्य को बहुस्तरीय और बहुआयामी स्वरूप प्रदान करता है। इस प्रकार भारतीय कथा–साहित्य केवल मनोरंजन का साधन नहीं, बल्कि सामाजिक चेतना, सांस्कृतिक विमर्श और ऐतिहासिक परिवर्तन का सशक्त माध्यम भी है।

निष्कर्ष (Conclusion) :

इस शोध से यह साफ दिखता है कि हमारे साहित्य में गाँव और शहर दोनों की दुनिया अलग–अलग तो हैं, लेकिन आपस में लगातार बात–चीत, टकराव और मेल–जोल चलती रहती है। शहर के लोग तेज–तेज भागते हैं, तकनीक और पैसा उनके जीवन का हिस्सा है, और पहचान, दिखावा व महत्वाकांक्षा और मुकाबले में उलझे रहते हैं। गाँव के लोग परंपरा, भाईचारा और प्रकृति के साथ जुड़ाव को ज्यादा महत्व देते हैं, लेकिन अब गाँव भी नए जमाने के असर और बदलाव से बदल रहा है। साहित्य सिर्फ यह नहीं दिखाता कि ये अलग हैं, बल्कि यह भी दिखाता है कि कहाँ मिलते हैं, कैसे एक–दूसरे को समझते हैं और नई राह बनाते हैं। इसी मिलन से जो नई सोच निकलती है, उसे हम "संकर चेतना" कहते हैं। यह चेतना गाँव और शहर, परंपरा और आधुनिकता, स्थानीय और वैश्विक अनुभव को जोड़कर नई कहानियाँ, नए पात्र और नए रंग पैदा करती है।

भविष्य में, डिजिटल कहानियाँ, प्रवासी लेखक और अलग–अलग संस्कृतियों का मेल इसे और भी मजेदार और जीवंत बनाएगा। यही कारण है कि शहरी और ग्रामीण जीवन का अध्ययन सिर्फ किताब में पढ़ने के लिए

नहीं, बल्कि हमारे बदलते समाज और हमारी संस्कृति को महसूस करने और समझने का असली तरीका है।

संदर्भ सूची :–

1. सिंह, नामवर. आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ (नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, 2009)
2. आचार्य, नंदकिशोर. आधुनिकता और उत्तर–आधुनिकता का साहित्यिक परिप्रेक्ष्य (नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन, 2010)
3. फणीश्वरनाथ रेणु. मैला आँचल (नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, 1954)
4. शर्मा, रामविलास. भारतीय साहित्य और संस्कृति की समस्या (नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, 1998)
5. त्रिपाठी, विश्वनाथ. समकालीन साहित्य और संस्कृति (नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, 2012)
6. सारंग, संतोष. "उत्तर–आधुनिकता का लबादा ओढ़े आज का आम आदमी नगरीय तौर–तरीके अपनाने को आकुल है।" आँच पत्रिका (2023), उपलब्ध : https://www.aanch.org (पहुंच की तारीख : 5 सितम्बर 2025)।
7. भाभा, होमी के. द लोकेशन ऑफ कल्चर (लंदन : रूटलेज, 1994)
8. वात्स, निधि. "वैश्वीकरण और भारतीय अनुभव : साहित्यिक निरूपण एवं अस्मिता–निर्माण का अध्ययन।" शोधकोश : दृश्य एवं प्रदर्शन कलाओं का जर्नल 4, संख्या 2 (दिसंबर 2023) : पृ. 1779–1788।

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Sept. 2025 Page No. : 66-71

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

सुशीला टाकभौरे के कथाओं की भाषागत प्रवृत्तियों की समीक्षा

प्रियंका प्रफुल दरवाड़े, शोधार्थी,
डॉ. सुमेध पी. नागदेवे, मार्गदर्शक,
हिंदी विभाग, डॉ. मधुकरराव वासनिक पी. डब्लू. एस.
कला, वाणिज्य एवं विज्ञान महाविद्यालय, कामठी रोड, नागपुर ४४००१४ (महाराष्ट्र)

शोध सारांश :-

डॉ. सुशीला टाकभौरे एक दलित साहित्यकार है। उनके साहित्य की भाषा का अध्ययन और विश्लेषण करते समय हमें यह ज्ञात होता है कि हिन्दी साहित्य के पारम्परिक लेखकों की भाषा एवं सुशीला जी के दलित साहित्य की भाषा में गहरी असमानता है। उनकी भाषा सर्वसाधारण, कम पढें–लिखे लोगों एवं पाठकों के समझ के अनुकूल होने के कारण सरल, स्पष्ट एवं सहज प्रतीत होती है। दलितों ने अपने जीवन में जिन दुखों, कष्टों, तिरस्कारों और वेदनाओं को भोगा है उन भोगी हुई यातनाओं का आक्रोश लावा बनकर प्रस्फुटित हुआ। इसी विद्रोह और आक्रामकता के कारण अपशब्द एवं गाली–गलौच वाली भाषा उनके साहित्य में प्रवेशित हुई। यही भाषा सुशीला जी के साहित्य में भी दिखाई पड़ती है। गरीब, निर्धन परिवार से होने कारण उनके परिवेश, वातावरण एवं क्षेत्र विशेष की स्थानीय एवं क्षेत्रीय बोली भाषा का प्रभाव भी उनके साहित्य में पड़ता हुआ नजर आता है। जो सामान्य जन की भाषा की स्वाभाविकता एवं वास्तविकता के निकट महसूस होती है। भाषा की यह स्वाभाविकता सुशीला टाकभौरे के साहित्य को अलग पहचान देती है।

संकेत बिन्दु : वैज्ञानिक दृष्टि, सामाजिक अवहेलना और तिरस्कार, विद्रोह का स्वर, सरल और सहज भाषा, असभ्य तथा अश्लील शब्दों का प्रयोग, स्थानीय एवं क्षेत्रीय भाषा।

आदिकाल से रीतिकाल तक हम देखते है कि हिन्दी साहित्य अवधी और ब्रजभाषा में ही लिखा गया। औद्योगिक क्रांति से अवधी और ब्रजभाषा के स्थान पर खड़ी बोली अस्तित्व में आई। आधुनिक काल में भारतेन्दु युग से खड़ी बोली का उद्‌भव हुआ। इस काल में खड़ी बोली आम लोगों की भाषा बनकर उभरी। साहित्य और पत्रकारिता के माध्यम से यह भाषा आम जन के निकटतम होती चली गयी। इस काल में भाषा दो धाराओं में बह रहीं थीं। राजा शिवप्रसाद सितारे हिन्द की अरबी–फारसी मिश्रित हिन्दी तथा राजा लक्ष्मण सिंह की संस्कृत निष्ठ हिन्दी के भाषिक विरोधी धाराओं को भारतेन्दु जी ने स्थिर करने का कार्य किया। उसी भाषा को व्याकरण सम्मत शुद्ध करके भाषा का परिष्कार एवं परिमार्जन महावीर प्रसाद द्विवेदी जी ने किया। प्रेमचंद आदर्शोन्मुख

यथार्थवाद के साहित्यकार थे। उनकी भाषा अपने आप में उन्हें आम लोगों से जोड़ती है। जो सरल, सहज और व्यावहारिक थी। वहीं भाषा अन्य साहित्यकारों ने भी अपनाई परंतु जब दलित साहित्य की ओर रुख करते है तो उनकी भाषा कहीं न कहीं उनकी पीड़ा, दर्द और छटपटाहट को व्यक्त करती है। उनके दमन, शोषण, उत्पीड़न से ऐसा लगता है वे अपनी भाषा के माध्यम से अपनी पीड़ा को व्यक्त कर रहें है। इसी परिपाठी के चलते हुए कई दलित साहित्यकारों की भाषा में रूखापन, आक्रोश, विरोध, निराशा एवं अपशब्दों का प्रयोग हुआ क्योंकि उनके भीतर पीड़ा, व्यथा और दर्द था। यही दर्द और पीड़ा दलित साहित्य के माध्यम से प्रकट हुई है। जिससे आक्रोश, विद्रोह, प्रतिरोध और रूखापन दिखाई देता है। साथ ही उनकी भाषा सरल व सहज महसूस होती है।

दलित साहित्य में डॉ. बाबासाहब आंबेडकर के विचारों का बीजारोपण होता दिखाई पड़ता है। इसी से उनकी वैज्ञानिक दृष्टि भी दिखाई पड़ती है। वैसे तो दलित साहित्य का इतिहास बहुत पुराना है। दलित साहित्य के कुछ अंश सिद्धों की रचनाओं में दिखाई पड़ते है। परंतु अनेक विद्वान 'सरस्वती' पत्रिका में प्रकाशित हीरा डोम की कविता 'अछूत की शिकायत' को प्रथम दलित कविता मानते है। और यही से दलित साहित्य की परंपरा को गतिशीलता मिली। ओमप्रकाश वाल्मीकि, सूरजपाल चौहान, मोहनदास नैमिशराय, रजत रानी मीनू, अनीता भारती जैसे दलित साहित्यकारों ने अपनी रचनाओं के माध्यम से जातिगत उत्पीडन, भेदभाव, छुआछुत के अनुभवों के यथार्थ को उजागर कर दलितों के लिए सामाजिक समानता और न्याय के मार्ग प्रशस्त किए।

दलित साहित्य दलितों पर होने वाले अन्याय, शोषण, उत्पीड़न और अत्याचारों की अभिव्यक्ति का साहित्य है। जहां उनका दर्द, पीड़ा उनके साथ होने वाली सामाजिक अवहेलना और तिरस्कार को उन्होंने अपनी भाषा के माध्यम से व्यक्त किया इसी कारण उनकी भाषा में आक्रोश एवं विद्रोह के स्वर गूंजते हुये प्रतीत होते है। इन स्वरों ने इस भाषा को और अधिक प्रभावित किया जो परंपरागत साहित्यिक एवं अलंकारिक भाषा से भिन्न थी। दलित साहित्य के माध्यम से अभिव्यक्त भाषा के प्रयोग और उसकी व्यापकता के विषय में ओमप्रकाश वाल्मीकि कहते है "युगों–युगों से प्रताड़ित, शोषित, साहित्यिक, संस्कृति से वंचित मानस जब स्वयं को साहित्य के साथ जोड़ता है। तो दलित साहित्य की निजता को पहचानने की अभिव्यक्ति बन जाता है। हाशिये पर कर दिये गए इस समूह की पीड़ा जब शब्द बनकर सामने आती है तो सामाजिकता की पराकाष्ठा होती है। सदियों से दबा आक्रोश शब्द की आग बनकर फूटता है। तब भाषा और कला की परिस्थितियाँ उसे सीमाबद्ध करने में असमर्थ हो जाती है।"[1] इसलिए हम देखते है दलित साहित्य की भाषा एवं और कला की परिस्थितियाँ उसे सीमाबद्ध नहीं कर सकती है। वे अपनी सीमाओं को लांघते हुए दिखाई देते है। अनेक स्थान पर वे अपशब्दों का प्रयोग करते भी दिखाई पड़ते है। उन शब्दों में भी आक्रोश के स्वर है।

प्रत्येक साहित्यकार की रचना प्रक्रिया में केवल वह अकेला नही होता उसके साथ उसका समाज, संस्कृति परिवेश और उनके संस्कार भी साहित्य में प्रवेशित होते है। अतः जब दलित साहित्यकारों ने साहित्य में प्रवेश किया तब उनके साथ गरीब दलित बस्तियों का परिवेश, गंदे वातावरण, अंधविश्वास, कुरीतियां, मैला ढ़ोने जैसी अमानवीय प्रथा, उनकी दर्दनाक स्थितियां, उनकी पीड़ा, व्यथा का प्रभाव भी उनके साहित्य में दिखाई पड़ा। इस कारण इनके साहित्य में असाहित्यिक और अपशब्दों का प्रयोग के साथ अश्लीलता का प्रयोग भी दिखाई पड़ता है। इसलिए आलोचकों ने असाहित्यिक एवं अश्लील साहित्य कहकर उसका खंडन किया।

ओमप्रकाश वाल्मीकि जी दलित साहित्यकारों के संदर्भ में कहते है "दलित जिस परिवेश में जीवन जीते हैं, वहाँ गंदी गलियों में नंग–धड़ंग बच्चे घूमते हैं, दूषित वातावरण है, जिसे पारम्परिक आलोचक नहीं जानते, उस परिवेश की भाषा को अश्लील कहना पूर्वाग्रह ही कहा जाएगा।"[2] दलित साहित्यकार की यही परिस्थितियां दलित साहित्य की वास्तविकता दर्शाती है। उनकी भाषा में आक्रोश और दृढ़ता नजर आती है। जो समाज में फैली बुराइयों को जड़ से उखाड़ना चाहती है।

सुशीला टाकभौरे की कथाओं में यह परिस्थितियाँ स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर हुई है। दलित सदियों से जातीय पीड़ा, सामाजिक अव्यवस्था और भेदभाव का दंश झेलते आए है। 'जन्मदिन' कहानी में सुशीला जी ने भंगी जाति के सफाई कर्मियों की दुर्दशा का चित्रण किया है यह कहानी उनके द्वारा किए जाने वाले विभत्स्यपूर्ण एवं घृणित कार्य की विवशता दर्शाता है। वे लिखती है "अपनी जाति के लोग जो नगर पालिका में नौकरी करते है, वे बस्तियों में सफाई करते है बड़े–बड़े मोहल्ले या एरिया सफाई करने के लिए सफाई कर्मचारियों के सुपुर्द कर दिये जाते हैं" थोडा ठहरकर वे बोले–कुछ लोगों को झाड़ू का काम दिया जाता है। सड़के, गलियाँ, अहाते, मैदान, गड्ढे, नालियाँ सबकी सफाई की जिम्मेदारी उनकी होती है। कुछ लोगों को मैला सफाई का काम दिया जाता है। वे लोग मोहल्लों के घरों की कच्ची संडासों की सफाई करके मलमूत्र के बड़े–बड़े या टोकने भरते हैं। मलमूत्र के टोकनो को एक–एक करके, अपने सर पर उठाकर, वे एक निश्चित जगह पर पहुँचातें है।"[3] यह परिस्थितियाँ उनकी दयनीय दशा को दर्शाती है एक विशेष समुदाय को इस प्रकार विभत्स्यपूर्ण कार्य करने के लिए विवश करना सामाजिक असमानता का परिणाम है।

दलित साहित्य की भाषा सामाजिक न्याय, समानता और मानवीय संवेदनाओं का स्वर आलापती है। यह भाषा कला सम्पन्न, अलंकार युक्त, संस्कृतनिष्ठ भाषा को अस्वीकार करती है। क्योंकि दलित साहित्य की भाषा आलंकारिकता पर नहीं बल्कि उसकी यथार्थवादिता पर आधारित है। दलितों की पीड़ा एवं उनका जीवन संघर्ष दलित साहित्य के केंद्र बिन्दु रहें है। यदि उनकी भोगी हुई यातनाओं पीडा, वेदना अपमान एवं उनके जीवन संघर्ष को आलंकारिक रूप में शब्दबद्ध करेगा तो उनके जीवन का यथार्थ अभिव्यक्त नहीं हो पाएगा। इस विषय पर ओमप्रकाश वाल्मीकि जी कहते है "दलित साहित्य ने अपने लिए सहज, सरल और आम बोलचाल की भाषा को अपनाया है।"[4]

सुशीला टाकभौरे की भाषा सरल सहज, आम बोलचाल की भाषा रही है। जो आम लोगों को अपने जीवन के निकटतम प्रतीत होती है। इनके साहित्य की भाषा पाठकों के अनुकूल है। दलित समाज को यह भाषा अपने यथार्थ जीवन के करीब लगती है। यही कारण है कि प्रत्येक पाठक इनकी भाषा को सहजता से समझ सकता है। इसीलिए सुशीला जी रचनाएँ प्रसिद्ध एवं लोकप्रिय रही है। 'संघर्ष' कहानी में सुशीला जी की भाषा की सरलता आम लोगों के जीवन से जुड़ी हुई दिखाई देती है। "ये लड़का हमें चैन से जीने नहीं देगा ...कहाँ कहाँ की तोहमत लाता है। इसके कारण नाक में दम आ गया है। कहाँ गया है वह? ... बुलाओ उसे और खूप पीटो. .."[5] इनकी भाषा की रोचकता और सरलता पाठकों के मन मोह लेती है। पाठकों की रुचि बनाए रखती है।

दलित साहित्य का आधार यथार्थवाद है काल्पनिक नहीं। यह जाति आधारित उत्पीड़न, भेदभाव, विसंगतियों और अन्याय के व्यक्तिगत एवं सामाजिक अनुभवों को उजागर करता है। समाज के निम्न वर्ग, गरीब, निर्धन, अशिक्षित समाज की वास्तविकता एवं उनके जीवन संघर्ष को गहराई से बयां करता है। "दलित लेखकों

का यह आग्रह है कि मैंने जो जीवन जिया, भोगा और देखा है, वहीँ मैंने साहित्य में व्यक्त किया है।"[6] यही वास्तविकता और यथार्थ दलित साहित्य की भाषा में भी दिखाई पड़ता है। अनुभूतियों की यह प्रामाणिकता सुशीला ताकभौरे की कहानियों में अभिव्यक्ति दे पाई है। आत्मकथात्मक शैली में लिखी 'मेरा बचपन' कहानी में अपने जीवन के वास्तविक एवं कटु अनुभवों को व्यक्त करते हुए लिखती है "एक दिन न जाने क्या सोचकर मैं कक्षा में गुरूजी के टेबल के सामने तीसरे क्रमांक पर बैठ गई। उस दिन मुझे गुरुजी, ब्लैकबोर्ड और पूरी कक्षा अच्छी लग रही थीं। रजनी, शुभलता मेरे पीछे बैठी थी। पढ़ाते समय छगन गुरुजी ने मेरी तरफ देखकर गुस्से से कहा था– "सुशीला, तुम आगे क्यों बैठी हो? तुम्हें सबसे पीछे बैठना चाहिए।"[7] कहानी में लिखी गई घटना की सुशीला जी स्वयं साक्षी है। यह उनके जीवन का कटु यथार्थ है। अपने जीवन में जातिवाद के कारण झेले अनेक दुख भरे क्षणों, घटनाओं और अनुभवों को अपनी कहानियों में व्यक्त किया है।

"दलित साहित्य का यथार्थ अलग है। इस यथार्थ की भाषा अलग है। यह भाषा दलितों की गँवार–असभ्य भाषा है। यह भाषा दलितों की बोली जानेवाली भाषा है। यह भाषा शिष्ट संकेत और व्याकरण के नियम न माननेवाली भाषा है। ऐसा कहा जाता है कि हर दस कोस पर भाषा बदलती है, किंतु दलितों के संबंध में अंतर का गणित गलत ठहरता है एक ही गाँव में गाँव की भाषा और अछुत टोली की भाषा में भेद दिखाई देता है।"[8] दलित साहित्य में क्षेत्र विशेष का प्रभाव स्पष्ट दिखाई पड़ता है। उनके साहित्य में बोली–विशेष महत्व रखती है। जो दलित समाज उनके क्षेत्र विशेष एवं बोली भाषा की यथार्थ एवं पारदर्शक स्थिति को चित्रित करती है।

सुशीला जी के कथाओं में ग्रामीण बोली भाषा का प्रभाव स्पष्ट दिखाई पड़ता है। सुशीला जी मध्यप्रदेश के सिवनी मालवा गाँव में रहती थी। वहीं वे बड़ी हुई। अतः वहाँ की प्रादेशिक बोली का प्रभाव और छाप उनकी कहानियों में स्पष्ट दिखाई पड़ती है 'सिलिया' कहानी में "क्यों बाई जई सिखाओ तो तुम अपने बच्चों को? एक दिन हमारे मूड पर मूतने की कह देना... तुम्हारे नजदीक रहते है, तो क्या हमारा धरम करम नहीं है?...का मरजी है तुम्हारी? साफ साफ कह दो.."[9] सुशीला टाकभौरे के साहित्य में विशेष क्षेत्र, प्रदेश और कथाओं के पात्रानुसार भाषा का उपयोग किया है 'छौआ माँ' कहानी में क्षेत्रीय बोली का प्रभाव दिखाई पड़ता है।, मेरी मोड़ी को क्यों परेशान क्यों परेशान कियो?...वा नहीं करे ये काम...वा को क्यों जबरदस्ती बुलाई...?"[10] स्थानीय और क्षेत्रीय भाषा का प्रयोग दलित साहित्य को वास्तविकता से जोड़ते है।

दलित साहित्य पर आलोचक एवं हिन्दी साहित्य के परंपरागत लेखकों द्वारा गाली गलौच पूर्ण एवं अश्लील भाषा के आरोप लगते आए है। परंतु वे इस बात से अनजान है कि गालियां दलितों के किए जाने वाले शोषण, दमन, अपमान और सामाजिक तिरस्कार की उपज है। जिसका प्रभाव उनके साहित्य में स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ता है। हिन्दी साहित्य के लेखक दलित साहित्य की भाषा पर प्रहार करते आए है। इसका जवाब देते हुए कंवल भारती जी कहते है कि "दलित साहित्य गाली का साहित्य नहीं है। जिस परिवेश में दलित सांस ले रहा है, वे गालियाँ उसी परिवेश में हैं। दलित लेखक उन गालियों को उस परिवेश से कैसे निकाल सकता है? यथार्थ का यथार्थपूर्ण चित्रण उसकी समग्रता में ही हो सकता है।... दलित साहित्य का ध्येय सवर्णों को गलियाँ देना नहीं है। दलित साहित्य न सवर्ण विरोधी है और न उनको गालियाँ देने का पक्षधर है। वह तो व्यवस्था का विरोधी है, जो दलितों के दुःखों और अन्याय का कारण है और जिसे सवर्ण अपने कंधों पर ढोते हैं। इस व्यवस्था के अनुयायी सवर्ण समाज के सभ्य लोग जिन असभ्य शब्दों का प्रयोग दलित अस्मिता के अपमान के लिए करते

हैं, यदि दलित लेखक उन शब्दों को ज्यों–का–त्यों सभ्य समाज को वापिस देना चाहते है, तो वे शब्द गाली कैसे हो गये?"[11] दलित साहित्य में निहित गालियाँ सवर्ण समाज की ही देंन है। दलितों के साथ किए जाने वाले घृणास्पद व्यवहार एवं उनके लिए संबोधित की जाने वाली गालियों अपशब्दों को दलित साहित्य हू–ब–हू दर्शाया है और यही गालियाँ सवर्णों के प्रतिउत्तर स्वरूप उनके साहित्य में दिखाई पड़ती है।

सुशीला टाकभौरे ने भी अपने कथाओं में गाली गलौच पूर्ण भाषा का प्रयोग किया है जो दलितों के साथ हो रे अन्याय, अत्याचार के प्रति अपना आक्रोश प्रकट करता है। सुशीला जी 'बदला' कहानी में गालियों एवं अपशब्दों का प्रयोग को देख सकते है "सालो...तुम्हारी तो ऐसी की तैसी...। बहुत इज्जत की है, हमने तुम्हारी। अब देखना, हम भी तुम्हें चैन से रहने नहीं देंगे.... अभी तुमने हमको देखा नहीं है...। सालों...कमीनों...डरने वालों को डराते हो...तुम्हारी तो..."[12] दलितों पर हो रहे अन्याय, अत्याचार के प्रतिरोध और प्रतिशोध से उपजी गालियाँ उनके सहनशक्ति के अंत और बदले की पराकाष्ठा दर्शाती है।

दलित साहित्य ने विरोध और विद्रोह की भाषा को स्वीकार किया है। यह विद्रोह उन्हें अन्याय, अत्याचार के विरुद्ध लड़ने की ऊर्जा देता है। सदियों की पीड़ा, अपमान और व्यथा अब विद्रोह में परिवर्तित हो रही है। दलित समाज परिवर्तन चाहता है। इस पर ओमप्रकाश वाल्मीकि जी कहते है "यातनाओं से उपजी आक्रोशित भाषा एक तेज औजार की तरह भीतर तक झकझोर देती है। दलित समाज की बोली बानी के ऐसे अनेक शब्द प्रकट होते हैं जिनसे साहित्य अनभिज्ञ था। यह दलित साहित्य को ताजगी देता है और भाषा की जड़ता भी टूटती है।"[13] यह विद्रोह उन्हें अपनी दुरूखद परिस्थितियों के विरुद्ध लड़ने की प्रेरणा देती है। परिवर्तन के लिए उनकी छटपटाहट दर्शाती है।

सुशीला टाकभौरे अपनी कहानियों में दलित समाज के मुक्ति की कामना करती है। दलितों एवं स्त्रियों पर होने वाले अन्याय के विरुद्ध विद्रोह के भाव दर्शाती है। सुशीला जी की 'बदला' कहानी सवर्णों के अत्याचारों के विरुद्ध अपना आक्रोश प्रकट करती है "मेरा बेटा कहीं नहीं जाएगा। उसकी कोई गलती नहीं है।" बप्पा बोले –अब मैं देखूंगा, कौन उसे हाथ लगाता है। मेरा बेटा किसी से नहीं डरेगा। हम भी उनसे बदला लेंगे।" छौआ माँ कहने लगी– "अब हम किसी से नहीं डरेंगे।...हम भी ईंट का जवाब पत्थर से देंगे। वे शेर हैं, तो हम सवा शेर बनकर रहेंगे। एक दिन ऐसो आयोगो कि हमसे डरेंगे। मेरो कल्लू इसी गाँव में रहेगो, शेर बनकर।"[14] दलित समाज अपने अधिकारों को जान चुका है। अपने अधिकारों के लिए संघर्ष एवं संगठन की शक्ति को समझने लगा है। वह दुश्मनों का मुकाबला करने के लिए डटकर खड़ा है। वह सहना नहीं बल्कि लड़ना चाहता है।

सुशीला टाकभौरे के साहित्य की भाषागत विशेषताएं उन्हें परम्परागत साहित्यिक भाषा से पृथक कर उनकी अलग पहचान बनाती है। उनके साहित्य की सरल और सहज भाषा, सामान्य एवं आम जन के करीब महसूस होती है। साहित्य में क्षेत्रीय एवं स्थानीय बोली का प्रयोग पाठकों को वास्तविकता का अनुभव करवाता है। उनके साहित्य में दलित जीवन के दुख पीड़ा और वेदना, विद्रोह और आक्रोश के स्वर में मुखरित होती है। अन्याय और अत्याचार का विरोध उनके साहित्य में विद्रोहात्मक भाषा को दर्शाता है। दलित जीवन की पीड़ा और संघर्ष उनके साहित्य की भाषाई विविधता को दर्शाता है। यही बात उनकी भाषा और उनके साहित्य को विशेष बनाती है।

सन्दर्भ :-

1. दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र, ओमप्रकाश वाल्मीकि, राधकृष्ण प्रकाशन प्रा. लि. 7/31, अंसारी मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली–110002, पहला संस्करण 2001, पृ. स. 104
2. दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र, ओमप्रकाश वाल्मीकि, राधकृष्ण प्रकाशन प्रा. लि. 7/31, अंसारी मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली–110002, पहला संस्करण 2001, पृ. स. 82
3. कथारंग, डॉ. सुशीला टाकभौरे, प्रलेख प्रकाशन प्रा. लि.,ठाणे, महाराष्ट्र– 401303, पृ. सं. 36
4. दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र, ओमप्रकाश वाल्मीकि, राधकृष्ण प्रकाशन प्रा. लि. 7/31, अंसारी मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली–110002, पहला संस्करण 2001, पृ. स. 81)
5. कथारंग, डॉ. सुशीला टाकभौरे, प्रलेख प्रकाशन प्रा. लि.,ठाणे, महाराष्ट्र– 401303, पृ. सं. 14
6. दलित–साहित्य : नई चुनौतियाँ, डॉ. राम शंकर कठेरिया, प्रभात प्रकाशन, 4/19 आसफ अली रोड, नई दिल्ली–110002, प्रथम संस्करण 2016, पृ. सं. 62
7. कथारंग, डॉ. सुशीला टाकभौरे, प्रलेख प्रकाशन प्रा. लि.,ठाणे, महाराष्ट्र– 401303, पृ.सं. 118
8. दलित–साहित्य : नई चुनौतियाँ, डॉ. राम शंकर कठेरिया, प्रभात प्रकाशन, 4/19 आसफ अली रोड, नई दिल्ली–110002, प्रथम संस्करण 2016, पृ. सं. 64
9. कथारंग, डॉ. सुशीला टाकभौरे, प्रलेख प्रकाशन प्रा. लि.,ठाणे, महाराष्ट्र– 401303, पृ. सं. 49
10. कथारंग, डॉ. सुशीला टाकभौरे, प्रलेख प्रकाशन प्रा. लि., ठाणे, महाराष्ट्र– 401303, पृ. सं.72
11. दलित साहित्य का समाजशास्त्र, हरीनारायण ठाकुर, भारतीय ज्ञानपीठ, 18, इन्स्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड, नयी दिल्ली 110003, पहला संस्करण 2009, पृ. सं. 117
12. कथारंग, डॉ. सुशीला टाकभौरे, प्रलेख प्रकाशन प्रा. लि., ठाणे, महाराष्ट्र– 401303, पृ. सं. 63
13. दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र, ओमप्रकाश वाल्मीकि, राधकृष्ण प्रकाशन प्रा. लि. 7/31, अंसारी मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली–110002, पहला संस्करण 2001, पृ. स. 82
14. कथारंग, डॉ. सुशीला टाकभौरे, प्रलेख प्रकाशन प्रा. लि., ठाणे, महारष्ट्र– 401303, पृ. सं. 63–64

मो. नं. ९१५६३४०६०७

ई मेल– priyankameshram86@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Sept. 2025 Page No. : 72-79

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

इक्कीसवीं सदी का साहित्य और स्वास्थ्य विमर्श : मशीन लर्निंग आधारित मधुमेह पूर्वानुमान का अध्ययन

के के इश्विता श्री

बी.टेक स्नातक (वीआईटी भोपाल विश्वविद्यालय),

एमबीए छात्रा (एसआरएम इंस्टिट्यूट ऑफ साइंस एंड टेक्नोलॉजी)

1. सारांश (Abstract) :-

इक्कीसवीं सदी का साहित्य केवल काव्य, कथा और आलोचना तक सीमित नहीं रहा है, बल्कि उसने मानव जीवन की हर उस जटिलता को आत्मसात किया है जो समाज और संस्कृति को प्रभावित करती है। स्वास्थ्य, रोग और उनसे जुड़ी जीवन–यात्राएँ भी आधुनिक साहित्य और विमर्श का महत्वपूर्ण हिस्सा बन चुकी हैं। मधुमेह जैसे रोग अब केवल चिकित्सकीय दस्तावेजों तक सीमित नहीं हैं, बल्कि ब्लॉग, सोशल मीडिया, आत्मकथाओं और डिजिटल मंचों पर भी अपनी जगह बना चुके हैं। इस प्रकार रोग केवल जैविक समस्या नहीं रह जाता, बल्कि वह साहित्य और संस्कृति का हिस्सा बनकर सामने आता है।

इसी परिप्रेक्ष्य में, प्रस्तुत शोध–पत्र में मधुमेह की पहचान और पूर्वानुमान के लिए मशीन लर्निंग (Machine Learning) तकनीकों का उपयोग किया गया है। मशीन लर्निंग आज केवल कंप्यूटर विज्ञान का क्षेत्र नहीं है, बल्कि यह स्वास्थ्य विमर्श और डिजिटल साहित्य का भी हिस्सा है क्योंकि यह रोगों की कहानियों को नए ढंग से प्रस्तुत करता है। शोध कार्य में PIMA भारतीय डायबिटीज डाटासेट का उपयोग कर तीन प्रमुख एल्गोरिद्म – लॉजिस्टिक रिग्रेशन, सपोर्ट वेक्टर मशीन (SVM) और डिसीजन ट्री को अपनाया गया है। परिणामस्वरूप पाया गया कि डिसीजन ट्री एल्गोरिद्म अन्य मॉडलों की तुलना में अधिक प्रभावी साबित हुआ।

यह शोध केवल तकनीकी उपलब्धि भर नहीं है, बल्कि यह इस तथ्य की ओर संकेत करता है कि साहित्य और तकनीक मिलकर कैसे नए विमर्श रच रहे हैं। रोग की डिजिटल व्याख्या, रोगियों के ऑनलाइन आख्यान और कृत्रिम बुद्धिमत्ता द्वारा तैयार किए गए पूर्वानुमान : ये सभी इक्कीसवीं सदी की साहित्यिक प्रवृत्तियों का हिस्सा बन चुके हैं।

प्रमुख शब्द (Keywords) :

मधुमेह, मशीन लर्निंग, स्वास्थ्य विमर्श, इक्कीसवीं सदी का साहित्य, डिजिटल आख्यान, डिसीजन ट्री, कृत्रिम बुद्धिमत्ता।

3. परिचय (Introduction) :

इक्कीसवीं सदी को तकनीकी क्रांति, डिजिटल विमर्श और वैश्विक चुनौतियों की सदी कहा जा सकता है। इस सदी में साहित्य अब केवल छपे हुए शब्दों का संग्रह नहीं है, बल्कि यह डिजिटल प्लेटफॉर्म, सोशल मीडिया, वेब ब्लॉग, ई–पत्रिकाओं और आभासी संवाद का हिस्सा बन चुका है। यहाँ तक कि स्वास्थ्य और बीमारी जैसे निजी अनुभव भी अब सार्वजनिक विमर्श और साहित्यिक आख्यान का हिस्सा बन रहे हैं।

मधुमेह (Diabetes) आज की सबसे गंभीर स्वास्थ्य चुनौतियों में से एक है। भारत को 'विश्व की मधुमेह राजधानी' कहा जाता है, जहाँ करोड़ों लोग इस रोग से प्रभावित हैं। मधुमेह केवल शारीरिक रोग नहीं है, बल्कि यह व्यक्ति के मानसिक, सामाजिक और आर्थिक जीवन को भी प्रभावित करता है। इसीलिए आधुनिक साहित्य में भी रोग और स्वास्थ्य पर आधारित कथाएँ, कविताएँ और संस्मरण लगातार बढ़ रहे हैं। ब्लॉग और सोशल मीडिया पर लोग अपने मधुमेह के अनुभव साझा करते हैं, जो एक नए तरह के स्वास्थ्य साहित्य (Health Literature) के रूप में सामने आता है।

दूसरी ओर, तकनीकी दृष्टि से देखें तो आज स्वास्थ्य सेवाओं में कृत्रिम बुद्धिमत्ता (Artificial Intelligence) और मशीन लर्निंग का उपयोग लगातार बढ़ रहा है। मशीन लर्निंग एक ऐसी तकनीक है जो पुराने डाटा के आधार पर नई भविष्यवाणियाँ करने में सक्षम है। चिकित्सा क्षेत्र में यह तकनीक रोग की पहचान, दवाओं के प्रभाव का विश्लेषण, और भविष्य में रोग की संभावना को आँकने में सहायक हो रही है। इस संदर्भ में, मधुमेह पूर्वानुमान हेतु मशीन लर्निंग का उपयोग केवल चिकित्सा शोध नहीं, बल्कि यह एक डिजिटल विमर्श भी है जो स्वास्थ्य और साहित्य को आपस में जोड़ता है।

प्रस्तुत शोध–पत्र का उद्देश्य दोहरा है :

1. यह दिखाना कि कैसे मशीन लर्निंग एल्गोरिद्म मधुमेह की प्रारंभिक पहचान में सहायक हो सकते हैं।
2. यह समझाना कि कैसे यह तकनीकी अभ्यास इक्कीसवीं सदी के साहित्य और डिजिटल विमर्श का हिस्सा बनकर एक नए प्रकार की कथा रच रहा है।

इस शोध में तीन प्रमुख मशीन लर्निंग तकनीकों का उपयोग किया गया है : लॉजिस्टिक रिग्रेशन, सपोर्ट वेक्टर मशीन (SVM) और डिसीजन ट्री। PIMA भारतीय डायबिटीज डेटासेट को आधार बनाकर इन मॉडलों का परीक्षण किया गया। परिणामों ने स्पष्ट किया कि डिसीजन ट्री एल्गोरिद्म सबसे सटीक और उपयोगी रहा।

परंतु, इस अध्ययन की महत्ता केवल परिणामों में नहीं है, बल्कि इसमें यह दृष्टि भी निहित है कि रोगों के आख्यान अब डिजिटल तकनीक के सहारे साहित्य का हिस्सा बन रहे हैं। स्वास्थ्य रिपोर्ट, मरीजों की कहानियाँ, ऑनलाइन फोरम और कृत्रिम बुद्धिमत्ता आधारित विश्लेषण : ये सब मिलकर इक्कीसवीं सदी के नए विमर्श का निर्माण कर रहे हैं।

4. मधुमेह और स्वास्थ्य विमर्श की साहित्यिक पृष्ठभूमि :

साहित्य का संबंध केवल कल्पना या सौंदर्य–बोध से ही नहीं है, बल्कि यह जीवन के हर पहलू को अभिव्यक्ति देता है। बीमारियाँ और स्वास्थ्य भी साहित्यिक विमर्श का हिस्सा रहे हैं। क्लासिकल साहित्य से लेकर आधुनिक उपन्यासों और कविताओं तक, रोग को एक प्रतीक, रूपक और वास्तविकता के रूप में चित्रित किया

गया है।

भारतीय साहित्य में बीमारी और स्वास्थ्य पर आधारित अनेक आख्यान मिलते हैं। प्रेमचंद की कहानियों में गरीबी और बीमारी का गहरा संबंध देखने को मिलता है। फणीश्वरनाथ रेणु के उपन्यासों में ग्रामीण समाज की स्वास्थ्य समस्याएँ और रोग–आख्यान प्रमुखता से सामने आते हैं। इसी तरह हिंदी कविता में शरीर और मन की पीड़ा को बार–बार स्वर दिया गया है।

विशेषकर मधुमेह जैसे रोग को देखें तो यह केवल चिकित्सा का विषय नहीं है। यह रोग जीवनशैली, खान–पान, आर्थिक असमानता और मानसिक तनाव से गहराई से जुड़ा है। आधुनिक साहित्य में यह रोग एक सामाजिक रोग (Social Disease) के रूप में भी चित्रित होता है। क्योंकि यह केवल व्यक्ति को प्रभावित नहीं करता, बल्कि पूरे परिवार और समाज की संरचना पर असर डालता है।

विदेशी साहित्य में भी रोग आख्यान (Illness Narratives) का विशेष महत्व है। आर्थर क्लाइनमैन (Arthur Kleinman) ने अपनी पुस्तक Illness Narratives में बताया है कि रोग केवल जैविक समस्या नहीं, बल्कि सांस्कृतिक और सामाजिक अनुभव भी है। रोगी जब अपनी बीमारी का वर्णन करता है, तो वह केवल लक्षण नहीं बताता बल्कि अपने जीवन की कहानी भी कहता है। मधुमेह जैसे दीर्घकालिक रोग में यह बात और भी स्पष्ट होती है, क्योंकि रोगी को लगातार अपने शरीर, खानपान और जीवनशैली पर ध्यान देना पड़ता है।

इस प्रकार, साहित्य में रोग आख्यान हमें यह समझने का अवसर देते हैं कि कैसे बीमारी केवल शरीर तक सीमित नहीं होती, बल्कि वह एक कथा (Narrative) बन जाती है। यह कथा डॉक्टर, मरीज, परिवार और समाज सभी के बीच संवाद स्थापित करती है। मधुमेह से जुड़ी कविताएँ, आत्मकथाएँ और संस्मरण इसी विमर्श का हिस्सा हैं।

5. डिजिटल युग में रोग आख्यान और ऑनलाइन विमर्श :

इक्कीसवीं सदी का साहित्य डिजिटल प्लेटफॉर्म से गहराई से जुड़ा हुआ है। ब्लॉग, फेसबुक पोस्ट, ट्विटर थ्रेड, यूट्यूब व्लॉग और ऑनलाइन मंच अब आधुनिक साहित्यिक अभिव्यक्ति के साधन बन चुके हैं। स्वास्थ्य और बीमारी भी इन माध्यमों का हिस्सा बन गए हैं।

मधुमेह जैसी बीमारियों पर हजारों ब्लॉग लिखे जा रहे हैं, जहाँ लोग अपने अनुभव साझा करते हैं। मरीज बताते हैं कि उन्होंने किस प्रकार बीमारी से लड़ाई लड़ी, किस तरह का खान–पान और जीवनशैली अपनाई, और कैसे दवाइयों ने उनके जीवन को बदला। यह सब मिलकर एक तरह का डिजिटल साहित्य तैयार करते हैं। सोशल मीडिया पर रोग आख्यान नए विमर्श की तरह उभरे हैं। ट्विटर पर #DiabetesAwareness जैसे हैशटैग वैश्विक विमर्श को जन्म देते हैं। फेसबुक पर "Diabetes Support Groups" नाम से हजारों समुदाय बने हैं, जहाँ लोग अपनी कहानियाँ साझा करते हैं। यह केवल सूचना का आदान–प्रदान नहीं है, बल्कि यह एक साहित्यिक और सांस्कृतिक प्रक्रिया है जिसमें अनुभव कथाओं के रूप में बदल जाते हैं।

भारत में व्हाट्सएप ग्रुप और यूट्यूब चैनल भी मधुमेह से जुड़ी जानकारी और अनुभव सांझा करने का महत्वपूर्ण माध्यम हैं। ये अनुभव अक्सर स्थानीय भाषाओं में होते हैं, जिससे वे और भी सशक्त बनते हैं। उदाहरण के लिए, ग्रामीण क्षेत्रों के लोग अपनी कहानियाँ भोजपुरी, हिंदी या तमिल में साझा करते हैं, जो न केवल स्वास्थ्य

शिक्षा का साधन बनती हैं बल्कि स्थानीय साहित्य को भी समृद्ध करती हैं।

डिजिटल युग में स्वास्थ्य आख्यान की यह प्रवृत्ति हमें यह समझने में मदद करती है कि बीमारी केवल चिकित्सा रिपोर्ट नहीं है, बल्कि यह एक साहित्यिक विमर्श भी है। ब्लॉग और सोशल मीडिया पर लिखी गई ये कहानियाँ साहित्य की नई विधाओं को जन्म देती हैं, जिन्हें हम "डिजिटल रोग आख्यान" (Digital Illness Narratives) कह सकते हैं।

इसके अतिरिक्त, महामारी के बाद (Post-COVID युग) में यह प्रवृत्ति और अधिक तेज हो गई। लॉकडाउन के दौरान जब अस्पताल तक पहुँचना मुश्किल हो गया, तब लोग अपने अनुभव ऑनलाइन साझा करने लगे। इस प्रकार डिजिटल रोग आख्यानों ने न केवल जानकारी दी बल्कि मानसिक सहारा भी प्रदान किया।

इस पूरे विमर्श का साहित्यिक महत्व यह है कि अब स्वास्थ्य और बीमारी की कहानियाँ केवल क्लिनिक या अस्पताल तक सीमित नहीं रहीं, बल्कि वे साहित्य, समाज और तकनीक के संगम पर एक नई विधा का निर्माण कर रही हैं।

6. मशीन लर्निंग और स्वास्थ्य पूर्वानुमान : तकनीकी पक्ष :

इक्कीसवीं सदी का सबसे बड़ा योगदान कृत्रिम बुद्धिमत्ता (Artificial Intelligence) और विशेष रूप से मशीन लर्निंग (Machine Learning) को माना जा सकता है। मशीन लर्निंग केवल एक तकनीकी प्रक्रिया नहीं है, बल्कि यह मनुष्य और तकनीक के बीच संवाद की एक नई विधा भी है। साहित्य की तरह ही, मशीन लर्निंग भी पैटर्न, संरचना और कथाओं को पहचानती है। फर्क बस इतना है कि साहित्य भावनाओं और प्रतीकों से कथाएँ रचता है, जबकि मशीन लर्निंग संख्याओं और डेटा से कथाएँ खोजती है।

मधुमेह जैसे रोगों के पूर्वानुमान में मशीन लर्निंग की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण हो गई है। यह तकनीक बड़ी मात्रा में स्वास्थ्य डेटा का विश्लेषण कर उन पैटर्न को पहचान सकती है जो मानव दृष्टि से छिपे रह जाते हैं। उदाहरण के लिए, किसी व्यक्ति के रक्त शर्करा स्तर, रक्तचाप, बॉडी मास इंडेक्स (BMI), आयु और पारिवारिक इतिहास जैसे डेटा का अध्ययन कर यह तकनीक अनुमान लगा सकती है कि उस व्यक्ति को मधुमेह होने की कितनी संभावना है।

मशीन लर्निंग की प्रमुख विधियाँ जैसे लॉजिस्टिक रिग्रेशन (Logistic Regression), सपोर्ट वेक्टर मशीन (SVM) और डिसीजन ट्री (Decision Tree) स्वास्थ्य पूर्वानुमान में व्यापक रूप से प्रयोग की जा रही हैं।

लॉजिस्टिक रिग्रेशन रोग की संभावना (Yes/No) को संख्यात्मक रूप से मापने में मदद करता है।

सपोर्ट वेक्टर मशीन जटिल और बहु–आयामी डेटा में भी रोगियों और स्वस्थ व्यक्तियों के बीच भेद कर सकती है।

डिसीजन ट्री सरल और दृश्यात्मक विधि है, जो स्वास्थ्य निर्णयों को एक पेड़ जैसी संरचना में प्रस्तुत करती है।

इन विधियों की खास बात यह है कि ये केवल चिकित्सकों के लिए नहीं, बल्कि रोगियों और समाज के लिए भी नए आख्यान रचती हैं। जब कोई ऐप या वेबसाइट उपयोगकर्ता को बताती है कि उसे मधुमेह होने की

70 प्रतिशत संभावना है, तो यह सूचना केवल सांख्यिकीय तथ्य नहीं रहती, बल्कि वह व्यक्ति के जीवन की कहानी का हिस्सा बन जाती है।

यहीं पर यह तकनीकी अभ्यास साहित्यिक विमर्श से जुड़ता है। रोग केवल डॉक्टर की रिपोर्ट में नहीं होता, बल्कि यह अब डिजिटल प्लेटफॉर्म पर अनुभवों और कहानियों के रूप में दर्ज होता है। इस प्रकार मशीन लर्निंग रोग की डिजिटल कथा (Digital Narrative) रचने का साधन भी है।

7. अनुसंधान पद्धति और परिणाम विश्लेषण :

(क) डाटा स्रोत :

प्रस्तुत अध्ययन में PIMA Indian Diabetes Dataset का उपयोग किया गया, जो UCI मशीन लर्निंग रिपोजिटरी में उपलब्ध है। इसमें 768 महिलाओं का स्वास्थ्य संबंधी डाटा शामिल है, जिसमें गर्भधारण की संख्या, ग्लूकोज स्तर, रक्तचाप, त्वचा की मोटाई, इंसुलिन स्तर, बीएमआई, डायबिटिक पैडीग्री फंक्शन और आयु जैसी विशेषताएँ शामिल थीं।

(ख) पद्धति :

शोध प्रक्रिया के चरण निम्नलिखित रहे :

- **डेटा पूर्व-संसाधन (Preprocessing) :** डाटा में मौजूद Missing values को हटाया गया और सभी मानकों को सामान्यीकृत (Normalization) किया गया।
- **मॉडल निर्माण :** लॉजिस्टिक रिग्रेशन, SVM और डिसीजन ट्री तीनों एल्गोरिद्म पर मॉडल बनाए गए।
- **प्रशिक्षण और परीक्षण :** डेटासेट को 70:30 अनुपात में विभाजित कर प्रशिक्षण और परीक्षण किया गया।
- **मूल्यांकन :** मॉडलों की सटीकता (Accuracy), शुद्धता (Precision), रिकॉल (Recall) और F_1-score के आधार पर तुलना की गई।

(ग) परिणाम :

एल्गोरिद्म	सटीकता (Accuracy)	शुद्धता (Precision)	रिकॉल (Recall)	निष्कर्ष
लॉजिस्टिक रिग्रेशन	76%	74%	72%	औसत प्रदर्शन
सपोर्ट वेक्टर मशीन	78%	77%	75%	संतोषजनक
डिसीजन ट्री	81%	79%	78%	सर्वोत्तम प्रदर्शन

विश्लेषण से स्पष्ट है कि डिसीजन ट्री ने सर्वोत्तम प्रदर्शन किया। इसका कारण यह है कि डिसीजन ट्री स्वास्थ्य डेटा में मौजूद सीमा–मानों (Thresholds) को आसानी से पकड़ लेता है। उदाहरण के लिए, यदि किसी का ग्लूकोज स्तर 150 mg/dl से ऊपर है और BMI भी अधिक है, तो मॉडल तुरंत मधुमेह की संभावना को अधिक मान लेता है।

(घ) साहित्यिक दृष्टि से परिणामों का महत्व :

इन परिणामों का महत्व केवल तकनीकी नहीं है, बल्कि साहित्यिक भी है। जब कोई डिजिटल उपकरण यह कहता है कि किसी व्यक्ति को मधुमेह होने की 80% संभावना है, तो यह कथन उसके जीवन का हिस्सा

बन जाता है। वह व्यक्ति इसे अपने परिवार से साझा करता है, ब्लॉग पर लिखता है या सोशल मीडिया पर अपनी कहानी बताता है। इस प्रकार, तकनीकी परिणाम एक रोग आख्यान में बदल जाता है।

(ङ) व्यावहारिक उपयोग :

- **मोबाइल ऐप्स :** ग्रामीण क्षेत्रों में लोग अपनी स्वास्थ्य जानकारी दर्ज कर तुरंत परिणाम प्राप्त कर सकते हैं।
- **प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र :** डॉक्टर मरीज की प्रारंभिक जांच के लिए इन मॉडलों का उपयोग कर सकते हैं।
- **ऑनलाइन स्वास्थ्य पोर्टल :** टेलीमेडिसिन और ई–हेल्थ प्लेटफॉर्म पर यह तकनीक तत्काल विश्लेषण उपलब्ध करा सकती है।

8. साहित्यिक दृष्टिकोण से परिणामों की व्याख्या :

स्वास्थ्य संबंधी आँकड़ों पर आधारित इस अध्ययन का महत्व केवल चिकित्सा तक सीमित नहीं है। यह साहित्य और संस्कृति से भी गहराई से जुड़ा है। रोग के पूर्वानुमान को जब हम तकनीकी दृष्टि से देखते हैं, तो यह मात्र संख्याएँ और ग्राफ होते हैं, परंतु जब रोगी इन परिणामों को अपने जीवन से जोड़ता है, तो यह एक कथा (Narrative) बन जाती है।

उदाहरण के लिए, यदि किसी महिला को मॉडल बताता है कि उसे मधुमेह होने की 80 प्रतिशत संभावना है, तो यह सूचना उसके लिए केवल डेटा नहीं रह जाती। वह इसे अपने परिवार को बताती है, अपने खान–पान में बदलाव करती है और कई बार सोशल मीडिया या ब्लॉग पर अपनी कहानी लिखती है। इस प्रकार, तकनीकी परिणाम एक साहित्यिक आख्यान में बदल जाता है।

इक्कीसवीं सदी के साहित्य में यह बदलाव विशेष रूप से देखा जा सकता है। अब बीमारी पर लिखी गई कहानियाँ केवल डॉक्टर की रिपोर्ट तक सीमित नहीं रहीं, बल्कि वे ऑनलाइन डायरी, ब्लॉग और सोशल मीडिया पोस्ट का हिस्सा बन गई हैं। इस तरह मशीन लर्निंग न केवल स्वास्थ्य की भविष्यवाणी कर रही है, बल्कि नए डिजिटल साहित्य को भी जन्म दे रही है।

9. भविष्य की दिशा :

इस शोध से यह स्पष्ट है कि मशीन लर्निंग आधारित मॉडल मधुमेह जैसे रोग की प्रारंभिक पहचान में अत्यंत सहायक हो सकते हैं। लेकिन भविष्य में इसे और अधिक सशक्त बनाने के लिए कुछ कदम उठाने आवश्यक होंगे :

- **विविध डेटा का उपयोग :** इस शोध में केवल महिलाओं का डेटा प्रयोग किया गया। भविष्य में पुरुषों और विभिन्न आयु समूहों का डेटा जोड़ने से मॉडल और अधिक सटीक हो सकेगा।
- **रीयल–टाइम डेटा संग्रह :** IoT डिवाइस जैसे स्मार्ट वॉच और फिटनेस बैंड लगातार डेटा उपलब्ध कराते हैं। यदि इनसे प्राप्त डेटा का उपयोग किया जाए, तो पूर्वानुमान और भी प्रभावी हो सकता है।
- **बहुभाषी स्वास्थ्य पोर्टल :** भारत जैसे देश में यदि स्वास्थ्य ऐप्स स्थानीय भाषाओं में उपलब्ध हों, तो वे अधिक लोगों तक पहुँच सकेंगी।

- **साहित्य और तकनीक का संगम :** भविष्य के अध्ययन में यह देखा जा सकता है कि किस प्रकार रोगियों के डिजिटल आख्यान (ब्लॉग, वीडियो, कविताएँ) और मशीन लर्निंग मॉडल मिलकर एक संयुक्त स्वास्थ्य–साहित्यिक विमर्श बना सकते हैं।

10. नैतिक विमर्श :

स्वास्थ्य डेटा पर आधारित किसी भी तकनीक को लागू करने से पहले नैतिक पहलुओं पर विचार करना आवश्यक है।

- **डेटा गोपनीयता :** मरीजों का डेटा अत्यंत संवेदनशील होता है। इसे सुरक्षित रखना और किसी तीसरे पक्ष को न बेचना एक प्राथमिक जिम्मेदारी है।
- **पारदर्शिता :** यदि किसी ऐप या पोर्टल में मशीन लर्निंग मॉडल का उपयोग किया जा रहा है, तो उपयोगकर्ता को यह स्पष्ट जानकारी दी जानी चाहिए कि उसका डेटा कैसे और क्यों प्रयोग हो रहा है।
- **पूर्वाग्रह (Bias) :** केवल एक वर्ग के डेटा पर आधारित मॉडल पक्षपाती हो सकता है। इसलिए विविध समूहों का डेटा उपयोग करना आवश्यक है।
- **चिकित्सक की भूमिका :** मशीन लर्निंग कभी भी डॉक्टर का विकल्प नहीं हो सकती। यह केवल एक सहायक उपकरण है। अंतिम निर्णय हमेशा विशेषज्ञ चिकित्सक को ही करना चाहिए।

11. निष्कर्ष :

यह शोध कार्य दर्शाता है कि मशीन लर्निंग न केवल एक तकनीकी उपकरण है, बल्कि यह साहित्यिक और सामाजिक विमर्श का भी हिस्सा बन सकता है।

तकनीकी दृष्टि से देखा जाए तो डिसीजन ट्री एल्गोरिद्म ने मधुमेह पूर्वानुमान में सर्वश्रेष्ठ परिणाम दिए।

साहित्यिक दृष्टि से, रोग पूर्वानुमान केवल सांख्यिकीय परिणाम नहीं है, बल्कि यह लोगों की जीवन–कथा का हिस्सा बनता है।

सामाजिक दृष्टि से, डिजिटल युग में रोग आख्यान ब्लॉग, सोशल मीडिया और ऑनलाइन समुदायों के माध्यम से एक नए साहित्य का निर्माण कर रहे हैं।

अतः, यह अध्ययन केवल स्वास्थ्य सेवा तक सीमित नहीं है, बल्कि यह इक्कीसवीं सदी के साहित्यिक विमर्श का भी हिस्सा है। भविष्य में यदि तकनीक और साहित्य मिलकर काम करें, तो स्वास्थ्य संबंधी जागरूकता और सामाजिक संवाद दोनों को नई दिशा मिल सकती है।

12. संदर्भ :

1. World Health Organization (2023). Diabetes Fact Sheet. https://www.who.int/news-room/fact-sheets/detail/diabetes
2. Dua, D., & Graff, C. (2017). PIMA Indians Diabetes Dataset. UCI Machine Learning Repository.
3. Patel, R., & Sharma, V. (2022). Comparative Analysis of Machine Learning Algorithms for Diabetes Prediction. International Journal of Emerging Technology, 13(4), 201–208.

4. Kleinman, A. (1988). The Illness Narratives: Suffering, Healing, and the Human Condition. Basic Books.
5. Kaur, M., & Sharma, S. (2021). Early Detection of Diabetes using Decision Tree Algorithm. Journal of Health Informatics in Developing Countries, 15(2), 45–52.
6. Yadav, A., & Jaiswal, S. (2023). Logistic Regression and SVM based Diabetes Prediction Model. AI in Healthcare Journal, 5(1), 10–17.
7. Sharma, K. (2023). Application of Machine Learning in Healthcare: An Overview. AI Journal India.
8. Arthur Frank (1995). The Wounded Storyteller: Body, Illness, and Ethics. University of Chicago Press.

Email : ishvithashree@gmail.com
M. 8305618990

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Sept. 2025 Page No. : 80-83

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

संवेदनहीन होती मनुष्यता और साहित्य की भूमिका

नयना जैन, शोधार्थी
डॉ० सुमन कौशिक, मार्गदर्शिका
सी० एम० आर० विश्वविद्यालय, बैंगलुरु।

मानव सभ्यता का इतिहास संवेदनाओं के उतार–चढ़ाव का इतिहास है। मनुष्य ने सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक विकास के क्रम में अनेक मूल्य और आदर्श गढ़े, जिन्होंने उसे मात्र जैविक प्राणी से एक संवेदनशील सामाजिक इकाई बनाया। किंतु आधुनिक युग में, विशेषतः तकनीकी प्रगति और उपभोक्तावादी संस्कृति के प्रभाव में, मनुष्यता के संवेदनात्मक आयाम तेजी से क्षीण होते जा रहे हैं। संवेदनहीनता की यह प्रवृत्ति न केवल व्यक्ति–व्यक्ति के संबंधों में दूरी पैदा कर रही है, बल्कि सामाजिक संरचना की मानवीयता को भी चुनौती दे रही है। आज का समय एक विचित्र विडम्बना का समय है, जहाँ तकनीकी प्रगति, आर्थिक उन्नति और वैश्विक सम्पर्क की गति ने मनुष्य को अभूतपूर्व सुविधाएँ दी हैं, किन्तु इन सुविधाओं के बीच वह अपने भीतर के सबसे मूल और आवश्यक गुण संवेदना को खोता जा रहा है। संवेदनहीनता का अर्थ हैकृ दूसरे के सुख–दुःख, पीड़ा और भावनाओं के प्रति उदासीनता या असंवेदनशील होना। यह केवल भावनात्मक कमी नहीं, बल्कि मानसिक दृष्टिकोण में ऐसा परिवर्तन है, जिसमें व्यक्ति का 'मैं' इतना प्रबल हो जाता है कि 'हम' की अवधारणा गौण हो जाती है।

जीवन के सभी क्षेत्रों में स्पर्धा, उपभोगवाद और आत्मकेन्द्रित दृष्टिकोण का इतना गहरा प्रभाव पड़ चुका है कि दूसरों के दुःख–दर्द, पीड़ा और संघर्ष को महसूस करने की क्षमता मनुष्य की मानो क्षीण होती जा रही है। यह स्थिति केवल व्यक्तिगत स्तर तक सीमित नहीं है, समाज, राजनीति, शिक्षा, मीडिया और यहाँ तक कि पारिवारिक सम्बन्धों में भी एक तरह का भावनात्मक सूखापन अनुभव होने लगा है। इस संवेदनहीनता के बढ़ते हुए विस्तार ने मानवीय मूल्यों के क्षरण की प्रक्रिया को तेज कर दिया है, जिससे सह–अस्तित्व, परस्पर सम्मान और करुणा जैसे मानवीय आदर्श निरन्तर हाशिये पर चले जा रहे हैं।

मनुष्य का इतिहास बताता है कि सभ्यता का विकास केवल भौतिक साधनों और तकनीकी आविष्कारों से नहीं हुआ, बल्कि भावनाओं, विचारों और अनुभवों के गहन आदान–प्रदान से भी हुआ है। जब–जब मनुष्य ने दूसरों के दुःख को अपना दुःख माना, जब–जब उसने करुणा और परोपकार को अपने जीवन का केन्द्र बनाया, तभी सभ्यताओं ने उन्नति के साथ–साथ मानवीय गरिमा को भी सुरक्षित रखा। किन्तु आज का यथार्थ यह है कि भौतिक प्रगति ने मनुष्य को बाहरी रूप से सम्पन्न अवश्य किया है, किन्तु उसकी आत्मा को एक अजीब प्रकार के एकान्त, उदासीनता और संवेदनहीनता में धकेल दिया है। आधुनिक जीवन की आपाधापी, भागदौड़ और

उपभोक्तावादी प्रवृत्ति ने मानवीय रिश्तों को लेन–देन का साधन बना दिया है, जहाँ हित, लाभ और स्वार्थ के बिना सम्बन्धों का मूल्य नहीं रह गया है।

ऐसे समय में साहित्य की भूमिका केवल एक कलात्मक अभिव्यक्ति तक सीमित नहीं रह जाती, वह मानवीय चेतना के पुनर्जागरण का माध्यम बनकर सामने आता है। चंद्रकांता बंसल के मतानुसार– "साहित्य सृजन भी एक सृष्टि है और प्रत्येक सृष्टि के पीछे द्वन्द्वात्मक गति निहित होती है। प्रत्येक साहित्यकार अपनी रचना दृष्टि से मनुष्य, प्रकृति, समाज के संघर्ष को विश्लेषित करता हुआ साहित्य में अभिव्यक्त करता है यानि कि साहित्य समाज की सबसे अधिक वैयक्तिक और व्यक्ति की सबसे अधिक सामाजिक क्रिया है।"[1] साहित्य केवल शब्दों का खेल नहीं है, यह मानवीय अनुभवों की जीवित धरोहर है, जो भावनाओं के सबसे सूक्ष्म स्पन्दनों को भी स्वर देती है। जब समाज में संवेदनाएँ क्षीण होने लगती हैं, तब साहित्य एक दर्पण बनकर हमें हमारी विकृतियों का परिचय कराता है और साथ ही एक दीपक बनकर उन अँधेरों में प्रकाश भरने का प्रयत्न करता है जहाँ मनुष्यता का मार्ग खो गया है। "परिवर्तन के दौर में मानव समुदाय में परस्पर सामंजस्य व सौजन्य के साथ–साथ विद्वेष और अलगाव की भावनायें भी सहज ही प्रस्फुटित होती जाती है। भावनाओं के इसी सहज उच्छलन के कारण प्रेम, सद्भाव, घृणा, सहयोग, मैत्री, स्नेह, शत्रुत्व, बंधुत्व जैसे संबंध स्थापित होने लगते हैं और समाज में धीरे–धीरे मान्य हो जाते हैं फिर इन्हीं मान्य संबंधों और मूल्यों का चित्रण साहित्य में होता है क्योंकि साहित्य समाज का दर्पण है, प्रतिफलन है।"[2]

साहित्य का सबसे बड़ा गुण यही है कि वह मनुष्य को मनुष्य से जोड़ता है। वह किसी एक व्यक्ति या वर्ग की पीड़ा को सार्वभौमिक बनाकर पाठक के हृदय तक पहुँचा देता है। कबीर के दोहे, तुलसीदास की करुणा, प्रेमचन्द के किसानों की दारुण स्थिति, महादेवी वर्मा की कोमल संवेदनाएँ, शमशेर और मुक्तिबोध के समय बोध– ये सभी इस तथ्य के प्रमाण हैं कि साहित्य केवल समय का दस्तावेज नहीं, बल्कि एक नैतिक आह्वान भी है। जब प्रेमचन्द 'गोदान' में होरी की विवशता का चित्रण करते हैं, तो वह केवल एक किसान की कथा नहीं होती, बल्कि उस युग की सामाजिक असमानताओं और शोषण की नंगी सच्चाई भी होती है, जो पाठक के मन में करुणा और आक्रोश दोनों जगाती है। साहित्य केवल भावनाओं का पोषण नहीं करता, बल्कि अन्याय, शोषण और हिंसा के खिलाफ प्रतिरोध का स्वर भी बनता है। पाब्लो नेरुदा, मुक्तिबोध और महादेवी वर्मा के लेखन इसका प्रमाण हैं। साहित्य भाषाई और भौगोलिक सीमाओं को पार कर, एक साझा मानव अनुभव का निर्माण करता है। टॉल्सटॉय, और टैगोर जैसे लेखक विश्व मानवता का बोध कराते हैं।

पुष्पपाल सिंह के मतानुसार– "क्षरित होते श्रेष्ठ जीवन–मूल्यों को बचाने की चिंता साहित्यकार की ही चिंता क्यों है, वह भी शेष संसार के साथ उसी गति और विधि से क्यों नहीं चल सकता? साहित्यकार, उपन्यासकार की चिंता कबीर की ही चिंता है जो 'सुखिया संसार' के बीच 'दुखिया' बनकर जागता और रोता है– 'सुखिया सब संसार है खावै और रोवै, दुखिया दास कबीर है, जागे और रोवै।' यही पीड़ा तुलसी की रही जिन्होंने 'सबसे भले मूढ़ जन जिन्हैं न ब्यापै जगत गति' कहकर मानव–कल्याण के लिए अपनी सारी शब्द–साधना की। कमलेश्वर के 'कितने पाकिस्तान' उपन्यास का कथन कि प्रत्येक युग में साहित्यकार, अदीब ही मानवीय मूल्यों की चिंता करता है, इसीलिए प्रत्येक अत्याचार और अनाचार के खिलाफ उसकी शब्द– शक्ति फूट पड़ती है, 'मत भूलो महमूद! किसी भी दौर के अत्याचारों अनाचारों के खिलाफ खड़ा होने वाला

कोई–न–कोई अदीब हमेशा एक नैतिक अदालत बनकर मौजूद रहता है।' उपन्यास में वृद्ध को अदीब की ही प्रतिकृति के रूप में प्रस्तुत किया गया है जिसे मानवीयता की विलुप्ति की पीड़ा निरंतर सालती है, जहां भी मानवीयता इंसानियत की हत्या होती है, वहां वह अपने को खड़ा पाता है।'[3]

आज की संवेदनहीनता केवल व्यक्तिगत असंवेदनशीलता नहीं, बल्कि संरचनात्मक है। मीडिया में हिंसा और दुर्घटनाओं का उपभोग, सोशल मीडिया पर पीड़ा का तमाशा, राजनीति में मानवीय मुद्दों का हाशिये पर चले जाना ये सब इस बात के संकेत हैं कि हमारी सामूहिक चेतना में संवेदनाओं का स्थान लगातार सिकुड़ रहा है। यहाँ साहित्य उस खोई हुई संवेदना को पुनर्जीवित करने का कार्य कर सकता है। वह व्यक्ति को स्वयं के भीतर झाँकने को विवश करता है, अपने व्यवहार, अपने दृष्टिकोण और अपनी प्राथमिकताओं का पुनर्मूल्यांकन कराता है।

'समकालीन उपन्यास हाल के वर्षों में बहुत तेजी से अपनी प्रवृत्ति को 'तात्कालिकता' की ओर उन्मुख कर लेता है। बिल्कुल सन्निकट का वर्तमान उपन्यास की चिंता का केंद्रीय विषय बनकर उभरता है। बाबरी मस्जिद प्रकरण,गोधरा कांड तथा उसके बाद गुजरात नर–संहार, देश में चारों ओर फैली सांप्रदायिकता, कश्मीर का निरंतर सुलगते रहना, भूमंडलीय ग्राम के प्रसाद रूप में अपसंस्कृति के अनेकानेक आक्रमण, उपभोक्तावाद, नव बाजारवाद तथा उसकी मुक्त बाजार व्यवस्था सांस्कृतिक विरूपण, आदि जैसे राष्ट्रीय महत्व के तात्कालिक मुद्दे उपन्यास की चिंता पर छाए रहे हैं।'[4]

सुरेश धीगड़ा के अनुसार –'स्थिति यह है कि जब भी कोई परंपरागत तथा कर्तव्य और धर्मनिष्ठ समाज परिवर्तित होता है तो उसका प्रभाव दूरगामी होता है और समाज आधुनिकीकरण की ओर अग्रसर होता है। समाज को इतिहास की इसी पृष्ठभूमि में समझा जा सकता है, जिसे साहित्य अपना आधार बनाकर चलता है। इस परिवर्तन दिशा पर ही साहित्य का जीवन निर्भर करता है।"[5]

साहित्य की शक्ति यह है कि वह किसी भी जड़ को हिला सकता है। एक मार्मिक कविता, एक सशक्त कहानी, या एक गहन उपन्यास– ये सब हमारे भीतर दबी हुई करुणा, सहानुभूति और मानवीय जुड़ाव को जागृत कर सकते हैं। जब निर्मल वर्मा अपने पात्रों की सूक्ष्म मानसिक स्थितियों को चित्रित करते हैं, तो वे हमें यह याद दिलाते हैं कि मनुष्य की सबसे बड़ी सम्पदा उसकी संवेदनशीलता है, न कि उसकी भौतिक उपलब्धियाँ। यही कारण है कि साहित्यकार केवल लेखक नहीं, बल्कि समय के साक्षी और समाज के सजग प्रहरी होते हैं।

संवेदनहीनता के इस युग में साहित्य का एक और महत्त्वपूर्ण कार्य है– आलोचनात्मक चेतना का विकास। संवेदना केवल भावुकता नहीं है, बल्कि यह एक जागरूक और विवेक पूर्ण दृष्टिकोण भी है, जो अन्याय, शोषण और असमानता के विरुद्ध खड़ा होने का साहस देता है। जब पाश लिखते हैं–"सबसे खतरनाक होता है हमारे सपनों का मर जाना" तो यह केवल कविता नहीं, बल्कि संवेदनाओं के मरने के खिलाफ एक युद्धघोष है। साहित्य हमें सिखाता है कि संवेदनशील होना केवल किसी के दुःख पर आँसू बहाना नहीं, बल्कि उस दुःख के कारणों को समझना और उन्हें बदलने के लिए प्रयत्नशील होना भी है।

इसके अतिरिक्त, साहित्य सांस्कृतिक स्मृति को जीवित रखने का भी माध्यम है। परम्पराएँ, लोककथाएँ, मिथक, और ऐतिहासिक घटनाएँ, इन सबका सजीव चित्रण साहित्य के माध्यम से ही संभव होता है। जब आधुनिकता की अन्धी दौड़ में मनुष्य अपनी जड़ों से कटने लगता है, तब साहित्य उन जड़ों की याद दिलाता है, जिनसे

कटकर कोई भी सभ्यता जीवित नहीं रह सकती। यह स्मृति ही संवेदनाओं की भूमि को पोषित करती है।

आधुनिक युग में जहाँ मनुष्य अपने ही बनाए हुए डिजिटल संसार में अधिक समय बिताने लगा है, वहाँ साहित्य एक मानवीय स्पर्श बनकर उसकी आत्मा को छू सकता है। यह हमें यह भी सिखाता है कि तकनीकी प्रगति और भौतिक सुविधा के बीच भी मानवीय मूल्य और संवेदनाएँ ही जीवन को अर्थपूर्ण बनाती हैं। यदि हम संवेदनाओं को खो देंगे, तो चाहे हम कितनी भी ऊँचाई पर पहुँच जाएँ, हमारी प्रगति खोखली और आत्मविनाशी होगी। संवेदनहीनता केवल व्यक्तिगत गुण का ह्रास नहीं, बल्कि पूरी सभ्यता के संतुलन के लिए खतरा है। जब मनुष्य दूसरों की पीड़ा और आनंद से कट जाता है, तो सामाजिक ताना–बाना टूटने लगता है। ऐसे समय में साहित्य एक सांस्कृतिक चिकित्सक की तरह कार्य करता है, जो मानवीय मूल्यों को पुनर्जीवित करता है, सहानुभूति को पोषित करता है, और हमें याद दिलाता है कि हम मशीन नहीं, संवेदनशील प्राणी हैं।

अतः आज आवश्यकता इस बात की है कि साहित्य को केवल मनोरंजन या शौक की वस्तु न मानकर, उसे मानवीय संवेदना के पुनर्निर्माण का एक सशक्त साधन समझा जाए। स्कूलों, विश्वविद्यालयों, सार्वजनिक मंचों और डिजिटल प्लेटफॉर्मों पर साहित्य की सशक्त उपस्थिति हो, ताकि नई पीढ़ी केवल तकनीकी दक्षता ही नहीं, बल्कि मानवीय करुणा, सहानुभूति और विवेक के साथ भी आगे बढ़े। साहित्य हमें यह सिखाता है कि मनुष्य होना केवल शरीर और बुद्धि का होना नहीं, बल्कि हृदय और आत्मा का भी जीवित रहना है।

संवेदनहीन होती मनुष्यता के इस दौर में साहित्य एक ज्योति की भाँति है, जो अन्धकार में भी प्रकाश देती है, एक संगीत की तरह है, जो कठोरतम हृदय को भी पिघला सकता है, और एक दर्पण की तरह है, जो हमें हमारा वास्तविक चेहरा दिखा सकता है। यदि हम इस ज्योति, इस संगीत और इस दर्पण से मुँह मोड़ लेंगे, तो हमारी सभ्यता का अस्तित्व केवल तकनीकी चमत्कारों का ढाँचा भर रह जाएगा, जिसमें जीवन तो होगा, पर मनुष्यता नहीं। इसलिए साहित्य की भूमिका केवल महत्त्वपूर्ण ही नहीं, बल्कि अनिवार्य है, क्योंकि यह हमें याद दिलाता है कि संवेदना ही मनुष्य की सबसे बड़ी पहचान है, और उसके बिना हम केवल एक भीड़ भर रह जाएँगे, जिनमें हृदय तो धड़केंगे, पर मनुष्यता नहीं।

संदर्भ :

1. चंद्रकांता बंसल ,सातवें दशक की हिन्दी कहानी में मानवीय संबंध, पृ. 20–21
2. चंद्रकांता बंसल ,सातवें दशक की हिन्दी कहानी में मानवीय संबंध, पृ. 4
3. पुष्पपाल सिंह, भूमंडलीकरण और हिंदी उपन्यास, पृ. 265–266
4. पुष्पपाल सिंह, भूमंडलीकरण और हिंदी उपन्यास, पृ. 79–80
5. सुरेश धीगड़ा, हिंदी कहानी दो दशक, पृ. 35

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Sept. 2025 Page No. : 84-87

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

सरकार की विफल योजनाएँ, टूट गया किसान पर न टूटी 'कालिचाट'

अन्नपूर्णा भोसले

शोधार्थी, कर्नाटक राज्य अक्कमहादेवी महिला विश्वविद्यालय, विजयपुर।

सारांश :-

हिंदी साहित्य में ग्रामीण जीवन की सच्चाईयों को आधार बनाकर कथा रचने की एक लंबी परंपरा है और यह परंपरा प्रेमचंद से प्रारंभ होकर रेणु, अमरकांत से गुजरते संजीव, सुनील चतुर्वेदी तक आ पहुंचती है। सुनील चतुर्वेदी की 'कालीचाट' उपन्यास सार्थक एवं सशक्त अभिव्यक्ति है। प्रस्तुत उपन्यास हमें वर्तमान जीवन में किसान जीवन संघर्ष की तीखी अनुभूति से पाठकों का सामना कराती है। यह अनुभूति न काल्पनिक है, न तत्कालीन है यह सिंद्रानी गाँव की सच्चाई है। कालीचाट यानी "काला चट्टान"। अनथक परिश्रम के बाद भी समस्याएँ किसान के जीवन में कालीचाट की तरह रह जाते हैं। यह उपन्यास न केवल किसान त्रासदी के बारे में बताता है बल्कि प्रशासन की नाकामयाब योजनाएँ युनुस को किस प्रकार मृत्यु तक ले जाते हैं इसको भी अभिव्यक्ति करता है। इसके साथ बाजारवाद और भूमंडलीकरण के प्रभाव से किसान का बेटा अपना जमीन बेचकर शहर की चकाचौंध में जीवन गुजारने में इच्छुक हैं। इसके अलावा बैंक कार्यालय में किसान को नहीं उसके कागजात पर भरोसा करके ऋण देने की प्रक्रिया ने किसान को किस प्रकार अपना सब कुछ बेचने पर मजबूर कर रहा है इस बात पर भी प्रकाश डाला गया है। भीमाबा, मूंछ जैसे साहूकार तथा रामप्रसाद जैसे मध्यवर्ती किसान को किस प्रकार ऋण के जाल में फंसाते हैं इसका भी चित्रण हमें मिल जाता है। कर्ज के भय से गाँव छोड़कर भागने वाला शिबू और सबसे लड़कर दो एकड़ जमीन पर अपना अस्तित्व खायं करने वाली रेशमी यानी शिबू की पत्नी। पति द्वारा पीड़ित रुकमणि का संघर्षमय जीवन इस उपन्यास की सार्थकता को बढ़ाता है।

मूल शब्द :- किसान, कालिचाट, कर्ज, संघर्ष, साहूकार, चूजें, बैंक, कुआँ, सरकारी योजनाएँ, आत्महत्या।

कालीचाट उपन्यास में राजनेताओं के चरित्र का भी पर्दाफाश हुआ है। जनता के हित में चलाई जाने वाली सभी योजनाएँ अंत में नेताओं और बिचौलियों के स्वार्थों का ही साधन बनता है। सिंद्रानी गाँव के नीचे एक बहुत बड़ी कालीचाट है, जिसके टूटने के बाद ही आसपास के गाँवों में भी पानी ही पानी हो जाएगा। यूनुस अपनी जमीन में टूबवेल डालने की आशा में अपनी दो एकड़ जमीन भीमाबा के पास गिरवी रखता है। टुबवेल चार सौ मीटर तक खुदवाता है किंतु पानी नहीं निकलता है। फिर भी वह हिम्मत नहीं हारता "बीस हजार का जुओ खेलियों तो समझूगाँ। अब ऋण कटने से कई होने जाना है।"[1] फिर भी यूनुस की आस न बुझी खेत में

कुआँ कोदने की पूरी कोशिश करता रहा है। पत्नी और बच्चों के साथ मिलकर लगभग दस फिट तक खोदने के बाद वहाँ कालीचाट निकलती है। किसी ने उसको सलाह दिया "दस बीस टोटे लग जाए तो कालीचाट के नीचे कम से कम दस की मोटर चले इत्तो पानी निकल सके हैं।"[2] टोटा निकलवाने के लिए मूंछ के पास जमीन के ऊपर पाँच हजार का ऋण और लेता है फिर भी एक चिड़िया की चोंच गीली होने जितना पानी नहीं आया। युनुस सूखे कुएँ की तली को देखते हुए सोच रहा था "किसान की तो पूरी जिंदगी कालीचाट जैसी है। अंधेरा और खड़का क्या मालूम यह चाट कब टूटेगी? कब इसके भरभरा के पानी का आकाल फूटेगा और किसान की जिंदगी में ठंडे पानी के छींटे आएगी? कब...कब।"[3] यूनुस अपनी पत्नी की झुमके रखकर सरकार की योजना के तहत चूजें खरीदता है। सौ चुजों से भरी एकाएक गाड़ी यूनिस के घर के सामने उतारकर चली जाती है। चुजों को कैसे पालना है इस बात की जानकारी युनुस को नहीं थी और नाहीं सरकारी अधिकारियों ने बताया था। चूजों को एक बक्से में डालकर रखा तो सुबह तक सारे चूजें मर चुके थे। उसके तीन दिन बाद चूसों के लिए खाना आया। इस प्रकार सरकार की असफल योजनाएँ किसानों के लिए घातक साबित हो रहे हैं। यूनिस ने हार नहीं माना आत्महत्या के लिए सोचा भी नहीं। उसने फिर से कुछ करने की ठानी मुर्गी पालन की घाटे के बाद गाय पालने की उसने ठानी। बचा हुआ तीन एकड़ जमीन गिरवी रखकर पंद्रह हजार में सरकार से एच.एफ गाय खरीदा। ना ही उसका दूध बिका और उसके बछड़े के शरीर पर कुंदर ही नहीं था। वहीं गाय को घाटे में उसने चार हजार रूपये में वापस अधिकारी को बेच दिया। क्योंकि "ये विदेशी गाय थी निमाड की गर्मी सह नहीं सकी। इसके लिए कूलर लगाओ यूनुस भैया नहीं तो यह मर जाएँगी।"[4]

बिना विचारधारा के सरकारी योजनाएँ : किसान की पूरी जमीन गिरवी रखने पर मजबूर कर गई। जिसके पास गिरवी था मूंछ ने उस पर बैंक से पैतींस हजार कर्जा भी लिया था। नोटिस भी मिल गई। दस दिन में बैंक से नई लोन लेकर सब चुकाने की आशा में साहूकार के पास युनुस कर्ज लेता है। बैंक का लोन मंजूर नहीं हो पाता है। युनुस का पूरा जमीन साहूकार के नाम हो जाता है और इस सदमे से वह बाहर नहीं आ पाता और वह मर जाता है। यह मौत नहीं प्रशासनिक हत्या थी सरकारी विफल योजनाओं की।

इन सारी अमानवीय परिस्थितियों और विडंबनाओं के साथ संवेदना, सहानुभूति और अनुकरणीय उदाहरण प्रस्तुत करते दो महिलाओं का चरित्र रेशमी और रुक्मणी। दोनों अकेली किंतु उतनी ही शक्तिशाली। भीमाबा के गाडी के नीचे आकर सहीबु अपना पैर गवा देता है। उसके इलाज के खातिर भीमाबा दो एकड़ जमीन गिरवी रख लेता है। रेशमी को काम करता देख साहिबु मन में द्रवित हो जाता है। जब अपनी जमीन भीमाबा से पूछने जाता है तो उसको जवाब मिलता है कि जमीन तो ब्याज सहित पूरा पैसा चुकाने के बाद मिलेगा। इतना ही नहीं भीमाबा ने उस जमीन पर बैंक से कर्जा भी ले रखा था। साहिबू को बैंक से कुर्की का आदेश मिल गया। "तनै बैंक से बीस हजार लेके हो वापस नहीं भरियो तो वे अब बड़कर बत्तीस हजार हो गए हैं सात दिन में तू ने पैसे न भरेगा तो बैंक थारी जमीन और घर नीलामी कर देगी।"[5] भीमाबा के यहाँ मजदूरी करने पर न सोचने वाला साहिब कुर्की के नाम से डर गया। स्वाभिमान और मर्यादा ने उसे घर से भागने के लिए मजबूर कर दिया। अट्ठारह साल के बाद भी रेशमी और उसके बेटा सुरेश को यह पता न चला कि वह जिंदा भी है या मर गया है। आखिर तक रेशमी संघर्ष करती रहीं। किंतु उसका बेटा भी निकम्मा निकला। उसने दो एकड़ जमीन बेच दी जो रेशमी को मंजूर नहीं था। इस सदमे से वह बाहर न आ सकी। अंत तक रुक्मणी उसकी देखभाल करते

हुए इस उपन्यास में नजर आती है।

प्रताड़ित महिला का पात्र रुखमिनी का है। पत्नी और जेठानी के अवैध संबंध एवं यातनाओं के चलते माता –पिता के पास लौट आती है। बेटी के जीवन के लिए कालूजी ने जमीन के तीन हिस्से कर दिए थे। एक हिस्सा बेटे अमरसिंह को, दूसरा पति पत्नी के लिए हो और तीसरा रुक्मिणी के नाम पर। पुत्री को जायदाद में हक देने के बाद से रुको की अम्मा नाराज होकर बेटे के पास रहने के लिए चली गई। कालू जी के पेट में कैंसर का घाट हो गया था जिसका इलाज ना होने के कारण वह भी चल बसे। किंतु क्रूरी बेटे ने मुख्यमंत्री राहत कोष से ढेढ़ लाख रुपये की मदद मंजूर कर ली थी। थोड़े पैसे डॉक्टर को देखकर बाकी उसने हड़प लिया था। उसका पुत्र महेश भी उसके पिता के पास लौट जाता है। रुखमिनी को पहली बार अकेलापन सता रहा था–" जी जी मैं आज एकदम अकेली हो गई अब मेरे जीने को कोई मतलब है भगवान मेरे भी उठा ले तो अच्छा करे।"[6] कहकर अपना दु:ख व्यक्त करती है। पिता द्वारा दी गई जमीन को गाँव की आंगनबाड़ी केंद्र के लिए रुक्को दान में दे देती है। उसकी हर सुख–दुख में उसके पास मजबूत कड़ी बनकर रेशमी थी। दोनों एक दूसरे के सुख–दुख से अच्छी तरह से जानती थी फिर भी जब भी मिलती थी अंदर की ज्वालामुखी रसने लगता। दोनों एक दूसरे को सुनती और एक दूसरे के भाव को सहलाती। एक दूसरे को संभालती।

सिंद्रानी गाँव में कॉर्पोरेट सेक्टर आ गए थे। कंपनी द्वारा किसानों की जमीन खरीदने के तथा उसके बदले में उनके बेटों को कंपनी में उद्योग देने की लालच दी जा रही थी। जो कंपनी को जमीन बेचेगा उसके घर के पड़े लिखे लड़के को फॉर्म पर नौकरी में रखा जाएगा। इससे आकर्षित गाँव के युवा अपने घरवालों को खेती बेचने पर मजबूर कर रहे थे। इसमें से एक था रेशमी का बेटा सुरेश। रेशमी किसी भी सूरत में जमीन बेचने को तैयार नहीं थी पिछले तीन साल से लगातार फसल बिगड़ रही थी पिछले दो साल से बरसात कम हुई थी और कम हुई थी। इसीलिए सुरेश भी खेत बेचना चाहता था। किसान का बेटा किसान बनना नहीं चाहता है। रेशमी को मनाने के लिए वह कीटनाशक की बोतल भी उठा लेता है। अंत में जमीन बेचने में वह सफल भी हो गया।

'देश के किसानों की दशा और दिशा 'विषय पर आयोजित कार्यशाला में सिंद्रानी का समाज सेवक दिनेश ने सहभागिता ली थी। जिसमें कुछ प्रमुख अंशों पर चर्चा हुई। संस्था के प्रतिनिधि का भाषण इस प्रकार था–"हमारे किसान अशिक्षा, अज्ञान के कारण कृषि की नई तकनीकों को नहीं अपना पा रहे है। खेती में नए–नए प्रयोग करने से कतरा रहे हैं। सरकार की लाख कोशिशों के बाद भी किसान परंपरागत खेती छोड़ना नहीं चाहते है। इसलिए खेती किसान के लिए लाभ का सौदा नहीं बन पा रहा है। इसके साथ प्राकृतिक आपदा उन्हें पूरा तोड़ देती है क्योंकि उसके पास आपदा प्रबंधन का कोई ज्ञान नहीं है। और वह खेती में नुकसान सहन नहीं कर पाता और आत्महत्या कर लेता है।"

इस बात पर दिनेश अपना अनुभव कुछ इस प्रकार अभिव्यक्त करता है। पिछले बीस सालों से सरकार ने किसानों के लिए जितनी भी योजनाएँ लागू की है उसका हश्र क्या हुआ है। गाँव–गाँव में बिचौलिए पैदा हो गए हैं। किसान का तो भला नहीं हुआ लेकिन इन बिचौलियाँ एवं अधिकारियों की चांदी ही चांदी हो गयी। किसानों को सूदखोरों के चंगुल से निकालने के लिए बैंकिंग व्यवस्था का विस्तार किया गया। ग्रामीण प्रदेश में यह व्यवस्था कैसे काम कर रही है? किसी ने जानने की कोशिश तक नहीं की। सूदखोरों के जाल से आज तक

किसान निकल नहीं पाया। बैंक के मीडिएटर पैदा हो गए हैं। बैंक मीडिएटर सूदखोर के त्रिकोणीय व्यवस्था में किसान को लूटा जा रहा है। आज बाजार में सबसे सस्ता कुछ है तो वह है किसान का उत्पाद। "बाजारवाद आज कल ऐसी व्यवस्था को पैदा कर रहा है कि गाँव के ज्यादातर युवा अब बेहतर जीवन का सपना लिए शहर की ओर पलायन कर रहे हैं।"

उपसंहार :

सोचिए उस अन्नदाता की आज हाल क्या होगी? वह सरकार की नीतियों और बाजार में दबाव के चलते अपने लिए अन्न बाजार से खरीदकर खा रहे हैं। किसान अपनी मर्जी से फसल नहीं बो सकता। बीज खाद और कीटनाशक सब निर्णय बाजार कर रहा है। 'लुप्त होता हुआ प्रजाति है किसान'। एकदम से आत्महत्या करने के लिए नहीं सोचता। वह भी निरंतर संघर्ष करता रहता है। आज नहीं तो कल उसके हालत सुधरेगे इस आशा के साथ जीवन व्यतीत करता रहता है। पर जब साहूकार बैंक के अधिकारी राजनेता सभी मिलकर उस को लूटने लगते हैं तो वह जाए तो कहाँ जाए? मरने के सिवा उसके पास बचता ही क्या है? किसान आत्महत्या रोकने के लिए आत्मस्थैर्य बढ़ाने वाली संस्थाओं का आरंभ होना जरूरी है। किसानों को ऋण के जाल से निकलना होगा। किसानों को सारी सुविधाएं तथा उत्पादन का उचित मूल्य सही समय पर मिले ऐसा प्रबंध प्रशासन द्वारा होना भी अति आवश्यक है। सरकार द्वारा जारी की गई सारी योजनाओं का लाभ किसानों को सही तरीके से मिले इस पर अधिक ध्यान देना होगा। इसीलिए हम सभी का दायित्व बनता है कि इन सभी के लिए हम कुछ करें। उनका हौसला बढ़ाए। सरकार एवं अधिकारी भी अपना रवैया बदलकर अन्नदाता की रक्षा करेंगे, उनको सब्सिडी एवं सही लागत मूल्य, अच्छे कृषि उतपन्न देंगे तो उनके जीवन की कालीचाट आवश्यक टूटेगी और उसके नीचे की नर्मदा मैया बाहर फूटेगी।

संदर्भ ग्रन्थ सूची :

1. सुनील चतुर्वेदी यकालीचाट, 2015, सं पहला संस्करण, अंतिका प्रकाशन गाजियाबाद, 30
2. वही – 52
3. वही – 57
4. वही – 124
5. वही – 118
6. वही – 146

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-07115
Sept. 2025 Page No. : 88-94

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

साइबर सुरक्षा : डिजिटल युग की आवश्यकता एवं जन–जागरूकता का विश्लेषण (प्रधानमंत्री मन की बात कार्यक्रम के विशेष सन्दर्भ में)

डॉ. उमेश कुमार
एसोसिएट प्रोफेसर, जनसंचार एवं नवीन मीडिया विभाग,
जम्मू केंद्रीय विश्वविद्यालय, साम्बा, जम्मू और कश्मीर।
डॉ. क्रांति कुशवाहा
जनसंचार एवं पत्रकारिता विभाग, चौधरी बंशीलाल विश्वविद्यालय, भिवानी, हरियाणा।

सारांश :–

यह शोधपत्र डिजिटल युग में साइबर सुरक्षा की बढ़ती आवश्यकता, इससे संबंधित चुनौतियों, और जन–जागरूकता के महत्व का विश्लेषण करता है। जैसे–जैसे भारत डिजिटल क्रांति की ओर अग्रसर हो रहा है, साइबर अपराधों की घटनाएँ भी समानांतर रूप से बढ़ रही हैं, जिससे नागरिकों की गोपनीयता, डेटा सुरक्षा और सामाजिक संरचना पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ रहा है। इस संदर्भ में प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी द्वारा 'मन की बात' कार्यक्रम में प्रस्तुत विचारों का विश्लेषण किया गया है, जो साइबर सुरक्षा को केवल तकनीकी विषय न मानकर एक सामाजिक दायित्व और नागरिक कर्तव्य के रूप में स्थापित करते हैं। शोध में यह तर्क प्रस्तुत किया गया है कि जैसे 'स्वच्छ भारत' एक जन आंदोलन बना, उसी प्रकार 'सुरक्षित डिजिटल भारत' की संकल्पना को भी जन–भागीदारी द्वारा ही साकार किया जा सकता है। अध्ययन में साइबर खतरों (जैसे फिशिंग, डेटा लीक, साइबर बुलिंग) के उदाहरणों सहित चर्चा की गई है, और यह निष्कर्ष प्रस्तुत किया गया है कि साइबर सुरक्षा को विद्यालय स्तर से ही शिक्षा में शामिल कर, नीति–निर्माण और व्यवहारिक प्रशिक्षण के माध्यम से एक सशक्त साइबर–जागरूक समाज का निर्माण किया जा सकता है। यह शोध डिजिटल इंडिया की सफलता हेतु नागरिकों की जागरूकता और सहभागिता को केंद्रीय तत्व के रूप में रेखांकित करता है।

मुख्य शब्द : प्रधानमंत्री मन की बात, रेडियो, साइबर जागरूकता, सूचना और संचार प्रौद्योगिकी, डिजिटल इंडिया

प्रस्तावना :

21वीं सदी सूचना और संचार प्रौद्योगिकी (ICT) की क्रांति का युग है, जिसने वैश्विक स्तर पर पारस्परिक संवाद, डेटा प्रबंधन, ई–गवर्नेंस, ई–लर्निंग और डिजिटल लेन–देन को सरल एवं त्वरित बना दिया है। भारत सरकार द्वारा आरंभ किए गए 'डिजिटल इंडिया' जैसे अभियानों ने आम नागरिक को इंटरनेट से जोड़ने का

प्रयास किया है, जिसके परिणामस्वरूप देश में इंटरनेट उपयोगकर्ताओं की संख्या 90 करोड़ से अधिक हो चुकी है। परंतु, इस तकनीकी प्रगति के साथ साइबर अपराधों में भी तीव्र वृद्धि हुई है। ऑनलाइन धोखाधड़ी, डेटा चोरी, पहचान की जालसाजी, साइबर बुलिंग, और डिजिटल ब्लैकमेलिंग जैसे अपराधों ने डिजिटल जीवन को असुरक्षित बना दिया है। अतः यह आवश्यक हो गया है कि नागरिकों में साइबर सुरक्षा के प्रति जागरूकता विकसित की जाए और उन्हें एक जिम्मेदार 'डिजिटल नागरिक' के रूप में तैयार किया जाए।

प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने भी अपने लोकप्रिय रेडियो कार्यक्रम 'मन की बात' के विभिन्न प्रसंगों में साइबर सुरक्षा और डिजिटल जिम्मेदारी पर विशेष बल दिया है। उन्होंने तकनीकी ज्ञान के साथ–साथ नैतिक आचरण और सतर्कता को आवश्यक बताया है। उनके कथन– 'डिजिटल दुनिया में सतर्कता ही सुरक्षा है' के माध्यम से यह स्पष्ट होता है कि तकनीक के उपयोग के साथ जागरूकता और आत्म–नियंत्रण की भी आवश्यकता है। यह शोधपत्र साइबर सुरक्षा की अवधारणा, चुनौतियों, और सरकार व नागरिकों के साझा प्रयासों की पड़ताल करता है। साथ ही, इसमें शिक्षा प्रणाली में साइबर सुरक्षा को शामिल किए जाने, जन–जागरूकता अभियानों के विस्तार, और नीति–निर्माण की दिशा में आवश्यक सुझाव भी प्रस्तुत किए गए हैं। इस अध्ययन का उद्देश्य डिजिटल सुरक्षा को एक तकनीकी विषय से आगे बढ़ाकर सामाजिक और शैक्षिक विमर्श में स्थापित करना है, ताकि एक सुरक्षित, सशक्त और जागरूक डिजिटल समाज का निर्माण संभव हो सके।

शोध की आवश्यकता :

वर्तमान डिजिटल युग में जहां प्रत्येक व्यक्ति इंटरनेट, मोबाइल एप्स और ऑनलाइन सेवाओं से जुड़ा है, वहीं साइबर खतरों की आशंका भी दिन–प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। भारत जैसे विशाल जनसंख्या वाले देश में डिजिटल साक्षरता और साइबर सुरक्षा को लेकर व्यापक जागरूकता का अभाव देखा गया है, विशेषकर युवाओं, विद्यार्थियों और सामान्य उपयोगकर्ताओं में। अनेक लोग फिशिंग, हैकिंग, डेटा लीक, और ऑनलाइन ठगी जैसी घटनाओं का शिकार बनते हैं क्योंकि वे साइबर सुरक्षा के मूल सिद्धांतों से अनभिज्ञ होते हैं।

प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी द्वारा 'मन की बात' कार्यक्रम में इस विषय पर दिए गए वक्तव्यों से यह स्पष्ट होता है कि साइबर सुरक्षा को जन आंदोलन का रूप देने की आवश्यकता है। ऐसे में यह शोध आवश्यक हो जाता है, ताकि नागरिकों को साइबर खतरों से सजग किया जा सके और डिजिटल इंडिया की परिकल्पना को सुरक्षित और सशक्त स्वरूप प्रदान किया जा सके।

उद्देश्य :

- साइबर सुरक्षा की अवधारणा को समझना।
- नागरिकों की डिजिटल जिम्मेदारी को रेखांकित करना।
- जन–जागरूकता और शिक्षा के माध्यम से साइबर सुरक्षा को मजबूत बनाना।
- प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी के कथनों और उदाहरणों का विश्लेषण करना।

शोध विधि :

यह शोधपत्र वर्णनात्मक और गुणात्मक शोध विधियों पर आधारित है। अध्ययन का मुख्य उद्देश्य साइबर सुरक्षा की अवधारणा, उससे जुड़ी सामाजिक चुनौतियाँ, और प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी द्वारा 'मन की बात' कार्यक्रम में व्यक्त विचारों के माध्यम से नागरिक जागरूकता की दिशा में हो रहे प्रयासों का विश्लेषण करना है।

शोध के लिए द्वितीयक स्रोतों से डेटा संग्रह किया गया है। इसमें प्रमुख रूप से भारत सरकार के सूचना प्रौद्योगिकी मंत्रालय की वार्षिक रिपोर्टें, साइबर सुरक्षा नीति दस्तावेज, और 'मन की बात' के मूल भाषणों का उपयोग किया गया है। इसके अतिरिक्त अखबार, पत्रिकाएँ, शैक्षणिक लेख, नीति दस्तावेज और यूनेस्को, यूनिसेफ जैसे संगठनों की रिपोर्टों का भी संदर्भ लिया गया है।

विषय की संवेदनशीलता और नैतिक प्रकृति को देखते हुए शोध में विश्लेषणात्मक दृष्टिकोण अपनाया गया है, जहाँ कथनों के माध्यम से डिजिटल नैतिकता और साइबर जिम्मेदारी की अवधारणा को स्पष्ट किया गया है। अंततः यह शोध समाज, शिक्षा और नीति निर्माण के क्षेत्रों में व्यवहारिक समाधान और हस्तक्षेप की आवश्यकता को रेखांकित करता है।

विश्लेषण : **साइबर सुरक्षा संबंधी कथनों का विश्लेषण**

क्र.	एपिसोड/तिथि	कथन	विश्लेषण
1.	02 नवम्बर 2014	"डिजिटल दुनिया में सतर्कता ही सुरक्षा है।"	डिजिटल सतर्कता को स्वच्छता से जोड़ते हुए नागरिकों को साइबर अनुशासन अपनाने की प्रेरणा दी गई। यह कथन फिशिंग, अनजाने लिंक, और डिजिटल धोखाधड़ी से बचाव हेतु व्यवहारिक मार्गदर्शन है।
2.	03 अक्टूबर 2014	"साइबर स्पेस में जिम्मेदार नागरिक बनना समय की मांग है।"	डिजिटल नैतिकता और सोशल मीडिया की जिम्मेदारी पर बल दिया गया। यह कथन सोशल इंजीनियरिंग, ट्रोलिंग और डेटा प्राइवेसी के लिए चेतावनी स्वरूप है।
3.	14 दिसम्बर 2014	"ड्रग्स की कमाई से आतंकवाद को पैसा मिलता है..."	साइबर क्राइम की राष्ट्रीय सुरक्षा से संबद्धता को उजागर करता है। डिजिटल ठगी के आर्थिक प्रभावों पर बल।
4.	27 मार्च 2022	"सुरक्षित डिजिटल व्यवहार देश की सेवा का एक नया माध्यम है।"	फेक न्यूज़ रोकना, अफवाह न फैलाना और सूचना को सत्यापित करना डिजिटल राष्ट्रवाद की पहचान के रूप में प्रस्तुत किया गया।
5.	29 जनवरी 2023	"बच्चों को डिजिटल खतरों से बचाने के लिए संवाद आवश्यक है।"	साइबर बुलीइंग, गेमिंग व्यसन व गुमनाम चैट से बचाव हेतु पारिवारिक संचार का महत्व बताया गया।
6.	नियमित संदर्भ	"मजबूत पासवर्ड, मजबूत सुरक्षा।"	पासवर्ड प्रबंधन में नागरिकों की लापरवाही के विरुद्ध चेतावनी। सुरक्षा की प्रथम पंक्ति के रूप में पासवर्ड का महत्व।
7.	अभियान संदर्भ	"ओटीपी आपका है—	OTP आधारित फिशिंग से नागरिकों को सचेत करने हेतु

क्र.	एपिसोड/तिथि	कथन	विश्लेषण
		किसी से साझा नहीं।"	बहु-प्रचारित कथन।
8.	डिजिटल इंडिया संबोधन	"द्वि-कारक प्रमाणीकरण (2FA) आपका डिजिटल ताला है।"	खातों की सुरक्षा हेतु अतिरिक्त प्रमाणीकरण की आवश्यकता पर बल।
9.	मन की बात, 2018	"सोशल मीडिया पर कम साझा करें, ज्यादा सुरक्षित रहें।"	डिजिटल प्राइवेसी के प्रति व्यक्तिगत जागरूकता बढ़ाने का प्रयास।
10.	मन की बात, 2021	"फेक न्यूज का इलाज—सत्यापन।"	सूचनाओं की सत्यता सुनिश्चित करने के लिए नागरिकों को जिम्मेदार बनाना।
11.	डिजिटल साक्षरता भाषण	"ऐप वही—जो आधिकारिक स्टोर से हो।"	दुर्भावनापूर्ण ऐप्स से बचाव और ऐप परमिशन नीति की समझ को बढ़ावा।
12.	' डिजिटल भारत' बैठक	"अनुमति उतनी ही दें, जितनी जरूरी।"	डेटा संग्रहण सीमित रखने की आवश्यकता पर बल—पारदर्शिता और नियंत्रण की शिक्षा।
13.	मन की बात, 2020	"एन्क्रिप्शन—निजता का कवच है।"	व्यक्तिगत और राष्ट्रीय गोपनीयता की रक्षा में एन्क्रिप्शन तकनीकों का महत्त्व।
14.	यूथ संबोधन 2022	"साइबर स्वच्छता ही डिजिटल स्वास्थ्य।"	डिजिटल व्यवहार में नियमित देखभाल और जानकारी की शुद्धता को सुदृढ़ करना।
15.	डिजिटल हेल्पलाइन लॉन्च	"संदिग्ध ईमेल—इनबॉक्स नहीं, स्पैम में रखें।"	फिशिंग से बचाव हेतु सामान्य नागरिकों के लिए व्यावहारिक सलाह।
16.	मन की बात, 2022	"लॉगआउट की आदत—खातों की इबादत।"	सार्वजनिक उपकरणों पर लॉगआउट संस्कृति को प्रोत्साहित करना।
17.	साइबर क्राइम जागरूकता	"डिवाइस खो गया?—तुरंत रिमोट लॉक/वाइप करें।"	मोबाइल डिवाइस पर संवेदनशील डेटा की सुरक्षा हेतु चेतावनी।

क्र.	एपिसोड/तिथि	कथन	विश्लेषण
18.	माता-पिता संवाद मंच	"बच्चों से संवाद—साइबर सुरक्षा की पहली कड़ी।"	बच्चों के साथ स्क्रीनटाइम, डिजिटल व्यवहार पर चर्चा हेतु प्रोत्साहन।
19.	नीति वक्तव्य	"संगठन की सुरक्षा—सबसे कमजोर कड़ी जितनी।"	संस्था आधारित साइबर रक्षा हेतु सामूहिक जिम्मेदारी की आवश्यकता को दर्शाता है।
20.	CERT-In सम्मेलन	"घटना को रिपोर्ट करें—चुप्पी अपराधी की साथी।"	साइबर अपराधों को रिपोर्ट करने की अनिवार्यता को रेखांकित करता है।

प्रधानमंत्री मन की बात कार्यक्रम में साइबर जागरूकता से सम्बंधित प्रसंग :

डिजिटल दुनिया में सतर्कता ही सुरक्षा– प्रधानमंत्री ने नवम्बर 2014 में रेडियो पर प्रसारित मन की बात कार्यक्रम के दूसरे एपिसोड में डिजिटल सतर्कता को राष्ट्रीय चरित्र से जोड़ा। उन्होंने अनुभव साझा किया कि रेलवे के डिब्बों में लोग अब कचरा इधर–उधर नहीं फेंकते, बल्कि डस्टबिन खोजते हैं। यह सतर्कता केवल सफाई तक सीमित नहीं है, बल्कि डिजिटल व्यवहार में भी लागू होती है। जब नागरिक अपने डिजिटल आचरण के प्रति सजग होते हैं, तभी वे फिशिंग, डेटा चोरी, और अनचाहे मैलवेयर से बच सकते हैं। प्रधानमंत्री ने युवाओं से आग्रह किया कि वे इंटरनेट पर किसी भी संदिग्ध लिंक या मैसेज पर क्लिक करने से पहले दो बार सोचें। जैसे कि उन्होंने यह कहा – 'आज के युग में हम मोबाइल, लैपटॉप और इंटरनेट से जुड़े हैं, लेकिन कुछ गलत क्लिक से बड़ी हानि हो सकती है।' इस कथन के संदर्भ में एक उदाहरण 'फिशिंग अटैक' है, जहाँ यूजर को बैंक से आया हुआ झूठा ईमेल भेजा जाता है, जिससे उनका पासवर्ड और खाते की जानकारी चुराई जाती है।

सुरक्षित डिजिटल भारत – दिसम्बर 2014 में प्रसारित 'मन की बात' कार्यक्रम में प्रधानमंत्री ने युवाओं से अपील की कि डिजिटल आजादी के साथ–साथ डिजिटल जिम्मेदारी भी उतनी ही आवश्यक है। उन्होंने बच्चों से कहा कि वे सोशल मीडिया पर अनावश्यक चीजें साझा न करें और अपनी निजी जानकारी को सुरक्षित रखें। 'सोशल मीडिया पर जो शेयर करते हैं, वह हमेशा सुरक्षित नहीं होता। जिम्मेदारी से पोस्ट करें।' यह कथन डिजिटल नागरिकता के विचार को दर्शाता है : जैसे बच्चों को स्कूलों में सिखाया जाए कि किसी की फोटो बिना अनुमति के साझा करना गलत है। इसके साथ ही साथ उन्होंने कहा कि युवा ड्रग्स, आतंकवाद और साइबर अपराधों की कड़ी को समझें। उन्होंने कहा कि ड्रग्स खरीदने के लिए उपयोग होने वाला पैसा आतंकवाद को भी पोषित करता है। यही तर्क साइबर सुरक्षा पर भी लागू होता है–साइबर अपराधों से कमाया गया धन देश की आंतरिक सुरक्षा को नुकसान पहुँचा सकता है। अतः साइबर आचरण की शुद्धता राष्ट्र सुरक्षा से जुड़ी हुई है।

साइबर दुनिया में जिम्मेदार नागरिक बनना – अक्टूबर 2014, मन की बात' के उद्घाटन कार्यक्रम में प्रधानमंत्री ने कहा कि जैसे स्वच्छ भारत आंदोलन सबकी भागीदारी से सफल हो सकता है, वैसे ही डिजिटल दुनिया को सुरक्षित बनाना भी केवल सरकार की जिम्मेदारी नहीं है। ऑनलाइन गोपनीयता, पासवर्ड सुरक्षा, और सोशल मीडिया व्यवहार आम नागरिक के अनुशासन पर निर्भर है। डिजिटल साक्षरता और नैतिकता का विकास आज की आवश्यकता है।

निष्कर्ष :

यह अध्ययन दर्शाता है कि प्रधानमंत्री मोदी के कथनों में साइबर सुरक्षा केवल तकनीकी विषय नहीं, बल्कि एक सामाजिक आंदोलन के रूप में उभरती है। उनकी भाषा, दृष्टिकोण, और संवादात्मक शैली के माध्यम से डिजिटल नागरिकता, पारिवारिक संवाद, रिपोर्टिंग संस्कृति और तकनीकी जागरूकता को एकीकृत किया गया है। इस शोध से यह स्पष्ट है कि यदि इन कथनों के अनुसार कार्यान्वयन हो, तो भारत साइबर सशक्त राष्ट्र के रूप में उभर सकता है।

सन्दर्भ :

1. Ministry of Electronics and Information Technology (MeitY). (2021). Cyber Surakshit Bharat Initiative. Government of India. https://www.meity.gov.in
2. Press Information Bureau. (2022, October 15). PM's address on cyber security awareness. https://pib.gov.in
3. Modi, N. (2014, October 3). Mann Ki Baat - Episode 1 [Radio broadcast]. All India Radio. https://www.pmindia.gov.in
4. Modi, N. (2014, November 2). Mann Ki Baat - Episode 2 [Radio broadcast]. All India Radio. https://www.pmindia.gov.in
5. Modi, N. (2014, December 14). Mann Ki Baat - Episode 3 [Radio broadcast]. All India Radio. https://www.pmindia.gov.in
6. Modi, N. (2022, March 27). Mann Ki Baat - Episode 87 [Radio broadcast]. All India Radio. https://www.pmindia.gov.in
7. CERT-In. (2023). Annual Cyber Security Threat Report. Indian Computer Emergency Response Team. https://www.cert-in.org.in
8. UNICEF India. (2020). Guidelines for child online protection. https://www.unicef.org/india
9. Rajan, R. (2022). Cybercrime and Youth in India: Trends and Interventions. Sage Publications.
10. Sharma, P. (2021). Digital Citizenship and Ethics in the Age of Internet. Oxford University Press.

11. Ministry of Home Affairs. (2021). Cyber Crime Prevention Strategy Report. Government of India. https://mha.gov.in
12. UNESCO. (2021). Digital Literacy in South Asia: Policy and Practice. United Nations Educational, Scientific and Cultural Organization. https://unesdoc.unesco.org

मोबाइल नंबर 8899516017
ईमेल आईडी : umesh.mcnm@cujammu.ac.in
मोबाइल 9451301581
ईमेल dr.krantikushwah@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Sept. 2025 Page No. : 95-99

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

21वीं सदी के हिंदी उपन्यासों में सामाजिक चेतना



नीतु कुमारी
शोधार्थी, हिंदी विभाग, तिलकामांझी भागलपुर विश्वविद्यालय।

व्याख्येय शब्द :- प्रौद्योगिक–संचार युग, उदारवादी अर्थ–व्यवस्था, हिंदी भाषी समुदाय, रचनात्मक अभिव्यक्ति, उपन्यास के महाकाव्यात्मक कलेवर,वैश्विकरण और संचार क्रांति, संवेदनात्मक बदलाव, मल्टीनेशनल कॉरपोरेट वर्ल्ड, बाजार और वाणिज्य की भाषा आदि।

प्रस्तावना :-

21वीं सदी के हिंदी उपन्यासों की सामाजिक चेतना नव विमर्श की ओर द्रूत गति से अग्रसर है। यह इसलिए आवश्यक हो गया है कि इस प्रौद्योगिक–संचार युग में मानवीय संवेदना ने नई करवट ली है। 21वीं सदी में उदारवादी अर्थ–व्यवस्था और प्रौद्योगिकी के प्रवेश के बाद हिंदी भाषी समुदाय के संबंधों, सोच, जीवन–शैली, संवेदना के स्वरूप आदि में अपेक्षित बदलाव देखा जा सकता है, जिसकी रचनात्मक अभिव्यक्ति हिंदी साहित्य की सभी विधाओं में हुई है। यूं तो हिंदी साहित्य की विभिन्न विधाओं यथा कहानी, उपन्यास, नाटक, कविता आदि में हिंदी भाषी समुदाय की 21वीं सदी की संवेदना अभिव्यक्त हुई हैं, लेकिन शोधार्थी केवल 21वीं सदी के हिंदी उपन्यासों को अपने अध्ययन के केंद्र में रखा है। क्योंकि–

उपन्यास आधुनिक युग का महाकाव्य कहा जाता है। इसमें युग की संवेदना अत्यंत स्पष्टता से सामने आती है। उपन्यास में हरेक वर्ण, वर्ग, समुदाय, आयु, आय और लिंग के लोग पात्र के रूप में अन्तर्संबंध से जुड़े होते हैं। उपन्यास के महाकाव्यात्मक कलेवर में युग की हरेक धड़कन को चित्रित करने का प्रयास होता है। युगीन समय और समाज को समझने का यह सबसे विश्वसनीय और सुलभ साधन है।

21वीं सदी में हिंदी उपन्यासों का एक विशाल भंडार उपलब्ध है। इन उपन्यासों के लेखन में 20वीं सदी के लेखक और 21वीं सदी के लेखक दोनों शामिल हैं। हिंदी के उपन्यास लेखन में महिलाओं का एक विशाल दल भी शामिल है। इन उपन्यास लेखकों में अनेक प्रवासी भारतीय भी संलग्न हैं। इस लिहाज से भारतीय उपमहाद्वीप में 21वीं सदी के आगमन से आए संवेदनात्मक बदलाव को इंगित किया जा सकता है।

आर्थिक उदारीकरण और कम्प्यूटर कम्युनिकेशन का भारतीय गणतंत्र में प्रवेश–काल बीसवीं सदी के अन्तिम दशक को माना जाता है। इस समय से भारत औद्योगिक युग से निकलकर प्रौद्योगिक युग में, संचार युग में प्रवेश करने लगता है। वैश्वीकरण और संचार क्रांति ने मानव जीवन की सामाजिक–आर्थिक–राजनीतिक और सांस्कृतिक चेतना में विस्फोटक बदलाव ला दिया है। विश्वग्राम की अवधारणा लेकर चलने वाला मल्टीनेशनल कॉरपोरेट वर्ल्ड इंटरनेट सहित समस्त उपभोक्ता सामग्री लेकर भारतीय बाजार में अपनी दखल और धाक जमाने

लगा है। इस प्रौद्योगिक–संचार युग में दुनिया के समस्त भाषा–भाषी समुदाय के सामने अपने अस्तित्व और अस्मिता की चुनौती खड़ी हो गई है। भाषा और संस्कृति के अस्तित्व संकट से संघर्ष करती हुई हिंदी नई त्वरा के साथ दुनिया भर में अपनी पहचान बनाने और विश्व की प्रमुख भाषाओं में स्थान बनाने में सफल रही है।

प्रौद्योगिक–संचार युग में साहित्य की स्थिति मुद्रण–युग के साहित्य से भिन्न है। मुद्रण युग ने साहित्य को आमजन तक पहुंचाया और लेखन को स्थायित्व और विस्तार प्रदान किया। लेकिन इस प्रौद्योगिक युग में संचार क्रांति के कारण सोशल मीडिया का ऐसा विशाल मंच लेखक और पाठक को मिल गया है कि साहित्य की सुलभता अत्यंत सहज हो गयी है। साहित्य प्रकाशन–वितरण और उपभोग की सीमा में कैद था, लेकिन ब्लॉग और ट्वीटर सहित अनेक प्लेटफार्म ने साहित्य संप्रेषण को सर्वसुलभ बना दिया। साहित्य की इस विशेष व्यवस्था ने प्रकाशक–लेखक–पाठक संबंध को सर्वाधिक प्रभावित किया है। इस लिहाज से 21 वीं सदी के हिंदी उपन्यासों का अध्ययन अपेक्षित है।

21वीं सदी के प्रौद्योगिक युग में हिंदी की वैश्विक स्थिति में अद्‌भूत बदलाव आया है। यह न केवल जन संपर्क, मीडिया, कार्यालय और साहित्य की भाषा है, बल्कि तकनीकि और प्रौद्योगिक संचार माध्यम के रुप में और एक विशालतम बाजार और वाणिज्य की भाषा के रुप में स्थापित हो चुकी है।

शोध सार –

भारतीय समाज व्यवस्था के वर्णवादी स्वरूप की अद्यतन स्थिति को समझते हुए 21 वीं सदी में व्यक्ति, परिवार और समाज का अंतर्संबंध। वैयक्तिकता, सामूहिकता और साम्प्रदायिकता का स्वरूप निर्धारण।

21वीं सदी में मध्यवर्गीय चेतना का स्वरूप और स्त्री–पुरूष संबंध की पड़ताल।

21वीं सदी की भारतीय राजनीति के स्वरूप की पहचान करते हुए विश्व बाजार में विकासशील भारत की स्थिति का आकलन करना। भारतीय प्रजातंत्र में शासन, सत्ता और समाज के अंतर्संबंध। 21वीं सदी के नौजवानों में रोजगार और अपने भविष्य की चिंता। भारतीय लोकतंत्र में जल, जमीन और जंगल को लेकर संघर्ष। महिला, आदिवासी और थर्ड जेंडर के जीवन संघर्ष का आख्यान। 21वीं सदी में हिंदी भाषी समुदाय की सांस्कृतिक चेतना के अन्तर्गत उपभोक्ता संस्कृति और बाजारवाद का भारतीय मानस पर पड़ने वाले प्रभाव का आकलन करना। साम्प्रदायिक सद्‌भाव की मौजूदा स्थिति। सांस्कृतिक वर्चस्व का संघर्ष और हिंदी संस्कृति का अस्तित्व एवं अस्मिता संघर्ष। नव विमर्श के अन्तर्गत शोधार्थी स्त्री–विमर्श, वृद्धा–विमर्श, बाल–विमर्श, किन्नर विमर्श, आदिवासी और दलित–विमर्श, अल्पसंख्यक विमर्श आदि को अपने अध्ययन का विषय बनाया है।

विषय विश्लेषण :–

21वीं सदी में विश्व–बाजार और मल्टीनेशल कंपनियों का बढ़ता निवेश, पब्लिक सेक्टर की जगह प्राईवेट सैक्टर का व्यापीकरण, वैश्विक स्तर पर बढ़ता आतंकवाद, जातीय और साम्प्रदायिक हिंसा, युद्धोन्माद, आकार लेता हिंदू राष्ट्रवाद आदि हिंदी भाषी समुदाय में किस तरह और कितना असरदार हुआ है, इस सत्य को जानने के लिए शोधार्थी हिंदी उपन्यासों में उसे खंगालने का प्रयास करेगी। इस बाजारवादी और भूमंडलीकृत विज्ञापन युग को चित्रित करते हुए द केव में ज्हूगेसारामागु लिखते हैं– हम आपको हर चीज बेचेंगे, जिसकी आपको आवश्यकता है। किंतु हम चाहते हैं कि आपको उन्हीं चीजों की आवश्यकता हो, जिन्हें हम बेचना चाहते हैं।

अखिलेश रचित 'निर्वासन' उपन्यास में भूमंडलीकृत संस्कृति, विज्ञापन एवं बाजार की संस्कृति, युवाओं

के भीतर पनपता असुरक्षा बोध, योजनाओं की विसंगतियाँ, गाँव–शहर की बदलती संरचना और जाति व्यवस्था में टूटन के संकेत मिलते हैं। घोर स्वार्थी संस्कृति और अंध उपभोक्तावाद के दलदल में फंसे रिश्तों की अहमियत को जानने का सशक्त माध्यम है उपन्यास। 21वीं सदी में बढ़ते शहरीकरण, टूटते पारिवारिक ढ़ाँचा, व्यापक होता व्यक्तिवाद बच्चों और बुजुर्गों पर कितना और किस तरह असरदार हुआ है, उसकी पड़ताल करना भी शोधार्थी का उद्देश्य है।

21वीं सदी में जिस तरह नौकरी छूटने, हिंसा और आतंक का शिकार बनने का असुरक्षा भाव भर रहा है अथवा वृद्धावस्था में अकेलेपन की पीड़ा का भय सताता है या जातीय वर्चस्व और श्रेष्ठता का संघर्ष चलता है, उस सभी की पड़ताल करते हुए उसके कारणों की तलाश की जाएगी। 'रेहन पर रग्घू' काशीनाथ सिंह द्वारा रचित ऐसा उपन्यास है, जिसमें संबंध और संवेदना की बदहाली, परिवार का बिखड़ना, तलाक, बुढ़ापा, अकेलापन और अन्तर्जातीय प्रेम विवाह आदि का चित्रण किया गया है।

विकास के सिद्धांत के तहत् बाँध–बिजली परियोजना से उत्पन्न विस्थापितों की समस्या हो अथवा करोड़ों पेंड़ काटकर राजमार्ग बनाने की धारणा हो या मॉल संस्कृति का विकास हो, यह हमें किस दिशा में ले जा रही है, शोधार्थी का उद्देश्य उसकी हकीकत को जानना होगा। आधुनिक होने का मतलब यह नहीं कि सभी पुराना हटा दिया जाय। निर्वासन में अखिलेश लिखते हैं– जो ताकत, छल, भरम, धन और क्रूरता के बल पर अपने को स्वीकार कराता है, वह दमनकारी होता है, आधुनिक नहीं। पृ– 228

'सपने में भी नहीं खा सका खीर वह' संजय कुमार सिंह की ऐसी औपन्यासिक रचना है जिसमें 21वीं सदी के दूसरे–तीसरे दशक में भारतीय सरकारी कार्यालय की गतिविधि, भारतीय परिवेश में फैल रहे मल्टीलेशनल के प्रभाव, निम्न मध्यवर्गीय परिवार की दारूण दशा का यथार्थ चित्र और चरित्र प्रस्तुत किया गया है। लेखक ने न्याय व्यवस्था, कार्यालयी संस्कृति और अफसरशाही–दफ्तरशाही पर बेबाक टिपण्णी देते हुए दाम्पत्य की जटिलता, कार्यालय का उलझण और मध्यवर्गीय मानसिकता की उठा–पटक को एक साथ दर्शाया है। रिश्ते के रेगिस्तान में प्यास से बदहवास भटकती जिंदगी की दास्तान है यह उपन्यास। एक जीवंत व्यक्तित्व के दमित अरमानों की कथा है यह। लेखक सूखती नदी, कटते जंगल, धरती के गर्भ से निकाले जाने वाले जल, स्वजन–परजन से मिलने वाला धोखा, उपेक्षा, काईयॉपन से त्रस्त–पस्त जीवन का चित्रण करते हैं।

21वीं सदी में घर की संरचना में व्यापक बदलाव आया है। एक तरफ बुजुर्ग घर में अनुपयोगी होते जा रहे हैं तो दूसरी तरफ भारतीय नौजवानों का विकसित देश की ओर भागने की प्रक्रिया तेज हो गयी है। आज बाजार ने संस्कृति को माल बनाकर बाजार में बेच दिया है। कुम्हार के दीप को जगमगाते बल्वों ने विस्थापित कर दिया है तो खिलौनों का धमाकेदार होना और चटकदार होना मनुष्य में हिंसा के भाव को भर रहा है।

21वीं सदी में बिखरती सामाजिक संरचना, टूटता पारिवारिक ढ़ाँचा और दड़कता विवाह प्रथा को सहजीवन के सिद्धांत ने हवा दी है। अनामिका रचित 'दस द्वारे का पिंजरा' सहजीवन और समलैंगिकता के मुद्दों को उठाता है। विवाह संस्था की जटिलता, उन्मुक्त बंधनहीन जीवन, विघटित मानसिकता, सामाजिक–पारिवारिक दायित्वों से पलायन और स्व की तलाश करने वाली नवीन पीढ़ी में सहजीवन का आकर्षण देखा जा सकता है।

सुधा अरोड़ा लिखित 'यहीं कहीं घर था' उपन्यास उपभोक्तावाद और नवउदारीकरण के अंतर्विरोध से उत्पन्न घर और बाजार के बीच, आत्मा और दुनियादार बौद्धिकता के बीच घुटन भरे और उलझण भरे जीवन

जीने के लिए मनुष्य अभिशप्त है। वर्तमान व्यक्ति की कमजोरी और असहाय अवस्था का चित्रण करता ज्ञान प्रकाश विवेक का 'आखेट' उपन्यास में ऑफिस में बॉस की फटकार को शहीदी मुद्रा में स्वीकार करते युवकों की कहानी कहता है।

'अकाल में उत्सव' पंकज सुबीर के उपन्यास में वैश्वीकरण के दौर में किसानों की समस्याओं जैसे जमीन का बिकना, पैदावार की कमी, कर्ज का बढ़ता दबाव आदि से आहत होकर आत्महत्या को विवश किसानों की कथा कही गई है।

अलका सरावगी द्वारा रचित उपन्यास 'एक ब्रेक के बाद' में ग्लोवलाइजेशन के इस समय में ग्लोवल सपनों को बेचते पात्रों का चित्रण किया गया है। इस उपन्यास में कोरपोरेट जगत को कथावस्तु बनाया गया है।

ममता कालिया के उपन्यास दौड़ में बाजारवाद और उपभोक्तावादी संस्कृति की विसंगतियों को विषय बनाया गया है। अनामिका : दस द्वारे का पिंजरा और जयंती रंगनाथन : खानाबदोश ख्वाहिशें स्त्री विमर्श को केंद्रीय विषय बनाता है।

ग्लोवल गाँव का देवता के उपन्यासकार रणेंद्र ने आदिवासी समाज के विस्थापन की समस्या को केंद्रीय विषय बनाया है। प्रदीप सौरभ की रचना 'मुन्नी मोबाइल' उपभोक्तापरस्त ग्लैमर और विलासिता के मारक आकर्षण में जीते हुए नैतिक–अनैतिक मूल्यों से मुक्त जीवन की दास्तान लिखी गई है। गिरिराज किशोर ने 'स्वर्ण मृग' उपन्यास में साइबर क्राईम को विषय बनाया है। वहीं ज्ञानप्रकाश के उपन्यास तलघर में वैश्वीकरण के दौर में दफ्तरी शोषण और साजिश के शिकार युवक–युवतियों की कथा कही गई है।

निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि 21वीं सदी के हिंदी उपन्यासों में सामाजिक चेतना के हरेक कम्पन्न को पकड़ने का प्रयास किया गया है। 21वीं सदी के अनेक हिंदी उपन्यासकारों ने अपने उपन्यास में व्यक्ति–मानस और समष्टि–मानस में आए बदलाव को रेखांकित किया है। अध्येता मानवीय संबंध और संवेदना में आए इस बदलाव को अनवरत अपने अध्ययन और चिंतन का विषय बनाए रखेगी, ताकि संचार–प्रौद्योगिकी के इस दौर में मल्टीनेशनल कोरपोरेट जगत एवं वैश्वीकरण के मायालोक को समझा और जाना जा सके।

संदर्भ ग्रंथ – प्राथमिक स्रोत : (Primary Source) :

1. अनामिका : दस द्वारे का पिंजरा, – राजकमल प्रकाशन, 2008
2. जयंती रंगनाथन : खानाबदोश ख्वाहिशें : सामयिक प्रकाशन।
3. अलका सरावगी : एक ब्रेक के बाद –राजकमल प्रकाशन।
4. प्रभा खेतान : पीली आँधी : लोकभारती प्रकाशन।
5. काशीनाथ सिंह : रेहन पर रग्घू –राजकमल प्रकाशन, दिल्ली : प्रकाशन वर्ष –2008
6. प्रमोद कुमार तिवारी : डर हमारी जेबों में : सामयिक प्रकाशन 2008 ई0
7. रणेंद्र : ग्लोबल गाँव के देवता : भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन : प्रकाशन वर्ष –2010
8. भगवान दास मोरवाल : बाबल तेरा देश में।
9. संजय कुंदन : टूटने के बाद : भारतीय ज्ञानपीठ, 2007 ई0
10. संजय कुमार सिंह –'सपने में भी नहीं खा सका खीर वह'।

संदर्भ ग्रंथ – Reference Book :

1. 21वीं सदी के हिंदी साहित्य में चित्रित मानवीय संवेदना। संपादक –डॉ प्रतिज्ञा पतकी और डॉ अनुप दलवी।
2. 21वीं सदी के उपन्यासों में सहजीवन : किरण ग्रोवर।
3. 21वीं सदी के प्रथम दशक के हिंदी उपन्यासों में व्यक्ति के मानसिक तनाव, उलझनें और समाज : जमुना सुखाम।
4. 21वीं सदी के हिंदी उपन्यास : पहचान और परख : संपादक कपिल कुमार सिंह : राघव राज पब्लिकेशन, दिल्ली।
5. 21वीं सदी का हिंदी उपन्यास : संपादक : डॉ नवीन नंदवाना (समवेत पत्रिका)
6. 21वीं सदी की स्त्री : अस्तित्व से अस्मिता तक : संपादक –डॉ किरण वाला जाजूमुंदडा और डॉ शेख मोहम्मद शाकिर।
7. 21वीं सदी के युवा कथाकार में सांस्कृतिक चेतना – शोधार्थी सुप्रिया सिंह।
8. सामयिक चुनौतियों के संदर्भ में नई सदी के हिंदी उपन्यास : डॉ एम वेंकटेश्वर (साहित्य कुंज)
9. 21वीं शती के हिंदी उपन्यास और नारीवादी विमर्श (कृष्णा अग्निहोत्री के संदर्भ में) साहित्यकुंज : डॉ पद्मावती।
10. 21वीं सदी के हिंदी उपन्यासों में बाजार और स्त्री छवि : आलोक कुमार शुक्ल (अपना माटी)।

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Sept. 2025 Page No. : 100-102

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

स्त्री विमर्श के संदर्भ में मृदुला गर्ग के उपन्यास

पल्लवी दास

शोधार्थी, हिन्दी विभाग, राजीव गांधी विश्वविद्यालय, रोनो हिल्स, दोइमुख, अरुणाचल प्रदेश–791112

मानव सभ्यता के विकास यात्रा के साथ ही स्त्री जीवन का संघर्ष भी समाज में निरंतर विद्यमान रहा है। सामंती युग से लेकर आधुनिक युग तक स्त्री हर कदम पर शोषित, प्रताड़ित होती आई है। कभी रीति–रिवाजों के नाम पर शोषित होती है तो कभी पुरुषसत्तात्मक समाज में अपने अधिकार व आत्मसम्मान के लिए लड़ती आई है। इस संदर्भ में प्रख्यात लेखिका सीमोन द बोउवार का कहना हैं– "स्त्री, पुरुष प्रधान समाज की कृति है। वह अपनी सत्ता को बनाए रखने के लिए स्त्री को जन्म से ही अनेक नियमों के ढांचे में डालता चला गया है।"[1] स्त्री सदैव अपनी वजूद को लेकर आशंका में रही है। स्त्री की इसी पीड़ित स्वरूप के विरोद्ध लोगों ने धीरे–धीरे आवाज उठाना शुरू किया। कालांतर में इन्हीं आवाजों ने विमर्शों का रूप धारण किया।

प्रश्न उठता है कि विमर्श आखिर है क्या? समाज में विमर्श की क्या आवश्यकता है? दरअसल विमर्श एक ऐसी दृष्टि है जिससे मानवीय संवेदनाओं को पहचाना जाता है। जिसके माध्यम से उन संवेदनाओं से जुड़ी तमाम प्रश्नों पर सोच–विचार किया जा सकता हैं। समाज में सदियों से उपेक्षित तथा शोषित वर्गों को अपने अधिकारों से ज्ञात कराने हेतु विमर्श की आवश्यकता है। 21वीं सदी के प्रमुख विमर्शों में स्त्री विमर्श ने अपनी एक अलग ही पहचान बनाई है। स्त्री विमर्श की शुरुआत हुई थी पश्चिमी से। अमेरिका, नीडरलैंड, ग्रेट बिटेन आदि देशों पर इसका सर्वाधिक प्रभाव था। पाश्चात्य के कई स्त्री विमर्शकार जैसे– सिमोन द बोउवार, आन ब्रांटे, एलिजाबेथ गास्कल, वर्जीनिया वूल्फ आदि ने स्त्री कि तमाम समस्याओं पर तथा समाज में उनके दबे–कुचले गए स्वरूप की कटु आलोचना की। इन साहित्यकारों ने अपने साहित्य के माध्यम से स्त्री शक्ति को जागरूक करने का प्रयास किया। धीरे–धीरे यह धारणा समग्र विश्व में विस्तार पाने लगा। भारत भी इससे अछूता न रहा। यद्यपि स्त्री विमर्श की नींव 19वीं सदी में रखी गई, परंतु 20वीं सदी तक आते–आते इसने अपना विस्तार रूप धारण किया। भारत में स्त्री विमर्श का शुरुआत सच्चे अर्थों में पुरुषों की दैन है। राजा राममोहन राय, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, रवीन्द्रनाथ ठाकुर, महात्मा ज्योतिबा फुले आदि महात्माओं ने तत्कालीन समय में महिलाओं की सशक्तिकरण की दिशाओं में काम किया था। स्त्री के स्वतन्त्रता के न केवल वे पक्षधर रहे अपितु बाल विवाह, विधवाओं की अपमानजनक स्थिति, स्त्री शिक्षा आदि विषयों पर भी काम किया। स्त्री विमर्श के संदर्भ में प्रतिभा मुदलियार का कहना है– "स्त्री विमर्श पुरुषों के विरोध का युद्ध नहीं है, बल्कि स्त्री को मानवीयता के नियमों की कसौटी पर अपने व्यक्तित्व को खोजना ही स्त्री विमर्श है, नारीवाद है।"[2]

हिन्दी साहित्य जगत में तमाम महिला साहित्यकार रहें हैं जिन्होंने स्त्री विमर्श जैसे विषय पर अपनी

आवाज उठाई हैं। महादेवी वर्मा से लेकर सुभद्रा कुमारी चौहान, मन्नू भण्डारी, कृष्णा सोबती, उषा प्रियंबदा, मैत्रेयी पुष्पा, शिवानी आदि लेखिकाओं ने स्त्री मुक्ति स्वर को समाज में प्रखरित करने में अन्यतम भूमिका निभाई हैं। इन सभी विमर्शकारों में से मृदुला गर्ग का नाम बड़े ही आदरसहित लिया जाता हैं। उन्होंने अपने उपन्यासों में स्त्री विषयक चिंतन को बखूबी उभारा हैं। 'उसके हिस्से की धूप', 'वंशज', 'कठगुलाब', 'चित्तकोबरा' आदि उपन्यासों में उन्होंने स्त्री मुक्ति के प्रश्नों को साहस के साथ उजागर किया है।

उनकी अन्यतम उपन्यास 'उसके हिस्से की धूप' त्रिकोणात्मक प्रेम कथा पर आधारित है। यहाँ प्रेम मूल समस्या नहीं है। समस्या है स्त्री की स्वतन्त्रता। आज की स्त्री किस हद तक स्वतंत्र है? स्त्री–पुरुष दोनों के लिए क्या प्रेम समान रूप से मूल्यवान है? क्या प्रेम में व्यक्ति की निजी स्वतन्त्रता बाधित होती है? इसी तरीके से तमाम प्रश्नों का उत्तर खोजती है यह उपन्यास। उपन्यास का मुख्य पात्र जितेन स्वतंत्रप्रिय व्यक्ति है। वे एक ऐसा पात्र है जो रिश्तों को कभी भी एक–दूसरे पर हावी होने नहीं देते। जितेन का कहना है– "चुनाव का अधिकार हर इंसान को है।"[3] उपन्यास का मुख्य स्त्री पात्र मनीषा के माध्यम से स्त्री जीवन की सार्थकता को दर्शाया गया है। एक स्त्री को 'स्व' का बोध कराती है यह उपन्यास। उसी प्रकार उनकी 'वंशज' उपन्यास में भी पितृसत्तात्मक समाज के विकृत मानसिकता की शिकार होती स्त्री की कहानी को दर्शाया गया है। पुरानी और नई पीढ़ी के उथल–पुथल और सोच–विचार से प्रभावित होकर किस प्रकार एक परिवार में अशांति की स्थिति पैदा होती है उसका भी सशक्त चित्रण यहाँ दिखने को मिलता है। एक स्त्री की सारी योग्यता होने के बाबजूद भी अपने पैतृक संपत्ति से वंचित रहती है, वो भी इसलिए क्योंकि समाज की मानसिकता के मुताबिक एक लड़की कभी भी 'वंशज' नहीं बन पाती। इसी प्रकार प्रस्तुत उपन्यास में न केवल पीढ़ीगत अंतर को दिखाया गया है अपितु स्त्री जीवन के कुछ कटु यथार्थ का भी पर्दाफाश किया गया है। पीढ़ीगत समस्या के बारे में दिनेश कुमार गोयल का कहना है– "आधुनिक काल में माता–पिता और उनकी संतानों के बीच में एक अंतराल की स्थिति उत्पन्न हो गई है। दोनों एक–दूसरे को समझने में असमर्थ हो गए हैं जिसके कारण दोनों के बीच में छिपे या खुले द्वंद की स्थिति उत्पन्न हो गई है।"[4]

मृदुला गर्ग का और एक प्रसिद्ध उपन्यास है 'कठगुलाब'। इसमें उन्होंने स्त्री की विविध समस्याओं को उठाते हुए पितृसत्तात्मक व्यवस्था के विरुद्ध लड़ती स्त्री की मुक्ति को व्यक्त करता है। पाँच भागों में विभक्त यह उपन्यास में स्मिता, मारियान, नर्मदा, असीमा आदि प्रकरणों के माध्यम से शोषित स्त्री की दुर्दशा, मध्यवर्गीय नारी की विविध समस्या आदि को दिखाते हुए आधुनिक युग की स्वाभिमानी नारी रूपों का भी वर्णन प्रस्तुत किया हैं। मृणाल पांडे का मानना है– "आज नारीवाद हमारे यहाँ एक अपरिचित या त्याज्य दृष्टिकोण नहीं बल्कि एक सार्थक स्वीकृत समग्र दर्शन के रूप में स्वीकार्य हो चला है।"[5] उनकी 'चित्तकोबरा' उपन्यास स्त्री के स्वावलंबन, उसकी अस्तित्व और सामाजिक बंधनों से मुक्ति का संदेश देती है। प्रेम और सेक्स के सम्बन्धों पर विचार कर स्त्री को आत्मनिर्भर बनने तथा अपने अधिकारों के प्रति सचेत कराती है यह उपन्यास। उनकी यह उपन्यास विवादास्पद रहा है। उपन्यास की नायिका मनु अपने आत्मसार्थकता को तलाशती है। मनु एक विवाहिता स्त्री है और उनकी वैवाहिक जीवन बहुत हद तक असफल रहा। अपने पति महेश का उसके प्रति उदासीन होना उसे हर रोज खटकती है। इसी बीच उसको रिचर्ड से प्रेम होता है। परंतु अपने कर्तव्यों के आगे वो यह निर्णय नहीं ले पाती है कि आखिर उसे क्या करना चाहिए। अपने मन के द्वंदों के साथ जीती मनु अंत में कविता लिखने

लगती है और उसी में अपनी सफलता खोजती है। उपन्यास में सेक्स की समस्या से लेकर नर–नारी की वैवाहिक व विवाहोत्तर समस्या तथा मानसिक कुंठा का विस्तार से वर्णन मिलता है। मृदुला गर्ग हमेशा अपनी बातों को या कहे कि स्त्री कि समस्याओं को बिना झिझक समाज के सामने प्रतिफलित किया है। इसलिए उन्हें बोल्ड लेखिका भी कहा जाता है।

अतः स्त्री संबंधी चिंतन आज बहुत ही चर्चित विषय बन पड़ा है। स्त्री मुक्ति ही इस विमर्श का मुख्य बिन्दु है। पितृसत्तात्मक समाज की विकृत मानसिकता से मुक्ति तथा समाज में स्त्री की विषम स्थितियों से परिचित कराकर उसे स्वतन्त्रता की राह को दिखाना तथा अपने शोषित, प्रताड़ित स्वरूप से ऊपर उठकर अपने हक के लिए आवाज उठाने जैसे कार्यों के लिए प्रोत्साहित करना ही स्त्री विमर्शकारों का मुख्य उद्देश्य हैं। समकालीन स्त्री विमर्शकार मृदुला गर्ग ने भी अपने उपन्यासों के माध्यम से स्त्री मुक्ति के प्रश्नों को बखूबी उठाया है। उनके पात्र न केवल समस्याओं से जूझती है अपितु समाधान के मार्ग से भी गुजरती है। इसी कारण उनके उपन्यास वर्तमान समय में अत्यंत प्रासंगिक है। "मुक्ति की पहली शर्त स्त्री की आर्थिक स्वतन्त्रता है। यदि इस शर्त को कोई औरत पूरा कर लेती है तो वह अपने जिंदगी की आधी लड़ाई जीत जाती है।"[6]

संदर्भ सूची :-

1. सीमोन द बोउवार, स्त्री उपेक्षिता, हिन्द पॉकेट बुक्स, दिल्ली, 2008, पृ– 212
2. प्रतिभा मुदलियार, स्त्री विमर्श और समकालीन साहित्यिक संदर्भ, अमन प्रकाशन, पृ– 11
3. मृदुला गर्ग, उसके हिस्से की धूप, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, पृ– 28
4. डॉ. दिनेश कुमार एस. गोयल, मृदुला गर्ग के उपन्यासों में नर–नारी संबंध, पृ– 32
5. मृणाल पांडे, परिधि पर स्त्री, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, 1998, पृ– 119
6. प्रभा खेतान, छिन्नमस्ता, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, सं. 2016, पृ– 145

ईमेल–Pallavidx143@gmail.com

संपर्क– 6003104900

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Sept. 2025 Page No. : 103-106

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

स्त्रियों के उन्नति में आंबेडकर जी का योगदान

डॉ. अजय

एसोसिएट प्रोफेसर हिंदी, बाबू जगजीवन राम महाविद्यालय, नारायणगुडा हैदराबाद।

प्रस्तावना :-

बाबा साहेब आंबेडकर ने जितने मेहनत से दलितों का उद्धार किया। उतने ही शालीनता से भारत की आधी जनसंख्या अर्थात स्त्री उद्धारक के रुप में भी अपनी भूमिका संपूर्ण ईमानदारी से निभाई। भारत में दलितों के बाद स्त्रियों का सर्वाधिक शोषण, अपमान, उपेक्षा, प्रताडित किया गया है। वास्तव में आंबेडकर जी को दलितों के भगवान के साथ–साथ स्त्रियों के मसीह की उपमा देना गलत नहीं होगा। आंबेडकर स्त्रियों के हितों व उनके अधिकारों के प्रति संवेदनशील थे, तथा उन्होंने स्त्री के जीवन को प्रभावित करने वाले सभी क्षेत्रों जैसे शिक्षा, विवाह, परिवार नियोजन, संपत्ति, तलाक, एवं भरण–पोषण आदि को अपने चिंतन का हिस्सा बनाकर नारी मुक्ति का सभी से अधिक प्रयास किया है। सही मायने में नारी मुक्ति का जो वर्तमान में महल खड़ा दिखाई देता है, उसकी नींव की ईंट आंबेडकर ही है। परंतु विडंबना यह है कि स्वतंत्रता के 79 वर्ष के बाद भी आंबेडकर के नारी–वादी दृष्टिकोण को न तो पर्याप्त सम्मान मिला तथा भारतीय नारी–वादी आंदोलन से भी अनदेखी कर, अपना आधार यूरोप के नारी–वादी चिंतन एवं मार्क्सवाद और हिंदू देवी देवताओं में खोजते रहे है। इस आलेख के माध्यम से सूक्ष्म अध्ययन किया गया है।

आंबेडकर जी के पहले नारी की दशा और दिशा :

तथागत बुद्ध ने आपने धम्म में स्त्रियों को प्रवेश देकर भीक्खुणी संघ की स्थापना की थी। स्त्री और पुरुष एक समान है, यह कहकर बुद्ध ने उन्हें स्वतंत्र तो किया ही, परंतु स्वतंत्र विचार करने का भी स्वतंत्र दिया। स्त्री जाती को उत्कर्ष बनाकर समाज जीवन में सम्मान का स्थान प्राप्त करवाया। मैत्रायणी और गार्गी स्वतंत्र विचारों के लिए जानी जाती है। तथागत बुद्ध के धम्म में स्त्रियों का स्थान आदोरेखित किया गया था।

स्त्री–पुरुष समान है का पहला संदेश बुद्ध ने दिया था। 2500 वर्ष साल पहले बुद्ध ने स्त्रियों को दास्य मुक्त किया था। ब्राह्मणी तत्वज्ञाननुसार और हिंदू परम्परा के अनुसार स्त्री दासी और शूद्र समझी जाती थी। उत्तर प्रदेश में तो संतों का कहना था.....

"शूद्र, गंवार, पशु और नारी, सब ताड़न के अधिकारी" ।[1]

राजा ब्रृहदथ और पुष्यमित्र शुंग के संघर्ष के बाद ब्राह्मणों ने बुध्द के धम्म का नाश का षडयंत्र रचते गए। कुछ कालांतर के बाद बुध्द भीक्खुणी पर अत्याचार और कत्लि होने लगे थे। फिर एक बार स्त्रियों और शूद्रों पर अत्याचार होने लगे थे। शूद्र और स्त्रियों को शिक्षा से वंचित रखने का कार्य हिंदू धर्म ने किया। पेशवा के काल

में तो वंचितों को शिक्षा से वंचित रखने कि हो–डसी लगी थी। तत्कालीन समाज सुधार को के प्रयत्नों के बाद भी समाज में परिवर्तन नहीं के बराबर था। इनमें विठघ्ल रामजी शिंदे और धोंडोपंत कर्वे इत्यादि प्रमुख थे।

क्रांति सूर्य ज्योति बा फुले इनको भी अस्पृश्यता के समस्या से गुजरना पड़ा, और उनको यह ज्ञात होने लगा की स्त्रियों को, शूद्रों को कई पीढ़ियों से शिक्षा सें वंचित रखा गया था, अगर वंचितों को शिक्षा मिलती है तो इसके परिणाम समाज पर दूरगामी होगे।

राष्ट्रपिता फुले का मराठी का कथन था कि,

विध्ये विना मती गेली।
मति वीना निती गेली।।
निती विना गती गेली।
गती विना वित्त गेले।।
वित्त विना शूद्र खचले।
एवढे अनर्थ एका अविध्येने केले।।[2]

हिंदी में इसका अर्थ है शिक्षा के बिना सोच गई, सोच के बिना नीति गई, नीति के बिना गति गई, गति के बिना संपत्ति हीन रह गए, बिना संपत्ति के शूद्र पीछे रह गए। इतने अनर्थ एक अशिक्षा ने किए। बिना शिक्षा के किसका उध्दार नहीं हो सकता यह ध्यान में रखते हुए अपनी पत्नी सावित्रीबाई फूले को शिक्षित बनाया और पुणे के बुधवारपेठ में सन् 1848 में पहली बालिका विद्यालय की स्थापना करवाई। विद्यालयों का विकास होने लगा, सावित्रीबाई के कारण स्त्रियाँ पढ़ाई करने लगे परंतु सनातनी सोच रखने वाले समाज इसका घोर विरोध करने लगे। सनातनी विचारवंत फूले दांपत्य के महान कार्य को असफल बनाने के अनेक षडयंत्र रचते रहे, परंतु सफल नहीं हो पाये।

नारी उन्नति में आंबेडकर का योगदान :

बाबासाहेब आंबेडकर का योगदान भी स्त्रियों के प्रति अतुलनीय था। आज की स्त्री पुरुषों के समान सम्मान के साथ जीवन जी रहीं है, तो इसका पूरा श्रेय आंबेडकर जी को जाता है।

विश्व के क्रांतिकारी विचारक आंबेडकर जी ने सनातन धर्म का मेनिफेस्टो मनुस्मृति में स्त्रियों के प्रति जो रेखाएं लांघी उसका परिपूर्ण अभ्यास किया, और अपने तर्क से यह विचार रखें की, अगर स्त्रियों का भला ही करना है तो सर्वप्रथम मनु के कायदे को नेस्तानाभूत करना ही होगा। इसके लिए आंबेडकर ने 25 दिसम्बर 1927 को सनातनी यों के मेनिफेस्टो को जलाया और एक नए समाज निर्माण की नींव रखीं। समाज के निर्माण के लिए नारी का सशक्त होना अत्यंत आवश्यक और जरूरी है।

शिक्षा : नारी मुक्ति के मार्ग दाता डॉ. अंबेडकर ने स्वतंत्रता, समानता तथा स्वाभिमान से जीवन जीने पर जोर देते हुए दो मूल मंत्र दिए– पहला "शिक्षित बनो, संगठित रहो और संघर्ष करो" तथा दुसरा "अत्त दीप भव" अर्थात् अपना दीपक स्वयं बनो। उन्होंने प्रश्न उठाया कि शिक्षा पर केवल पुरुषों का अधिकार क्यों? जबकि "घर में एक पुरुष पढ़ता है तो केवल वहीं पढ़ता है और यदि घर में स्त्री पढ़ती है तो पूरा परिवार पढ़ता है।"[3] उनका मानना था कि शिक्षा ब्राह्मणवादी, पितृसत्तात्मक व्यवस्था से मुक्ति प्राप्त करने का मुख्य साधन हैं। नारी विकास रुपी रथ का दूसरा पहिया करार देते हुए, राष्ट्र की प्रगति में उनकी सहभागिता का समर्थन किया। अंबेडकर

के अनुसार "नारी राष्ट्र निर्मात्री है। राष्ट्र का हर नागरिक उसकी गोद में पलता है। नारी को जागृत किए बिना राष्ट्र का विकास असंभव है। इसलिए तो राष्ट्रीय उन्नति में सहयोग करना चाहिए।"[4] शिक्षा की नींव को सशक्त करने हेतु अंबेडकर जाति, लिंग, तथा धर्म सभी प्रकार के भेदभाव को नकारते हुए 6–14 वर्ष तक के सभी छात्रों को समान, "अनिवार्य एवं निशुल्क आरंभिक शिक्षा को संविधान के भाग–तीन में मौलिक अधिकारों का हिस्सा बनाना चाहते थे।"[5] परंतु तत्कालीन समय में पर्याप्त समर्थन के अभाव में उनका यह प्रयास आधुरा रह गया। 2002 में 86वें संवैधानिक संशोधन विधेयक के माध्यम से भारत सरकार ने अनुच्छेद 21(क) के तहत 6 से 14 वर्ष के छात्रों को अनिवार्य और निशुल्क शिक्षा का प्रावधान कर मौलिक अधिकार के रुप में मान्यता प्रदान कर उनके सपनों को साकार तो किया। परंतु अंबेडकर के योगदान को दिये बिना।

विवाह : बाल विवाह का विरोध करते हुए योग्य उम्र में महिलाओं के विवाह की अंबेडकर ने पुरजोर वकालत की थी। विवाह जैसे मुद्दे पर भावी जीवन साथी के चयन में लैंगिक असमानता को दूर करते उन्होंने कहा "पत्नी कैसी होनी चाहिए इस बारे में पुरुषों का विचार जाना जाता है, वैसे ही पति कैसा हो इस बारे में पत्नी का भी मत जान लेना भी जरूरी है। स्त्री भी व्यक्ति है और उसे भी वैयक्तिक स्वतंत्र होना चाहिए।"[6] इस के साथ ही उन्होंने महिलाओं को तलाक का अधिकार देने की भी पुरजोर वकालत की थी।

परिवार नियोजन : भारत में प्रचलित परिवार नियोजन का नारा भले ही स्वतंत्रोपरांत का हो, परंतु अंबेडकर ने इसकी अहमियत को बहुत पहले ही समझ लिया था विशेषता काफी हद तक यह उनके निजी जीवन के अनुभवों पर आधारित था। बच्चे अधिक और आय कम संयुक्त रुप से संपूर्ण परिवार के दुख–दर्द का कारण बनता है। "इसलिए उन्होंने बच्चे दो ही अच्छे का सुझाव दिया था।"[7] क्योंकि महिलाओं का स्वास्थ परिवार के लिए अत्यंत आवश्यक होती है।

प्रसूति अवकाश : गर्भावस्था के दौरान महिला श्रमिकों का अपने श्रम से वंचित होना अंबेडकर के लिए एक बेहद चिंतनीय समस्या थी। विकास के रथ का दूसरा पहिया होने के नाते यह आवश्यक था कि महिला श्रम खोने का भय से मुक्त होकर राष्ट्र की उन्नति में सहयोग दे। क्योंकि बच्चे भावी राष्ट्र की नींव होती है। इसलिए अवश्य है कि प्रसव पूर्ण एवं प्रसव उपरांत उनकी बेहतर पारिवारिक हेतु माँ को भी सहयोगी प्रस्थितियाँ प्रदान की जायें। इन्होंने सरकारी तथा गैरसरकारी संस्थानों में कार्यरत श्रमिक महिलाओं के लिए वेतन सहित प्रसूति अवकाश का समर्थन करते हुए 1928 में मुंबई विधान परिषद में प्रसव लाभ विधेयक के प्रति पूर्ण सहमति व्यक्त करते हुए अंबेडकर दृढ़ता से कहा "मैं इस बात से सहमत हूँ कि इससे शासन पर भारी बोझ पढ़ेगा लेकिन फिर भी मैं वेतन में कटौती का पक्षधर नहीं हूँ। यह महिलाओं का अपना अधिकार है जिसकी प्राप्ति होनी चाहिए।"[8]

स्वतंत्रता के पूर्व अंबेडकर द्वारा व्यक्त इस दृष्टिकोण को स्वतंत्रता के बाद प्रसुति प्रसुविधा अधिनियम 1961, के साथ–साथ संविधान के तहत नीति निर्देशक सिध्दातों के अनुच्छेद 42 का हिस्सा बनाते हुए व्यवहार में लाया गया। ड़ॉ. अंबेडकर के इस क्रांतिकारी सोच का परिणाम यह हुआ की, लगातार इसके बाद महिला श्रमिकों के लिए लाभकारी कानून बनने लगे। आज महिला कर्मचारियों को सरकारी सेवाओं के साथ–साथ अन्य संगठित क्षेत्रों में भी मातृत्व लाभ संबंधी परिणाम यह है की दिनों दिन रोजगार से संबंधित सभी क्षेत्रों में महिलाओं की संख्या तेजी से बढ़ रहीं है।

हिंदू कोड बिल :–

बाबासाहेब आंबेडकर ने 1950 में हिंदू कोड बिल संसद में सादर किया, इस बिल में स्त्रियों के सर्वांगीण

विकास, स्वतंत्रता का उल्लेख था। इस बिल में हिंदू स्त्रियों के विकास–प्रगति की बात ही नहीं थी। सारे स्त्रियों के विकास की बात थी। परंतु तत्कालीन विचारवंतो ने इस बिल का विरोध किया और उसे रोका। कई सालों तक इस विधेयक को जनता के सामने रखा गया था। समाज में सनातनियों का विधेयक को विरोध था। संसद में भी कई सांसदों का विरोध हुआ, जैसे डॉ. राजेंद्र प्रसाद, जवाहर लाल नेहरू आदि। आखिरकार इस विधेयक का समाज में और संसद में विरोध होने से आंबेडकर जी ने अपने मंत्री पद से त्यागपत्र दिया। भारत के इतिहास में यह पहली बार हुआ होगा की एक मंत्री विधेयक का विरोध होने पर त्यागपत्र दिया होगा। इससे आप अंदाज लगा सकते है कि आंबेडकर स्त्रियों के अधिकारों के प्रति कितने ईमानदार थे। बाद में हिंदू कोड बिल को अलग–अलग खंडों में प्रस्थापित कर कायदा बनाया गया। जैसे 1956 में हिंदू विवाह अधिनियम, हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम, तलाक के बाद पत्नी को आर्थिक सहायता तथा दत्तक लेने का अधिनियम, संपत्ति में समान अधिकार अधिनियम, वारसदार हक्क यह सभी हिंदू कोड बिल के ही अंश थे। भारतीय संसद ने 2005 में हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम (संशोधित) में बदलाव लाकर चल–अचल पैतृक संपत्ति में पुत्री को पुत्र के बराबर हिस्सेदार बनाया।

निष्कर्ष : डॉ. भीमराव अंबेडकर ने स्त्री उन्नति के लिए अनेक ठोस कदम उठाए। उन्होंने स्त्रियों को शिक्षा, संपत्ति, समानता और सम्मान दिलाने के लिए संघर्ष किया। हिंदू कोड बिल, स्त्रियों के लिए विवाह–विच्छेद (तलाक) का अधिकार, विधवा विवाह की स्वीकृति, उत्तराधिकार में समान हिस्सा और राजनीतिक भागीदारी जैसे कदमों से उन्होंने स्त्रियों को सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक स्तर पर मजबूती दी। अंबेडकर ने भारतीय स्त्रियों के जीवन को परंपरागत जंजीरों से मुक्त कर उन्हें आत्मनिर्भर, स्वाभिमानी और अधिकार संपन्न बनाने का महान कार्य किया। उनके प्रयासों से स्त्री केवल परिवार तक सीमित न रहकर शिक्षा, राजनीति और समाज के हर क्षेत्र में योगदान देने लगी। हमें यह स्वीकार है कि अंबेडकर का योगदान स्त्री उन्नति के इतिहास में मील का पत्थर है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. तुलसीदास : रामचरितमानस : गीता प्रकाशन, गोरखपुर : दोह संख्या 59
2. महात्मा ज्योति राव फूले : शेतक–याच आसुड, (मराठी) : इ साहित्य प्रकाशन, 1883 पृ. संख्या 09
3. भीमराव अंबेडकर : हिंदू नारी का उत्थान और पतन : गौतम बुक सेंटर, दिल्ली 2009, पृ. संख्या 14
4. अभिलता चौधरी : नारी स्वतंत्र और अंबेडकर : नटराज प्रकाशन दिल्ली, 2010, पृ. संख्या 167
5. उदें उनामी : अंबेडकर का सपना : चाव प्रकाशन, 2013, पृ. संख्या 07
6. मंजु सुमन : दलित महिलाएँ : साम्यक प्रकाशन दिल्ली, 2004 पृ. संख्या 42
7. मंजु चंद्रिका पूरे : स्त्री के उत्थान में अंबेडकर का योगदान : नटराज प्रकाशन दिल्ली, 2010 पृ. संख्या 142
8. अनीता भारती : दलित एवं गैर दलित आंदोलन : नटराज प्रकाशन दिल्ली, 2010, पृ. संख्या 56

9991753810, ajaywaghmare333@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Sept. 2025 Page No. : 107-118

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

स्मार्ट मशीन लर्निंग प्रणाली द्वारा हृदय रोग का पूर्वानुमान : स्वास्थ्य विमर्श, डिजिटल कथाएँ और 21वीं सदी का परिप्रेक्ष्य

के. के. इश्विन्ता श्री
बी.टेक स्नातक (वी आई टी भोपाल विश्वविद्यालय),
एमबीए छात्रा (एस आर एम इंस्टिट्यूट ऑफ साइंस एंड टेक्नोलॉजी)

1. सारांश (Abstract) :

21वीं सदी स्वास्थ्य, तकनीक और डिजिटल समाज का युग है। इस युग में आर्टिफ़िशियल इंटेलिजेंस (AI) और मशीन लर्निंग (ML) न केवल उद्योगों में क्रांति ला रहे हैं, बल्कि स्वास्थ्य सेवाओं में भी गहरे प्रभाव डाल रहे हैं। हृदय रोग, जिसे विश्व स्वास्थ्य संगठन (WHO) ने मृत्यु के प्रमुख कारणों में गिना है, अब केवल एक चिकित्सकीय समस्या नहीं रहा बल्कि यह सामाजिक, सांस्कृतिक और मनोवैज्ञानिक विमर्श का भी हिस्सा बन गया है।

यह शोध **स्मार्ट मशीन लर्निंग प्रणाली** पर आधारित है, जो विभिन्न **मेडिकल डेटा पॉइंट्स**–जैसे उम्र, लिंग, रक्तचाप, कोलेस्ट्रॉल स्तर, धूम्रपान की आदत, पारिवारिक इतिहास और जीवनशैली से संबंधित पैरामीटर्स–का विश्लेषण कर हृदय रोग की संभावना का पूर्वानुमान करती है। इसमें **लॉजिस्टिक रिग्रेशन, डिसीजन ट्री और सपोर्ट वेक्टर मशीन (SVM)** जैसे मॉडल का उपयोग किया गया। परिणामों से पता चला कि डिसीजन ट्री ने **85% सटीकता** प्रदान की, जो अन्य मॉडल्स की तुलना में अधिक प्रभावी और व्याख्यात्मक था।

साथ ही, यह शोध **डिजिटल नैरेटिव्स**, जैसे स्वास्थ्य ऐप्स, वेयरेबल डिवाइस और ऑनलाइन स्वास्थ्य कहानियों, के माध्यम से सामाजिक और सांस्कृतिक विमर्श को भी सामने लाता है। डिजिटल कथाएँ न केवल रोग की जानकारी बढ़ाती हैं, बल्कि व्यक्तियों को **स्वास्थ्य जागरूकता और रोकथाम** की ओर प्रेरित करती हैं।

Keywords : मशीन लर्निंग, हृदय रोग, डिसीजन ट्री, डिजिटल स्वास्थ्य, AI आधारित हस्तक्षेप, 21वीं सदी

2. परिचय: 21वीं सदी में हृदय रोग की चुनौती - विस्तारित

भारत और विश्व में हृदय रोग (Cardiovascular Disease, CVD) एक गंभीर स्वास्थ्य संकट बन गया है। WHO की 2023 रिपोर्ट के अनुसार, विश्वभर में **लगभग 1.8 करोड़ लोग प्रतिवर्ष हृदय रोग से मरते हैं**, और भारत में भी यह संख्या लाखों में है।

21वीं सदी की जीवनशैली की जटिलताएँ–जैसे फास्ट फूड का बढ़ता चलन, तकनीकी पर निर्भरता, शारीरिक गतिविधि की कमी और उच्च तनाव–हृदय रोग के मामलों को बढ़ा रही हैं। इसके अलावा, शहरी क्षेत्रों में जीवन की तेज़ गति और ग्रामीण क्षेत्रों में स्वास्थ्य सुविधाओं की कमी, इस समस्या को और जटिल बनाती है।

पारंपरिक हृदय रोग निदान की तकनीकें–जैसे ईसीजी, ईकोकार्डियोग्राफी और ब्लड टेस्ट–कई बार समय-सापेक्ष और महंगी होती हैं। इससे कई लोग तब तक रोग का पता नहीं कर पाते जब तक कि स्थिति गंभीर न हो जाए। ऐसे में **डिजिटल हेल्थ टेक्नोलॉजी** और **मशीन लर्निंग आधारित पूर्वानुमान प्रणाली** अत्यंत महत्वपूर्ण समाधान बनकर सामने आते हैं।

इस शोध का लक्ष्य है :

1. हृदय रोग की **पूर्वानुमान प्रणाली** तैयार करना।
2. विभिन्न मशीन लर्निंग तकनीकों का तुलनात्मक अध्ययन करना।
3. मोबाइल और कंप्यूटर प्लेटफ़ॉर्म पर उपलब्ध **स्मार्ट प्रणाली** विकसित करना।
4. ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों में **डिजिटल हेल्थ सेवाओं का विस्तार** करना।

3. स्वास्थ्य और समाज: हृदय रोग का सामाजिक और सांस्कृतिक विमर्श - विस्तारित

हृदय रोग केवल चिकित्सकीय दृष्टिकोण का विषय नहीं है; यह समाज, संस्कृति और मानव मनोविज्ञान से भी जुड़ा है।

i. साहित्य और लोककथाओं में हृदय

- प्राचीन साहित्य और लोककथाओं में हृदय को **भावनाओं और जीवन का केंद्र** माना गया है।
- 21वीं सदी में यह प्रतीकात्मक दृष्टि और वास्तविक चिकित्सकीय चुनौती दोनों के रूप में सामने आता है।

- "दिल टूटना" - भावनात्मक तनाव
- "दिल का टूटना" - वास्तविक हृदय रोग

ii. डिजिटल कथाएँ (Digital Narratives)

- सोशल मीडिया प्लेटफ़ॉर्म्स पर लोग अपने हृदय स्वास्थ्य अनुभव साझा करते हैं।
- ये डिजिटल कथाएँ मरीजों को **सामाजिक समर्थन** प्रदान करती हैं और स्वास्थ्य जागरूकता बढ़ाती हैं।
- ऑनलाइन समुदाय और फ़ोरम रोगियों को **सुझाव, प्रेरणा और जानकारी** देते हैं।

iii. ग्रामीण और शहरी अंतर

- शहरी क्षेत्रों में जाँच और विशेषज्ञ सुविधा उपलब्ध है, लेकिन अत्यधिक तनाव और अस्वस्थ जीवनशैली जोखिम बढ़ाती है।
- ग्रामीण क्षेत्रों में विशेषज्ञ सुविधा की कमी है, इसलिए **डिजिटल हेल्थ समाधान** अधिक प्रभावी और उपयोगी साबित होते हैं।

iv. 21वीं सदी का स्वास्थ्य विमर्श

- स्वास्थ्य अब केवल चिकित्सकीय प्रक्रिया नहीं रहा; यह **सांस्कृतिक, सामाजिक और डिजिटल विमर्श** का भी हिस्सा बन गया है।
- मशीन लर्निंग और डिजिटल कथाएँ मिलकर समाज में **स्वास्थ्य जागरूकता, रोकथाम और समय पर हस्तक्षेप** की नई संस्कृति स्थापित कर रही हैं।

4. समस्या परिदृश्य और अनुसंधान उद्देश्य - विस्तारित

i. समस्या कथन

भारत जैसे विकासशील देश में हृदय रोग के मरीजों की संख्या तेजी से बढ़ रही है। प्रमुख समस्याएँ इस प्रकार हैं:

- **देर से पहचान:** अधिकांश लोग तब तक रोग का पता नहीं कर पाते जब तक कि स्थिति गंभीर न हो जाए।
- **सुविधाओं की कमी:** ग्रामीण और दूरदराज के क्षेत्रों में विशेषज्ञ डॉक्टर और आधुनिक जांच की सुविधाएँ उपलब्ध नहीं हैं।

- **महंगे परीक्षण:** ईसीजी, ब्लड टेस्ट और कोलेस्ट्रॉल टेस्ट जैसी जाँच आम नागरिकों के लिए महँगी हैं।
- **जागरूकता की कमी:** लोग अपने जीवनशैली और पोषण संबंधी जोखिमों के प्रति पर्याप्त जागरूक नहीं हैं।
- **सांस्कृतिक और सामाजिक बाधाएँ:** स्वास्थ्य समस्याओं पर खुलकर चर्चा न करना, भय और कलंक जैसी सामाजिक बाधाएँ रोग की पहचान और उपचार में देरी करती हैं।

ii. अनुसंधान उद्देश्य

इस शोध का उद्देश्य है :

- **मेडिकल डेटा आधारित पूर्वानुमान:** मरीज की उम्र, रक्तचाप, कोलेस्ट्रॉल स्तर, जीवनशैली और पारिवारिक इतिहास जैसे पैरामीटर्स का विश्लेषण करके हृदय रोग की संभावना का आकलन।
- **मशीन लर्निंग तकनीकों का तुलनात्मक अध्ययन:** लॉजिस्टिक रिग्रेशन, डिसीजन ट्री और सपोर्ट वेक्टर मशीन जैसे एल्गोरिथ्म की सटीकता और व्याख्यात्मक क्षमता का मूल्यांकन।
- **स्मार्ट हेल्थ सिस्टम का विकास:** मोबाइल या कंप्यूटर प्लेटफ़ॉर्म पर आधारित प्रणाली, जो मरीज और डॉक्टर दोनों के लिए उपयोगी हो।
- **डिजिटल हेल्थ सेवाओं का विस्तार:** ग्रामीण और शहरी समाज में स्वास्थ्य जागरूकता बढ़ाने और रोकथामात्मक उपायों को बढ़ावा देना।

5. डिजिटल युग में स्वास्थ्य: मशीन लर्निंग और AI की भूमिका - विस्तारित

21वीं सदी में डिजिटल हेल्थ के तीन प्रमुख स्तंभ उभर कर सामने आए हैं:

i. मशीन लर्निंग आधारित पूर्वानुमान

- स्वास्थ्य डेटा का विश्लेषण कर रोग जोखिम की भविष्यवाणी।
- मरीज के व्यक्तिगत डेटा जैसे उम्र, लिंग, रक्तचाप, कोलेस्ट्रॉल, शारीरिक गतिविधि, और धूम्रपान/मादक पदार्थ सेवन के आधार पर **लो, मीडियम और हाई रिस्क** का वर्गीकरण।

- एल्गोरिथ्म मरीज को **प्रारंभिक चेतावनी** देते हैं, जिससे समय पर डॉक्टर से संपर्क संभव होता है।

ii. वेयरेबल टेक्नोलॉजी

- फिटबिट, स्मार्टवॉच और अन्य सेंसर लगातार हार्ट-रेट, ब्लड प्रेशर, नींद पैटर्न और शारीरिक गतिविधि को मापते हैं।
- ये डिवाइस डेटा क्लाउड या मोबाइल एप्स पर भेजते हैं, जहां ML मॉडल उसका विश्लेषण कर **रियल-टाइम स्वास्थ्य अपडेट** प्रदान करते हैं।

iii. टेलीमेडिसिन और चैटबॉट्स

- मरीजों को घर बैठे डॉक्टर से परामर्श लेने की सुविधा।
- AI चैटबॉट्स प्रारंभिक मूल्यांकन, स्वास्थ्य टिप्स और जीवनशैली सलाह प्रदान करते हैं।
- यह सुविधा ग्रामीण क्षेत्रों और स्वास्थ्य सेवा की कमी वाले क्षेत्रों में विशेष रूप से लाभकारी है।

iv. AI और ML का सामाजिक प्रभाव

- डिजिटल स्वास्थ्य समाधानों ने **डिजिटल सेतु** का निर्माण किया है–मरीज, डॉक्टर और स्वास्थ्य सेवा प्रदाता के बीच।
- यह तकनीक स्वास्थ्य डेटा के **सामाजिक और सांस्कृतिक विमर्श** को भी सशक्त बनाती है।
- डिजिटल स्वास्थ्य डेटा और AI मॉडल समाज में **स्वास्थ्य जागरूकता, रोकथाम और नीति निर्माण** में योगदान करते हैं।

6. प्रस्तावित फ्रेमवर्क: स्मार्ट कार्डियक प्रेडिक्शन सिस्टम - विस्तारित

i. डेटा संग्रहण और स्रोत

- डेटा UCI मशीन लर्निंग रिपॉजिटरी और अन्य ओपन-सोर्स हेल्थ डेटाबेस से लिया गया।
- विशेषताएँ :

फीचर (Feature)	विवरण (Description)
Age	मरीज की उम्र (वर्ष में)
Gender	लिंग (पुरुष/महिला)
Resting Blood Pressure	विश्रामकाल रक्तचाप
Cholesterol	कोलेस्ट्रॉल स्तर (mg/dl)
Fasting Blood Sugar	उपवास शुगर स्तर
Maximum Heart Rate	अधिकतम हृदय दर
Exercise-Induced Angina	व्यायाम से प्रेरित एंजाइना (हाँ/ना)
Oldpeak	ST सेगमेंट डिप्रेशन
Family History	पारिवारिक इतिहास
Smoking / Alcohol	जीवनशैली संबंधित जोखिम

ii. डेटा पूर्व-प्रसंस्करण (Preprocessing)

- **गायब मानों का प्रबंधन:** lost values को हटाना या Imputation।
- **सामान्यीकरण (Normalization):** मॉडल की सटीकता बढ़ाने के लिए।
- **फीचर चयन (Feature Selection):** केवल महत्वपूर्ण पैरामीटर्स को शामिल करना।
- **डेटा विभाजन:** 70% ट्रेनिंग और 30% टेस्टिंग के लिए।

iii. मॉडल निर्माण और प्रशिक्षण

- **लॉजिस्टिक रिग्रेशन** - सरल और तेज़, प्रारंभिक अनुमान में उपयोगी।
- **डिसीजन ट्री** - व्याख्यात्मक और उच्च सटीकता; मरीज और डॉक्टर दोनों के लिए समझना आसान।
- **SVM (Support Vector Machine)** - जटिल और गैर-रेखीय डेटा के लिए उपयुक्त।

iv. जोखिम वर्गीकरण

- मॉडल तीन श्रेणियों में मरीज का वर्गीकरण करता है:
    - **लो रिस्क (Low Risk)** - सामान्य जीवनशैली सुधार सुझाव।
    - **मीडियम रिस्क (Medium Risk)** - डॉक्टर से प्रारंभिक जांच की सिफारिश।
    - **हाई रिस्क (High Risk)** - तुरंत चिकित्सकीय परामर्श और जीवनशैली में बदलाव।

7. मॉडल मूल्यांकन और विश्लेषण - विस्तारित

सभी मॉडल्स को एक ही डेटा सेट पर टेस्ट किया गया और उनका मूल्यांकन विभिन्न मापदंडों के आधार पर किया गया: **सटीकता (Accuracy), Precision, Recall, F1-Score** और **Confusion Matrix**।

एल्गोरिद्म	सटीकता (Accuracy)	Precision	Recall	F1-Score	विशेषताएँ
लॉजिस्टिक रिग्रेशन	82%	0.81	0.80	0.805	सरल, तेज़, प्रारंभिक अनुमान में उपयोगी
डिसीजन ट्री	85%	0.84	0.85	0.845	व्याख्यात्मक, उच्च सटीकता
SVM	83%	0.82	0.83	0.825	जटिल डेटा पर उपयुक्त

विश्लेषण और अवलोकन :

1. **डिसीजन ट्री** ने सबसे अच्छा प्रदर्शन किया, क्योंकि यह न केवल सटीक है बल्कि परिणामों को आसानी से समझाया जा सकता है।
2. **लॉजिस्टिक रिग्रेशन** सरल और तेज़ है, लेकिन जटिल पैटर्न की पहचान में सीमित है।
3. **SVM** जटिल और गैर-रेखीय डेटा के लिए उपयुक्त है, लेकिन प्रशिक्षण समय अधिक है।
4. **Confusion Matrix** से यह स्पष्ट हुआ कि डिसीजन ट्री ने **True Positives और True Negatives** में सबसे अधिक संतुलन बनाए रखा।

इस मूल्यांकन से यह निष्कर्ष निकला कि **डिसीजन ट्री आधारित स्मार्ट प्रणाली** हृदय रोग पूर्वानुमान के लिए सबसे उपयुक्त है।

8. डिजिटल कथाएँ और मरीज अनुभव - विस्तारित

21वीं सदी में तकनीक केवल मॉडल नहीं बल्कि **कथाएँ गढ़ रही है**।

i. मोबाइल हेल्थ ऐप्स और वेयरेबल्स

- *Arogya Setu*, *Fitbit Apps*, और *Apple Health* जैसे ऐप्स मरीजों को **दैनिक स्वास्थ्य डेटा और चेतावनी संदेश** प्रदान करते हैं।
- मरीज अपनी दिनचर्या, नींद, हृदय दर और शारीरिक गतिविधि के बारे में डिजिटल रूप से रिकॉर्ड रखते हैं।
- ये डेटा न केवल AI मॉडल के लिए उपयोगी है बल्कि **व्यक्तिगत स्वास्थ्य डिजिटल कहानी** के रूप में काम करता है।

ii. सोशल मीडिया और डिजिटल समुदाय

- सोशल मीडिया प्लेटफ़ॉर्म्स पर #HeartHealth, #CardioAwareness जैसे हैशटैग स्वास्थ्य कथाएँ और सुझाव साझा करते हैं।
- मरीज और स्वास्थ्य पेशेवर ऑनलाइन फ़ोरम और कम्युनिटी ग्रुप्स के माध्यम से अनुभव और ज्ञान साझा करते हैं।
- डिजिटल नैरेटिव्स न केवल जागरूकता बढ़ाते हैं बल्कि **सामाजिक समर्थन और मानसिक स्वास्थ्य** में भी मदद करते हैं।

iii. सांस्कृतिक और सामाजिक प्रभाव

- डिजिटल कहानियाँ ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों में **स्वास्थ्य जागरूकता** फैलाने का प्रभावी माध्यम बन गई हैं।
- मरीज अनुभव और प्रेरक कथाएँ समाज में **स्वास्थ्य सकारात्मक व्यवहार** को बढ़ावा देती हैं।
- यह डिजिटल विमर्श स्वास्थ्य और समाज के बीच **एक सेतु** का काम करता है, जिससे रोकथाम और प्रारंभिक हस्तक्षेप में मदद मिलती है।

9. रोकथामात्मक कार्डियोलॉजी और AI हस्तक्षेप - विस्तारित

i. प्रारंभिक चेतावनी प्रणाली (Early Warning Systems)

- AI आधारित मॉडल मरीज को डॉक्टर से पहले **रियल-टाइम चेतावनी** प्रदान कर सकते हैं।
- उदाहरण: यदि हार्ट-रेट अचानक उच्च हो जाता है या ब्लड प्रेशर असामान्य स्तर पर पहुँचता है, तो सिस्टम **नोटिफिकेशन** भेजता है।

ii. AI Nudges और जीवनशैली सुझाव

- मशीन लर्निंग मॉडल व्यक्ति के **रूटीन और डेटा पैटर्न** को सीखते हैं।
- उदाहरण:
  - "आपने आज 5000 स्टेप पूरे किए, बढ़िया! अभी थोड़ी स्ट्रेचिंग करें।"
  - "पिछले सप्ताह में सोने का समय असंगत था, नींद पर ध्यान दें।"

iii. चैटबॉट आधारित हेल्थ असिस्टेंट

- मरीज से बातचीत कर प्राथमिक **स्वास्थ्य मूल्यांकन और सुझाव** देते हैं।
- ग्रामीण क्षेत्रों में जहाँ डॉक्टर की सुविधा नहीं है, वहाँ यह सिस्टम **आरंभिक चिकित्सा सलाह** प्रदान कर सकता है।
- चैटबॉट्स मरीज की भाषा और स्थानीय संस्कृति के अनुसार **कस्टमाइज्ड सुझाव** देते हैं।

iv. सामाजिक और नैतिक पहलू

- AI हस्तक्षेप मरीज को समय पर सचेत करता है, लेकिन **मानव डॉक्टर की भूमिका** अपरिहार्य है।
- डिजिटल स्वास्थ्य समाधानों से **डिजिटल डिवाइड** और **डेटा गोपनीयता** पर ध्यान रखना आवश्यक है।

10. नैतिक और मानवीय आयाम - विस्तारित

मशीन लर्निंग और AI आधारित स्वास्थ्य प्रणालियाँ केवल तकनीक नहीं हैं; ये **मानवीय जीवन, सामाजिक व्यवहार और नैतिक जिम्मेदारी** से गहराई से जुड़ी हैं।

i. डेटा गोपनीयता (Data Privacy)

- मरीजों का स्वास्थ्य डेटा अत्यंत संवेदनशील होता है।

- HIPAA (Health Insurance Portability and Accountability Act) और GDPR जैसी नीतियाँ सुनिश्चित करती हैं कि डेटा सुरक्षित और अनधिकृत पहुंच से मुक्त रहे।
- डिजिटल स्वास्थ्य एप्लिकेशन और वेयरेबल डिवाइस डेटा एनक्रिप्शन और सुरक्षित सर्वर के माध्यम से संग्रहीत करते हैं।

ii. डिजिटल डिवाइड (Digital Divide)

- ग्रामीण और दूरदराज के क्षेत्रों में इंटरनेट और स्मार्टफोन की कमी, AI आधारित हेल्थ सेवा के लाभों को सीमित कर देती है।
- समाधान: **ऑफ़लाइन डेटा संग्रह**, स्थानीय भाषा इंटरफेस और कम बैंडविड्थ वाले सिस्टम।

iii. एल्गोरिद्मिक बायस (Algorithmic Bias)

- यदि ट्रेनिंग डेटा पक्षपाती या असंतुलित है, तो AI मॉडल **गलत निष्कर्ष** दे सकता है।
- उदाहरण: पुरुषों के डेटा पर अधिक प्रशिक्षण लेने से महिला रोगियों के जोखिम का सही पूर्वानुमान नहीं हो पाता।
- समाधान: **विविध और संतुलित डेटा**, नियमित मॉडल ऑडिट और परीक्षण।

iv. मानवीय भूमिका और जिम्मेदारी

- तकनीक डॉक्टर की जगह नहीं ले सकती; यह केवल **सहायक उपकरण** है।
- मानव चिकित्सक रोगी के **सामाजिक, मानसिक और सांस्कृतिक संदर्भ** को समझकर अंतिम निर्णय लेते हैं।
- AI मॉडल केवल **निष्कर्ष और सुझाव** प्रदान करता है, निर्णय और संवेदनशीलता हमेशा मानवीय चिकित्सक पर निर्भर करती है।

11. भविष्य की संभावनाएँ: मानवीय और समावेशी AI की ओर - विस्तारित

i. अधिक विविध और वास्तविक समय डेटा का समावेश

- स्मार्टवॉच, IoT उपकरण और मोबाइल एप्स से रीयल-टाइम डेटा का संग्रह।
- डेटा में मौसम, प्रदूषण स्तर, आहार और शारीरिक गतिविधि जैसे कारक शामिल।

ii. क्षेत्रीय भाषा और सांस्कृतिक अनुकूलता

- ग्रामीण और विभिन्न भाषाई समुदायों के लिए **लोकल भाषा इंटरफेस**।
- सांस्कृतिक और जीवनशैली अनुसार **AI सुझाव और Nudges**।

iii. डॉक्टर और टेलीमेडिसिन सेवाओं के साथ गहरा एकीकरण

- AI सिस्टम डॉक्टर और स्वास्थ्य पेशेवरों के लिए **निर्णय सहायक उपकरण** बन सकते हैं।
- रीयल-टाइम अलर्ट, रिपोर्ट जेनरेशन और जोखिम वर्गीकरण चिकित्सकीय प्रक्रिया को तेज़ और प्रभावी बनाते हैं।

iv. समाज और डिजिटल स्वास्थ्य

- डिजिटल स्वास्थ्य समाधानों से **सामाजिक स्वास्थ्य जागरूकता** बढ़ती है।
- AI और डिजिटल कथाएँ मिलकर स्वास्थ्य, समाज और संस्कृति के बीच **एक सशक्त सेतु** का निर्माण करती हैं।
- भविष्य में AI और मानव सहभागिता के माध्यम से **समावेशी, स्मार्ट और टिकाऊ स्वास्थ्य पारिस्थितिकी तंत्र** तैयार हो सकता है।

12. निष्कर्ष: स्मार्ट तकनीक और मानवीय कहानियों का संगम - विस्तारित

यह शोध दिखाता है कि **मशीन लर्निंग आधारित स्मार्ट प्रणाली** हृदय रोग पूर्वानुमान में अत्यंत प्रभावी है।

- **डिसीजन ट्री मॉडल** ने सर्वोत्तम सटीकता (85%) प्रदान की।
- डिजिटल और AI हस्तक्षेप केवल तकनीकी उपलब्धि नहीं हैं, बल्कि यह **मानव जीवन और सामाजिक विमर्श** का भी हिस्सा बन गए हैं।
- डिजिटल हेल्थ ऐप्स, सोशल मीडिया कथाएँ, और वेयरेबल डिवाइस **स्वास्थ्य जागरूकता, रोकथाम और प्रारंभिक हस्तक्षेप** के लिए शक्तिशाली उपकरण हैं।
- 21वीं सदी में स्वास्थ्य केवल **चिकित्सा तक सीमित नहीं**, बल्कि यह **सांस्कृतिक, सामाजिक और डिजिटल विमर्श** का एक हिस्सा बन गया है।
- **भविष्य** में AI और मानवीय सहभागिता, क्षेत्रीय भाषा समर्थन और रीयल-टाइम डेटा इंटीग्रेशन के माध्यम से **समावेशी और स्मार्ट स्वास्थ्य प्रणाली** का निर्माण संभव है।

इस प्रकार यह शोध **तकनीकी और साहित्यिक विमर्श** दोनों को जोड़ता है और 21वीं सदी में स्वास्थ्य, समाज और डिजिटल कथा के बीच एक **सशक्त संगम** प्रस्तुत करता है।

13. संदर्भ (References)

1. UCI Machine Learning Repository - Heart Disease Dataset
2. World Health Organization (WHO), Cardiovascular Diseases 2023 Report
3. Rajkomar, A., Dean, J., & Kohane, I. (2019). Machine Learning in Medicine. *New England Journal of Medicine*, 380, 1347-1358.
4. Topol, E. (2019). *Deep Medicine: How Artificial Intelligence Can Make Healthcare Human Again*. Basic Books.
5. Krittanawong, C., et al. (2020). AI in Cardiovascular Medicine. *Nature Reviews Cardiology*, 17(6), 333-348.
6. Deo, R. C. (2015). Machine Learning in Cardiovascular Medicine. *Circulation*, 132(20), 1920-1930.
7. Dey, N., Ashour, A. S., & Balas, V. E. (2018). *Smart Medical Data Sensing and IoT Systems for Healthcare Applications*. Springer.
8. Johnson, K. W., et al. (2018). Artificial Intelligence in Cardiology. *Journal of the American College of Cardiology*, 71(23), 2668-2679.
9. Kaur, M., & Kaur, R. (2021). Predictive Analytics for Heart Disease Using Machine Learning Techniques. *International Journal of Information Technology*, 13, 123-132.
10. Topol, E. J. (2018). High-performance Medicine: The Convergence of Human and Artificial Intelligence. *Nature Medicine*, 24(1), 44-56.

ईमेल : kkishvinthasree@gmail.com

मोबाइल : 9993932316

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Sept. 2025 Page No. : 119-122

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

हिंदी उपन्यासों में दिव्यांग नारी की अस्मिता और विमर्श

शशिकांत चिन्नेश्वर सैबे, शोधार्थी
डॉ. रवींद्र लिंबाजी भोरे
शोध निर्देशक

शोध सारांश :-

दिव्यांगजन समाज के अविभाज्य घटक हैं। इनके अविकसित होने पर समाज का संपूर्ण विकास नहीं माना जा सकता। जन्म से या जन्म के बाद किसी भी कारण से व्यक्ति को शारीरिक या मानसिक क्षति पहुँचती है तथा वह व्यक्ति अंशतः या संपूर्ण जीवन के लिए उस शारीरिक अंग से बाध्य हो जाता है, तो उसे समाज में अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ता है। साहित्य समाज का दर्पण होता है, अतः दिव्यांग विषयों पर भी अनेक कविता, कहानी, उपन्यास आदि निर्मित हुए हैं। दिव्यांग विमर्श के आधार पर हमें दिव्यांग जन को सम्मानजनक जीवन दिलाना है, ताकि वे भी सामान्य जीवन का आनंद ले सकें। यह तभी हो सकता है, जब हम सब मिलकर इस विषय पर गहन चिंतन करें। आजकल के संसार से मनुष्यता समाप्त हो गई ऐसा नहीं कहा जा सकता। जब तक संसार में समाज का विचार करने वाले बुद्धिजीवी हैं, तब तक समाज का विकास संभव है। विमर्श के लिए प्रारंभिक चरण में ऐसे ही बुद्धिजीवी की आवश्यकता है। दिव्यांगजनों की सामाजिक प्रगति के लिए दिव्यांग विमर्श आवश्यक है।

नर और नारी ईश्वर की सबसे अनमोल रचना है। परंतु केवल नारी ही सृजनशीलता का आधार मानी जाती है। वह संतानोत्पत्ति तो करती है साथ में समाज को संस्कार, कला, संस्कृति आदि से परिपूर्ण कर जाती है। हर निराशा में आशा की कांति फैलाकर न हारने की सीख दे जाती है। सीता और द्रौपदी जैसे पात्र दुःख के समय में धीरज से काम लेने की सीख दे जाते हैं। जिससे दुःख की परिस्थिति में भी संघर्ष का और जीतने का विश्वास बना रहता है। दोहे की पंक्तियाँ नारी के इसी चरित्र को स्पष्ट करते हैं–

नारी कभी न हारती, पहने आशा रंग।
धीर धरे दुख में सदा, बढ़े विश्वास संग।।

नारी में स्वाभाविक रुप से वात्सल्य और करुणा का भाव होता है। नारी अत्यंत भावनाशील और संवेदनशील होती है। नारी त्याग और बलिदान के लिए तत्पर होती है। सहनशीलता, समर्पण और प्रेम का भाव भी नारी में गहराई तक समाया होता है। परिस्थिति के अनुसार इन गुणों की मात्रा भी बदलती रहती है। नारी से संबंधित इन सारे ही गुणों का वर्णन हमें साहित्य में पढ़ने को मिलता है। अनेक उपन्यास नारी जीवन पर आधारित है, जहाँ हमें नारी गुणों के सुक्ष्म दर्शन होते हैं। सामान्य अवस्था की नारी के जीवन में अनेक वैयक्तिक,

पारिवारिक और सामाजिक परेशानियों नजर आती है और जब हम दिव्यांग नारी की बात करते हैं तो इनकी समस्याओं का भार और अधिक बढ़ जाता है। सामान्य हो या दिव्यांग नारी उसके गुणों में कहीं भी कमतरता का अनुमान नहीं होता, बल्कि जितनी कठिन परिस्थिति होती है, उसके गुणों की आभा उतनी ही दिव्य होती है।

दिव्यांगों में छीपे इन्हीं दिव्य गुणों के कारण माननीय प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी जी ने 27 दिसंबर, 2015 के 'मन की बात' कार्यक्रम में विकलांगों के लिए दिव्यांग शब्द का प्रयोग करने का आग्रह किया था। उनके अनुसार "शारीरिक रूप से अक्षम्य लोगों के पास दिव्य क्षमता होती है, अतः उनके लिए 'विकलांग' शब्द के स्थान पर 'दिव्यांग' शब्द का प्रयोग किया जाना चाहिए।" माननीय प्रधानमंत्री जी की पहल से ही विकल शब्द के स्थान पर दिव्य शब्द का प्रयोग संभव हो पाया है। अनेक उपन्यासों में दिव्यांगों की दिव्यता की प्रचिती भी होती है।

अमृतलाल नागर का उपन्यास सुहाग के नुपुर में चेलम्मा कुष्ठरोग से ग्रसीत है। चेलम्मा अपने आप में प्रसिद्ध नर्तकी भी थी, जो अपने ढलती आयु में माधवी को अपने इस गुण की सारी विशेषता सीखा देती है, जिससे माधवी नगर के सबसे बड़े नृत्य उत्सव में विजयी होती है और उसकी ख्याती पूरे नगर भर में फैल जाती है। विचार करने की बात यह है कि जिस चेलम्मा के कारण माधवी को मान–सम्मान मिला था, उस चेलम्मा को अपनी कोढ़ की बीमारी के कारण बार–बार अपमान का सामना करना पड़ता है। "कुरूप और पतित हो जाने के कारण चेलम्मा को अब दरबार में प्रवेश नहीं मिलता था। वह नृत्यमंडप के बाहर भिकारियों में बैठी थी।"[1] इसी उपन्यास में नृत्यसभा में नृत्य करते हुए माधवी का अपने ही मन में गढ़ा एक मंथन भी है, जिसमें वह कहती है, "नृत्यगुरु! अच्छी तरह परीक्षा ले लो। यद्यपि मैं और मेरी शिक्षागुरु चेलम्मा दोनों ही अकुलीना हैं, परंतु ज्ञान के क्षेत्र में हम अकिंचनों की भी पूरी श्रद्धा और गति है।"[2] इन दो प्रसंगों से हम यह तो समझ सकते हैं कि गुणों के होते हुए भी दिव्यांगों के प्रति समाज का व्यवहार किस प्रकार का होता है। हमें विमर्श के माध्यम से ऐसी परिस्थितियों पर अंकुश लगाना है।

ऐसा नहीं है कि हर एक दिव्यांग के साथ इस प्रकार का व्यवहार होता है। आजकल का समाज आधुनिकता पर चलने वाला समाज है, जो शारीरिक कमी से अधिक गुणों को महत्त्व देता है। मृदुला सिन्हा द्वारा रचित 'ज्यों मेहंदी का रंग' में शालिनी जहाज के डेक में पैर फँसने के कारण अपने दोनों पैर खो देती है, परंतु परिस्थिति के आगे घुटने टेकने के स्थान पर वह परिस्थिति से लोहा लेती है, जिसमें उसका साथ उसी उपन्यास के नायक डॉ. अविनाश उर्फ दद्दा जी देते हैं। डॉ. अविनाश भी दुर्घटनावश दिव्यांग हो गए थे, परंतु वे एक संस्था का निर्माण करते हैं, जहाँ दिव्यांगों के लिए कृत्रिम अवयव बनाने का कार्य किया जाता है। दिव्यांगों के जीवन को बदलने के लिए दद्दाजी ने भरसक प्रयास किया जिसमें वे काफी हद तक सफल भी हुए। एक बार शालिनी दद्दाजी से कहती है, "दद्दाजी राठौर के विषय में पता है? उसके भाइयों ने उसकी सारी जमीन हड़प ली थी। अपने यहाँ के पैरों पर चलकर, कितनी मुश्किल से उसने जमीन छुडवाई दृ सारी कहानी उस दिन बता रहा था। कितना आत्मविश्वास आ गया उसमें।"[3] इस उपन्यास में दिव्यांगता को लाचारी न बताकर उसे प्रगति के लिए अवसर बताया गया है, जो दिव्यांगता ही नहीं अच्छे व्यक्ति के लिए भी प्रेरणादायक सिद्ध होता है। ऐसे उदाहरणों से हम आपसी विमर्श करके जीवन से हारे लोगों को भी सही मार्गदर्शन करा सकते हैं।

जीवन में आई हुई दोहरी कटुता को झेलने वाली नारी ही हो सकती है। एक तरफ अपने पैर कट जाने के कारण वह दिव्यांग हो गई तथा दूसरी ओर अपने पति द्वारा दूसरा विवाह करने के समाचार के कारण मन

से आहत हो गई। परंतु दोनों ही परिस्थिति को शालिनी ने बहुत उत्तमता से निभाया है।

संस्था में आने वाले हर एक रोगी की वह देखभाल करती है। उनसे जीवन के नए गुण सीखती है, नए सिद्धांत सीखती है। एक परिस्थिति ऐसी भी आती है, जहाँ वह स्वयं ही सारी संस्था की चालिका भी बन जाती है। संस्था में आने वाला हर एक रोगी शालिनी के स्वभाव, उसकी बुद्धि कुशलता, उसकी बात करने की शैली, सबको अपना बनाने की खूबी और पारिवारिक प्रेम के कारण उसकी बात मानने लगता है। इतना ही नहीं अनैतिक काम करने वाला नक्सली महेश भी शालिनी के सानिध्य में आकर संस्था में इलाज करवा कर, अपने आप को जेल सुपरिटेंडेंट के सामने समर्पित कर देता है।

"भागलपुर जेल से भागा हुआ कैदी तुम्हारे यहाँ आया था। पैर लगवाकर वापस फिर जेल ही गया। वहाँ जाकर जेल सुपरिटेंडेंट से क्षमा माँगी। वह नक्सलवादी था। कुछ दिन जेल में उसकी गतिविधि देख सबको आश्चर्य हुआ। अंत में सरकार से परामर्श ले, उसे सजा से मुक्त कर दिया गया। उसे सरकार से दो बीघा जमीन भी मिली है और अब उसी पर खेती शुरू की है।"[4]

श्यामा मृदुला गर्ग द्वारा निर्मित 'अनित्य' उपन्यास की थ्रोम्बोसिस की पीड़िता है, जो कई वर्षों से रोगशय्या पर ही लेटी है। कोई उसकी बीमारी का उपहास करें यह उसे पसंद नहीं। इस कारण श्यामा अपने–आप से दृढ़ संकल्प करती है कि वह अपनी बेबसी को अवश्य बदलेगी। "श्यामा यू ही अविजित के सहारे रेंग–रेंगकर बिस्तर छोड़ती है और कुछ हफ्तों के लिए इस लायक हो जाती है कि सारा दिन आराम के बाद, बाहर घूम आए, खाने की मेज पर सबके साथ खाना खा ले और जमकर प्रोत्साहित किए जाने पर, एकाध नाटक या चलचित्र भी देख आए।'[5]

परिणाम यह हुआ कि जिन आवश्यक कामों के लिए उसे परिवार वालों पर निर्भर रहना पड़ता था वही काम वह बिना किसी की सहायता से कर रही थी। यह घटना दिव्यांगों को ही नहीं सामान्य मनुष्य को भी प्रोत्साहित करती है कि बार–बार के प्रयास से परिस्थिति को बदला जा सकता है।

'कठगुलाब' मृदुला गर्ग का उपन्यास है, जिसमें स्मिता अल्पदृष्टि की रोगी है। जिसे बिना चश्मे के कुछ भी नहीं दिखता। प्रकाश में कोई साया तो स्पष्ट होता है पर वह साया किसका है इसका अनुमान वह लगा नहीं सकती। इसी का फायदा स्मिता का जीजा उठाता है और उसके साथ वहशी हरकत करता है और स्मिता की मानसिक परिस्थिति कुछ ऐसी थी, "गनीमत सिर्फ इतनी थी कि बिना चश्में, वह इतना कम देख पाती थी कि अपने बदन पर ढाया जा रहा कहर उसे धुँधला–धुँधला ही दिखा था। उसे भोग लेने पर वह एक दबी, धीमी, क्रूर हँसी हँसा था। और उसे गूँगा, बँधा और नंगा छोड़कर निकल गया था।" "आज तक यह तय नहीं कर पायी है कि उन तीनों में ज्यादा हैबतनाक क्या था। तेज रोशनी, सामने रखा आदमकद शीशा या बँधे रहने की मजबुरी।"[6] पर स्मिता के साथ जो घटना घटित हुई, वो उसे और निडर बना देती है और इसी निडरता के कारण वह अपने कठोर परिश्रम से स्कॉलरशिप प्राप्त कर उच्च शिक्षा के लिए विदेश जाती है। स्मिता की यह घटना हमारे लिए अनेक प्रश्न छोड़ जाती है। आधुनिकता के इस दौर में भी लाचार लोगों की मजबुरी का फायदा उठाते लोग नजर आते हैं और हम कई बार उनका विरोध करने के स्थान पर आँखों पर पट्टी बाँध लेते हैं। कितने ही गलत व्यवहार हमारे आसपास होते हैं और हम यह विचार करते हैं कि हमारे साथ तो नहीं हो रहा ना। कितने ही बेबसों की बेबसी का फायदा उठाया जाता है और हम हाथ पर हाथ धरे बैठे रहते हैं। दुष्कर्म, आतंक, लूट

और जाने कितने ही गलत कामों पर हमें मंथन कर विमर्श करने की आवश्यकता है क्योंकि जिनके साथ यह काम होते हैं वे किसी न किसी स्तर पर कमजोर होते हैं। अगर ऐसी क्रियाओं पर कोई प्रतिक्रिया नहीं ली गई तो समस्या और जटिल हो सकती है।

'बेघर' ममता कालिया का उपन्यास है। जिसकी नायिका संजीवनी है, जो अपनी पढ़ाई समाप्त कर घर की आर्थिक सहायता में अपना योगदान देती है। असल में देखा जाए तो संजीवनी की माँ बोल और सुन नहीं सकती जिसके कारण उसकी दवाई का खर्च उठाने और उसे घर के अन्य सदस्यों पर बोज न बनने देने के लिए वह प्रयासरत है। माँ के मुख–बधिर होने से घर का कोई भी सदस्य घर के महत्त्वपूर्ण कार्यों में उनका सुझाव नहीं लेता और न ही उनकी साधारण–सी बात सुनी जाती है। परिणामस्वरुप दोनों माँ–बेटी एक–दूसरे का सहारा है। संजीवनी अपनी माँ के लिए चिंतीत भी रहती है क्योंकि कभी–कभी उसे मिरगी के दौरे भी आते हैं। इस उपन्यास में एक बात स्पष्ट होती है कि दिव्यांग व्यक्ति के प्रति किसी का आत्मिक जुड़ाव होता है तो वह दिव्यांग भी अपनी कमियों से परे जाकर संबंधित व्यक्ति की देखभाल और चिंता करने लगता है। इस उपन्यास में संजीवनी अपनी माँ की देखभाल करती है और संजीवनी की माँ भी अपनी बच्ची के जीवन में उठ रहे ज्वार–भाटे को समझकर उसका आधार बनती है। यह उपन्यास हमें आपसी प्रेम और अपनेपन में सीमा से परे उठने की सीख प्रदान करता है। हम औरों के लिए न सही अपने घर, पास–पडोस, संबंधियों या मित्रों में से किसी का भी आधार बन सकते हैं।

पर आधार बनने के लिए हमें उन लोगों के विचारों का सम्मान करना होगा, जिसके लिए पहले हमारी मानसिकता बननी चाहिए, जो बिना विमर्श के संभव नहीं है। जब हम उनका सम्मान करेंगे तो हमें उनकी विचारधारा समझेगी जिससे हमारे समाज को सुदृढ करने के कई रास्ते खुल जाएँगे, क्योंकि देश की प्रगति में सभी का सहभाग आवश्यक है। जब हमें उनकी विचारधारा का ज्ञान होगा तो उनके अंतरिम गुण भी हमारे समक्ष आएँगे। हमें केवल एक–दूसरे से विमर्श कर इनके गुणों के लिए मंच का निर्माण करना है ताकि ये भी समाज के कंधे से कंधा मिलाकर चल सकें।

संदर्भ :–

1. सुहाग के नुपुर : अमृतलाल नागर – राजकमल प्रकाशन प्रा. लि., नई दिल्ली, बारहवाँ संस्करण 2023, आइएसबीएनः 978–81–267–2058–3, पृष्ठ क्र. 19
2. वही – पृष्ठ क्र. 22
3. ज्यों मेहंदी का रंग : मृदुला सिन्हा, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2016, आइएसबीएनः 978–93–86231–38–3, पृष्ठ क्र. 127
4. वही – पृष्ठ क्र. 143
5. अनित्य : मृदुला गर्ग – राजकमल प्रकाशन प्रा. लि., नई दिल्ली, दूसरा संस्करण 2022, आइएसबीएनः 978–81–267–2585–4, पृष्ठ क्र. 62
6. कठगुलाब : मृदुला गर्ग – भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, ग्यारहवां संस्करण 2020, आइएसबीएनः 81–263–0207–0, पृष्ठ क्र. 21

Email : shashisaibe181@gmail.com, भ्रमणध्वनि – 9021216001

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Sept. 2025 Page No. : 123-126

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

हिंदी कविताओं में पर्यावरण विमर्श

डॉ. निर्मलाबेन ईच्छुभाई पटेल

सहायक प्राध्यापिका, वी.न.द.गु. विश्वविद्यालय, सूरत, गुजरात।

प्रस्तावना :–

आज के युग में मानव सभ्यता के विकास के साथ–साथ ही प्रकृति और पर्यावरण के लिए मनुष्य का दृष्टिकोण निरंतर परिवर्तन होता जा रहा है। मानव अपने विकास से प्रकृति का दोहन करता नजर आ रहा है। आज जगह–जगह प्रदूषण, जलवायु–परिवर्तन, वनों की कटाई, औधोगीकिकरण और शहरीकरण जैसे विविध करणों से पर्यावरणीय संकट बढ़ता जा रहा है। पर्यावरण को बचाने के लिए सरकार द्वारा भी विविध आयामों का गठन किया जा रहा है, दूसरी तरफ साहित्य अपनी कविता, नाटक, उपन्यास जो केवल भावाभिव्यक्ति का माध्यम नहीं बल्कि समाज का दर्पण भी है। इसी दृष्टि से हिंदी साहित्य समय–समय पर प्रकृति और पर्यावरण चेतना का एक लंबा और समृद्ध इतिहास प्रस्तुत करता रहा है।

हिंदी में पर्यावरण के लिए 'परि' तथा 'आवरण' शब्दों का युग्म है। 'परि' का अर्थ हैं– 'चारों तरफ' तथा 'आवरण' का अर्थ हैं– 'घेरा'[१] हिंदी का 'पर्यावरण' शब्द अंग्रेजी शब्द 'ENVIRONMENT' से निर्मित माना जाता है। प्रकृति में जो भी चारों तरफ परिलक्षित है : जल, वायु, पेड–पौंधे तथा प्राणी सभी पर्यावरण के अंग माने जाते हैं।

भूगोल परिभाषा कोश में लिखा गया है कि– "चारों और उन दिशाओं का योग, जिसके अंदर एक जीव अथवा समुदाय रहता है या कोई वस्तु रहती है। पर्यावरण कहलाता है।"[२]

अन्य शब्दों में कहा गया है कि– "पर्यावरण उन परिवेशों को संदर्भित करता है जो जीवित प्राणियों को चारों ओर से घेरते हैं और उनके जीवन को प्रभावित करते हैं। इसमें वायुमंडल, जलमंडल, स्थलमंडल और जैवमंडल शामिल हैं।"[३]

पर्यावरण मनुष्य के हर पहलु को प्रभावित करता है। वह उनके जीवन से जुड़ा हुआ है, पर फिर भी मनुष्य अपनी सुख–सुविधा के लिए पर्यावरण को प्रदूषित करता जा रहा है। उस पर कवि ज्ञानचंद गुप्त 'घोंसला' कविता के माध्यम से अपनी चिंता कुछ इस प्रकार से व्यक्त करते हैं :

"आज भी/सोचता हूँ चिड़िया
हमें छोड़कर क्यों चली गई?
कहाँ गायब हो गई?
आजकल गिद्ध भी तो

कम दिखाई पड़ते हैं
सुना है बचे खुचे जंगलों से
गायब हो गए हैं कई तरह से जानवर।
अजीब पहेली सी लगती है
समझ में नहीं आता
कि पोलिथीन की थैलियों से
समुद्री तूफान और भूकंप का क्या संबंध है।"[४]

जिस प्रकार मनुष्य पर्यावरण से जुड़ा है, उसी प्रकार पशु–पक्षी भी पर्यावरण पर निर्भर रहते हैं। और उनका एक–दूसरे पर निर्भर रहना प्रकृति के लिए जरूरी भी है। कवि राज तैलंग अपनी कविता 'एक पेड़' में लिखते हैं कि –

"एक पौधा लगाना
कई परिंदों के लिए
बसेरे का इंतजार करना है
एक पत्ते को पुचकारने से पूरे पेड़ को हौसला मिलता है।"[५]

कवि ने जंगलों में पेड़ लगाने कि तरफ मनुष्य का ध्यान केंद्रित करने का प्रयास किया है, क्योंकि पक्षी व प्रकृति के संतुलन के लिए घरती पर उचित मात्रा में पेड़ों का होना भी जरूरी है। जबकी आज जंगलों की कटाई अधिक मात्रा में हो रही है। जिसका प्रभाव जल और वायु पर देखने को मिलता है।

औधोगिक विकास के चलते आज हवा प्रदूषित हो रही है। अब ऑक्सीजन की मात्रा लगातार कम होती जा रही है। जबकी मनुष्य के लिए घातक नाइट्रोजन कार्बन और सल्फर की मात्रा दीन–ब–दीन बढ़ती जा रही है। इस पर कवि मंगलेश डबराल अपना वैज्ञानिक चिंतन कुछ इस प्रकार व्यक्त करते हैं :

"बढ़ रहे हैं नाइट्रोजन सल्फर कार्बन के ओक्साइट
और हवा में झूलते हुए चमकदार और खतरनाक कण
बढ़ रही है घळा दमन प्रतिशोध और कुछ चालू किस्म की खुशियाँ
चारों और गर्मी स्प्रे की बोतलें और खुशबूदार फुहारे बढ़ रही हैं।"[६]

पर्यावरण और प्रकृति की बिगड़ती स्थिति के कारण सुखा और अकाल के कारण आने वाली मुसिबतों के प्रति कवि प्रभाकर माचवे ने अपनी कविता 'अनुक्षण' के माध्यम से जनसामान्य को इस प्रकार से सचेत करने का प्रयास किया है :

"पेड़ जलते पथ रहे कराह
सिसकते वन भू धरती आह
चीखती चील ताप से त्रस्त
सकल कण–कण तृण ऊष्मा ग्रस्त।"[७]

बदलते पर्यावरण के कारण मनुष्य और पेड़ दोनों का जीवन सुरक्षित नहीं है। जैसे–जैसे पर्यावरण विनाश की तरफ जा रहा है। उसके साथ मनुष्य का जीवन भी विनाश की तरफ जा रहा है। पर्यावरण की चिंता दर्शाते

हुए ममता किरण की कविता 'वृक्ष हरा भरा' में एक बूढ़े पेड की व्यथा के माध्यम से आने वाली मुश्किलों की तरफ आगाह किया है :

"मेरी सुध कोई नहीं लेता
मैं बूढ़ा हो गया हूँ
कमजोर हो गया हूँ
कब भरभरा कर टूट जाएँ
ये बूढ़ी हड्डियां पता नहीं
तुम सबसे करता हूँ एक निवेदन
एक बार उसी तरह इकट्ठा हो जाओ
मेरे आँगन में जी भर कर देख तो लूँ।"[८]

आज पर्यावरण को बचाने के लिए अनेक प्रयास किए जा रहे हैं। ये सारे कार्य सरकारी या गैर–सरकारी स्तर पर देखने को मिल रहे है किंतु उसकी पहल जनसामान्य की ओर से नहीं हो रही है। आज हरियाली और प्रकृति दूर होती जा रही है। इस पर कवि प्रदीप नवीन की कविता 'चर्चा करते परिंदे' में पर्यावरण पर विविध संकटों पर चिंता व्यक्त करते हुए लिखा हैं कि :

"पर्यावरण की चिंता में
सारा जग है लीन,
और विनाश के देख रहा कैसे-कैसे सीन।
सड़कों पर तो बिछा रही
मोटी सी सीमेंट
वर्षा से बचने की खातिर
तान दिए हैं टेंट
सपनों में ही ढूँढ रहे हैं हम हरियाली,
किस दुकान किस भाव मिलेगी अब खुशहाली।"[९]

निष्कर्ष :

वैश्विक स्तर पर पर्यावरण के विविध मुद्दे चुनौती बनकर पूरी दुनिया के सामने खड़े हैं। पर्यावरण के संतुलन के बिगडने से वर्तमान में अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है। साहित्यकार हो या वैज्ञानिक सभी ने पर्यावरण को सुरक्षित रखने के लिए अपने–अपने तरीके से मनुष्य को जागृत करने का प्रयास किया है। क्योंकि मनुष्य के स्वस्थ जीवन के लिए शुद्ध पर्यावरण का होना अति आवश्यक बन जाता है। कई कवियों ने पर्यावरण–मनुष्य और पक्षियों को एक–दूसरे का पूरक माना है। सब एक दूसरे पर निर्भर रहते हैं। यही कारण है कि आज हर मनुष्य पर्यावरण को बचाने का प्रयास कर रहा है। कवियों ने पर्यावरण विमर्श को अपनी कविताओं के माध्यम से जन समाज के सामने रखने का प्रयास किया है।

संदर्भ :

१. इंडिया वाटर पोर्टल, हिंदी इंटरनेट साइड़।

२. भूगोल परिभाषा कोश, पृ– २३४
३. हमारा पर्यावरण, लाईक फतेहअली, नेशनल बुक ट्रस्ट, पृ– ६०
४. समकालीन कवियों की काव्य चयनिका, भाग–१, पृ. ७
५. 'इन दिनों', कुंवर नारायण, राजकमल प्रकाशन, पृ– ३२
६. काव्य चयनिका, भाग– २, सं. प्रमोद कोपव्रत, लोकभारती प्रकाशन, पृ– २६
७. 'वही', पृ– ८६
८. कविता कोश में, कविता वाचक्कनवी की कविता।
९. काव्य चयनिका, भाग– २, सं. प्रमोद कोपव्रत, लोकभारती प्रकाशन, पृ– ४५

चलभाष : ९७२६८९१५०५
अणुडाक : nipatel2327@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Sept. 2025 Page No. : 127-129

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

हिंदी साहित्य में किन्नर विमर्श

डॉ. माया गोला

असिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी विभाग, सोबन सिंह जीना विश्वविद्यालय, परिसर अल्मोड़ा 263601, (उत्तराखंड)

शोध सारांश :-

हिंदी साहित्य में किन्नर विमर्श, हाशिये पर धकेले गए किन्नर समुदाय के जीवन, समस्याओं और सामाजिक बहिष्कार के प्रति साहित्यकारों द्वारा किए गए लेखन और विश्लेषण को दर्शाता है. यह विमर्श डॉ. नीरजा माधव के उपन्यास 'यमदीप' (2002) से औपचारिक रूप से शुरू हुआ, जिसके बाद 'गुलाल मंडी', 'किन्नर कथा', 'जिंदगी 50–50', 'पोस्ट बॉक्स नं. 203 नाला सोपारा', 'तीसरी ताली' जैसे कई उपन्यासों और कहानियों के माध्यम से किन्नर जीवन की त्रासदियों, धार्मिक–सामाजिक मान्यताओं और उनकी संस्कृति को उजागर किया गया है।

बीज शब्द : प्राचीन परंपरा, मिथक, किन्नर जीवन, दोहरे मापदंड, परिवार एवं समाज, जीवन मूल्य, पितृसत्तात्मक संरचना, समकालीन हिंदी साहित्य, मुख्य धारा, कानूनी अधिकार इत्यादि।

मुख्य आलेख :

हिंदी साहित्य में किन्नर विमर्श एक उभरता हुआ क्षेत्र है जो समाज के हाशिए पर पड़े तृतीय लिंग समुदाय की पीड़ा, संघर्ष और पहचान को केंद्र में रखता है। किन्नर, जिन्हें हिजड़ा, उभयलिंगी या थर्ड जेंडर के रूप में जाना जाता है, प्राचीन काल से भारतीय मिथकों और साहित्य में उपस्थित रहे हैं, लेकिन आधुनिक हिंदी साहित्य में उनका विमर्श मुख्यतः 20वीं और 21वीं शताब्दी में विकसित हुआ है। यह विमर्श न केवल किन्नरों की सामाजिक उपेक्षा को उजागर करता है, बल्कि लिंग की द्विआधारी अवधारणा पर सवाल उठाता है। समाज में किन्नरों को अक्सर भिक्षावृत्ति, वेश्यावृत्ति या सामाजिक बहिष्कार का सामना करना पड़ता है, और साहित्य इस वास्तविकता को प्रतिबिंबित करता है। समकालीन हिंदी साहित्य में यह विमर्श स्त्री विमर्श, दलित विमर्श आदि के साथ जुड़कर समाज की विविधता को रेखांकित करता है।

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि :

किन्नरों का उल्लेख भारतीय मिथकों और प्राचीन ग्रंथों में प्रचुर मात्रा में मिलता है। रामायण में किन्नरों ने राम के वनवास के दौरान उनके लौटने की प्रतीक्षा की और उन्हें आशीर्वाद दिया कि कलियुग में उनके आशीर्वाद व्यर्थ नहीं होंगे। महाभारत में शिखंडी की कथा प्रमुख है, जहां अम्बा का पुनर्जन्म शिखंडी के रूप में होता है, जो लिंग परिवर्तन का प्रतीक है। अर्जुन का बृहन्नला रूप धारण करना भी तृतीय लिंग की अवधारणा को दर्शाता है। वात्स्यायन के कामसूत्र में किन्नरों को 'तृतीय प्रकृति' कहा गया है, और जैन तथा बौद्ध ग्रंथों में

'मनोवैज्ञानिक सेक्स' की चर्चा मिलती है। वैदिक साहित्य में लिंग को तीन श्रेणियों में विभाजित किया गया– पुरुष, स्त्री और प्रकृति। कालिदास के कुमारसंभव, रघुवंश और अभिज्ञान शाकुंतलम में किन्नरों को यक्षों और गंधर्वों के साथ गायक–नर्तक के रूप में चित्रित किया गया है। ऐतिहासिक रूप से, मुगल काल में किन्नरों को हरम की सुरक्षा और जासूसी में नियोजित किया जाता था, जैसे अलाउद्दीन खिलजी के सेनापति मलिक काफूर। औपनिवेशिक काल में 1871 के क्रिमिनल ट्राइब्स एक्ट ने उन्हें अपराधी घोषित कर दिया, जिसकी छाया आज भी बनी हुई है।

आधुनिक हिंदी साहित्य में किन्नर विमर्श :

आधुनिक हिंदी साहित्य में किन्नर विमर्श की शुरुआत 20वीं शताब्दी से मानी जाती है, हालांकि यह अभी भी हाशिए पर है। फिर भी उपन्यासों, कहानियों और आत्मकथाओं में किन्नर विमर्श के सवाल शामिल हैं।

प्रमुख उपन्यास :

कुल्ली भाट (1939) : सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' द्वारा लिखित यह उपन्यास उभयलिंगी विमर्श का प्रारंभिक उदाहरण है, जहां किन्नरों की लैंगिक असमर्थता और सामाजिक संघर्ष को दर्शाया गया है।

यमदीप (2002) : डॉ. नीरजा माधव का यह उपन्यास हिंदी साहित्य में किन्नर समुदाय को केंद्र में रखने वाला पहला प्रमुख कार्य माना जाता है। इसमें किन्नरों की आर्थिक, सामाजिक और भावनात्मक पीड़ा का चित्रण है।

पोस्ट बॉक्स नं. 203 नाला सोपारा : चित्रा मुद्गल का उपन्यास किन्नरों के जीवन की वास्तविकताओं को उजागर करता है, जिसमें परिवार से बहिष्कार और पहचान की खोज शामिल है।

अन्य उपन्यास : गुलाल मंडी, किन्नर कथा, जिंदगी 50–50, मैं भी औरत हूं, मैं पायल, तीसरी ताली, दरमियाना आदि। इनमें किन्नरों की रीति–रिवाज, गुरु–शिष्य परंपरा और सामाजिक बहिष्कार को चित्रित किया गया है।

प्रमुख कहानियां :

बहा वृत्ति और बिन्दा महाराज : शिव प्रसाद सिंह की ये कहानियां किन्नर विमर्श पर आधारित हैं। बहा वृत्ति में प्रमुख पात्र बिन्दारी का औरताना स्वभाव और परिवारिक संघर्ष दर्शाया गया है।

ख्वाब अम्मी बुआ : राही मासूम रजा की कहानी में किन्नरों की सामाजिक स्थिति को दर्शाया गया है।

अन्य कहानियां : नरेंद्र प्रसाद सिंह की 'विंदा मिराज', सुभाष अजय की 'दरमियाना' आदि, जो किन्नरों की पीड़ा और समाज की असंवेदनशीलता को उजागर करती हैं।

आत्मकथाएं और अन्य रचनाएं :

मैं हिजड़ा मैं इंसान : किन्नरों के सामाजिक संघर्ष और पहचान निर्माण को दर्शाती है।

पुरूष तन में फंसा मेरा नारी मन : किन्नरों के जीवन की शून्य से क्षितिज तक की यात्रा का वर्णन। हिंदी साहित्य में किन्नर विमर्श अभी सीमित है, जिसमें लगभग डेढ़ दर्जन उपन्यास, दो दर्जन कहानियां और कुछ कविताएं शामिल हैं।

विश्लेषण :

हिंदी साहित्य में किन्नर विमर्श समाज की पितृसत्तात्मक संरचना को चुनौती देता है, जहां लिंग को

जैविक और सामाजिक रूप से द्विआधारी माना जाता है। किन्नरों को उत्पादक न मानकर उन्हें हाशिए पर धकेल दिया जाता है, जिससे वे भिक्षावृत्ति या वेश्यावृत्ति पर निर्भर होते हैं। साहित्य में उनका चित्रण उनकी संवेदना, दिल की धड़कन और मानवीय अधिकारों की मांग को उजागर करता है, लेकिन समाज अभी भी उन्हें घृणा की दृष्टि से देखता है। कानूनी प्रगति जैसे 2014 का NALSA जजमेंट और 2018 में धारा 377 सकारात्मक हैं, लेकिन सामाजिक स्वीकृति की कमी बनी हुई है। साहित्यकारों ने किन्नरों की गुरु–शिष्य परंपरा, चार प्रकार (बचुरा, नीलिमा, मनसा, हंसा) और लोक संस्कृति को चित्रित किया है, जो उनकी विशिष्ट पहचान को रेखांकित करता है।

निष्कर्ष :

हिंदी साहित्य में किन्नर विमर्श ने समाज की विविधता को स्वीकार करने की दिशा में महत्वपूर्ण योगदान दिया है, लेकिन यह अभी विकासशील है। भविष्य में अधिक रचनाओं की आवश्यकता है जो किन्नरों को मुख्यधारा में लाने में सहायक हों। शिक्षा, स्वास्थ्य और रोजगार में उनकी भागीदारी बढ़ाने से समाज अधिक समावेशी बनेगा।

संदर्भ :

1. समकालीन हिन्दी साहित्य में किन्नर विमर्श। https://snckollam.ac.in/kezoofti/2022/12/04-Samakaleen&hindi&sahithya&mein&kinnar&vimarsh.pdf
2. हिंदी साहित्य में किन्नर विमर्श – डॉ0 सुनन्दा महाजन। http://ijhssi.org/papers/vol10%288%29/Ser&3/J1008035356.pdf
3. समकालीन हिंदी साहित्य में किन्नर विमर्श।http://gurukuljournal.com/samkalin&hindi&sahitya&me/
4. हिन्दी कथा साहित्य में किन्नर जीवन। https://ijcrt.org/papers/IJCRT2303741.pdf
5. आधुनिक हिंदी कथा साहित्य में 'तृतीय–लिंगी' विमर्श। https://www.allresearchjournal.com/archives/2022/vohttps://www.apnimaati.com/2020/07/blog&post_0-htmll8issue4/PartB/8&4&16&828.pdf
6. किन्नर विमर्श : मिथकों से अधिकारों तक।

मोबाइल –962794 8354

ईमेल–drmayagola@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Sept. 2025 Page No. : 130-134

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

हिंदी साहित्य में विश्व शांति की परिकल्पना

कोमल वर्मा

सहायक प्राध्यापक (हिंदी), पंडित नेकीराम शर्मा राजकीय महाविद्यालय, रोहतक, हरियाणा।

सर्वे भवंतु सुखिनः सर्वे संतु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यंतु मा कश्चिद दुखः भाग्भवेत्।।[1]

अर्थात्, इस संसार के सभी प्राणी सुखी हो, किसी को भी रोग न होवे। कल्याण को सब देख ना होवे दुख भोगी।

हमारे शोध पत्र का विषय है "हिंदी साहित्य में विश्व शांति की परिकल्पना" तो हमारे लिए जरूरी हो जाता है कि सर्वप्रथम हम यह जाने कि साहित्य है क्या? साहित्य का क्या अर्थ है? साहित्य का सर्वमत से अर्थ है कि जिसमें प्राणी मात्र के हित की भावना हो वह साहित्य कहलाता है। साहित्य 'सहित' से बना है, सहित शब्द का अर्थ साथ, अर्थात साहित्य का तात्पर्य है सहभाव या साथ रहना। जिस कविता, कहानी, नाटक आदि में सार्वजनिक हित निहित होता है, वह रचना अवश्य ही कालजयी और सबके हित के लिए कल्याणकारी बन जाती है।

'ऋग्वेद' को विश्व के लिखित साहित्य में पहला लिखित साहित्य माना जाता है। हजारों वर्षों से वैदिक साहित्य पर अनुसंधान चल रहा है, क्योंकि इस साहित्य का क्षेत्र व्यापक है। वेद का कोई भी मंत्र या ऋचा किसी देश,काल, पंथ या जाति के संकुचित दायरे में नहीं आती हैं इसलिए वेद न केवल स्त्री न केवल पुरुष न केवल देश न किसी जाति न किसी धर्म के उत्थान की बात करता है अपितु वेदों में संपूर्ण धरती, आकाश, द्युलोक, जल लोक, वनस्पति लोक, मनुष्य लोक, प्राणी लोक के संपूर्ण कल्याण की कामना की गई हैं। इसी कारण विदेशी विद्वान मैक्समूलर को भी अंततः मानना पड़ा कि भारतवर्ष ने जो वैदिक काव्य दिया है, उसमें संसार की ही नहीं अपितु ब्रह्मांड की शांति की कामना है। संसार के सभी मनुष्यों को आगे बढ़ने का समान अधिकार है। वैदिक काल में सभी मनुष्यों में आध्यात्मिक शांति थी यही कारण था कि सभी लोग अपने कर्तव्यों का,धर्म का अच्छे से पालन करते थे। वैदिक साहित्य के बाद भी उत्तरोत्तर बहुत मात्रा में साहित्य लिखा गया जिसमें विश्व कल्याण और विश्व शांति पर बल दिया गया। यह साहित्य मनुष्य में परस्पर सद्भावना परोपकार, दया, ममता आदि की भावना को उत्साहित करता है।

हिंदी साहित्य के इतिहास को बारीकी से अध्ययन करने पर हमें ज्ञात होता है कि हिंदी साहित्य के आदिकाल से पूर्व भी ऐसा बहुत–सा साहित्य लिखा गया है जिसमें देश के साथ–साथ विश्व शांति का संदेश दिया गया है। उदाहरण के लिए हम सिद्ध साहित्य, नाथ साहित्य, जैन साहित्य, बौद्ध साहित्य आदि को रेखांकित

कर सकते हैं विशेष कर बौद्ध और जैन धर्म ने एक लंबे समय तक हमारे समाज को विशेष रूप से प्रभावित किया।

समाज में शांति स्थापना हेतु हिंदी साहित्य ने आरंभ से ही अपना योगदान दिया है। संस्कृत साहित्य एवं वेदों में भी समाज में शांति के लिए अनेक मंत्र बताए गए लेकिन भारत का इतिहास या विश्व के इतिहास को जब हम देखते हैं तो पाते हैं कि अशांति हर काल और देश में मौजूद रही है भले ही उसके कारण अलग–अलग रहे हैं।

हिंदी साहित्य में आदिकाल और रीतिकाल का साहित्य शांति और सद्भावना के लिए भले ही विशेष महत्व न रखता हो लेकिन फिर भी कुछ कवियों ने अपने साहित्य में देशभक्ति, सद्भावना और प्रेम का संदेश दिया लेकिन संपूर्ण भक्ति काल और आधुनिक काल के साहित्य में विश्व कल्याण एवं विश्व शांति की भावना दिखाई देती है। भक्ति काल का साहित्य प्रासंगिक एवं कालजयी है। कबीर, तुलसीदास, सूरदास, मीराबाई रसखान आदि कवियों की रचनाएं नए केवल भारत बल्कि विश्व के अन्य लोगों की ज्ञान श्रुधा को शांत करके शांति का संदेश देती है। यही कारण है कि कबीर की 'बीजक', तुलसीदास जी की 'रामचरितमानस', कवितावली, सूरदास की 'सूरसागर' आदि रचनाएं कालजयी रचनाएं बन गई हैं जो उस समय में भी प्रासंगिक थी और आज भी प्रासंगिक हैं।

आधुनिक काल चूंकि अधिक असंतुष्ट, तनाव, अशांति, अजनबीपन का काल है। आज के मनुष्य की समस्याएं पूर्व के मनुष्य से बहुत अलग हैं फिर भी हिंदी साहित्य के बहुत सारे कवियों और लेखकों ने अपनी लेखनी के माध्यम से इन समस्याओं को उठाया और समस्याओं के प्रति लोगों को जागरूक किया। मैथिली शरण गुप्त, रामधारी सिंह 'दिनकर', प्रसाद, निराला, अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध', महावीर प्रसाद द्विवेदी आदि प्रबुद्ध विद्वानों ने आधुनिक समय की समस्याओं और उनके स्टीक निदान दिए उनकी रचनाओं में विश्व कल्याण और मानव कल्याण की भावना देखने को मिलती है। हिंदी कवियों अर्थात हिंदी साहित्य में विश्व शांति की परिकल्पना से पूर्व हम अशांति के बारे में जानेंगे। अशांति क्या है?..... बेचैनी, खलबली, असंतोष, अस्थिरता आदि का पर्याय जिसमें लालच, ईर्ष्या, द्वेष, द्वंद जैसे भाव आते हैं इसमें संवेदनात्मक समतुल्य का अभाव होता है जिससे समाज में विषाद उत्पन्न होता है, दूसरे शब्दों में इसे अशांति कहा जाता है।

उपयुक्त वर्णन से हम पहले ही स्पष्ट कर चुके हैं कि प्रथम लिखित साहित्य वेद है। हमारे ऋषि मुनियों ने वेदों के माध्यम से पूरे संसार को शांति का संदेश दिया इसी शांति को आगे बढ़ाने और मानव कल्याण के लिए हिंदी साहित्य में हिंदी कवियों और लेखकों ने अपना अहम योगदान दिया। भक्ति की दोनों धाराओं सगुण और निर्गुण दोनों ने अपने–अपने ढंग से साहित्य लिखा और मानवोचित गुणों का बखान किया। इस काल के कवियों ने भक्ति, धर्म, समाज के उत्थान के साथ–साथ समाज कल्याण की भावना को प्रमुखता से रेखांकित किया। यही कारण है कि भक्ति काल को हिंदी 'साहित्य का स्वर्ण–युग' कहां जाता है। यह साहित्य हर दृष्टिकोण से मानव शांति स्थापित करने वाला साहित्य है। तुलसीदास का 'रामचरितमानस' विश्व शांति का प्रतीक है। तुलसीदास ने इस ग्रंथ में राम राज्य का वर्णन किया है, जो एक आदर्श राजा, आदर्श समाज के बारे में बताता है। रामराज्य में कोई भी व्यक्ति किसी भी प्रकार की पीड़ा, दुख से ग्रसित नहीं है। तुलसीदास जी कहते है–

'दैहिक दैविक भौतिक तापा। रामराज नहि काहुहि व्यापा।।'

सब नर करहि परस्पर प्रीति।
चलहिं स्वधर्म निरत श्रुति नीति।।
सब निर्भय धर्मरत पुनः। नर अरू नारि चतुर सब गुनी।।
सब गुनण्य पंडित सब ज्ञानी। सब कृतज्ञ नहीं कपट सयानी।।'[2]

इसी प्रकार कबीर को हिंदी साहित्य में उनका समाज सुधारक, समन्वयकारी, विश्व प्रेमी, विश्व शांति, हिंदू–मुस्लिम एकता का प्रतिष्ठापक के रूप में उनका व्यक्तित्व अधिक गरिमामय दृष्टिगोचर होता है। समन्वय की प्रवृत्ति निर्गुण काव्य धारा की एक महत्वपूर्ण विशेषता है। कबीर दास जी ने अपनी वाणियो के माध्यम से समाज में पहले आडंबरों का विरोध किया। कबीर ने सबसे ज्यादा जाति–पाति वर्ण व्यवस्था के आधार पर अशांति फैलाने वालों को खूब लताड़ा है वह फिर चाहे हिंदू हो या मुसलमान हो। जाति व्यवस्था के कड़े नियमों को तोड़ने के लिए कबीर जी कहते हैं :–

'ऊंचे कुल का जनमिया करनी ऊंच न होये।
सुवर्ण कलस सुरा भरा साधु निंदित होये।।'[3]

जाति व्यवस्था के पाखंडों के साथ–साथ कबीर ने धर्म में पहले पाखंडों का विरोध किया। कुछ आलोचक कबीर को धर्म के नाम पर सांप्रदायिकता फैलाने वाला सिद्ध करते हैं परंतु ऐसा कहना और मानना अनुचित है। हम जानते हैं कि कबीर का समय बहुत पाखंडों का समय था धार्मिक पाखंड चाहे जो भी हो धर्म अर्थात हिंदू मुस्लिम दोनों ही धर्म में फैले हुए थे। कबीर जी जानते थे कि इन पाखंडों और झूठे आडंबरों के साथ सभ्य समाज की स्थापना नहीं हो सकती।

'दिन में रोजा रखत है राति हनत है गाय।
यह तो खून वह बंदिगी कैसे खुशी खुदाये।।'[4]
'माला फेरत जुग गया, गया न मन का फेर।
कर का मन का डारि कै मनका मनका फैर।।'[5]

भक्ति काल में निर्गुण काव्य परंपरा में 'सूफी काव्य' का भी महत्वपूर्ण स्थान है। यह कहा जा सकता है कि अगर इस साहित्य को हिंदी साहित्य से निकाल दिया जाए तो हिंदी साहित्य बिल्कुल निर्जीव है ठीक वैसे ही जैसे आत्मा के बिना शरीर। संत और सूफी दोनों ने ही भले ही भक्ति के निर्गुण मार्ग को चुना हो परंतु इन दोनों संप्रदाय में कुछ समानताएं हैं तो कुछ असमानताएं भी हैं।

गुरु का महत्व, निर्गुण उपासना, रहस्यवाद, प्रेम को महत्व, जगत को मिथ्या, ज्ञान को महत्व, हिंदू–मुस्लिम एकता आदि कुछ समानताएं हैं तो कुछ असमानताएं भी हैं– संतों ने खंडन का अधिक प्रयोग किया। कहीं–कहीं तो उनकी खण्डन प्रवृत्ति आलोचको को चुभने लगी है। वहीं सूफी कवियों ने मण्डनात्मक प्रवृत्ति को अपनाया।

संत अक्खड़ प्रवृत्ति के थे वही सूफी कवियों ने प्रेम के सरल मार्ग को अपनाया। उनमें धार्मिक कट्टरता प्रायः कम ही दिखाई देती है। सूफी कवियों ने तत्कालीन परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए अपना जो साहित्य लिखा उसमें हमें विश्व शांति एवं कल्याण की भावना दिखाई देती है।

हिंदू और मुसलमान में आज के समय में जो कट्टरता भेदभाव उत्पन्न है इसमें सूफी काव्य का महत्व और

भी ज्यादा बढ़ जाता है। अतः सूफी कवियों एवं संतों ने समाज में समता लाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। यही कारण है कि यह साहित्य वर्तमान समय में भी प्रासंगिक है।

'सूफी कवियों ने संतों की तरह खण्डन का मार्ग नहीं अपनाया उन्होंने कलात्मक ढंग से हिंदू–मुस्लिम एकता की नींव रखी दोनों की जीवन पद्धतियों को साथ–साथ चित्रित कर उनकी समानता पर बल दिया। इस प्रयास में प्रेम मार्ग अत्यधिक व्यावहारिक एवं प्रभावशाली सिद्ध हुआ।'[6]

विश्व शांति के स्थापन हेतु हिंदी साहित्य सदा प्रयासरत बना रहा है। आधुनिक काल की विभिन्न काव्य धाराओं भारतेंदु, द्विवेदी युग, छायावाद, प्रगतिवाद, नयी कविता और समकालीन काल के साहित्य में कवियों और साहित्यकारों ने शांति और सौहार्द का सन्देश दिया।

हमारा देश 1947 में आजाद हुआ यह समय देश में भयंकर अशांति का समय था। अंग्रेजी सरकार के षड्यंत्रों और राजनीतिक स्वार्थ के कारण उनके देश छोड़ने के बाद भी देश में भयंकर अशांति की स्थिति उत्पन्न हो गई थी। हिंदी के कवियों और साहित्यकारों ने अपनी रचनाओं के माध्यम से देश की समस्याओं को देखा व उनको अपने साहित्य में स्थान दिया। उस समय के कवियों को यह स्वीकार करना पड़ा कि मनोरंजन केवल साहित्य का उद्देश्य नहीं हो सकता उसमें समाज हित होना आवश्यक है। उस समय लेखकों और कवियों के सामने एक और भी चुनौती थी लोगों के अंदर आत्मविश्वास जगाना और उनमें देश प्रेम की भावना का प्रचार करना। लोगों में अपनी सभ्यता, संस्कृति के प्रति आदर भाव उत्पन्न करना, क्योंकि उस समय देश के एक बहुत बड़े हिस्से पर पाश्चात्य प्रभाव हावी हो चुका था। भारतेंदु हरिश्चंद्र, महावीर प्रसाद द्विवेदी, निराला, मैथिलीशरण गुप्त, नागार्जुन, सुभद्रा कुमारी चौहान, रामधारी सिंह 'दिनकर' आदि कवियों ने अपने काव्य के माध्यम से देश में शांति स्थापना करने में अपना उल्लेखनीय योगदान दिया। रामनरेश त्रिपाठी की 'जन्मभूमि भारत' शीर्षक कविता में देशवासियों को द्वेष भावना का परित्याग कर देश की उन्नति में योगदान देने के लिए प्रेरित किया है –

'उठो त्याग दे द्वेष एक ही सबके मत हों।
सीऊ ज्ञान विज्ञान कला–कौशल उन्नत हो।।
सुख सुधार संपत्ति शांति भारत में भर दे।
अपना जीवन इसे सहर्ष समर्पित कर दें।।'[7]

वर्तमान भूमंडलीकरण के दौर में बहुत तीव्र गति से भारत और संसार के अन्य देशों में परिवर्तन हो रहे हैं। मनुष्य के लिए जीवन में अपने निजी मूल्यों को संजोकर रखना मुश्किल हो गया हैं। आधुनिक काल अथवा समकालीन साहित्य में उन विषयों को काफी हद तक रेखांकित किया है, जो दलित हैं, वंचित हैं, त्रस्त हैं और उनकी समस्याओं को नए ढंग से मुखरित किया गया है। ऊपर लिखे गए विषय ऐसे थे जिन पर अभी तक कुछ नहीं लिखा गया था और शायद सबसे ज्यादा अशांति इन्हीं में विद्यमान थी जो साहित्य के माध्यम से उभर कर आयी इसी कारण नारी विमर्श, किन्नर विमर्श, आदिवासी, दलित विमर्श जैसे विषयों पर खुलकर चर्चा हुई है क्योंकि असमानता समाज में अशांति का सबसे बड़ा कारण है।

समकालीन काव्य में कवियों ने वर्तमान राजनीति की भी खुलकर चर्चा की है। राजनीति एक पवित्र कर्म माना जाता था परंतु आज सत्ता प्राप्ति के लिए राजनेता हर उचित–अनुचित कार्य करते हैं। धर्म, जाति के नाम पर लोगों को बांटते हैं, सांप्रदायिकता फैलाते हैं। आज हम कितने ही आधुनिक होने का दंभ भरे सांप्रदायिकता

हमारे देश को कमजोर कर रही हैं। भगवत राय इस सांप्रदायिकता पर व्यंग्य करते हुए कहते हैं कि–

'इतने इतने संत इतने उपदेशक इतनी कथा वार्ताएं इतने गौरव गान
इतना गाली गलौज
इतना धर्म ईमान
इससे पहले तो कभी हुआ नहीं।'[8]

भय युक्त समाज कभी भी आगे नहीं बढ़ सकता।

साधारण व्यक्ति तो इन परिस्थितियों से प्रभावित होते है ही साथ ही लेखक, कवि, बुद्धिजीवी वर्ग भी इसे अछूता नहीं रह सकता। यह वर्ग अपनी रचनाओं से इस भय युक्त वातावरण का विरोध भी करता है तथा लोगों को भी शांति के मार्ग पर चलने का संदेश देता है।

उपयुक्त वर्णन के बाद यही कहा जा सकता है कि हिंदी साहित्य में उनके कवि, लेखकों ने विश्व शांति की स्थापना हेतु हर काल में प्रयास किया है। आज आवश्यकता है कि वर्तमान मनुष्य उन साहित्य संदेशों को पढ़े और स्वयं पर लागू भी करे।

परिस्थितियों कैसी भी रही हो मगर हमारे संतो, कवियों, लेखकों ने हर मुश्किल का सामना करते हुए शांति का संदेश दिया है उनके द्वारा दिए संदेश ने न केवल भारत बल्कि विश्व शांति के लिए भी हैं। कबीर, तुलसी, भारतेंदु हरिश्चंद्र, निराला, महादेवी वर्मा, मैथिलीशरण गुप्त, रामधारी सिंह 'दिनकर' आदि हिंदी कवियों की एक अखंड परंपरा रही है जिन्होंने मानव जाति को शांति की ओर अग्रसर किया।

वर्तमान में भी बहुत सारे लेखक कई बुद्धिजीवी देश में शांति स्थापना हेतु प्रयासरत है।

संदर्भ ग्रंथ :

1. बृहदारण्यकोपनिषद्।
2. 'रामचरित्र मानस'। एक, तुलसीदास, 'उत्तर काण्ड', गीता प्रेस, गोरखपुर।
3. डॉ नागेंद्र, 'हिंदी साहित्य का इतिहास'।
4. सरस्वती पांडे, 'हिंदी साहित्य का वस्तुनिष्ठ इतिहास', संख्या 101
5. वहीं।
6. शुक्ल रामचंद्र, जायसी ग्रंथावली, पृष्ठ संख्या 134
7. द्विवेदी युगीन काव्य, डॉ० पूनम चंद्र तिवारी, मध्य प्रदेश हिंदी ग्रंथ अकादमी, प्रथम संस्करण।
8. भगवत रावत, 'ऐसी कैसी नींद' वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली।

Email id : komalvermavs@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Sept. 2025 Page No. : 135-139

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

हिन्दी उपन्यास और समलैंगिक विमर्श

सूर्य प्रताप सिंह, शोधार्थी
डॉ० सव्यसाची, एसोसिएट प्रोफेसर
हिन्दी विभाग, नेहरू ग्राम भारती (मानित विश्वविद्यालय), प्रयागराज, उ०प्र०

शोध सार :–

हिन्दी साहित्य में समलैंगिक सम्बन्धों का चित्रण जटिल एवं विवादित विषय रहा है। साहित्य समाज का दर्पण होता है, समलैंगिकता का साहित्यिक चित्रण सामाजिक मान्यताओं, सांस्कृतिक परिवर्तनों एवं राजनीतिक संघर्षों का प्रतिबिम्ब है। भारत के प्राचीन ग्रंथों– ऋग्वेद, कामसूत्र आदि तथा खजुराहों के मन्दिर में समलैंगिकता के स्पष्ट प्रमाण के बावजूद आधुनिक हिन्दी साहित्य में इस विषय पर विस्तृत एवं खुली चर्चा अपेक्षाकृत देर से प्रारम्भ हुई। शुरुआत में हिन्दी साहित्य में समलैंगिकता का चित्रण अस्पष्ट संकेतों एवं प्रतीकात्मक विवरणों तक ही सीमित था, जो समय के साथ स्पष्ट और मुखर प्रस्तुति के रूप में परिवर्तित हुआ। इस परिवर्तन यात्रा में हिन्दी उपन्यासकारों ने समाज में व्याप्त रूढ़ियों को कड़ी चुनौती देते हुए मानव के जटिल लैंगिक सम्बन्धों को साहित्य में अभिव्यक्त किया। वर्ष 2018 में सर्वोच्च न्यायालय ने धारा 377 के एक अंश को निरस्त करते हुए समलैंगिक सम्बन्धों को अपराध की श्रेणी से मुक्त कर दिया। सर्वोच्च न्यायालय द्वारा भले ही समलैंगिकता को कानूनी मान्यता प्राप्त हो गई है परन्तु सामाजिक मान्यता पाने के लिए आज भी संघर्षरत है।

कुँजी शब्द :– समलैंगिकता, समलैंगिक विमर्श, समलैंगिक सम्बन्ध, लैंगिकता, यौनिकता, हिन्दी साहित्य, हिन्दी उपन्यास।

मूल आलेख :–

1990 के दशक के बाद, साहित्य में हाशिए पर पड़े स्त्री, दलित, आदिवासी, पर्यावरण जैसे विमर्शों ने जोर पकड़ा। विमर्शों के इस दौर में 'समलैंगिक विमर्श' ने भी हिन्दी साहित्य में अपनी जगह बनाई। समलैंगिक विमर्श हिन्दी साहित्य में एक परिवर्तनकारी कदम के रूप में सामने आया, जो लैंगिकता एवं यौनिकता की पारम्परिक संरचनाओं को चुनौती देता है। यह विमर्श समलैंगिकों के अस्तित्व, अस्मिता, गौरव व संघर्षों को साहित्य के माध्यम से व्यक्त करता है। यह केवल व्यक्तिगत अधिकारों व स्वतंत्रता की माँग नहीं करता बल्कि समाज में व्याप्त पूर्वाग्रहों और भेदभावों को भी उद्घाटित करता है। समलैंगिक विमर्श पारिवारिक संरचना, विवाह और सामाजिक अपेक्षाओं जैसे मुद्दों के साथ टकराव उत्पन्न करता है।

समलैंगिक सम्बन्ध आधुनिक समाज की देन नहीं है, इसकी जड़ें बहुत पुरानी हैं। प्राचीनकाल से ही भारतीय समाज में समलैंगिकता की उपस्थिति रही है। खजुराहों के मंदिर एवं ऋग्वेद, कामसूत्र, मनुस्मृति जैसे

ग्रन्थ इसका प्रमाण हैं। "ऋग्वेद में लैंगिकता के संदर्भ में विकृति और प्रकृति दो शब्दों का प्रयोग किया गया है। विकृति का मतलब है असहज, प्रकृति का अर्थ सहज। तो जो असहज है, वह समलैंगिकता की ओर इशारा करता है। विद्वानों ने समलैंगिकता को इसलिए स्वीकार किया कि वह संसार की विविधता की स्वीकृति है। वात्स्यायन के कामसूत्र का पूरा नवम अध्याय समलैंगिक स्वभाव पर आधारित है।"[1] एवं "मध्य भारत में स्थित 12वीं शताब्दी के खजुराहो मंदिर की दीवारों पर बनी मूर्तियों और नक्काशी में स्पष्ट रूप से हर संभव यौन स्थिति का उपयोग करते हुए युग्मन दर्शाया गया है, चाहे वह विषमलैंगिक हो, समलैंगिक हो या उभयलिंगी। समलैंगिक महिलाओं को खुलेआम दिखाया गया है।"[2]

यौन प्रवृत्ति मानव तथा अन्य प्राणियों का नैसर्गिक, निर्विकार एवं सहज प्रजननमूलक जैविक व्यवहार है। जहाँ अन्य प्राणी यौनावेश के वशीभूत हो संतानोत्पत्ति के लिए सम्बन्ध स्थापित करते हैं तो वहीं मानव के लिए यौन सम्बन्ध संतानोत्पत्ति के साथ–साथ आनन्द प्राप्ति का भी स्रोत है। स्त्री और पुरुष दोनों भिन्न लिंगों से सम्बन्धित है, इनके बीच के काम सम्बन्धों को विषमलैंगिक सम्बन्ध एवं समान लिंगी (स्त्री का स्त्री के साथ, पुरुष का पुरुष के साथ) काम सम्बन्धों को समलैंगिक सम्बन्ध कहा जाता है। विषमलैंगिक सम्बन्ध तो समाज में निर्विवाद रूप से स्वीकार्य है लेकिन समलैंगिक सम्बन्धों की स्वीकार्यता विवादित है। समलैंगिक सम्बन्ध पर समाज दो मतों में विभाजित है, एक जो मानता है समलैंगिक सम्बन्ध सहज, निर्विकार एवं नैसर्गिक है, "किसी भी पुरुष या महिला या इंसान का इस पर नियंत्रण नहीं है कि वह किसकी ओर आकर्षित होगा।"[3] वहीं दूसरा मत इसे अप्राकृतिक मानते हुए विकार की संज्ञा देता है, "अंग्रेजों के शासनकाल में समलैंगिकता को अपराध घोषित किया गया था। यही नहीं भारतीय समाज भी इसे अनैतिक मानता है। बेशक इसे नैतिक करार देने और इन वर्जनाओं को तोड़ने के लिए यह ठोस तर्क दिया जाता है कि व्यक्ति का समलैंगिक होना उसके परिवार और परिवार की परिस्थितियों व उसकी मानसिकता पर निर्भर करता है। लेकिन फिर भी इसे स्वीकार नहीं किया जा सकता। इन सम्बन्धों के बढ़ते एड्स के मामलों के बावजूद, ऐसे सम्बन्धों से समाज में उपजती विकृति के बावजूद समलैंगिक स्त्री–पुरुष अपने आखिर किस अस्तित्व को स्थापित करने की लड़ाई लड़ना चाहते हैं।"[4]

समलैंगिक सम्बन्ध के कारणों की पड़ताल करने के क्रम में विद्वानों ने इसे नैतिक या अनैतिक के चश्मे से न देखकर इसके प्राकृतिक व मानवीय कारणों को टटोलने का प्रयत्न किया, उन्होंने पाया कि समलैंगिक सम्बन्ध के कारणों में प्रकृति प्रदत्त व्यवहार, यौन सम्बन्धों में विकृति, वैवाहिक सम्बन्धों में कड़वाहट, स्त्री की उपेक्षा, यौन सहभागी की सुलभ उपलब्धता तथा यौन अतृप्ति प्रमुख हैं। सीमोन द बोउवार ने माना कि परिस्थितियों का पसंद पर गहरा प्रभाव पड़ता है। जिन जगहों पर स्त्री और पुरुष स्वतंत्र रूप से मिलते जुलते हैं, वहाँ समलैंगिक कामुकता कम होती है। सीमोन का कहना है– "समलिंगी कामुकता वह विकृत यौन भावना नहीं है जिसमें जान–बूझकर लोग उलझ जाते हैं, वह तो जीवन के प्रति एक दृष्टिकोण है, जो विशेष स्थिति में ग्रहण किया जाता है।"[5]

औपनिवेशिकरण के पूर्व, भारत में समलैंगिकता अपराध या पाप नहीं माना जाता था, अंग्रेजों के शासन के दौरान लॉर्ड मैकाले ने 1861 में समलैंगिक सम्बन्धों को अप्राकृतिक मानते हुए भारतीय दंड संहिता की धारा 377 के अंतर्गत अपराध घोषित कर दस वर्ष से आजीवन कारावास तक की सजा एवं जुर्माने का प्रावधान कर दिया। समलैंगिक सम्बन्ध भले ही कानूनी तौर पर वर्जित रहा हो लेकिन हिन्दी साहित्य में इसकी उपस्थिति

अंग्रेजी शासनकाल से ही देखी जा सकती है। पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र' की कहानी 'चॉकलेट'(1927) समलैंगिक सम्बन्धों पर केंद्रित हिन्दी की पहली कहानी है। यह कहानी उस समय के पुरुष प्रधान पारम्परिक समाज में लैंगिक अल्पसंख्यकों की सामाजिक स्थिति, अनुभव एवं प्रेम का चित्रण करती है। 'चॉकलेट' कहानी का लेखन वर्जना के उस दौर में किया गया जिस समय समलैंगिकता जैसा विषय कानूनी रूप से ही नहीं बल्कि साहित्यिक रूप से भी वर्जित था। यह कहानी तत्कालीन साहित्य जगत में लैंगिक बहस छेड़ने में सफल रही। कई विद्वानों ने इस कहानी को यथार्थवादी मानकर स्वीकार किया तो वहीं महावीर प्रसाद द्विवेदी, हजारी प्रसाद द्विवेदी, रूप नारायण पाण्डेय व पं० बनारसीदास चतुर्वेदी जैसे विद्वानों ने इसे अश्लील कहते हुए सिरे से नकार दिया। पं० बनारसीदास चतुर्वेदी ने 'उग्र' का सबसे मुखर विरोध किया, उन्होंने 'उग्र' के साहित्य को 'घासलेटी साहित्य' की संज्ञा दी। उन्होंने कहा कि, "घासलेटी का अर्थ है– निकृष्ट, निकम्मा, गंदा। अनैतिकता को प्रश्रय देने वाला तथा लैगिंक विकृतियों को चित्रित करने वाला साहित्य।"[6]

समाज समलैंगिक सम्बन्धों को अश्लील, अनैतिक और अप्राकृतिक मानता रहा है, "विदित ही है पारंपरिक भारतीय समाज में समलैंगिकता आदि को कोढ़ से कम नहीं माना जाता है। आम जनता की राय में अप्राकृतिक यौनांक्षा वाला व्यक्ति सामान्य व्यवहार नहीं कर सकता और उसकी यही मानसिक विकृति उसके शारीरिक लक्षणों में भी झलकती है। इस विकृति के कारण उसे कभी भी समाज में सम्मानजनक स्थान तो दूर सामान्य स्थान भी प्राप्त नहीं होता है। समाज ऐसे व्यक्ति को पूरी तरह से हाशियाकृत कर देता है और उसका जीवन नर्क से भी बदतर हो जाता है।"[7]

समलैंगिकता जैसे त्याज्य विषय पर हिन्दी साहित्यकारों ने पूरी संवेदनशीलता और ईमानदारी से अपनी कलम चलाकर समाज को इनकी समस्याओं से अवगत कराया। हिन्दी उपन्यासों में सर्वप्रथम सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' द्वारा 1939 में रचित 'कुल्ली भाट' में समलैंगिक संबंधों की उपस्थिति मिलती है, ऋषभदेव शर्मा 'कुल्ली भाट' उपन्यास को समलैंगिक विमर्श का प्रस्थान बिन्दु मनाते हैं। शुरुआती दौर में समलैंगिकता का चित्रण अस्पष्ट संकेतों एवं प्रतीकों तक ही सीमित था, जो समय के साथ स्पष्ट और मुखर होता गया। आधुनिक साहित्यकारों ने समलैंगिकता के कारणों की पड़ताल करने के साथ–साथ समलैंगिकों के साथ हो रहे भेदभाव को भी रेखांकित किया है। राजकमल चौधरी के 'मछली मरी हुई' उपन्यास में पद्मावत और उसकी बहन शीरी के समलैंगिकता का कारण उनके अतीत की एक घटना है। उनकी माँ को मरा हुआ बच्चा पैदा हुआ जिसके कारण माँ तड़पकर मर गई। अतीत की घटना ने उन्हें पिता सहित समूची पुरुष जाति के प्रति घृणित कर दिया, परिणामस्वरूप दोनों समलैंगिक सम्बन्ध में जीने लगती हैं– "एक दिन बड़ी बहन ने बीयर से भरे गिलास के साथ समझाया कि दो औरतें भी परस्पर शारीरिक जीवन बिता सकती हैं। बड़ी बहन ने तरीका बताया। अपने बताए तरीके पर आगे बढ़ती गई। शीरी आश्चर्यचकित थी। वह बेहद उत्तेजित थी। बहन जो करना चाहती थी, करने देती थी। तनिक भी इंकार नहीं, जरा भी एतराज नहीं। कोई पुरुष शीरी को इतनी शीतल उत्तेजक शारीरिक वेदना नहीं दे सकता था।"[8] कुसुम अंसल के उपन्यास 'परछाइयों का समयसार' में अकेलापन समलैंगिकता का कारण बनता है। नताशा के पति शैलेन्द्र का एक्सीडेंट होने कारण लंबे समय तक अस्पताल में इलाज चलता है, नताशा अकेलपन से जूझती है तभी डॉ० सिस्टर डौरोथी नताशा से कहती है– "नताशा तुम बहुत लोनली हो गयी हो न। मैं तुम्हारी उदासी दूर करना चाहती हूँ। अकेले जीना बहुत मुश्किल होता है। मैं तुम्हें आनंद की

नयी परिभाषा समझाना चाहती हूँ सेफ–सैक्स।"[9] अनीता राकेश के उपन्यास 'गुरुकुल' में स्त्री उपेक्षा समलैंगिकता का कारण बनती है। पूनम अपने पति से तलाक के पश्चात कई पुरुषों के संपर्क में आती है, उन पुरुषों की संवेदनहीनता ने उसे उषा के प्रति आकृष्ट कर दिया। वह कहती है– "मुझे उषा से प्यार हो गया था महज इसलिए नहीं कि वह एक औरत है बल्कि इसलिए कि उसने मुझे खुलने का मौका दिया और मुझसे महज प्यार ही किया।"[10] इकराम फरीदी के 'समप्रीत' उपन्यास का मनोज बचपन से ही समलैंगिक है। परिवार के जिद के चलते विवाह कर लेता है। उसकी पत्नी अंकिता उसे यह सब छोड़ने के लिए कहती है, इस पर मनोज का उत्तर समलैंगिकों की मनरूस्थिति समझने में सहायक है– "मै दुनिया छोड़ सकता हूं मगर यह सबकुछ नहीं छोड़ सकता, फिर वही बात आ गयी जो मैं समझा रहा था, अरे भई हम दोनों को एक–दूसरे को समझना पड़ेगा– तुम इस बात को क्यों नहीं समझती– जब तक तुम मुझे समझती नहीं तो मुझसे अच्छे व्यवहार की उम्मीद कैसे कर लोगी। जब मेरे हार्मोन्स चेंज हैं, मेरा मानसिक स्तर ही अलग है तो तुम इस सबको कैसे इग्नोर कर सकती हो।"[11]

अमित गुप्ता के उपन्यास 'देहरी पर ठिठकी धूप' में श्लोक के माध्यम से समलैंगिकों के साथ होने वाले भेदभाव को दिखाया है, समलैंगिकता के कारण उसे नौकरी से निकाल दिया जाता है– "हमनें आपके और अनुराग के बारे में बहुत कुछ पढ़ा और सुना। आपकी इस हरकत की वजह से कॉलेज का नाम खराब हो रहा है। आप अंदाजा नहीं लगा सकते कितनी बदनामी हुई है कॉलेज की। कॉलेज के ट्रस्टीज ने आपको कॉलेज से निकाल देने का फैसला किया है।"[12] सामाजिक लज्जा के भयवश कोई भी सामान्य इंसान समलैंगिक व्यक्ति से सम्बन्ध नहीं रखना चाहता जिसके फलस्वरूप ये लोग अकेलेपन में जीने को मजबूर हैं। 'पंख वाली नाव' उपन्यास का विक्रम अनुपम के प्रति सहानुभूति रखते हुए भी सरेआम उससे बात करने से बचता है– "मेरी पूरी हमदर्दी उसके साथ थी। यह बात और है कि उसके पक्ष में खुलेआम खड़े हो पाने का साहस मुझमें नहीं था।"[13]

समलैंगिक सम्बन्ध प्राकृतिक प्रजनन की प्रक्रिया एवं वैवाहिक संस्थाओं को अस्वीकार करते हैं शायद इसलिए नैतिकता के समर्थक इसे अश्लील, अप्राकृतिक, अस्वभाविक एवं अनैतिक मानते हुए इसका विरोध करते हैं। शुभा वर्मा इन नैतिकतावादियों का विरोध करते हुए कहती हैं– "आज जब घास पात को खाद्य सामग्री बनाने में वैज्ञानिक जुटे हैं, हर ओर परिवार नियोजन का ढोल पीटा जा रहा है, भूख बीमारी से तड़प–तड़प कर बच्चे दम तोड़ रहे हैं तो प्रजनन की क्या जरूरत है? जरूरत है जिन्दगी के जितने दिन बचे हों उन्हें आराम से बिताने की और ये तभी होगा जब औरत–औरत हाथ थामकर आगे बढ़ जाए लेकिन जिंदगी के सुख चैन से महफूज न रहें।"[14]

समलैंगिकता परिस्थितिजन्य व प्राकृतिक दोनों हो सकती है। प्राकृतिक समलैंगिकता को किसी भी तरह से बदला नहीं जा सकता है। बहुसंख्यक की वृत्तियों को प्रकृत एवं अल्पसंख्यक की वृत्तियों को विकृत, अस्वाभाविक व निंदनीय नहीं माना जा सकता क्योंकि समलिंगी भी विषमलिंगी तरह ही जैविक सृष्टि हैं, इन्हें भी अपनी जैविक एवं भावनात्मक जरूरतों को पूरा करते हुए स्वतंत्रता से जीने का अधिकार है। बदलते समय के साथ समलैंगिक सम्बन्धों के प्रति लोगों थोड़ी स्वीकार्यता अवश्य आयी है लेकिन एक प्रगतिशील समाज से इससे कहीं अधिक की अपेक्षा है।

संदर्भ ग्रन्थ :

1. के० वनजा, क्वीर विमर्श : लेस्बियन, गे, बाई–सेक्सुअल, ट्रांसजेंडर, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2021, पृष्ठ–26
2. www.scmp.com, https://www.scmp.com/week&asia/politics/article/2164299/gay&sex&india&has&assumed&ancient&position&read&kama&sutra
3. शीला डागा, किन्नर गाथा, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2020, पृष्ठ–99–100
4. मानचन्द खण्डेला, आधुनिकता और भारतीय समाज, आविष्कार पब्लिशर्स, जयपुर, 2006, पृष्ठ–108
5. सीमोन द बोउवार, अनुवादक–प्रभा खेतान, स्त्री उपेक्षिता, हिन्दी पॉकेट बुक्स, नई दिल्ली, 2017, पृष्ठ–193
6. साहित्य कुंज, https://sahityakunj.net//entries/view/ghaasletii&aandolan&aur&ugr
7. अपनी माटी, https://www.apnimaati.com/2019/03/blog&post_71.html
8. राजकमल चौधरी, मछली मरी हुई, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1966, पृष्ठ–109
9. कुसुम अंसल, परछाइयों का समयसार, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, 2017, पृष्ठ–94
10. अनीता राकेश, गुरुकुल–2, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 2008, पृष्ठ– 94
11. इकराम फरीदी, समप्रीत, रवि पॉकेट बुक्स, मेरठ, 2019, पृष्ठ–24
12. अमित गुप्ता, देहरी पर ठिठकी धूप, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 2022, पृष्ठ–97
13. पंकज विष्ट, पंख वाली नाव,राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2009, पृष्ठ–94
14. शुभा वर्मा, अनाम रिश्तों के नाम, सरस्वती विहार, 1977, पृष्ठ–89

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Sept. 2025 Page No. : 140-149

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

हिन्दी साहित्य की प्रेरणा की अमृत–धार : परीक्षा दबाव के हरण एवं शैक्षिक उपलब्धि के उन्नयन का सशक्त माध्यम

प्रज्ञा सिंह, शोध अध्येत्री,
लक्ष्मी मिश्रा, कनिष्ठ शोध अध्येत्री,
शिक्षा विभाग, दयानन्द एंग्लो वैदिक स्नातकोत्तर महाविद्यालय, कानपुर नगर (उ0प्र0)
पावक अग्रवाल, वरिष्ठ शोध अध्येता,
शिक्षा विभाग, छत्रपति शाहू जी महाराज वि0वि0, कानपुर (उ0प्र0)

सारांश :–

शिक्षा सतत रूप से चलने वाली एक ऐसी गत्यात्मक प्रक्रिया है जो मानव को अपनी भूमिका प्रभावी ढंग से अदा करने में सक्षम बनाती है एवं राष्ट्र के विकास में सहयोग प्रदान करती है। शिक्षा एवं साहित्य का अटूट संबंध है। शिक्षा ही एक ऐसा सशक्त माध्यम है जिसके द्वारा हिंदी साहित्य के ज्ञान को संरक्षित करके विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि के लिए नवाचारी दृष्टिकोण को विकसित किया जा सकता है। हिंदी साहित्य ने प्राचीन काल से वर्तमान काल तक सम्पूर्ण विश्व में अपने प्रदर्शन से अपनी अलग पहचान के विधान को रचा है। यदि हिंदी साहित्य में झाँक कर देखा जाए तो मानव विकास का मुख्य साधन प्रेरक–ग्रंथ रहे हैं। हिंदी साहित्य की प्रेरणा से परीक्षा दबाव के हरण एवं शैक्षिक उपलब्धि के उन्नयन को सशक्त किया जा सकता है, जिसके अनेक प्रमाण भी उपलब्ध हैं। हिंदी साहित्य के संरक्षण एवं संवर्धन से विद्यार्थियों की परीक्षा दबाव को कम करने के साथ–साथ उनकी शैक्षिक उपलब्धि को भी सकारात्मक दिशा दी जा सकती है। शैक्षिक दृष्टिकोण से हिंदी साहित्य राष्ट्रीय विकास के लिए आवश्यक तत्व एवं अनिवार्य घटक 'समाज के साथ समायोजन' की क्षमता को विकसित करता है। साहित्य एक ऐसी विधा है जो विद्यार्थियों को शारीरिक एवं मानसिक रूप से प्रवीण बनती है। राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त जी के साहित्यिक अध्ययन से ज्ञात होता है कि शिक्षा किसी व्यक्तिगत प्रतिभा के पक्ष को विकसित नहीं होती, अपितु महान समाज एवं महानकाल के निर्माण से युग को परिचित कराती है। यही साहित्य विद्यार्थियों को नवजागरण के आयामों से परिचित कराते हैं।

साहित्य की दृष्टि से बालक की शैक्षिक उपलब्धि एवं परीक्षा दबाव में विद्यालयी एवं सामाजिक वातावरण का बहुत बड़ा योगदान होता है। जिस प्रकार का वातावरण होता है, उसी प्रकार परीक्षा दबाव एवं उनकी शैक्षिक उपलब्धि का स्तर होता है। अतः हम कह सकते हैं कि एक अच्छी शैक्षिक उपलब्धि के उन्नयन हेतु अच्छा वातावरण अति आवश्यक है जो कि समृद्धिशील साहित्य के अध्ययन से मिल सकता है। कहीं न कहीं ऐसा वातावरण विद्यार्थियों के परीक्षा दबाव को कम करने में अमृत धारा के समान कारगर हो सकता है। अनेकानेक

रचनाकारों की कृतियां वर्तमान समय में विद्यार्थी जीवन को तनाव के घेरों से दूर करके प्रकाश की ओर अग्रसर करने में दिव्यज्योति की भांति कार्यरत है। प्रस्तुत शोधपत्र का मुख्य बिंदु हिन्दी साहित्य की प्रेरणा की अमृत–धारा से विद्यार्थी को परिचित कराना है। हिंदी साहित्य किस प्रकार परीक्षा दबाव के हरण एवं शैक्षिक उपलब्धि के उन्नयन का सशक्त माध्यम बन सकता है? आदि बिंदुओं पर अपना ध्यान केंद्रित करता है।

बीज शब्द : हिन्दी साहित्य, परीक्षा दबाव, शैक्षिक उपलब्धि, प्रेमचंद, महादेवी वर्मा, सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला'।

अध्ययन की पृष्ठभूमि :

हिंदी साहित्य का नवजागरण विभिन्न क्षेत्रीय विशिष्टताओं की विभिन्न अंतर धाराओं की अंतःक्रिया से एक समग्र राष्ट्रीयता का विकास करता है। हिंदी साहित्य की प्रासंगिकता उनकी रचनाओं में निहित है। साहित्य का रचनात्मक सृजन विद्यार्थियों के व्यक्तिगत जीवन से सरोकार रखता है। जीवन की सरोकारिता से अभिभूत होकर ही वे यह जान पाते हैं कि उनके जीवन में शैक्षिक दृष्टिकोण से साहित्य का कितना योगदान है। ऐसी प्रतिक्रियाओं का विश्लेषण करके वह जीवन के असंख्य तनावों से मुक्त हो सकते हैं एवं अपनी शैक्षिक उपलब्धि को चरमोत्कर्ष पर पहुंचा सकते हैं। परीक्षा दबाव और शैक्षिक उपलब्धि, ये दोनों कारक ही हिंदी साहित्य में विशेष भूमिका रखते हैं। कई कहानीकार अपनी हिंदी कहानियों में परीक्षा दबाव को विद्यार्थी जीवन पर प्रक्षेपित करते हैं। उदाहरण के लिए, 'ईदगाह' कहानी में हामिद का चरित्र। उपन्यासों में भी परीक्षा के दबाव और शैक्षिक उपलब्धि की चिंतन प्रक्रिया को अभिव्यक्त किया गया है। प्रेमचंद द्वारा रचित 'गोदान' उपन्यास इसी का प्रमाण है। जो शैक्षिक चुनौतियों एवं विद्यार्थी जीवन में परीक्षा के दबाव को संदर्भित करता है।

आवश्यकता एवं महत्व :

हिंदी साहित्य के रूप में साहित्य न सिर्फ भारत की पहचान है बल्कि यह हमारे जीवन मूल्यों, संस्कृति एवं संस्कारों की सच्ची संवाहक, संप्रेषक और परिचायक भी है। हिंदी साहित्य एक ऐसा सांस्कृतिक प्रतिबिंब है जो हमें न केवल अतीत की जड़ों से जोड़े रखता है अपितु नवीन मार्ग भी प्रशस्त करता है। साहित्य ही वह विद्या है जिसके द्वारा व्यक्ति अपने विचारों, भावों और मूल्यों को अभिव्यक्त करता है एवं जीवन के अंतरंग पक्षों में आनंद बिखेरता है। हिंदी साहित्य में वर्णित अनेक रचनाएं व्यक्तियों को समाज में व्याप्त कुरीतियों एवं असमानताओं के प्रति जागरूक बनाती हैं। हिंदी साहित्य भारतीय जीवन का एक अभिन्न अंग है। इसका महत्व न केवल भाषा और संस्कृति के संदर्भ में है, बल्कि सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक विकास के लिए भी है। कुछ शिक्षाविद कहते हैं कि हिंदी साहित्य भारत की आत्मा है। विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि एवं परीक्षा दबाव को कम करने हेतु साहित्य का गहन ज्ञान/अध्ययन आवश्यक है क्योंकि साहित्य में वर्णित अनेक कहानियाँ, कविताएं, उपन्यास ऐसे हैं जो विद्यार्थी जीवन से परीक्षा तनावों को न केवल कम करते हैं वरन उनकी शैक्षिक उपलब्धि हेतु सकारात्मक परिणामों को भी प्रदर्शित करते हैं।

संबंधित साहित्य का अध्ययन :

हिंदी शोध पर कार्य करने वाले शोधकर्ता हिन्दी भाषी भी हैं तथा अहिंदी भाषी लोग भी हैं। हिंदी के क्षेत्र में हुए शोध, आरंभिक शोध ग्रंथ, विषय विस्तार, विश्लेषण स्थूलता, विवेचन शैली की साहित्यिकता तथा समन्वित प्रशैली तथा शोथ व्यवस्था की अनिश्चितता के कारण परवर्ती शोध कार्यों के स्वस्थ, प्रगतिशील तथा आदर्श शोध मार्ग प्रशस्त करने में कम समर्थ रहे हैं।

हिन्दी साहित्य सदियों से मानवीय संवेदनाओं, संघर्षों और जीवन–मूल्यों का दर्पण रहा है। इसकी प्रेरणात्मक रचनाएँ न केवल पाठकों के भावनात्मक एवं मानसिक स्तर को ऊँचा उठाती हैं, बल्कि कठिन परिस्थितियों में धैर्य, आशा और सकारात्मक दृष्टिकोण विकसित करने का सामर्थ्य भी प्रदान करती हैं। परीक्षा काल में छात्रों पर मानसिक दबाव और चिंता का प्रभाव व्यापक रूप से देखा गया है, जिससे उनकी शैक्षिक उपलब्धि प्रभावित होती है। ऐसे में हिन्दी साहित्य, विशेषकर कविताएँ, निबंध, आत्मकथाएँ और प्रेरक जीवनियाँ, तनाव को कम करने के साथ–साथ आत्मविश्वास एवं मनोबल को बढ़ाने का सशक्त साधन बन सकती हैं।

महादेवी वर्मा की 'मैं नीर भरी दुख की बदली' जैसी रचनाएँ आत्मचिंतन और भावनात्मक परिष्कार के माध्यम से तनाव मुक्ति में सहायक हैं। हरिवंश राय बच्चन की 'मधुशाला' जीवन की अनिश्चितताओं के बीच उत्साह और उमंग बनाए रखने का संदेश देती है। रामधारी सिंह दिनकर की 'संघर्ष के सौंदर्य' और 'परशुराम की प्रतीक्षा' जैसी रचनाएँ जीवन के संघर्षों में दृढ़ता और साहस का संचार करती हैं।

शोध अध्ययनों से भी यह स्पष्ट हुआ है कि प्रेरक साहित्य विद्यार्थियों में सकारात्मक सोच, लक्ष्य के प्रति समर्पण और मानसिक संतुलन को मजबूत करता है (चौहान एवं टिन्ना, 2022, कुमारी एवं जैन, 2014)। इससे परीक्षा दबाव में कमी आती है और एकाग्रता व सीखने की क्षमता बढ़ती है। मरहम (2015) ने शैक्षिक तनाव व समायोजन पर अध्ययन किया जिसके लिए उच्चतर माध्यमिक स्तर के 364 छात्रों का चयन किया एवं उन्होंने अपने अध्ययन के निष्कर्ष में पाया कि समायोजन एवं शैक्षणिक तनाव में सकारात्मक सहसंबंध होता है।

अतः कहा जा सकता है कि हिन्दी साहित्य की प्रेरणात्मक अमृत–धार विद्यार्थियों के लिए न केवल भावनात्मक संबल है, बल्कि यह शैक्षिक उन्नयन की दिशा में मानसिक दृढ़ता और आत्म–प्रेरणा का अमूल्य स्रोत भी है जो उनके समायोजन एवं शैक्षणिक तनाव को कम करने में योगदान दे सकते हैं। इस प्रकार साहित्य जीवन के गहन संकटों में मार्गदर्शक और ऊर्जा–स्रोत दोनों की भूमिका निभा सकता है।

शोध प्रश्न :

1. हिन्दी साहित्य, परीक्षा दबाव एवं शैक्षिक उपलब्धि का संप्रत्यय क्या है?
2. हिन्दी साहित्य की प्रेरणात्मक रचनाएँ परीक्षा दबाव को कम करने एवं शैक्षिक उपलब्धि के उन्नयन में में किस प्रकार योगदान कर सकती हैं?
3. क्या परीक्षा दबाव के न्यूनीकरण एवं शैक्षिक उपलब्धि के उन्नयन में हिन्दी साहित्य में निहित नैतिक और प्रेरक मूल्य प्रभावशील हो सकते हैं?

हिन्दी साहित्य :

भारत में समय की मांग के अनुसार राष्ट्रवाद, सुधारवाद और पुनरुत्थानवाद का प्रसार हुआ। एक ही विषयवस्तु– 'समाज सुधार' को लेकर भारत की सभी भाषाओं में उपन्यास लिखे गए। तात्पर्य, भारतीय साहित्य एक दूसरे अन्य भारतीय साहित्य से कहीं न कहीं जुड़ा हुआ है। हिंदी साहित्य अपनी प्रासंगिकता की तमाम कसौटियों पर न केवल अतीत में खड़ा उतरता आया है अपितु समकालीन चौतरफा दबावों के बीच भी अपनी प्रासंगिकता सिद्ध कर रहा है। आदिकवि वाल्मीकि के मुख से निकली कविता क्रौंच पक्षी के प्रति उनकी तीव्र संवेदनशीलता हिंदी साहित्य में प्रमाण है। हिंदी साहित्य समाज का ऐसा दर्पण है जो कि समाज में वांछित और सक्रिय परिवर्तन लाता है। भारत–भारती जैसी रचनाएं पूरे देश को पराधीनता के विरुद्ध एकजुट करने के लिए

आज भी वचनबद्ध है। साहित्य न सिर्फ जीवन की विसंगतियों को चित्रित करता है बल्कि एक आदर्श समाज के निर्माण हेतु नींव उपलब्ध कराता है। कोई भी समाज जब तक संक्रमण के दौरे से नहीं गुजरता तब तक वह नैतिकता और आदर्शता के प्रतिमानों को नहीं प्राप्त कर सकता। हिंदी साहित्य में ऐसे अनेक साहित्यकार है जो चेतना से परिपूर्ण है। उदाहरण हेतु :

'औरों को हंसते देखो मनु हँसो और सुख पाओ
अपने सुख को विस्तृत कर लो सबको सुखी बनाओ।' **– (कामायनी)**

इनके अतिरिक्त कई अन्य प्रतिमान भी ऐसे हैं जो साहित्य की प्रासंगिकता को सिद्ध करते हैं। आज के वैज्ञानिक युग में भौतिक साधनों की उपलब्धि चाहे बढ़ी हो, मनुष्य के समक्ष भावनात्मक व सृजनात्मक संकट तो गहरा ही हुआ है। यह वही संकट है जिसे सार्ज ने 'अमानवीयकरण' कहा, ऐरिक फ्रॉम ने 'नैतिक अकेलापन' कहा, जयशंकर प्रसाद ने 'विषमता' कहा और आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने 'प्रच्छन्नताओं का आवरण' कहा। इस अभूतपूर्व संकट काल में मनुष्य को उसकी मनुष्यता से जोड़े रहने के लिये तथा उसे यन्त्र या वस्तु बनाने वाली स्थितियों से बचाने के लिये साहित्य न केवल पूर्व प्रासंगिक थी, बल्कि उसकी प्रासंगिकता वर्तमान में और अधिक बढ़ती जा रही है। हमारा देश एक विचार है, चिन्मय है जो हमारी एकता और विविधता पर आधारित है। हमारे साहित्य की अवधारणा हमारे जनमानस तथा साहित्य के संपर्क की पहचान पर आधारित है। भारतीय साहित्य को भाषा, भौगोलिक क्षेत्र, राजनीतिक एकता के साथ–साथ इस देश के जनमानस के आधार पर पहचाना जाता है। भारतीय साहित्य की यह अंतर्निहित भारतीयता भारत की संस्कृति का प्रतिबिंब है। भारत की सांस्कृतिक विभिन्नता में विद्यमान एकता को महात्मा गांधी, जवाहरलाल नेहरु, सर्वपल्ली राधाकृष्णन और डॉ० राजेंद्र प्रसाद आदि ने बड़ी सूक्ष्मता से पहचाना है। अनेक साहित्यिक कृतियाँ अपनी मूल प्रेरणा प्राचीन वाङमय से प्राप्त करती हैं। यही कारण है कि भारतीय साहित्य के आकर ग्रंथों के रूप में 'रामायण', 'महाभारत' और 'कथासरित्सागर' का समान रूप से उल्लेख किया जाता है।

परीक्षा दबाव :

परीक्षा दबाव से तात्पर्य उस मानसिक, भावनात्मक और कभी–कभी शारीरिक तनाव से है, जो विद्यार्थी को परीक्षा के समय या परीक्षा की तैयारी के मध्यावधि में महसूस होता है। यह दबाव तब उत्पन्न होता है जब विद्यार्थी को अच्छे अंक लाने, अपेक्षाओं को पूरा करने, समय पर तैयारी करने और प्रतिस्पर्धा में आगे बढ़ने की चिंता होती है। कड़ी मेहनत और लगन का फल परीक्षाओं में अच्छे अंक पाकर मिलता है। अक्सर, यह अतिरिक्त प्रयास दबाव का कारण बन जाता है जो अंततः समग्र रूप से सीखने की प्रक्रिया में बाधा डालता है। परिणामस्वरूप, समग्र परीक्षा प्रदर्शन प्रभावित होता है। कम समय में सीखने के लिए आवश्यक सामग्री की विशाल मात्रा किसी भी परीक्षा की तैयारी को एक बहुत ही तनावपूर्ण अनुभव बना सकती है।

विश्व भर में 15 से 39 वर्ष की आयु के लोगों के लिए मृत्यु का प्रमुख कारण 'परीक्षा दबाव से आत्महत्या' है, हर साल 08 लाख से अधिक लोग आत्महत्या कर लेते हैं। चिंताजनक रूप से, कई विकसित देशों में परीक्षा अवधि के दौरान किशोरों द्वारा आत्महत्या के प्रयास बढ़ जाते हैं। भारत में, छात्र आत्महत्या दर अकेले 2011 से 2021 तक आश्चर्यजनक रूप से 70 प्रतिशत बढ़ी है, जिसमें 2021 में 13,000 से अधिक छात्रों ने अपनी जान ले ली। अगर देखें तो लगभग 35 मौतें प्रतिदिन हुईं। अध्ययन सीधे तौर पर इन आत्महत्याओं में से 08 प्रतिशत

को परीक्षा के दबाव से जोड़ते हैं। इन उच्च–दबाव वाले परीक्षा सत्रों के दौरान विदेशों में भी जैसे कनाडा और इंग्लैंड में किशोरों के मनोरोग अस्पताल में भर्ती होने की दर भी बढ़ जाता है। इस संकट की जड़ें छात्रों पर सामाजिक–सांस्कृतिक दृष्टिकोणों द्वारा डाले गए अत्यधिक दबाव को दर्शाती है, जो परीक्षा में सफलता को जीवन–निर्धारक लक्ष्य के रूप में परिभाषित करते हैं। पूर्वी और पश्चिमी संस्कृतियों में, परिवार, समुदाय और राष्ट्र युवाओं को संकेत देते हैं कि उनका मूल्य और भविष्य की सुरक्षा काफी हद तक मानकीकृत परीक्षाओं में उत्तीर्ण होने, साथियों से आगे निकलने और उच्च शिक्षा के प्रतिष्ठित संस्थानों में प्रवेश पाने पर निर्भर करती है। परीक्षाएँ जीवन के समग्र परिणामों के मुख्य निर्धारक और प्रवेश द्वार के रूप में एक बड़ी भूमिका निभाती हैं।

शैक्षिक उपलब्धि :

शैक्षिक उपलब्धि से आशय किसी विद्यार्थी द्वारा अध्ययन के दौरान प्राप्त की गई ज्ञान, कला, कौशल, योग्यता और शैक्षिक स्तर से है, जो सामान्यतः परीक्षा, परियोजना, आंकलन या अन्य मूल्यांकन प्रक्रियाओं के आधार पर मापी जाती है। यह उपलब्धि न केवल विषय–वस्तु की समझ को दर्शाती है, बल्कि विद्यार्थी के बौद्धिक विकास, रचनात्मकता, समस्या–समाधान क्षमता और व्यवहारिक दक्षता को भी प्रतिबिंबित करती है। किसी भी विद्यार्थी के विद्यालयी विषयों में प्राप्त ज्ञान का पता एक लिखित प्रमाण पत्र के रूप में होता है, जो विद्यार्थी के विषयक कार्यों के संबंध में सूचित करता है। दैनिक, मासिक एवं वार्षिक परीक्षाओं में प्राप्त अंकों से विद्यार्थियों में विकसित कौशल एवं व्यवहार परिवर्तन के विषय में पता लगाया जाता है। साधारणतः हम कह सकते हैं कि शैक्षिक उपलब्धि विद्यार्थियों के अधिगम स्तर और ज्ञान प्राप्त करने की क्षमता को संदर्भित करती है। यह विद्यार्थियों के भविष्य के लिए महत्वपूर्ण विधान है, क्योंकि यह उन्हें उच्च शिक्षा, नौकरी और सामाजिक सफलता हेतु तत्पर करती हैं। हिंदी साहित्य में, शैक्षिक उपलब्धि को अक्सर एक महत्वपूर्ण कारक के रूप में स्थान दिया गया है जो अनेकानेक कहानी, उपन्यास, कविताएं समसामयिक मुद्दों पर दृष्टि केंद्रित करता है।

परीक्षा दबाव को कम करने एवं शैक्षिक उपलब्धि के उन्नयन में हिन्दी साहित्य की प्रेरणात्मक रचनाओं का योगदान :

विद्यार्थी अपने जीवन में परीक्षा के दबाव और शैक्षिक उपलब्धि के मध्य एक जटिल संबंध से जूझता रहता है। अत्यधिक परीक्षा का तनाव विद्यार्थियों के प्रदर्शन को नकारात्मक रूप से प्रभावित कर सकता है, जिससे उनकी शैक्षिक उपलब्धि का ह्रास हो सकता है। इसके विपरीत समृद्ध हिंदी साहित्य का पठन विद्यार्थियों के परीक्षा तनाव को कम करने एवं शैक्षिक उपलब्धि में वृद्धि करने का सदैव प्रेरणा स्रोत रहा है।

1. मुंशी प्रेमचंद :

प्रेमचंद की रचनाएं सामाजिक और नैतिक मुद्दों को गहराई से उजागर करती हैं, जो तनाव और प्रेरणा के संदर्भ में प्रासंगिक हैं।

- **कफ़न (कहानी) – प्रसंग : तनाव, नैतिकता**

विवरण : यह कहानी गरीबी और सामाजिक तनाव को दर्शाती है, जहां घीसू और माधव अपने पारिवारिक दायित्वों और सामाजिक नैतिकता के बीच संघर्ष करते हैं। यह कहानी तनाव के कारण नैतिक पतन को चित्रित करती है, जो छात्रों के लिए तनाव के प्रभाव को समझने में मदद कर सकती है।

शैक्षिक प्रासंगिकता : यह कहानी तनाव के कारण नैतिक निर्णयों पर पड़ने वाले प्रभाव को विश्लेषण

करने के लिए उपयुक्त है, जो परीक्षा दबाव से प्रेरित अनैतिक व्यवहार (जैसे नकल) से जोड़ा जा सकता है।

- **ईदगाह (कहानी) – प्रसंगः प्रेरणा, नैतिकता**

विवरण : हामिद की कहानी, जो अपनी दादी के लिए चिमटा खरीदता है, त्याग और प्रेम की भावना को दर्शाती है। यह प्रेरणादायक कहानी कठिन परिस्थितियों में सकारात्मक सोच को बढ़ावा देती है।

शैक्षिक प्रासंगिकता : यह कहानी छात्रों को प्रेरित करती है कि वे कठिन परिस्थितियों (जैसे परीक्षा दबाव) में भी सही निर्णय लें और नैतिक बने रहें।

2. सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' :

निराला की रचनाएं भावनात्मक गहराई और तनाव से निपटने की प्रेरणा प्रदान करती हैं।

- **जूही की कली (कविता) – प्रसंग : तनाव, प्रेरणा**

विवरण : यह कविता प्रकृति और मानव जीवन के बीच संतुलन को दर्शाती है, जो तनाव को कम करने और आंतरिक शांति की खोज को प्रेरित करती है।

शैक्षिक प्रासंगिकता : यह कविता छात्रों को तनाव प्रबंधन के लिए प्रकृति और आत्म–चिंतन की ओर प्रेरित कर सकती है, जो परीक्षा दबाव से निपटने में सहायक है।

- **राम की शक्ति पूजा (कविता) – प्रेरणा, नैतिकता**

विवरण : इस कविता में राम का आत्म–संघर्ष और शक्ति की खोज को दर्शाया गया है, जो प्रेरणा और दृढ़ संकल्प का प्रतीक है।

शैक्षिक प्रासंगिकता : यह कविता छात्रों को प्रेरित करती है कि वे कठिन परिस्थितियों (जैसे परीक्षा) में हार न मानें और नैतिकता के साथ आगे बढ़ें।

3. महादेवी वर्मा :

महादेवी की रचनाएं भावनात्मक और आध्यात्मिक प्रेरणा से भरी हैं।

- **मैं नीर भरी दुख की बदली (कविता) – प्रसंगः तनाव, प्रेरणा**

विवरण : यह कविता मानसिक तनाव और दुख को व्यक्त करती है, लेकिन साथ ही आत्म–चिंतन और आशा की ओर ले जाती है।

शैक्षिक प्रासंगिकता : यह कविता छात्रों को मानसिक दबाव को समझने और उससे निपटने के लिए आत्म–निरीक्षण करने की प्रेरणा देती है, जो शैक्षिक उपलब्धि को बढ़ाने में मदद कर सकती है।

- **गिल्लू (निबंध) – प्रसंगः प्रेरणा, नैतिकता**

विवरण : यह निबंध एक गिलहरी के प्रति संवेदनशीलता और प्रेम को दर्शाता है, जो करुणा और नैतिकता को प्रेरित करता है।

शैक्षिक प्रासंगिकता : यह निबंध तनावपूर्ण माहौल में संवेदनशीलता और सकारात्मकता बनाए रखने की प्रेरणा देता है, जो छात्रों को तनाव प्रबंधन में मदद कर सकता है।

4. कबीर :

कबीर की रचनाएं आध्यात्मिकता, नैतिकता और जीवन के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण को प्रेरित करती हैं।

- **साधो, देखो जग बौराया (दोहा) – प्रसंगः नैतिकता, तनाव**

विवरण : इस दोहे में कबीर सामाजिक भटकाव और अनैतिकता पर टिप्पणी करते हैं, जो लोगों को सही मार्ग पर चलने के लिए प्रेरित करता है।

शैक्षिक प्रासंगिकता : यह दोहा छात्रों को तनावपूर्ण परिस्थितियों में नैतिकता बनाए रखने और सही निर्णय लेने के लिए प्रेरित करता है।

- **मन न रंगाये, रंगाये जोगी कपड़ा (दोहा) – प्रसंगः प्रेरणा, नैतिकता**

विवरण : कबीर इस दोहे में आंतरिक शुद्धता और आत्म–जागरूकता पर जोर देते हैं, जो तनाव को कम करने और सकारात्मक सोच को बढ़ावा देता है।

शैक्षिक प्रासंगिकता : कबीर का यह दोहा समग्र शिक्षा दर्शन में मानसिक शांति, नैतिक मूल्यों और आत्म–जागरूकता को बढ़ावा देता है, जो शैक्षिक उपलब्धि के साथ–साथ जीवन में संतुलन बनाए रखने के लिए अत्यंत आवश्यक है।

5. **रामधारी सिंह 'दिनकर' :**

दिनकर की रचनाएँ वीर रस, संघर्ष और आत्मबल के संदेश से ओत–प्रोत हैं।

- **रणभेरी (कविता) – प्रसंगः साहस और निरंतर प्रयास।**

विवरण : कविता यह सिखाती है कि कठिनाई चाहे कितनी भी हो, निरंतर प्रयास से सफलता अवश्य मिलती है।

शैक्षिक प्रासंगिकता : विद्यार्थियों को असफलता से न डरकर बार–बार प्रयास करने की प्रेरणा देती है।

- **रश्मिरथी (महाकाव्य) – प्रसंगः महाभारत के कर्ण का जीवन-संघर्ष।**

विवरण : कर्ण की विपरीत परिस्थितियों में भी लक्ष्य–निष्ठा और पराक्रम का अद्‌भुत चित्रण।

शैक्षिक प्रासंगिकता : विद्यार्थी इससे सीख सकते हैं कि सीमित संसाधनों में भी उत्कृष्टता प्राप्त की जा सकती है।

6. **ए.पी.जे. अब्दुल कलाम :**

कलाम साहब का जीवन स्वयं संघर्ष और प्रेरणा का प्रतीक है, जो युवाओं के लिए एक आदर्श के समान है।

- **विंग्स ऑफ़ फायर (आत्मकथा) – प्रसंग : सीमित साधनों से उच्च उपलब्धियाँ।**

विवरण : इस रचना में कलाम साहब के बचपन से लेकर इसरो और रक्षा क्षेत्र में उपलब्धियों की यात्रा का बहुत ही खूबसूरत विवरण दिया है।

शैक्षिक प्रासंगिकता : यह आत्मकथा छात्रों को यह सिखाती है कि कठिनाई चाहे कितनी भी हो, सपनों पर विश्वास और निरंतर प्रयास से सफलता मिलती ही है।

- **इग्नाइटेड माइंड्स (प्रेरक पुस्तक) – प्रसंगः युवाओं की क्षमता और राष्ट्रनिर्माण।**

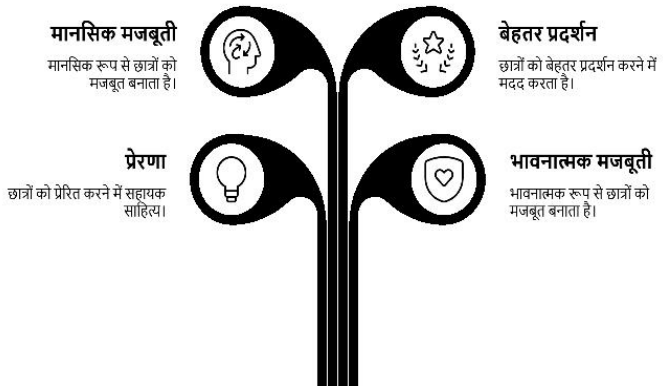
विवरण : इस पुस्तक में भारत के विकास के लिए युवा शक्ति की भूमिका पर बल दिया गया है।

शैक्षिक प्रासंगिकता : यह पुस्तक विद्यार्थियों में आत्मविश्वास और जिम्मेदारी का भाव जागृत करती है।

हिन्दी साहित्य एक विशाल सागर के समान है, इसकी विशालता इतनी अधिक है कि प्रत्येक रचना को

सदर्भित करना यहाँ संभव ही नहीं है। अतः यहाँ संदर्भ हेतु कुछ ही रचनाओं को संदर्भ हेतु लिया गया है।

परीक्षा दबाव के न्यूनीकरण एवं शैक्षिक उपलब्धि के उन्नयन में हिन्दी साहित्य में निहित नैतिक और प्रेरक मूल्यों की प्रभावशीलता



चित्र : 1 हिन्दी साहित्य के बहुआयामी प्रभाव

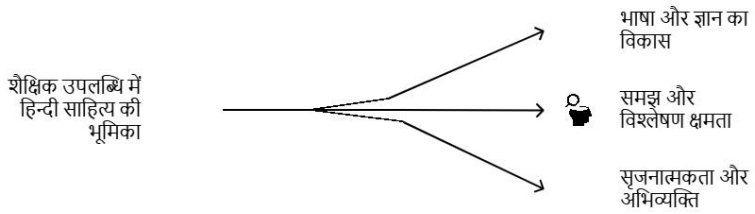
हिन्दी साहित्य, परीक्षा के दबाव को कम करने और शैक्षिक उपलब्धियों को बढ़ाने में एक शक्तिशाली माध्यम हो सकता है। यह न केवल छात्रों को प्रेरित करता है, बल्कि उन्हें भावनात्मक और मानसिक रूप से भी मजबूत बनाता है, जिससे वे बेहतर प्रदर्शन कर पाते हैं।

- **प्रेरणा और उत्साह :** हिन्दी साहित्य में वीरगाथाओं, देशभक्ति की कविताओं और प्रेरणादायक कहानियों के माध्यम से छात्रों में उत्साह और आत्मविश्वास का संचार होता है। यह उन्हें परीक्षा के दौरान आने वाले तनाव और दबाव का सामना करने की शक्ति देता है।
- **सकारात्मक दृष्टिकोण** : साहित्य, छात्रों को जीवन के विभिन्न पहलुओं को देखने का एक नया नजरिया प्रदान करता है। यह उन्हें समस्याओं का सामना करने और सकारात्मक दृष्टिकोण रखने के लिए प्रोत्साहित करता है, जो परीक्षा के दौरान आत्मविश्वास बढ़ाने में मदद करता है।
- **मानसिक स्वास्थ्य :** साहित्य, छात्रों को भावनात्मक रूप से स्थिर रहने में मदद करता है। यह उन्हें तनाव, चिंता और अवसाद जैसी समस्याओं से निपटने में सहायक होता है।

शैक्षिक उपलब्धि के उन्नयन में भी हिन्दी साहित्य की विशेष भूमिका है :

- **भाषा और ज्ञान का विकास :** हिन्दी साहित्य का अध्ययन छात्रों को भाषा और साहित्य के ज्ञान को समृद्ध करने में मदद करता है। यह उनकी रचनात्मकता और कल्पनाशीलता को जागृत करता है।
- **समझ और विश्लेषण क्षमता :** साहित्य, छात्रों को घटनाओं, पात्रों और स्थितियों का विश्लेषण करने की क्षमता विकसित करता है। यह उनके तार्किक और आलोचनात्मक सोच में वृद्धि करता है।
- **सृजनात्मकता और अभिव्यक्ति :** हिन्दी साहित्य छात्रों को अपनी भावनाओं और विचारों को रचनात्मक रूप से व्यक्त करने के लिए प्रेरित करता है। यह उनके लेखन और भाषण कौशल में स्थायित्व लाता है।
- **सांस्कृतिक और सामाजिक जागरूकता :** साहित्य, छात्रों को अपनी संस्कृति और समाज के बारे में जागरूक करता है। यह उन्हें विभिन्न सामाजिक मुद्दों को समझने और उनके प्रति संवेदनशील आयामों के मुद्दों

से अवगत कराता है।



चित्र : 2 शैक्षिक उपलब्धि में हिन्दी साहित्य की भूमिका

निष्कर्ष एवं सुझाव :-

परीक्षा में सफलता केवल विषय ज्ञान पर निर्भर नहीं करती, बल्कि मानसिक स्थिरता, सकारात्मक दृष्टिकोण और आत्मविश्वास पर भी आधारित होती है। हिन्दी साहित्य की प्रेरणात्मक रचनाएँ विद्यार्थियों को मानसिक रूप से सशक्त बनाती हैं, जिससे वे तनाव कम कर पाते हैं और बेहतर प्रदर्शन कर पाते हैं।

हिंदी साहित्य विद्यार्थियों के लिए एक मूल्यवान संसाधन है। यह न केवल उन्हें परीक्षा के दबाव से मुक्त करता है, बल्कि उनकी शैक्षिक उपलब्धि के वर्धन में सहायक है। इसलिए, विद्यार्थी को हिंदी साहित्य को अपने अध्ययन के एक अभिन्न अंग के रूप में स्वीकार करना चाहिए। यह विद्यार्थी जीवन में व्याप्त सामाजिक विरूपता और विषमता को दूर कर उसके लिए संभावनाओं के द्वार खोलती है। समृद्ध साहित्य ही विद्यार्थियों की समग्र शैक्षणिक प्रगति में रचनात्मकता, कल्पनाशीलता और भाषा कौशल को अनुप्राणित करता हैं। अतः शिक्षा वह सशक्त साधन है जिसके द्वारा हिंदी साहित्य की धरोहर को पूर्णतः सुरक्षित करके रखा जा सकता है एवं इस अग्रिम पीढ़ियों में हस्तांतरित किया जा सकता है। यही संवर्धित साहित्य विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि को बढ़ाने एवं परीक्षा दबाव को कम करने के बेहतर उपाय सुझाते हैं। यदि शिक्षा पद्धति में योजनाबद्ध तरीके से ऐसी रचनाओं का समावेश किया जाए, तो यह न केवल परीक्षा दबाव कम करेगी बल्कि विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धियों में भी उल्लेखनीय वृद्धि करेगी। इस प्रकार, हिन्दी साहित्य शिक्षा और मनोविज्ञान का सेतु बनकर विद्यार्थियों के सर्वांगीण विकास में महत्वपूर्ण योगदान सकेगा।

संदर्भ सूची :

1. कुमारी, ए., एवं जैन, जे. (2014). परीक्षा तनाव और चिंता : महाविद्यालयीन छात्रों का एक अध्ययन. ग्लोबल जर्नल ऑफ़ मल्टिडिसिप्लिनरी स्टडीज़, 04(01), 31–40
2. गुप्त, एम०. (1914). भारत–भारती. वाराणसी : भारतीय ज्ञानपीठ.
3. गुप्त, एम०. (1932). पंचवटी. प्रयाग : साहित्य भंडार.
4. चौहान, पी० एवं टिन्ना, ए०. (2022). विद्यार्थियों की सांवेगिक बुद्धि एवं मानसिक तनाव का उनकी शैक्षिक उपलब्धि पर पड़ने वाले प्रभावों का अध्ययन. इंस्पाइरा : जर्नल ऑफ़ मॉडर्न मैनेजमेंट एंड आंत्रप्रेन्योरशिप (जेएमएमई), 12(02), 54–59 आईएसएसएन 2231–167एक्स

5. दिनकर, आर० एस०. (1952). रश्मिरथी. पटना : लोकभारती प्रकाशन.
6. दिनकर, आर० एस०. (1957). परशुराम की प्रतीक्षा. पटना : लोकभारती प्रकाशन.
7. पंत, एस०. (1943). पल्लव. प्रयाग : भारतीय ज्ञानपीठ.
8. पंत, एस०. (1957). ग्राम्या. प्रयाग : भारतीय ज्ञानपीठ.
9. प्रसाद, जे०. (1936). कामायनी. इलाहाबाद : भारतीय ज्ञानपीठ.
10. प्रसाद, जे०. (1933). आँसू. वाराणसी : नागरी प्रचारिणी सभा.
11. मरहमाह, एच. एच. (2015). सोशल सपोर्ट, एडजस्टमेंट और अकादमिक स्ट्रेस अमंग फ़र्स्ट ईयर स्टूडेंट इन स्याह कुआला यूनिवर्सिटी. इंटरनेशनल कॉन्फ्रेंस ऑन करंट इश्यू इन एजुकेशन, योग्यकार्ता, इंडोनेशिया.
12. वर्मा, एम०. (1935). मैं नीर भरी दुख की बदली. प्रयाग : भारतीय ज्ञानपीठ.
13. वर्मा, एम०. (1942). नीहार. इलाहाबाद : साहित्य भंडार.
14. सिंह, डी. आर. (2021). किशोरों में शैक्षिक तनाव और समायोजन के बीच संबंध. इंटरनेशनल जर्नल ऑफ़ मल्टिडिसिप्लिनरी एंड करंट एजुकेशनल रिसर्च (आई.जे.एम.सी.ई.आर.), 03(05), 43–46

singhpragya251@gmail.com
lakshmi_phd21_edu@csjmu.ac.in
pawak_phd21_edu@csjmu.ac.in
DOI: 10.5281/zenodo.16937982

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Sept. 2025 Page No. : 150-153

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

हिन्दी साहित्य में किन्नर विमर्श

Jasmine. S

Research Scholar, University of Kerala, Kariavattom Campus

स्वतंत्रता के बाद भी समाज में अनेक लोग हाशिये की परिधि पर खड़े किए गए हैं। समाज के बुरी चिंतन के कारण कुछ जनसमूह को समाज से दूर करता हैं। अपने निजी स्वार्थ के कारण सामान्य या सभ्य कहनेवाली जनता और जनसमुदाय कभी भी इन्हें अपनाने की कोशिश नहीं की। यह विश्व तथा मानव समाज नर तथा नारी के रूप में प्रतिष्ठित हैं। मानव जाति में स्त्री पुरुष के अतिरिक्त एक तीसरा लिंग भी हैं जो समाज द्वारा तिरस्कृत किया जाता हैं। वर्तमान समय में आम जन के मन में किन्नर शब्द एक अपूर्ण देह के रूप में उभरता हैं। अनेक वर्षों से किन्नर समुदाय समाज से अलग रूप में जीवन यापन करता हैं। उसको सामान्य इंसान की श्रेणी से कोसों दूर रखा गया ये लोग थर्ड जेन्डर, ट्रांसजेन्डर, ट्रांससेक्सुअल, किन्नर या हिजड़े के नाम से जाना जाता हैं। ये भी समाज की हिस्सा हैं। लेकिन समाज इन्हें समाज का हिस्सा नहीं मानता हैं।

किन्नर समाज आज हँसी के पात्र बन गये हैं,। "समाज ने थर्ड जेन्डर या तृतीय लिंग वाली संतान का नामकरण क्लीव, हिजड़ा, किन्नर, शिवशक्ति, कोठी, जोगप्पा, मंगलामुखी, सही, जोंगता अरीधि तथा नपुंसक आदि अनेक नामों से किया हैं। क्लीव और किन्नर संस्कृत भाषा के शब्द हैं, जबकी हिजड़ा उर्दू शब्द हैं, जो हिजर से आया हुआ हैं। हिजर से तात्पर्य है कबीले से पृथक। यानि कि अपनी बिरादरी छोड़ा हुआ या उस बिरादरी से बाहर निकाला हुआ। जब संकट इनके ऊपर आता हैं, तो वे अपने परिवार छोड़ने के लिए अभिशप्त होता हैं। समूचे देश में हिजड़ा समाज हैं और अलग अलग भाषाओं में उसके लिए अलग अलग शब्द हैं। उर्दू में 'हिजड़ा' और 'खवाजसरा' शब्द प्रयुक्त हैं तो हिन्दी में 'हिजड़ा' और 'किन्नर'। मराठी में 'हिजड़ा' और 'छक्का' शब्द प्रयुक्त हैं तो गुजराती में' पावेय्या' हैं। पंजाबी में 'खूस्रा' या 'जनखा' प्रचलित हैं तो तेलुगु में 'नपुंसकुडु', 'कोज्जा', 'मादा' कहा जाता हैं। तमिल में 'शिरुनान गाई', 'अली', 'अवन्नी', 'अरावनी', 'अरुवानी', अंग्रेजी में Eunuch शब्द इस्तेमाल किये जाते हैं।"[1] समाज उनको जंगली जानवर के तरह देखता हैं। लैंगिक अपरिपक्वता और अधूरापन ही उनके जीवन का अभिशाप बन गया। समाज के लोग जैविक दोष और यौन अविकास वाले बच्चे को परिवार में रखना कलंक मानता है। राजकुमार ने ट्रांसजेन्डर शब्द को स्पष्ट करते हुए परिभाषा दी हैं "वैज्ञानिक एवं सामाजिक दोनों अर्थों में भावात्मक व्यवस्था का ऐसा सहचरण एक ऐसी परिभाषा को महत्ता प्रधान की जिसमें साफ–साफ शब्दों में बताया गया कि ट्रांसजेन्डर जिसमें वैज्ञानिक तरीके से एक ट्रांस साधारण स्त्री पुरुष की तरह ही जन्म लेता हैं, परंतु अपनी भावात्मक महत्ता के आधार पर जब वह अपनी यौनिकता एवं शारीरिक दोनों रूपों में परिवर्तित कर लेता हैं तो वे ट्रांसजेन्डर कहलाता हैं।"[2]

वर्तमान समय में ट्रांसजेन्डर शब्द का पर्ययोग हो रहा हैं। 1980 के दशक में ट्रांसजेन्डर शब्द का प्रयोग होने लगा। ट्रांसजेन्डर के सबंध में कहा भी गया हैं कि जेन्डर आइडेंटिटी यानि मैं स्त्री हूँ या कोई और हूँ। इसका उस व्यक्ति को अंदर से होने वाले एहसास और इस एहसास के अनुसार उसका बर्ताव, यानि जेन्डर एक्स्प्रेशन या जेन्डर बिहावियेर विजेंद्र प्रस्ताप सिंह के अनुसार "अर्थ की दृष्टि से देखे तो बुनियादी स्तर पर ट्रांसजेन्डर, ट्रांससेक्शुअल, एंड्रोगायन तथा, कोथिस को इसप्रकार पाते हैं –एक ट्रांसजेन्डर वह व्यक्ति हैं, जिसे जन्म के समय गुप्तांग के रूप में एक लिंग प्राप्त होता हैं, परंतु वह लिंग झूठा प्रतिनिधित्व लगता हैं, अर्थात वह यदि पुरुष लिंग के साथ होता भी हैं तो उसके अंदर भावनाएं स्त्री के होती हैं। कई बार ऐसा भी होता हैं कि शरीर तो स्त्री का होता हैं, परंतु हाव भाव पुरुषों वाले होता हैं"[3]। जेन्डर आइडेंटिटी अपने हाव भाव, रहन, सहन, चाल चलन, सारी बातों का समावेश करके स्वयं अपनी पहचान निर्धारित करता हैं। हिजड़ा अथवा किन्नर शब्द सुनते ही हमारे सामने गहनें, चमकीले कपड़े व चेहरे पर बहुत सारा मैकअप से सजाया हुआ शरीर और बच्चों के जन्म पर, विवाह आयोजन और जैसे अन्य कार्यक्रमों नाच गाकर पैसा कमाने वाले एक रूप आता हैं। अगर उसे मुँह माँगी रकम न दी जाए तो गाली देने पर भी उतारू हो जाता हैं। उनके आने पर लोगों के मन में रोमांच उत्पन्न होता हैं साथ ही डर भी सताने लग जाता हैं।

किन्नरों का अस्तित्व आदिकाल, पौराणिक काल से ही रहा हैं। किन्नरों की चार शाखाएं हैं –बुचरा, नीलिमा, मानसा और हंसा। इनमें बुचरा जन्मजात किन्नर होता हैं। जो स्वयं किन्नर बनते हैं, उन्हें नीलिमा कहा जाता हैं। जो समुदाय में स्वेच्छा से शामिल होते हैं वे मानसा तथा किसी शारीरिक कमी के बने किन्नर हंसा कहलाते हैं। किन्नर के घर का मुखिया नायक कहलाता हैं यही नायक गुरु को नियुक्त करता हैं। गुरु अपने दम में किन्नर लोगों को सुरक्षा प्रदान करता हैं और बधाईयां और नाचना गाना सिखाता हैं। सभी किन्नर अपने हर दिन के कमाई का पैसा गुरु को देता हैं।

इक्कीसवीं शती में किन्नर विमर्श यानि तृतीयलिंगी समुदाय को साहित्य के केंद्र में लाने का कभी प्रयास किया जा रहा हैं। किन्नर समुदाय की समस्याओं को साहित्य के माड़ीं से समाज को रूबरू करवाने में महत्वपूर्ण योगदान दिया। जिनमें 'नीरज माधव' का 'यमदीप', 'महेंद्र भीष्म' का 'किन्नर कथा', 'मैं पायल' ,'प्रदीप सौरभ' का 'तीसरी ताली' ,'निर्मल भुराडीया' का 'गुलाम मंडी', 'अनसूया त्यागी' का 'मैं भी औरत हूँ', 'चित्र मुद्गल' का 'पोस्ट बॉक्स नंबर 203 नालासोपरा', 'भागवत अनमोल' का 'जिंदगी 50 –50', 'अर्चना गोचर' का 'किन्नर कथा एक अंतहीन सफर' इत्यादि। साहित्यकरों ने किन्नर समाज की समस्याओं को बाहर निकालने की कोशिश की हैं। सदियों से हिजड़ा समुदाय को अलग नजरिए से ही देखा समझा जा रहा हैं। साहित्यकारों एवं संस्कृतिकर्मियों तथा सामाजिक संस्थाओं ने हिजड़ों के प्रति लोगों की पारंपरिक सोच को बदलने का सार्थक प्रयास किया हैं। इसलिए आज हिन्दी साहित्य में कहानी और उपन्यास के क्षेत्र में किन्नर समाज का विशेष उल्लेख किए आ रहे हैं।

हिन्दी उपन्यास साहित्य में हिजड़ा समुदाय पर केंद्रित 'नीरजा माधव' का 'यमदीप', 'अनसूया त्यागी' का 'मैं भी औरत हूँ', 'महेंद्र भीष्म' का 'किन्नर कथा', 'प्रतीप सौरभ' का 'तीसरी ताली', निर्मल भुराडिया' का गुलाम मंडी, चित्रा मुद्गल का पोस्ट बॉक्स नंबर 203 नालासोपारा', 'भगवत अनमोल' का 'जिंदगी 50–50', 'सुभाष अनिल' का 'दरमियाना', मोनिका देवी का अस्तित्व के तलाश में सिमरन, मुक्ति शर्मा का श्रापित किन्नर आदि

उपन्यासों में किन्नर जीवन की यथार्थ का चित्रण हैं।

नीरजा माधव' का 'यमदीप' किन्नर विमर्श पर आधारित प्रथम उपन्यास माना जाता हैं। उपन्यास के प्रारंभ में एक पागल स्त्री के प्रसव पीड़ा से होता हैं। पागल स्त्री एक बच्चे को जन्म लेकर मार जाती हैं। उस बच्चे को किन्नर नाजबीबी पालन पोषण किया हैं। इसलिए नाजबीबी को जो कष्ट होता हैं वह अत्यंत मार्मिक हैं। उपन्यास में किन्नर की त्रासदी, सामाजिक, आर्थिक, शैक्षिक पक्षों पर भी प्रकाश डालता हैं। नाजबीबी के द्वारा किन्नर की पारिवारिक विस्थापन का पहलू भी किया हैं।

'अनसूया त्यागी' के उपन्यास 'मैं भी औरत हूँ' दो बहनों की कहानी हैं। दोनों अपूर्ण योनि के साथ जन्म लेती हैं। उपन्यास में लेखिका डॉक्टर होने के कारण उपन्यास की कथावस्तु वैद्यकीय क्षेत्र में रखकर किया हैं। इस उपन्यास में लेखिका दिखाता हैं कि शल्यक्रिया द्वारा अपूर्णयोनी से जन्म हुए किन्नर को स्त्री रूप दिया जा सकता हैं। उपन्यास में मंजु और रोशनी को शल्यक्रिया करवाता हैं। ऑपरेशन करके योनि को विकसित करता हैं। मंजु पूर्ण रूप से स्त्री बन जाती हैं। विवाह करके एक बच्चे को जन्म दिया जाता हैं। रोशनी के माँ बनने की असमर्थ होती हैं। यह उपन्यास पूरी तरह से शरीर विज्ञान पर केंद्रित हैं।

चित्रा मुद्गल का उपन्यास 'पोस्ट बॉक्स नंबर 203 नालासोपारा' पत्रात्मक शैली में लिखी उपन्यास हैं। उपन्यासकार ने बिन्नी के माध्यम से किन्नरों की कथा व्यथा को प्रस्तुत किया हैं। परिवार से दूर होने के अलावा उनको कई समस्या को अपने जीवन में सामना करना पड़ता हैं। बिन्नी पत्रों के माध्यमों से अपने व्यथा को माँ को सुनाती हैं। बिन्नी किन्नर के पारंपरिक रीति को पसंद नहीं करती। भीख माँगना, शादी में नाच गाकर नेग उठाना जैसे कार्यों को विरोध करता हैं। विधायक के यहाँ नौकरी करता हैं। अंत में बिन्नी का विधायक द्वारा उनको जान भी खो जाता हैं। लेखक ने अप्रत्यक्ष रूप में यह दिखाता हैं।

निर्मल भुराडिया' का उपन्यास 'गुलाम मंडी' में किन्नरों की त्रासदी का चित्रण किया हैं। आर्थिक परिस्थति और किन्नर में होने वाले समस्याओं का चित्रण किया हैं। उपन्यास में निर्वाण प्रथा गुरु के अत्याचर और आर्थिक अभाव के चलते एड्स जैसे रोग का शिकार होना आदि अनेक पहलुओं को दिखाता हैं।

महेंद्र भीष्म 'का उपन्यास 'मैं पायल' में किन्नर समाज के नरकीय जीवन को हमारे सामने रखता हैं। यह एक वास्तविक चरित्र पायल सिंह के जीवन चरित्र को लेकर लिखा गया है। पायल उर्फ जुगनी को अपने घर छोड़ने का विवश पड़ता हैं। रेलवे स्टेशन में प्रौढों के द्वारा यौन के शिकार होना पड़ता हैं। पड़ित जी के यहाँ नौकरी करता हैं। इसी के बाद में सिनिमा हॉल में नौकरी करती हैं। वह अपनी मिमिक्री करने के योग्यता और गायन योग्य आवाज पर लखनौ में अपने कैरियर बनने का प्रयत्न करता हैं। महेंद्र भीष्म ने इस उपन्यास के माध्यम से किन्नर लगन से दूसरे क्षेत्र में रोजगार की तलाश पर उनको अनेक समस्या को सामना करना पड़ता हैं।

प्रतीप सौरभ' का उपन्यास 'तीसरी ताली' में हिजड़े के समस्या को उनकी जीविका को लेकर दिखाई पड़ा हैं। इस उपन्यास में शिक्षा और प्रशिक्षण के माध्यम से थर्ड जेन्डर लोगों के आर्थिक और सामाजिक विकास को भी दिखाया गया हैं। विनीत पारिवारिक और सामाजिक जीवन से उपेक्षा का शिकार बनता हैं लरकीं उसके पिता उसको ब्यूटीशन कोर्स करवाकर m के जीवन में परिवर्तन लेता हैं। यह उपन्यास विनीत उर्फ विनीता, राजा उर्फ रानी, मंजु और विजय की कहानी हैं। उपन्यास में ज्योति के माध्यम से लौडा रखने का खुलासा चित्रण किया

हैं। निर्धनता पहले ज्योति को लौड़ा बनती हैं बाद में वह हिजड़े के अंडे में पहुँचती हैं। उपन्यासकार ने यहाँ दर्शाया हैं पैसे के माँग ,में किन्नर काल गर्ल सेंटर में काम करता हैं।

मोनिका देवी कृत 'अस्तित्व की तलाश में सिमरन' में सिमरन के अस्तित्व का संघर्ष हैं। बचपन में सिमरन के शरीर में परिवर्तन होने लगा। इस परिवर्तनों के कारण सहपाठी उको छोड़ता हैं। हताशा और चिंताग्रस्त सिमरन अपने परिवार के व्यवहार से हतप्रभ थी। उन्होंने एक कंपनी में अस्थायी करने लगते हैं। माँ ने उसको कुकृत्य करने के लिए प्रेरित करता हैं। उनके लिए वह ये कमाने की उपाधी मात्र हैं। फिर उनको अनेक समस्या को सामना करना पड़ता हैं। परिवार से निकालने के बाद ट्रेन में भीख माँग कर अपना पेट भरता हैं। फिर संक्रमित एड्स पीड़ितों के लिए कार्य करने वाली संस्था के साथ कार्य किया हैं। चंपा गुरु के साथ आने पर उनके निर्वाण भी गो गई। उपन्यास में सिमरन के कथा व्यथा को बड़ी बारीकी से लेखक ने दिखाता हैं।

'मुक्ति शर्मा' कृत 'श्रापित किन्नर' में नरगीस और हीना की जीवन के संघर्ष की कहानी हैं। नरगिस अपने माता पिता की लाड़ली बेटी हैं। उसके लिए माता–पिता पढ़ाई का वातावरण किया हैं। किन्नरों के समूह को पता चलता हैं वो अपने दल बालों के साथ अपने साथ ले जाते हाँ। अपनी मेहनत पर उसको अच्छी नौकरी मिली। नरगिस अकरम नामक लड़के साथ मोहब्बत करता हैं। अकरम के मामा को एक बेटी जन्म होता हैं वो भी किन्नर होती हैं। किन्नर बच्चे की जन्म होने पर दादी को हार्ट अटैक हो जाता हैं। इसके जिम्मेदार हिना को जाता हैं। हिना ने पिता के नफरत को सहकर दिन रही थी। दादी के मृत्यु के बाद हीन के माँ कैंसर से मृत्यु हुई। हीना एक श्रापित किन्नर हो जाता हैं। नरगिस ने उसे पढ़ाई करके डॉक्टर बना लेता हैं। नरगिस को स्वयं एड्स हो जाता हैं। अकरम के सहयोग और समर्थन से नरगिस और हिना को उच्च पद हासिल किया हैं।

इस प्रकार हम देख सकते हैं कि समय के साथ–साथ गति भले ही धीमी हैं। भले ही साहित्य में इनके विषय में सोच विचार आरंभ किया। इक्कीसवीं शताब्दी अस्मिताओं के संघर्ष की शताब्दी हैं। कह सकता हैं इस युग में चिंतन के कई परिप्रेक्ष्य उद्घाटित हुए हैं। इसी परिप्रेक्ष्य में जीवन हिजड़ा जीवन से सबंधित तीसरा विमर्श हैं। किन्नर समाज, जिसके साथ जिसके साथ बिलकुल उपेक्षित सा व्यवहार करता हैं, उपहास उठाया जाता हैं। उन्हें आम आदमी के तरह जीने का अधिकार हैं। थर्ड जेन्डर या तृतीय लिंगी समुदाय में सम्मिलित किए गए मनुष्य चाहे किन्नर हो या समलैंगिक उन्हें वर्तमान सामाजिक स्वीकृति एवं सहानुभूति दोनों की आवश्यकता हैं। आज साहित्य उनकी पीड़ा की अभिव्यक्ति के लिए तरस रहा हैं। हम सोचने की आवश्यक हैं उनका भविष्य कैसा होगा? जननांग विकलांगता के कारण कोई बच्चा किन्नर पैदा होता तो उनमें कोई दोष नहीं हैं उसे भी जीने का अधिकार हैं। कुछ किन्नर पढ–लिखकर अपने पैरों में खड़ा हो रहे हैं। प्राचीन समय में इनको सामान्य मनुष्य के समान तो कही देवताओं के समतुल्य समझ जाता हैं। विभिन्न मानवधिकारी संस्थाओं ने किन्नरों को समाज में पुर्नस्थापना हेतु प्रयास भी किए हैं। स्थितियाँ सुधर रही हैं और आशा हैं कि भविष्य में और बेहतर होंगी। इन्हे भी हमारी तरह आम मनुष्य होने के एहसास के साथ जीना चाहिए।

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

1. हिन्दी मलयालम साहित्य एवं सिनिमा में क्वीर विमर्श, डॉ. निम्मी. ए.ए–पृ. 7–8
2. राजकुमार : थर्ड जेन्डर : भाषा वैज्ञानिक अध्ययन –पृ. सं –26
3. कुमार गौरव मिश्रा, जनकृति पत्रिका –थर्ड जेन्डर विशेषांक, पृ. 72, अंक 18, अगस्त 2016

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Sept. 2025 Page No. : 154-158

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

हिन्दी साहित्य में किसान समस्या

डॉ. राजेश यादव

असिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी विभाग, हरिराम महाविद्यालय मैरवा, सिवान
जय प्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा, बिहार।

किसानों की समस्याओं को लेकर हिन्दी साहित्य में अनेक रचनाएँ लिखी गई है। जिनमें भारत के किसानों एवं उनकी व्यथा को दर्शाया गया है। सर्वप्रथम किसान जीवन पर अपनी कलम चलाई प्रेमचन्द्र। उन्होंने अपना सम्पूर्ण रचनाकार किसानों पर आधारित करके लिखा है। गोदान उनका सर्वश्रेष्ठ उपन्यास है। जिसमें उन्होंने किसान जीवन के बारीकियों को तथा भूख से तड़पते वे घर बेहाल किसान के जीवन की व्यथा प्रस्तुत की है। इसी तरह किसानों पर यथार्थवादी रचना करने का श्रेय नागार्जुन को ही जाता है। वर्तमान में साहित्यिक अवधारणा अधिकतर साम्राजवाद तथा नवजागरण की पद्धति से चल रही है। हालांकि कोई भी रचना चाहे जितनी भी स्वाभाविक हो वह सामाजिक बदलाव लाने में सामर्थ नहीं होती। उसका कारण यह है कि समाज किसी भी रचनाकार की रचनाओं के भीतर के तथ्यों को समझने में असमर्थ होता है। नित नये अन्दोलन मात्र भारतीय संस्कृति पर ग्रहण की तरह व्यवस्थाओं पर छाया हुआ है। कोई भी उपन्यासकार, कहानीकार उपर्युक्त विषय लेकर प्रभावशाली रचना का निर्माण समाज की दशा एवं दिशा करता है। जब साहित्य की रचना किसी सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक तथा वैयक्तिक अवधारणाओं को लेकर प्रस्तुत होती हैं। तभी एक नये अन्दोलन का शंखनाद होता है।

यह सच है कि भारत आज भी एक कृषि प्रधान देश है और यहां की अर्थव्यवस्था की निर्धारक कृषि ही है, किन्तु विगत कुछ वर्षों में भारतीय कृषि क्षेत्र से जुड़े कुछ चिंतनीय पक्ष भी उजागर हुए हैं। इन पर ध्यान दिया जाना जरूरी है। सबसे अधिक चिंतनीय पक्ष यह है कि राष्ट्रीय आय में कृषि का हिस्सा धीरे–धीरे कम होता जा रहा है। इससे संबंधित आंकड़ों को हम शुरू में ही दे चुके हैं। विश्लेषणों से यह पता चलता है कि देश में निरंतर कृषि व गैर कृषि व्यवसायों में काम करने वाले श्रमिकों की औसत आय में अंतर बढ़ता चला जा रहा है। जिसकी तरफ भारत के नीति निर्धारकों का ध्यान संभवतः नहीं है। कृषि में काम करने वाले श्रमिकों का प्रति व्यक्ति जी. डी.पी. गैर कृषि में काम करने वाले श्रमिकों की तुलना में मात्र पांचवां भाग है, जिसकी तरफ ध्यान दिया जाना आवश्यक है। दूसरा चिंतनीय पहलू यह है कि उद्योगों में कृषि का महत्व पहले की तुलना में घटा है। बीते कुछ वर्षों में हमारे देश में तमाम ऐसे उद्योग स्थापित तथा विकसित हुए हैं। जिनकी निर्भरता कृषि पर नहीं है। इस श्रेणी में रसायन उद्योग, लौह अयस्क व इस्पात उद्योग, सूचना प्रौद्योगिकी, विभाग निर्माण तथा मशीनी औजार व अन्य इंजीनियरी उद्योग आते हैं। इन उद्योगों की तरफ विशेष ध्यान दिये जाने से कृषि की भूमिका थोड़ी

सिकुडी है, जोकि इस कृषि प्रधान देश के लिए अहितकर है।

स्वाधीनता प्राप्ति के पश्चात का साहित्य दो दृष्टियों से विशेष महत्व का है। एक तो इसने हर विधा में जिए हुए जीवन सत्य पर बल दिया और दूसरे देश के उपेक्षित किसानों की ओर उसकी दृष्टि गई। अपने देश के असली स्वरूप को पहचानने के ख्याल उठा रहा था, दूसरी ओर स्वतंत्र भारत में उपेक्षित और महत्वहीन माने–जाने वाले गाँव और अन्याय अँचलों की महत्ता का उदय हो रहा था। दोनों का संगम हुआ आँचलिक कथाओं में।

किसानों की विडम्बना और उनको वास्तविकता से परिचय कराने का कार्य हिन्दी साहित्य की रचनाओं के माध्यम से ब्रहद रूप में हुआ है। किसानों और ग्रामीण व्यवस्था पर लिखे गये उपन्यास स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् जिन आँचलिक उपन्यासों की रचना की गई है, उन उपन्यासों का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। अन्य आंचलिक उपन्यासकार और उनके आँचलिक उपन्यास हैं–उपेन्द्रनाथ अश्क (पत्थर अल्पत्थर), आनंद प्रकाश जैन (आठवीं भाँवर), उदयराज सिंह (भूदानी सोनिया), आनंद उपाध्याय (रीत), केशव प्रसाद मिश्र (कोहबर की शर्त), हिमांशु जोशी (बुरांश फूलते तो है). लक्ष्मीनारायण लाल (बया का घोंसला और साँप) सावित्री देवी (जाग्रत ग्राम). उषा प्रियंवदा, (पचपन खंभेलाल दीवारें), सुमेर सिंह दझ्या (भावनाओं के खंडहर), मणि मधुकर (सफेद मेमने), मायानन्द मिश्र (माटी के लोग सोने की नैया), बलदेव दत्त शर्मा (गरीबी से आगे), मधुकर गंगाधर (यही सच है, सुबह होने तक), रामकुमार भ्रमर (तीसरा पत्थर), क्षेमलता वखलू (हिरना सॉवरी), सर्वदानंद (माटी खाई जनावरा), विलास विहारी (अकाल पुरुष), योगेन्द्र सिन्हा (मन के वन में), श्याम पनमार (मोरझाल), मुहम्मद इसरा इल अंसारी (गाँव की बेटी), रामदेव शुक्ल (पिकल्प) आदि।

अमृतलाल नागर के बूँद और समुद्र की पृष्ठ भूमि शहराती अंचल, लखनऊ है। मोहन राकेश के अंधेरे बन्द कमरे का आंचलिक आधार नहीं दिल्ली है। नगरीय सभ्यता, मध्य और उच्च मध्य वर्ग के सामाजिक जीवन का चित्रण, वहाँ की नई–पुरानी संस्कृति के आधार पर किया गया है। सुरेंन्द्र पाल के लोकलाज खोई का अंचल उत्तर प्रदेश का पूर्वी भाग है। योगेन्द्र सिन्हा का श्मन के वन में बिहार की सिंहार की सिंहभूमि की हो जाति की कथा है। वहाँ के आतंकित जीवन का पर्दाफाश किया गया है। मनहर चौहान के हिरना साँवरी में लोक जीवन का चित्रण हुआ है। वहाँ की गरीबी, अंधविश्वास और यौन शोषण के आधार पर कथानक रचा गया है।

प्रेमचंद गरीबों की इस भावना का वर्णन करते हुए कहते हैं– ''कृषि प्रधान देश में खेती केवल जीविका का साधन नहीं है, सम्मान की वस्तु भी है। गृहस्थ कहलाना गर्व की बात है। किसान गृहस्थी करता है।'' मान–प्रतिष्ठा का मोह औरों की भांति उसे घेरे रहता है। वह गृहस्थ रहकर जीना और गृहस्थी ही में मरना भी चाहता है। उसका बाल–बाल कर्ज से बंधा हो, लेकिन द्वार पर दो–चार बेल बांधकर वह अपने को धन्य समझता है। उसे साल में 360 दिन आधे पेट खाकर रहना पड़े, पुआल में घुसकर रातें काटनी पड़े, बेबसी से जीना और बेबसी से मरना पड़े, कोई चिंता नहीं, वह गृहस्थ तो है। यह गर्व उसकी सारी दुर्गति की पुरौती कर देता है।'' प्रेमचंद की संवेदना, सरोकार और दृष्टि ही उनकी परम्परा है। हिन्दी उपन्यासकारों ने विभिन्न विषयों को लेकर विभिन्न प्रकार के उपन्यासों की रचना की। हिन्दी साहित्य के उपन्यासकारों ने सामाजिक और आंचलिक उपन्यासों के वर्ण्य विषय के रूप में किसान जीवन को प्राथमिकता दी तथा भारतीय किसान जीवन की विभिन्न प्रकार परिस्थितियों का यथार्थ अंकन किया है। हिन्दी उपन्यासों में किसान जीवन का सर्वप्रथम वर्णन शिव पूजन

सहाय के उपन्यास 'देहाती दुनिया में हुआ है जिसमें भोजपुर जनपद के अंचल का चित्रण प्राप्त होता है। इसके बाद निराला के बिल्लेसुरबकरिहा' में 'किसान जीवन' का चित्रण मिलता है।

निराला के बाद मुंशी प्रेमचन्द ने तो किसानों को ऐसा चित्रण अपने उपन्यास 'गोदान' में इस प्रकार किया है जो आज भी प्रासंगिक है। उपन्यास सम्राट मुंशी प्रेमचन्द के रंगभूमि तथा कर्मभूमि में भी किसान जीवन को देखा जा सकता है। प्रेमचन्द के बाद नागार्जुन के 'बलचनामा', 'बाबा बटेसरनाथ' आदि, फणीश्वरनाथ रेणु के 'मैला आंचल', 'परती परिकथा', रामदरश मिश्र के 'पानी के प्राचीर', 'जल टूटता हुआ', 'सूखता हुआ तालाब', शिवप्रसाद सिंह का 'अलग–अलग वैतरणी', हिमांशु श्रीवास्तव का नदी फिर बह चली, विवेकी राय के 'बबूल', 'लोक ऋण' तथा 'सोना माटी', जगदीश चन्द्र के 'धरती धन न अपना', भैरव प्रसाद गुप्त के गंगा मैया, संजीव के 'फांस', राजकुमार राकेश के कंदील, 'सुनी चतुर्वेदी का कालीचाट' तथा पंकज सुबीर के 'अकाल में उत्सव' इत्यादि उपन्यासों ने किसान विमर्श का वर्णन किया है।

भारतीय किसान आर्थिक दृष्टि से पिछड़ा हुआ है। जमींदार, साहूकार, महाजन तथ ासरकारी तन्न सभी किसान को लूट रहे हैं। किसान दरिद्रता, शोषण तथा निरक्षरता आदि का शिकार हो गया है। हमारे समाज में आर्थिक असमानता किसानों की दरिद्रता का सबसे बड़ा कारण है। इसके फलस्वरूप जो जमींदार अच्छी जमीनों के मालिक थे वो ओर अधिक जमीन खरीद गए तथा छोटी जोत के किसान अपनी जमीन को बेचने के लिए मजबूर हैं। 'गोदान' उपन्यास में भोला होरी से कहता है– ''कौन कहता है कि हम तुम आदमी हैं। हम में आदमीयत कहां? आदमी तो वह है जिसके पास धन है, अख्तियार है, इल्म है। हम लोग तो बेल हैं और जुतने के लिए पैदा हुए हैं। जमींदारों के शोषण ने किसानों की स्थिति को दयनीय बना दिया। 'बलचनामा' उपन्यास में बलचनामा के पिता की मृत्यु होने पर उसके क्रिया क्रम के लिए उनके पास पैसे नहीं थे, उस क्रिया क्रम को ऋण के पैसों से ही करवाना पड़ता है। 'प्रेमाश्रम उपन्यास में जमींदार परिवार की एक सदस्या विद्या कहती है– ''उस समय जब अकाल पड़ा और प्लेग भी फैला, तब हम लोग इलाके पर गये... उन दिनों की बाबूजी की निर्दयता देखकर तेरे रोयें खड़े हो जाते थे। बाबूजी को उड़ाने के लिए रुपये न मिलते तो वह चिढ़ कर आसामियों पर गुस्सा उतारते। सौ–सौ मनुष्यों को एक पांत में खड़ा करके इंटरों से मारने लगते। बेचारे तड़प–तड़पकर रह जाते, पर उन्हें तनि कभी दया न आती थी।''

'गोदान' के जमींदार राय साहब को रामलीला कराने के लिए गांव से पांच सौ रुपये की अपेक्षा है। किसानों की आर्थिक स्थिति का वर्णन करते हुए 'फांस' उपन्यास में संजीव कहते हैं– ''महंगे बीजों, खादों और कीटनाशकों की वजह से ज्यादातर किसानों को कर्ज लेना पड़ता है। सरकारी बैंकों में खसरा खतौनी, नकल दुरुस्ती समेत कई लफड़े कर्ज की राशि भी कम है। फलतः ज्यादातर किसान वहां जाने से घबराते हैं और उन्हें ऋण एजेंसियों और गांव के साहूकारों से कर्ज लेना ही आसान लगता है।''

नागार्जुन अधिकांशतः अपनी रचनाओं में किसान और प्रकृति को चित्रित किया है। बलचनमा का एक उदाहरण यहाँ प्रस्तुत है। बलचनमा को अपने गाँव और अंचल की प्रकृति से खेत–खलिहानों और बाग–बगीचों से इतना अधिक प्रेम है कि वह पटना में रहकर भी अपने अंचल के ही सपने देखते हैं। वह अपने गाँव के पेड़ पौधों को नाम सहित गिनता है। धान खेती का वर्णन करता है और घर के छप्पर पर फैली सब्जियों की लताओं का रस ले–लेकर वर्णन करता है। खेत में काम करने के लिए सच पूछो तो मेरा मन तरसता रहता था। कमर

में अंगोछा लपेटकर या फिर लंगोट ही कसकर जब मैं खेत में धान रोपने उतरता हूँ तो दो बोतल दारू का नशा सिर पर सवार हो जाता है। लगता है ऐसा कि संसार में कुछ नहीं है। मैं हूँ और खेत है। मेरे हाथ और धान के छोटे–छोटे, हरे–हरे, भले–भले मनमोहक पौधे है।

वास्तव में किसान एवं मीडिया जब भी आमने–सामने आये हैं तब समाज में एक नये आयामों का निर्माण किया है। देश मे ंकिसान आन्दोलन एवं उनकी जिस प्रकार की मांगे थीं वह भले ही पूरी न की गई हॉ परंतु मीडिया ने अपनी भूमिका का निर्वाह बखूबी किया है। क्योंकि व्यक्तियों का जो अनुभव इस बात को लेकर था कि अदालत एवं कानून की व्यवस्था प्रायः उनके लिए ही विशेष है, जो कि अपने पॉकेट में रूपये और पॉवर रखते हैं। इस बात को नकारने का कार्य मात्र साहित्य ने विशेषकर हिन्दी साहित्य ने जहाँ न जाने कितने ही लेखकों एवं लेखिकाओं ने किसान के जीवन का अवलोकन किया एवं उसमें प्रसिद्धि भी प्राप्त की है।

उनमें सबसे पहला नाम मैत्रेयी पुष्पा का आता है जिन्होंने अपना सारा लेखन ग्रामीण परिवेश पर ही विशेष लिखा है, दूसरा नाम कृष्णा सोबती का आता है, उनका भी लेखन पंजाब की भूमि पर लिखा एक अद्वितीय रचना संसार है। साहित्य का प्रमुख उद्देश्य समाज के प्रति हमारे भाव, विचार तथा अर्थों की शाब्दिक अभिव्यक्ति करना है। साहित्य हमारे जीवन की अनुभूतियों के प्रकाशन का मार्ग है। हिन्दी साहित्य में साहित्यकारों ने लेखन के विषय में अपने किरदारों के माध्यम से काफी कुछ कहा है। नागार्जुन विशेषतः किसान एवं गरीबी से जीवन व्यतीत कर रहे समाज को साहित्य का आधार बनाया है. लेकिन उनकी नजर उस समय पर ही स्त्री की उस दशा को परखा एवं उसकी पड़ताल की जिसकी ओर कम ही नजर गयी उस काल में। वास्तविकता की तह तक यदि देखा जाये तो प्रत्येक रचनाकारों की रचनाओं में युगीन बोध की झलक दिखलायी दे ही जाती है, क्योंकि लेखन की भी कुछ सीमाएँ होती हैं।

स्वातंत्र्योत्तर भारतीय समाज मोहभंग, आक्रोश, भ्रष्टाचार, विश्वासहीनता, विघटित मूल्य, तनाव एवं संत्रास के बीच पिसता हुआ मानव समाज, अपनी अस्मिता के लिए किस प्रकार घुटता है उसकी छटपटाती मानसिकता का चित्रण रचनाकार ने बड़ी कुशलता के साथ नागार्जुन ने किया है। नागार्जुन ने अपने रचना काल में ग्रामीणों एवं किसानों को एक ऐसा स्वरूप दिया है जिसे पढ़कर उनकी कुशलता को सराहे बिना नहीं रहा जाता है। उन्होंने अपने सृजन और चिंतन से इस बात को महसूस किया है कि शोषक तथा अमीर वर्ग हर जगह गरीब वर्ग पर हमेशा से अपनी धर्धीश जमाये रहता है एवं वही परिस्थितियाँ आज भी बनी हुई हैं। वर्ग संघर्ष की छटपटाहट को उनके रचनाओं में बड़ी ही विविधता के साथ देखा जा सकता है।

मीडिया की भूमिका के कारण ही आज सारे कार्य जो पहले लोगों के बीच होकर भी उनसे अंजान रह जाते थे, अब उनकी कोई भी बात ऐसी नहीं जो कि सामाजिक स्तर पर न पहुँच सके बस उन्हें एक बार अपनी नजरों को थोड़ा चारो ओर निगाहें दौड़ाना पड़ता है। समाज के यथार्थ को कहीं–कहीं व्यंग्यात्मक शैली में प्रस्तुत करने का उनका प्रयास प्रायः विविधता पूर्वक रहा है। उनकी कहानियाँ तो अक्सर से ही शोषण, मजदूर, कामगार, पूँजी परिवर्तन, सामाजिक विषमता, गरीबी और बेकारी, अर्था भाव भ्रष्ट प्रशासन आदि विषयों को उजागर करती है। मानव जीवन की विविध पहलुओं की यथार्थ अभिव्यक्ति के लिये तथा समाज में स्थिति के अनुसार बुरी प्रवृत्तियों विसंगतियों पर उनकी रचना ने पूरी तरह से प्रहार करती हुई प्रतीत होती है।

निष्कर्ष :-

कुल मिलाकर देखा जाये तो किसानों का जीवन एक प्रकार से दूसरों के लिए समाज के लिए ही समर्पित होता है। उनका कोई भी कार्य अपना निजी नहीं रह जाता है। बल्कि उनका किया गया संघर्ष ही मानव को जीवन दान देने में अहम् भूमिका को निभाता है। हिन्दी साहित्य में आदिकाल से ही किसान को आधार बनाकर लेखन करने वालों में प्रेमचंद का नाम अग्रणी रूप से लिया जाता है। उनका कोई भी ऐसा उपन्यास नहीं है जो ग्रामीण किसान को प्रदर्शित न करता हो। उनका उपन्यास सेवा सदन तो मिडिया के कार्यों को भी भली–भांति प्रदर्शित करने में सफल हुआ है।

इस प्रकार यह कहा जा सकता है, कि आज कम्प्यूटर के जमाने में जिस तरह से सभी कार्य होते हैं, उसी प्रकार किसानों की अपनी जिज्ञासाएँ भी हैं, जो कि समय–समय पर इसी के माध्यम से देश–दुनिया के सामने आती हैं। इसी का सहारा लेकर ही वह अपनी विपदाओं को कह पाते हैं और जन सामान्य के सामने जब मीडिया के माध्यम से किसानों की परेशानियों का पता चलता है तब उनके साथ न्याय होता है।

संदर्भ :-

1. जनसंचार संपादक : राधेश्याम शर्मा, सम्पादक, दैनिक ट्रिब्यून, चण्डीगढ़, हरियाणा साहित्य अकादमी, चण्डीगढ़, प्रथम संस्करण।
2. स्वतंत्रता आन्दोलन और हिन्दी पत्रकारिता, डॉ. अर्जुन तिवारी, प्रथम संस्करण, 1982
3. राष्ट्रीय संकट में मीडिया की भूमिका अनुवादक एवं सम्पादक, वीरबाला अग्रवाल और वी. एस. गुप्त रावत पब्लिकेशनन्स, 3 न. 20 जवाहर नगर, जयपुर, प्रथम संस्करण 1996
4. गद्य के विविध रूप में पत्रकारिता : डॉ. प्रतीक मिश्र, ग्रन्थम, कानपुर, संस्करण 1995
5. हिन्दी की दशा और पत्रकारिता पण्डित बालकृष्ण भङ्क, हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग, संस्करण 1983
6. कृषि समस्या–दीपक रावत, रजत प्रकाशन, असारी रोड, दरियागंज, नयी दिल्ली, संस्करण 2015
7. साहित्य के नए दायित्व, रामस्वरूप चतुर्वेदी, नेशनल पब्लिशिंग, हाउस, संस्करण 1984

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Sept. 2025 Page No. : 159-163

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

हिन्दी सिनेमा में अभिव्यक्त आदिवासी विमर्श

दीपशिखा सोनोवाल

शोधार्थी, हिन्दी विभाग, तेजपुर विश्वविद्यालय, असम।

प्रस्तावना :–

सिनेमा कला का एक आधुनिकतम रूप है। कहा जाता है साहित्य समाज का दर्पण होता है, ठीक उसी तरह सिनेमा भी कहीं न कहीं समाज में दर्पण स्वरूप ही काम करता है। जिस तरह साहित्य समाज से अपना बीज लेता है उसी तरह सिनेमा भी अपना बीज समाज से ही लेता है। इस बात में दो राय तो नहीं कि सिनेमा और साहित्य सम्पूर्ण अलग विधा है। अपितु दोनों समाज से ही जुड़ी हुई हैं। वही हिन्दी सिनेमा में आदिवासी विमर्श की बात किया जाए तो, हिन्दी सिनेमा के लग भग सौ वर्ष पूरा होने के बावजूद भी यह विषय आज भी उपेक्षित ही है। स्त्री, दलित, विकलांग, किन्नर तथा अल्पसंख्यक आदि विमर्श को लेकर तो फिल्में निर्माण हुई पर आदिवासी विमर्श से सम्बंधित फिल्में बहुत कम है।

इस आलेख में हिन्दी सिनेमा में अभिव्यक्त आदिवासी विमर्श के बारे में चर्चा की जाएगी। आलेख के केंद्र में 'मृगया', 'आक्रोश', और 'न्यूटन' तीन फिल्मों को लिया हैं।

बीज शब्द : आदिवासी, समुदाय, विमर्श, नक्सलवाद, ग्रीन हन्ट, विस्थापन।

मूल आलेख :

हिन्दी सिनेमा में आदिवासी विमर्श की अभिव्यक्ति पर बात करने से पहले जरूरी है 'सिनेमा' तथा 'विमर्श' शब्द की संक्षिप्त जानकारी लेना। अकबर महफूज आलम रिजवी के शब्दों में "सिनेमा अनुभूति और संवेदना, व्यष्टि और समष्टि के आपसी रिश्तों का विज्ञान है। यह सिर्फ पेशा या कला नहीं है।" वहीं 'विमर्श' की बात की जाए तो श्याम बाबू शर्मा जी विमर्श की परिभाषा देते हुए लिखते हैं– "सामान्यतः जब चिंतन व्यापक रूप लेता है तथा सामूहिकता को समावेशित किए रहता है तो इसे विमर्श कहा जाता है।" वहीं आदिवासी विमर्श की बात किया जाए तो प्रो. संजय एल. मादार के शब्दों में आदिवासी विमर्श– "आदिवासी समाज के बारे में किया गहन विचार–चिंतन ही आदिवासी विमर्श है। आदिवासी जीवन पर गंभीरता से उनकी जीवन–प्रणाली, सामाजिक स्थिति और पीड़ित जिंदगी का विवेचन–विश्लेषण कर उसकी ओर सभ्य समाज का ध्यान आकर्षित करना तथा उनके विकास की पहल करना आदिवासी–विमर्श का मुख्य प्रयोजन कहा जा सकता है।" इस तरह देखा जाए तो प्रत्येक विद्वानों के दृष्टि से परिभाषा अलग अलग है।

आदिवासी विमर्श वर्तमान समय अत्यंत प्रचलित विषय है। आदिवासी विमर्श की अगर हिन्दी फिल्मों में अभिव्यक्ति पर बात करे तो हमेशा से यथार्थ से दूर ही नजर आया है। व्यावसायिकता के चलते प्रायः यथार्थ से

कटते नजर आते है। यहीं पे हरीराम मीणा जी के शब्द मेल खाते हैं– "चाहे प्रिन्ट मीडिया हो या इलेक्ट्रॉनिक मीडिया की, आदिवासी जीवन को दिया जाने वाला स्पेस नगण्य है और स्पेस दिया जा रहा है उसमें रोमांटिक दृष्टिकोण अधिक नजर आता है यथा 1960–70 के दशकों की काफी फिल्मों में आईटम सोंग के रूप में आदिवासियों को प्रदर्शित किये जाने की एक प्रवृत्ति देखी जा सकती है। यह वैसा ही है जैसा कि गणतंत्र दिवस की झांकियों में आदिवासी।"

जिस तरीके से भारत में अन्य फिल्मों की शुरूआत स्वतंत्रता पूर्व हुई थी उसी तरह आदिवासी केंद्रित फिल्में भी स्वतंत्रता पूर्व ही हुई। उदाहरणस्वरूप 1942 में आई महबूब खान की फिल्म 'रोटी'। यह फिल्म भले ही आदिवासी केंद्रित हो पर एक सशक्त फिल्म के रूप में सामने नहीं आती है। यह यथार्थता के करीब भी नहीं बैठती है। धीरे धीरे कम संख्या में ही सही आदिवासी केंद्रित फिल्में निर्माण होने लगी वैसी ही तीन फिल्मों को इस आलेख के केंद्र में लिया गया है। 'मृगया', आक्रोश तथा 'न्यूटन'।

दूसरी फिल्म है मृगया वर्ष 1976 में प्रदर्शित मृणाल सेन द्वारा निर्देशित ऐतिहासिक ड्रामा फिल्म है। इस फिल्म से हिन्दी सिनेमा में आदिवासी–विमर्श का वास्तविक आरंभ माना जा सकता है। यह फिल्म भगवतीचरण पाणिग्रही की कथा 'शिकार' पर आधारित है। यह फिल्म आदिवासी जीवन की दुरूह परिस्थितियों के साथ–साथ उनकी क्षमता को भी प्रकट करती है। फिल्म संथाल आदिवासी के बारे में है जिनकों बाघ और सूअर जैसे जंगली जानवरों के अलावा लालची साहूकारों और पुलिस मुखबिरों से परेशानी उठानी पड़ती है। इसके साथ साथ फिल्म में आदिवासियों के व्यवहार कुशलता, स्पष्टवादिता व साधारण जीवन शैली आदि को समाहित करके उनके अस्मिता, संघर्ष एवं स्वतंत्रता संग्राम में योगदान को भी प्रदर्शित करती है। फिल्म में संथाल विद्रोह का स्मरण 'शोल्पु' नामक पात्र में 'सिदु–कानू' की छवि देखना उनका संघर्षजन्य आशावाद की और इशारा है। फिल्म का आरम्भ ही जंगली जानवरों द्वारा ग्रामीणों की फसल उजाड़ने से होता है। फसल उजाड़ने के उपरांत भी उन्हें महाजन को लगान देना पड़ता है। महाजन का सूद और लगान चुकाने में ही आदिवासियों का जीवन समाप्त हो जाता है। महाजन गोविंद सरदार की क्रूरता से सभी गाँववाले परिचित है। एक ग्रामीण कृषक कहता है –"जैसा जानवर वैसा ही महाजन हमारी मुसीबत समझेगा कौन? दोनों बरबाद करने पर तुले है।" अंग्रेजी शासन के कारण महाजन आदिवासियों को हर प्रकार से लुटता है, फिर भी किसी में विद्रोह करने का साहस नहीं हैं।

फिल्म का नायक घिनुआ, गाँव के मुखिया का पुत्र है। जो एक असाधारण तीरंदाज है। एक नव नियुक्त ब्रिटिश प्रशासक गाँव में आता है, वह भी शिकार का शौकीन है। घिनुआ एक दिन जीवित हिरण पकड़ कर ब्रिटिश अधिकारी को भेंट देता है। अधिकारी खुश हो जाता है और उसे इनाम देता है साथ ही और ऐसे शिकार लाने को कहता है। घिनुआ गाँव की ही डूंगरी नामक एक लड़की से प्रेम करता है। वह उसे भी अधिकारी के पास ले जाता है। उन लोगों को देखने के बाद अधिकारी की पत्नी दोनों का चित्र बनाती है। इसके बाद कहानी एक युवा क्रांतिकारी शोल्पू पर केंद्रित है, जो अपनी माँ से मिलने के लिए चोरी छिपे गाँव में आता है। यह जानकार, पुलिस मुखबिर डोरा उसका पीछा करता है पर नाकाम रहता है। शोल्पु अपने साथियों के साथ मिलकर अंग्रेजी खजाने को लूट लेता है। अंग्रेज सरकार शोल्पु व उसके साथियों को पकड़ने हेतु पुरस्कार की घोषणा करती है। डोरा इस चीज का फायदा उठाके पुलिस से मिलकर शोल्पु की हत्या कर देता है। इस दौरान घिनुआ की पत्नी डूंगरी का महाजन गोविंद सरदार अपहरण कर लेता है। घिनुआ अपनी पत्नी को वापस लाने के लिए

साहूकार को मार डालता है, वह खुशी खुशी प्रशासक साहब को स्वयं बताने जाता है कि उसने अपने क्षेत्र का सबसे खूंखार जानवर का शिकार किया है। हालाँकि साहब उसे हत्या करने के लिए फाँसी पर लटका देते है। अपनी मृत्यु के समय तक घिनुआ यह समझने में असफल रहा कि एक ही कार्य के लिए एक को पुरस्कृत किया जाता है जबकि दूसरे को दंडित किया जाता है। फिल्म का अंत ऐसे ही निराशा की भाव से समाप्त होती है।

दूसरी फिल्म है, आक्रोश 1980 की भारतीय हिन्दी भाषा की कानूनी ड्रामा फिल्म है, जिसका निर्देशन गोविंद निहलानी ने किया है। कहानी आदिवासी पात्र 'भीखू लहन्या' के शोषण व दमन को व्यक्त करती हुई विद्रूपता की स्थिति को प्रकट करती है। फिल्म में आदिवासी समाज से संबंधित काफी मुद्दों को उठाया गया है। खास कर आदिवासियों के प्रति भारतीय न्याय व्यवस्था और इस व्यवस्था का प्रतीक है वकील दुशाणे, डी.एस. पी., डॉ. वसंत पाटील, नेता, ठेकेदार आदि पात्र। आदिवासियों को दोयम दर्जे में रखने वाले न केवल मुख्य धारा के लोग देखने को मिलते है बल्कि मुख्यधारा में रस–बस जानेवाले स्वयं आदिवासी भी उपेक्षा की दृष्टि से देखते है। फिल्म में वकील दुसाणे स्वयं आदिवासी होते हुए भी आदिवासियों के प्रति पूर्वाग्रहों से ग्रसित है। फिल्म के एक संवाद से यह साफ प्रमाणित होता है। भास्कर से वह कहते है–"ये आदिवासी कम्बखत होते ही ऐसे हैं, पहले तो शराब पीकर खुन खराबा करेंगें और बाद में ऐसे चुप हो जाएंगें, जैसे पैदाइसी गूंगे हैं।" इसके अलावा आदिवासियों को अनपढ़–गवार के रूप में भी दर्शाया है। फिल्म में भोसलें, नेता को सलाह देता है कि सरकार आदिवासियों को जमीन देना चाहती है, लेकिन इन लोगों को जमीन देकर महाजनों का ही घर भरेगा। ये कमबख्त दारू पीकर कहीं भी अंगूठा लगा देते हैं, फिर सब कुछ महाजन के हाथों में चला जाता है।

तीसरी फिल्म है, न्यूटन वर्ष 2017, 22 सितंबर को रिलीज हुई थी। फिल्म भारत की चुनाव प्रणाली पर आधारित है। जहाँ चुनाव भारतीय लोकतंत्र का सबसे शक्तिशाली हथियार है वही चुनाव को लेकर जागरूकता भारत के कुछ क्षेत्रों में लग भग शून्य है। फिल्म का कथानक छत्तीसगढ़ के नक्सल हिंसा प्रभावित क्षेत्र दण्डकारण्य में चुनाव दिखाया गया है। फिल्म का नायक न्यूटन विभिन्न बाधाओं के बावजूद निष्पक्ष और मुक्त चुनाव आयोजित करने का प्रयास करता है। फिल्म चुनावी दृश्यों के साथ साथ उसके माध्यम से आदिवासी–विमर्श के विभिन्न पहलूओं पर दृष्टि निक्षेप करते हैं।

न्यूटन अपने दो अन्य साथियों के साथ दण्डकारण्य में चुनाव हेतु जाता है। इस चुनाव दल में वहाँ की स्थानीय बी.एल.ओ. अध्यापिका मलको भी उनके साथ शामिल होती है। न्यूटन के साथी आत्मा सिंह बताता है कि, यह हिंसा ग्रस्त क्षेत्र है, यहाँ चुनाव करके कोई फायदा नहीं। पर न्यूटन उनकी बातों पर ध्यान न दे कर अपना काम ईमानदारी से करना चाहता है और सुबह बूथ तैयार करता है और मतदाताओं के आने की प्रतीक्षा करता है। कोई नहीं आने के कारण न्यूटन आत्मा सिंह को स्थानीय आदिवासियों को बुलाने के लिए कहता है पर वह राजी नहीं होता है क्यूंकि चुनाव से ज्यादा उनके लिए अपने लोगों की सुरक्षा जरूरी है। न्यूटन को भी वह समझाते है– "न्यूटन जी इनको कुछ पड़ी नहीं है इलकेशन–विलेक्शन की सब अनपढ़ गवार है और उपर से नक्सलियों ने बॉयकाट का एलान किया है। मैं लिख के देता हूँ कोई नहीं आएगा वोट देने।" लेकिन विदेशी मीडिया की कवरेज हेतु वोटिंग दिखाने हेतु डी.आई.जी. बूथ पर आने वाले होते है जिस कारण आत्मा सिंह को जाना ही पड़ता है। सी.आर.पी. एफ. के जवान आदिवासियों के गाँव में घुस जाते हैं और दारू की बोटल, मुर्गा आदि भी पकड़ के ले आते हैं। कुछ लोग नहीं आना चाहते थे, धमका कर लाया जाता है। पर दुख की बात

यह दिखाया गया है, उन लोगों को चुनाव कौन लड़ रहे है यह दूर कि बात वोटिंग मशीन आदि के बारे में कुछ भी पता नहीं होती है। न्यूटन उन्हे किसी भी प्रकार हिन्दी में सम्झाने की कोशिश करते है और मलको गोंडी भाषा में समझाती है।

वर्षों से वह चुनाव न होने के कारण लोग इस व्यवस्था को भूल रहे है, राजनेता कम वोट होने के कारण कुछ सुध लेने आते ही नहीं। वोट न देने पर पुलिस तथा देने पर नक्सली उन्हे परेशान करते हैं। आदिवासी दोहरे भय में जी रहे हैं एक और पुलिस है, तो दूसरी और नक्सल। इस प्रकार की कठिन परिस्थितियों में भी वे संघर्ष करते हुए जीवन–यापन कर रहे हैं। इस प्रकार यह फिल्म चुनावी मुद्दा के साथ साथ आदिवासी समाज से संबंधित अनेक विशेषताएं देखने को मिलती हैं। जैसे– आदिवासियों की आत्मनिर्भरता, सहज–सरल प्रवृत्ति रीति–रिवाज, स्थानीय भाषा की महत्व, उन लोगों की आजीविका आदि।

तीनों फिल्मों की गति–विधियों को निरीक्षण करने के पश्चात यह साफ कहा जा सकता है कि तीनों ही फिल्मों में आदिवासी समुदाय केंद्र में होते हुए भी यथार्थ को छूने में सफल नहीं हुई है। जैसे 'मृगया' फिल्म में आदिवासी स्त्री को उपभोग की वस्तु के रूप में ही दिखाया गया। साथ–साथ नायक–नायिका दोनों का चित्र जो अंकित किया जाता है कहीं न कहीं आदिवासी समुदाय को अजायबघर की वस्तु के रूप में दिखाया जाता है। दूसरी तरफ 'आक्रोश' फिल्म जहाँ आदिवासी मर्दों को शराबी, औरतों को अर्ध नग्न, आइटम गर्ल के रूप में दिखाया है। तीसरी फिल्म 'न्यूटन' इसमें आदिवासी को अशिक्षित, अज्ञान, गवार की छवि प्रस्तुत किया है। इन सब विंदुओं से इतर आदिवासियों के जीवन में अनगिनत समस्याएं हैं। मुक्त व्यापार और मुक्त बाजार के नाम पर मुनाफे और लुट का खेल आदिवासियों के जल, जंगल और जमीन हथियाने से भी आगे जाकर उनके जीवन को दाँव पर लगा कर खेला जा रहा है। विकास के नाम पर अपने पुश्तैनी क्षेत्रों से बेदखल किये गए आदिवासी जाए तो कहाँ जायें? अपनी साधन कुर्बान करते हुए भी उस कुर्बानी का फल कभी नहीं भोग पाए हैं। 'ग्रीन हन्ट' के नाम पर निर्दोष आदिवासियों की हत्या, नक्सलवादी और प्रशासन के बीच फसे निर्दोष आदिवासियों के बारे में किसी ने खुल के इन मुख्यधारा के फिल्मों में कभी उल्लेख किया ही नहीं। फिल्म निर्माण एक बहुत ही महंगा माध्यम है। इसीलिए कहीं न कहीं व्यवसायिकता के प्रति निर्माता–निर्देशकों को ध्यान देना ही पड़ता है जिस कारण लोकप्रियता के चलते फिल्मों में काल्पनिकता का समाहार हो ही जाता है। अतरू जरूरी है फिल्म निर्माण के लिए संस्थाएं बने, नये नये लोग आगे आए। आदिवासी समुदाय को लेकर फिल्म निर्मित करने वाले निर्माता–निर्देशक आदिवासी समाज के साथ प्रत्यक्ष रूप से जुड़े ताकि दर्शक आदिवासी समुदाय के यथार्थ छवि उपभोग कर पाए।

संदर्भ फिल्म सूची :

1. मृगया, निर्देशक, मृणाल सेन, देखा, तारीख 28/08/2025, https://youtu.be/vfW8QXZQMl0\si¾NIbXY2oF03Y5mK_N
2. आक्रोश, निर्देशक, गोविंद निहलानी, देखा, तारीख 27/08/2025, https://youtu.be/Qe0iRHo8eMM\si¾NL43YLIgbUrVbSGb
3. न्यूटन, निर्देशक, अमित मसुरकर देखा, 29/08/2025,

https://youtu.be/LA_Vv9PEfaI\si¾H9_bbi2_9dROCsC

सहायक ग्रंथ सूची :

1. मीणा हरीराम, आदिवासी दुनिया, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास 2013, पहला संस्करण।
2. स. मीणा, प्रमोद, हिन्दी सिनेमा : दलित आदिवासी विमर्श, दिल्ली अनन्य प्रकाशन–2016, पहला संस्करण
3. डॉ. रमा, हिन्दी सिनेमा में साहित्यिक विमर्श, हंस प्रकाशन 2022, नई दिल्ली, दूसरा संस्करण।

ई–मेल – dsonowal726@gmail.com

फोन नं – 7086073554/ 9365356835

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Sept. 2025 Page No. : 164-168

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

21-ஆம் நூற்றாண்டு தமிழ்த் திரைப்பங்கள் : புது விமர்சனப் பார்வைகள்

முனைவர் கே.எஸ்.

பிரணதார்த்திஹரன், தலைவர், இந்தித்துறை (பணி நிறைவு),
தூயவளனார் தன்னாட்சிக் கல்லூரி, திருச்சிராப்பள்ளி-620 002. தமிழ்நாடு, பாரதம்.

முன்னுரை:

தமிழ்த் திரைப்பட உலகமானது கோலிவுட் என அழைக்கப்படுகிறது. தமிழ் எழுத்தாளர் சுஜாதா திரையுலகினைக் கனவுத் தொழிற்சாலை எனச் சித்திரித்து உள்ளார். பெரும்பாலான தமிழ்த் திரைப்படங்கள் கோடம்பாக்கத்தில் அமைந்து உள்ள படப்பிடிப்பு நிலையங்களில் உருவாகின்ற காரணத்தினால் கோலிவுட் என அழைக்கப் படுகிறது. திரைப்படம் பொழுதுபோக்குச் சாதனமாக விளங்குகின்ற வேளையில் மக்களுக்கு அறிவு புகட்டும் வண்ணம் அமைந்து உள்ளது. தொழில்நுட்ப வளர்ச்சி காரணமாக மக்களின் வாழ்வில் நீக்கமற நிறைந்து இருக்கும் தலைசிறந்த ஊடகமாகத் திரைப்படங்கள் திகழ்கின்றன. இருபதாம் நூற்றாண்டின் பிற்பகுதியில் பொற்காலமாகத் திகழந்த தமிழ்த் திரைப்படம் கால மாற்றம், மக்கள் மனநிலையில் உருவான சிந்தனை ஓட்டம், கோவிட் காலகட்டம் மற்றும் தொழில்நுட்ப வளர்ச்சி காரணமாக இருபத்தொன்றாம் நூற்றாண்டில் தமிழ்த் திரையுலகம் புதிய உச்சத்தைத் தொட, பெரு முயற்சிகளை மேற்கொண்டு, அம்முயற்சிகளில் வெற்றிவாகை சூடி உள்ளது. அச்சு ஊடகங்களில் பதிவு செய்யப்பட்டு உள்ள கருத்துக்கள் மொழி தெரிந்தவர்கள் மட்டுமே புரிந்து கொண்டு அக்கருத்துக்களைப் பிறருக்குத் தெரிவு செய்யும் சூழல் நிலவும் தருணத்தில், காட்சி ஊடகங்கள் படித்த, பாமர, அனைத்து மொழி தெரியாத மக்களையும் ஒருங்கிணைக்கும் சக்தி வாய்ந்த ஊடகமாகத்

திரைப்படங்கள் திகழ்கின்ற காரணத்தினால் மக்களின் மனத்தே பெரிய தாக்கங்களை ஏற்படுத்துகின்றன.

இருபத்தி ஒன்றாம் நூற்றாண்டு தமிழ்த் திரைப்படங்கள் ஒரு பார்வை:

ஒவ்வொரு ஆண்டும் புதிய கோணங்களில், பரிமாணங்களில் பல திரைப்படங்கள் வெளிவந்த வண்ணம் உள்ளன. திரைப்படக் கல்லூரிகளில் பட்டம் பெற்ற கலைஞர்கள் தங்கள் திறமைகளை வெளிப்படுத்துவதில் வெற்றிவாகை சூடி உள்ளனர். தமிழ்த் திரைப்படங்களின் தரம் உலகத் தரம் வாய்ந்ததாக விளங்குகிறது என்று கூறினால் அது மிகையாகாது. தொழில்நுட்பத்தின் புதிய அணுகுமுறைகள் துணை கொண்டு பல இளைஞர்கள் திரையுலகினை நோக்கி வந்த வண்ணம் உள்ளனர்.

இக்கால கட்டத்தில், தமிழ்த் திரைப்படங்களில் முன்னணி நாயகர்களாக மாதவன், விஜய், விஜயகாந்த், சூர்யா, அஜித், விக்ரம், ஜெயம் ரவி, விஷால், தனுஷ், விமல், விஜய் சேதுபதி, சிவகார்த்திகேயன், கார்த்தி, ரஜினிகாந்த், கமலஹாசன், சிம்பு ஆகியோர் மக்களால் அங்கீகரிக்கப்பட்டு உள்ளதாகத் தெரியவருகிறது. சான்றாக, மாதவன் நடித்த 'அலைபாயுதே', 'கன்னத்தில் முத்தமிட்டால்', 'இறுதிச்சுற்று', விஜய் நடித்த 'குஷி', 'கில்லி', 'காவலன்', விஜய்காந்த் நடித்த 'வல்லரசு', 'ரமணா', சூரியா நடித்த 'ப்ரண்ட்ஸ்', 'மௌனம் பேசியதே', 'கஜினி', 'வாரணம் ஆயிரம்', 'சில்லுனு ஒரு காதல்', 'வழாம் அறிவு', 'அஞ்சான்', அஜீத் நடித்த 'ஸிட்டிசன்', 'ஆழ்வார்', 'மங்காத்தா', 'விஸ்வாஸம்' விக்ரம் நடித்த 'தில்', 'சாமி', 'அந்நியன்', 'கந்தசாமி', ஜெயம்ரவி நடித்த 'எம் குமரன் சன் ஆப் மகாலெசஷ்மி', 'உனக்கும் எனக்கும்', 'பேராண்மை', 'தில்லாலங்கடி', 'சந்தோஷ் சுப்ரமணியம்', விஷால் நடித்த 'செல்லமே', 'தாமிரபரணி', 'கதகளி', தனுஷ் நடித்த 'புதுப்பேட்டை', 'படிக்காதவன்', 'நையாண்டி', 'அநேகன்', விமல் நடித்த 'காஞ்சிவரம்', விஜய் சேதுபதி நடித்த 'தென்மேற்கு பருவக்காற்று', 'நடுவில் கொஞ்சம் பக்கம் காணோம்', 'பண்ணையாரும் பத்மினியும்', 'கவண்', 'சங்கத் தமிழன்', 'கடைசி விவசாயி', சிவகார்த்திகேயன் நடித்த 'மெரினா', 'மான் கராத்தே', 'ரெமோ', கார்த்தி நடித்த 'சகுனி', 'கொம்பன்', 'தீரன் அதிகாரம் ஒன்று', 'கடைக்குட்டி சிங்கம்', ரஜினிகாந்த் நடித்த 'சிவாஜி', 'எந்திரன்', 'கூலி', கமலஹாசன் நடித்த 'இந்தியன்', 'தக்லைப்', சிம்பு நடித்த 'செக்கச் சிவந்த வானம்' போன்ற படங்கள் வித்தியாசமான கதையமைப்பு, இசை, பிரம்மாண்ட காட்சி அமைப்புகள், தொழில்நுட்ப உதவியுடன் உருவாக்கப்பட்ட சண்டை காட்சிகள், வெளிநாட்டுப் படப்பிடிப்பு, இசை, பாடல்கள் போன்ற காரணங்களால் மக்களிடையே பெரிய எதிர்பார்ப்பினையும், தாக்கத்தையும் ஏற்படுத்தின என்று கூறினால் அது

மிகையாகாது. இக்காலத் திரைப்படங்களின் வெற்றிக்குக் காமிரா எனப்படும் புகைப்படக் காட்சிக் கோணம் பெரிதும் துணைசெய்கிறது.

இக்கால கட்டத்தில் தமிழ் மொழியில் அன்பே சிவம், ஹேராம், காக்கா முட்டை, காதல், பருத்தி வீரன், துப்பாக்கி, பிதாமகன் போன்ற சர்ச்சைக்குரிய சமூகப் படங்கள் வெளியாயின. இத்திரைப்படங்களில் சமூக சீர்திருத்த கருத்துக்களும், விவசாய நலக் கருத்துக்களும் இடம்பெற்றன. 'காஞ்சனா 1-2', 'பில்லா', 'பிசாசு', 'மாசிலாமணி', 'அரண்மனை', 'டோரா', 'டார்லிங்', 'அருந்ததி' போன்ற நகைச்சுவைப் படங்கள் வெற்றி வாகை சூடின. கடந்த இருபது ஆண்டுகளில் பெரிதும் செலவுசெய்யப்பட்டு எடுக்கப்பட்ட பிரம்மாண்டமான வெற்றிப்படம் 'பாகுபலி' ஆகும். திரைப்படங்கள் வாயிலாக தேசமானது முன்னேற்றம் அடைகிறது. சாதாரண மக்களும் குறிப்பாக, குழந்தைகளும் எளிதில் பயன்பெறும் வகையில் இக்காலத் திரைப்படங்கள் திகழ்கின்றன. திரைப்படங்கள் வாயிலாக தேசிய ஒருமைப்பாடு, சமூகத்தின் நிலை, பெண் கல்வி, சமூக மேம்பாடு சார்ந்த பதிவுகள் எளிதில் சாதாரண மக்களை சென்று அடைகின்றன.

குழந்தைகளைக் கவரும் வகையில் 'பாகுபலி' மற்றும் அனிமேஷன் வகையினைச் சார்ந்த திரைப்படமான **'மஹாவதார் நரசிம்மா'** போன்ற திரைப்படங்கள் மக்கள் இடையே நல்ல வரவேற்பைப் பெற்று வருகின்றன. "பிரபத்தி நெறியில் இறங்குவோனுக்கு அவசியமான இலக்கணங்கள் சில உள. உள் இந்திரியங்களை அடக்குதலாகிய சமமும், பிற இந்திரியங்களை அடக்குதலாகிய தமமும் ஒருவாறு உண்டாதல் வேண்டும். இறைவனுக்குப் பிரியமான செயல்களை அறிந்து செய்தலும், பிரியமற்ற செயல்களை விட்டு விடுதலும் வேண்டும். இது இறைவன் மீது எழும் பக்தியின் காரியமாக விளைதல் வேண்டும். அக்காரணமாக வாராது ஒழியினும் ஸம்ஸார பயத்தாலேனும் வர வேண்டும். தன்னிடம் கைம்முதல் ஒன்றுமில்லையென்னும் உணர்ச்சியும் ஆகின்சன்யமும் இறைவனைத் தவிர தனக்கு வேறு கதி இல்லை என்னும் உறுதியும் அனன்ய கதித்வமும் உண்டாதல் வேண்டும்."[1]

பிரபத்தி என்னும் சரணாகதி தத்துவத்தினை விளக்குவதற்கு அல்லது விளக்கம் பெறுவதற்கு மொழி தெரிந்த ஆசாரியர்களிடம் இருந்து உபதேசம் பெறும் காலம் மாறி, முப்பரிமாணத்தில், வண்ணத்தில் உற்சாகம் மற்றும் உணர்ச்சி வேகம் நிறைந்த **'மஹாவதார் நரசிம்மா'** என்னும் திரைப்படம் வாயிலாக மொழி அறியாத அனைத்து மக்களும் நேரடியாக உடனடியாக புரிந்து கொள்ளும் வண்ணம் திரைப்படக் காட்சிகள் தெளிவாகப் பதிவு செய்து உள்ளது.

கவியரசு கண்ணதாசன் தனது படைப்பான 'அர்த்தமுள்ள இந்து மதம்' என்கிற படைப்பில் பதிவு செய்துள்ள கருத்து யாது எனில், "பெருங்கதைகளும் அவற்றுள் உப

கதைகளுமாக எழுதப்பட்ட நமது இதிகாசங்களின் பாத்திரப் படைப்பு தான் எவ்வளவு அற்புதம்? அவை கூறும் வாழ்க்கைத் தத்துவங்கள்தான் எத்தனை!

நம்பிக்கை
அவநம்பிக்கை
ஆணவம்
மீட்சி
காதல்
கற்பு
ராஜதந்திரம்
குறுக்கு வழி
நட்பு
அன்பு
பணிவு
பாசம்
கடமை

- இப்படி வாழ்க்கையில் எத்தனை கூறுகள் உண்டோ அத்தினையும் நமது இதிகாசங்கள் காட்டுகின்றன"[2]. மேலும், "ஒரு பாத்திரத்திற்கு ஒரு குண விசேஷம் என்றால், அதைக் கதையின் இறுதி வரையில் கொண்டு செலுத்திய கற்பனைச் சிறப்பை அளவிட வார்த்தைகள் இல்லை"[3]. ஆக, "எங்கே தொட்டாலும் எதைப் படித்தாலும் இந்துக்கள் உருவாக்கிய பாத்திரங்கள் நம்மை வெறும் அதீத உலகிற்குக் கொண்டு போகவில்லை. லௌகீக உலகத்தை எடுத்துக் காட்டுகின்றன"[4]. எனவே, பக்தி, இலக்கியம், வரலாறு, தத்துவம், சமூகம், கலாச்சாரம், பண்பாடு, கற்பனை சார்ந்த பதிவுகள், விஞ்ஞான வளர்ச்சியின் துணையுடன் இருபத்தியொன்றாம் நூற்றாண்டின் திரைப்படங்கள் செவ்வனே வெளிப்படுத்துகின்றன எனக் கூறினால் அது மிகையாகாது. 18, 19 நூற்றாண்டுகளில் கற்பனை நிறைந்ததாக விளங்கிய இலக்கியப் பதிவுகள் இருபதாம் நூற்றாண்டில் விமரிசனப் பார்வையுடன் விரிவடைந்த இலக்கியம் இருபத்தியோராம் நூற்றாண்டில் திரைப்பட நிபுணர்களில் புகைப்பட வல்லுநர்களின் துணைகொண்டு இலக்கியமானது செயற்கை நுண்ணறிவின் துணையுடன் வெற்றிவாகை சூடி வருகின்றது எனக் கூறினால் அது மிகையாகாது.

முடிவுரை:

தமிழ்த் திரைப்படப் பாடலாசிரியர், இயக்குநர் கங்கை அமரன் பதிவு செய்யும் கருத்து யாது எனில், இக்காலத் திரைப்படப் பாடல்களில் சூழல் காரணமாக, பக்தி, தாலாட்டு, எழுச்சிப் பாடல்களைக் காண்பது அரிதாக உள்ளது. கர்னாடக இசைப்

பாடல்களின் தாக்கம் குறைவாகவும், மேற்கத்திய இசை, வாத்தியங்கள், ஜாஸ், பிரேக் நடனங்கள் ஆகியவற்றின் பயன்பாடு அதிகமாக இருப்பதனால் பாடல் வரிகளைச் சரிவரக் கேட்க இயலவில்லை என்பதாகும். பொற்காலத் திரைப்படங்கள் போன்று இக்காலகட்டத்தில் சிரிப்புக் காட்சிகள் கதைப் போக்கிற்கு ஒட்டாது விளங்குகின்ற காரணத்தினால், திரைப்படங்கள் தோல்வியைத் தழுவி விடுகின்றன. நடனக் காட்சிகள், பின்னணி இசை, கலை, உடை, காட்சி அமைப்பு, லொகேஷன் தேர்வு செய்யும் இடங்கள், கற்பனை,இறக்கம் மிக, மிக, மிகச் சிறப்பாக விளங்குகின்றன. திரைப்படங்கள் பொழுதுபோக்கு அம்சமாகவும், மக்களின் வாழ்வினைப் பிரதிபலிக்கும் சக்தி வாய்ந்த ஊடகமாக விளங்குகின்ற வேளையில், மதகுருமார்களாலும், ஒழுக்கசீலர்களாலும், சட்ட வல்லுநர்களாலும் தங்கள் வாதங்கள் வாயிலாக மாற்ற இயலாத சமூகத்தில், பல திரைப்பட வசனங்களும், பாடல்களும் பெருந்தாக்கத்தினை ஏற்படுத்தி உள்ளன என வரலாறு தெரிவு செய்கிறது. 'பச்சை விளக்கு' என்கிற தமிழ்த் திரைப்படத்தில் கவியரசு கண்ணதாசன் பதிவு செய்த –

'கேள்வி பிறந்தது அன்று
நல்ல பதில் கிடைத்தது இன்று
ஆசை பிறந்தது அன்று
யாவும் நடந்தது இன்று'

வரிகளை மெய்ப்பிக்கும் வகையில் இருபத்து ஒன்றாம் நூற்றாண்டு திரைப்படங்கள் திகழ்கின்றன.

கருவிநூற்பட்டியல்

1. சுவாமி விவேகானந்தர், திவ்ய பிரபந்தத் திரட்டு, ஸ்ரீ ராமகிருஷ்யா மடம், மயிலாப்பூர், சென்னை-600 004, பக்க எண்.viii.
2. கவிஞர் கண்ணதாசன், அர்த்தமுள்ள இந்து மதம், கண்ணதாசன் பதிப்பகம், 23, கண்ணதாசன் சாலை, தியாகராய நகர், சென்னை-600 017, பதினைந்தாம் பதிப்பு, மே 2018, ப.எ.165.
3. மேலது, ப.எ.167.
4. மேலது, ப.எ.170.
5. மீடியா விமர்ஷ், தமிழ் ஊடகச் சிறப்பு இதழ், அக்டோபர் – டிசம்பர், 2021, மும்மாத பத்திரிகை, வர்ஷிக-15, அங்க்-57.

இல்ல முகவரி :

முனைவர் கே.எஸ்.பிரணதார்த்திஹரன்,
B-17, ஸ்ரீ விஷ்ணு இரண்டாம் தளம்,
வேதாந்த தேசிகா ஹோம்ஸ்,
சேஷாத்ரிபுரம், சுப்பிரமணியபுரம் ரோடு
ஸ்ரீரங்கம்-620 006, திருச்சிராப்பள்ளி,
தமிழ்நாடு. இந்தியா.
தொலைபேசி : 0431-2435358.

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Sept. 2025 Page No. : 169-173

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

బందిపోట్లు కవితలో స్త్రీ వాద దృక్పథం

డా. పసుపులేటి నాగమల్లిక,

తెలుగు అధ్యాపకురాలు, ఎ.ఎస్.డి ప్రభుత్వ మహిళా డిగ్రీ కళాశాల,(అ) కాకినాడ,

ఆంధ్ర ప్రదేశ్.

ఉపోద్ఘాతం :

మానవ జీవితంలో అనుభవాలను దృశ్యమానం చేసి సజీవంగా సహానుభూతి పొందేలా చేయడమే కవిత్వం. తెలుగు సాహిత్యంలో ఇలాంటి కవిత్వం అనేక రకాలుగా వచ్చింది. కాల్పనిక/ భావ కవిత్వం, అభ్యుదయ, విప్లవ కవిత్వం వీటితో పాటు ఆధునిక కవితా ఉద్యమాల్లో స్త్రీ వాద కవిత్వం చాలా ముఖ్యమైనది. ఇది స్త్రీవాద ఉద్యమంలా 20వ శతాబ్దంలో అభివృద్ధి చెందింది.

స్త్రీవాద రచయితలు స్త్రీల జీవితాలను, సమస్యలను కథలు, నవలలు, కవితలు, నాటికలు, వ్యాసాలు మొదలైన ప్రక్రియలలో చిత్రించారు. వారి రచనలు స్త్రీల పట్ల సమాజంలో ఉన్న వివక్షను ఎత్తిచూపాయి, స్త్రీవాద భావాలను వ్యాప్తి చేశాయి. ఈ విధంగా స్త్రీవాద సాహిత్యం స్తబ్దత పాటించక సామాజిక, రాజకీయ, ఆర్థిక రంగాల్లో విస్తృతమౌతున్నదంటారు ప్రముఖ స్త్రీవాద రచయిత్రి ఓల్గా గారు. నిజమే 1972 నుంచి 1992 వరకు వచ్చిన స్త్రీ వాద కవితలను 1993లో 'నీలి మేఘాలు' అనే సంకలనంగా ఆమె తీసుకువచ్చారు. అందులో ప్రచురితమైన 'బందిపోట్లు' అనే కవిత సావిత్రి కలం నుంచి వెలువడి అందరి హృదయాల్ని ఆకట్టుకుంది.

సావిత్రి పరిచయం :

స్త్రీవాద రచయిత్రి అయిన సావిత్రి మే 18,1949న పుట్టి, 4 అక్టోబర్, 1991న జీవితాన్ని హడావిడిగా ముగించుకొని వెళ్ళిపోయినా స్త్రీ వాద సాహిత్యంలో వారి వినూత్న దృక్పథం ద్వారా చెరగని ముద్ర వేశారు. వారి రచనల, స్మృతి రచనల సంపుటి 21 నవంబర్, 1992న రాజమండ్రిలో చేకూరి రామారావు గారి చేతుల మీదుగా విడుదల అయింది. ఈ పుస్తకంలో రెండు బాగాలున్నాయి. ఒకటి సృజన – అంటే ఆమె రచనల విభాగం. రెండు స్మృతి – ఆమె గురించి మిత్రుల రచనలు. ఆమె స్వీయరచనల విభాగమైన "సృజన'లో 23 కవితలు, ఒక కథ, ఒక గల్పిక, 7 సమీక్షలు, 9 వ్యాసాలు వున్నాయి. 1948వ సంవత్సరంలో ఆంధ్రజ్యోతి వారపత్రికలో సావిత్రి రాసిన బందిపోట్లు కవితా ఖండిక సంచలనం సృష్టించింది. తర్వాత నీలి మేఘాలు (1993) సంకలనంలో ఈ కవిత చోటు చేసుకుంది.

బందిపోట్లు కవితలో స్త్రీవాద దృక్పథం :

సావిత్రి గారి కవితల్లో మొదటిగా గుర్తుకు వచ్చేది బందిపోట్లు. (1984) ఈ కవిత ఆమెకు ప్రఖ్యాతిని తీసుకు వచ్చింది. ఈ కవిత తరువాతనే స్త్రీ విముక్తివాద కవిత్వం'పేగవంతమయిందని' అనేవారు ఉన్నారు. సావిత్రిని తెలుగులో 'తొలి స్త్రీ విముక్తివాద కవయిత్రి'గా గుర్తిస్తారు. చేకూరి రామారావు గారు ఈ కవితని చేరాతల్లో సమీక్ష చేసి ప్రాచుర్యం కల్పించారు. సార్వత్రిక విశ్వవిద్యాలయం సిలబస్ పాఠ్యాంశంగా కూడా చేర్చారు.11 లైన్ల ఈ కవిత దశాబ్దాల నాటి 'పీడన'ను చెబుతుంది.

స్త్రీవాద కవిత్వంలో ఈ కవిత ప్రసిద్ధమై మరియు స్త్రీ వాద సాహిత్యంలో వారి దృక్పథాన్ని కూడా వివరిస్తుంది. 'బందిపోట్లు'కవితలో భారతీయ వివాహ వ్యవస్థలో పురుషాధిక్యతను ఆమె తీవ్రంగా నిరసించింది.

"బళ్లో చదివేటప్పుడు పంతులుగారు పాఠం ఒప్పచెప్పకపోతే పెళ్లి చేస్తానన్నప్పుడే ఆవిడకు భయం కలిగిందని. వాడికేం మగమహారాజు అని ఆడా, మగా వాగినప్పుడే పురుషాధిక్యతతో స్త్రీలను విభజించి వివక్షతో చూస్తుందని తీవ్రంగా నిరసించింది. ఆమె చేసిన ప్రతి రచనా ఇప్పటి తరానికి చాలా అవసరమైనవీ మరియు ఎంతో విలువైనవని చెప్పవచ్చు. రక్తంలో ఇంకిపోయిన భాషలో కలిసిపోయిన ఆచరణలో పట్టించుకోని మనువాద పోకడల్ని గురిచూసి కొట్టే తత్వం ఆమెది. అందుకు ప్రబల సాక్ష్యం "బందిపోట్లు" సృజనాత్మకత అంటే డాంభిక ప్రదానం కానవసరం లేదు. సమాజం పైయుక్తి జీవితం గురించి ఒక వైరుధ్య కోణాన్ని సూటీగా చెప్పగలగటం కూడా కవిత్వమే. అది కవిత్వమైనా, వ్యాసమైనా, కడైనా, సినిమా రివ్యూ అయినా, పుస్తక సమీక్ష అయినా పదునైన వ్యంగ్యం, కసితో కూడిన అధిక్షేపణ ఆమె స్వంతం.

"అవసరమొచ్చినా సెలవివ్వడ'ని అన్నయ్య అన్నప్పుడే అనుమానమేసింది.

"పెళ్ళంటే పెద్ద శిక్ష" అనీ

"మొగుడం"టే స్వేచ్ఛా భక్షకుడనీ

మేం పాలిచ్చి పెంచిన సగమే మమ్మల్ని విభజించి పాలిస్తుందనీ! పురుషాధిక్యత గురించి వివరించినది. ఇంత అద్భుతమైన కవిత మరొకటి లేదు.

"భాషరాని బడుద్దాయిలంటారు భారమెంత వహిస్తున్నా నేనే భార్యనని"

విద్య ఉన్నా లేకపోయినా మగాడైతే చాలు స్త్రీలపై పెత్తనం చెలాయించడానికి. ఇంటా బయటా ఊపిరి సలపని పనులతో సతమతమవుతూ అన్ని కార్యక్రమాలను అలవోకగా చక్కదిద్దినా, సోమరి, తాగుబోతులతో బతుకుతూ, భారం వహించి బతుకులీడ్చుకుంటూ కుటుంబాలు కుంటుబడకుండా నిలిపిన ఆమె కష్టాలను, కన్నీళ్ళను, వేదనలను, వెతలను పుట్టింటికి, మెట్టినింటికి తెలియకుండా దాచుకుంటూ జీవన సమరం సాగిస్తున్న ఆమె ఆమేనని తెలిపిన గొప్ప కవిత. ఈ కవిత సావిత్రిగారిని కవిగా, రచయితగా చిరస్థాయిలో నిలిపింది. స్త్రీవిముక్తిని కాంక్షించేవారికి ఆప్తురాలిని చేసింది. తాను రాసిన 23 కవితల్లో చాలా వరకు స్త్రీ విముక్తి గురించినవే.

"స్త్రీ విముక్తి ధోరణి సాహిత్యంలో సావిత్రి స్థానం ఆధునికాంధ్ర సాహిత్యంలో గురజాడ అప్పారావు గారి స్థానంతో పోల్చదగింది" అని కితాబు కూడా ఇచ్చారు. భాష మీద పట్టు, నుడికారం మీద అధికారం ఆమెకున్న అదనపు బలాలు. రాసింది తక్కువైనా ఆమె కవిత్వంలో వస్తు వైవిధ్యం బాగా కనబడుతుంది.

"విషాదాంత తిరుగుబాటు చరిత్ర- సావిత్రి" "కొందంతవేదనను గుండెలో దాచుకొన" మహానటి సావిత్రికి నివాళిగా కవయిత్రి 'సావిత్రి' రాసిన కవితలోని తొలి చివరి పాదాలివి. ఇవి 'సావిత్రి' జీవితానికి కూడా సరిగ్గా సరిపోతాయి. ఆమె జీవితం పూలపాన్పు కాదు. ఆమె విసిగిన కలం, యోధురాలు, మరణాన్ని కూడా 'విజయం'గానే భావించిన ధీర. ప్రతీ అక్షరంలో తన గుండెల్లోని అగ్ని ధారలను కురిపించినది.

అమ్మ ఆమెకు మార్గదర్శి, జీవితం ప్రారంభం నుంచి ఆమె బొమ్మ మాదిరిగా మారిన విధానంలో "సామాజిక దుర్మార్గం" చిన్న నాటి సావిత్రిని ఆలోచనల్లో పడేసింది. ఐదో యేడు వచ్చే సరికి అక్షరాలన్నీ నేర్పేసి, అది మొదలు అనుదినం నా నుంచి సుఖము, శాంతి కోరుకున్న నా కన్నతల్లి నా తొలి గురువే కాదు తొలి నేస్తం. కుటుంబ జీవితంలో స్వేచ్ఛారాహిత్యం, అణచివేత పెరుగుతున్న కొద్దీ తనకి తెలియకుండానే ఆమెలో చైతన్యం, వ్యక్తిత్వం అభివృద్ధిపథంగా దూసుకుపోసాగాయి. ఈ అనుభవాల సారం ఫలితంగానే ఆమె సాహిత్యంలో ఎక్కువ భాగం స్త్రీవాదంకు పెద్దపీట వేసారు..

వ్యవస్థలలోని 'భావజాలం' స్త్రీలపై ప్రదర్శిస్తున్న బలంను వ్యతిరేకించారు. సమస్యలను ఎత్తిచూపటమే కాకుండా పరిష్కారం దిశగా కూడా తన రచనల దృష్టికోణంను సాగించారు. మార్క్సిజాన్ని విశ్వసించేవారంతా కనీసం తమ వ్యక్తిగత కుటుంబ పరిధిలోనైనా మార్క్సిస్టు చైతన్యంతో వ్యవహరించాలని కోరారు. 'పాఠం ఒప్పచెప్పకపోతే నీ పెళ్ళి చేస్తాననే బెదిరింపు', 'సెలవివ్వని ఆపీసరే తెలియని బాధ, "పెళ్ళంటే పెద్ద శిక్షనే" వ్యాఖ్యానాలు వరసి 'బందిపోట్లు' చివరి పాదాల్లో 'మేం పాలిచ్చి పెంచిన జనంలో సగమే /మమ్మల్ని విభజించి పాలిస్తోందనే' మాటలు వెనుక ఓ జీవితకాల విషాద దృశ్యరూపం కనబడుతుంది.

'మనుస్మృతి (9-11)ప్రకారం' అర్ధన్య సంగ్రహ్....' అనే శ్లోకం ప్రకారం "స్త్రీలను కాపాడుట ఎవరి తరమూ కాదు, అందుకే వారిని, ధనమును 'కాపాడుటయందు వ్యయపరుచుట యందు. భర్తకు సేవలు చేయుట యందు, వంట గృహాలంకరణ యందు నియమించాలి." కనుక వివాహం అవసరం సమాజంలో ఏర్పడింది. వివాహం చేసుకొని స్త్రీలను నిత్యం వేధింపులకు గురిచేస్తుంది.

ముగింపు :

"అర్ధాంతర యెన్నికల దేశాన్ని అయ్య చేతిలో పెట్టాం యెంచక్కా తాకట్టు పెట్టేశాడు.ఇదీ ఆమె ఆవేదన. ఈ భవిత వర్తమానంలో వాస్తవంగా కనిపించట లేదా? కాలం మారింది. వ్యవస్థలు మారాయి. సావిత్రి గారు రాసిన కవితల్లో కొన్ని ఇవి. బాబితా పెద్దదే ఉంది. వాస్తవ జీవితానికి సాధ్యమయినంత స్త్రీ తనను తాను సిద్ధం చేసుకుంటుంది. అయినా ప్రేమను నాశనం చేసి, జీవితాన్ని ఛిద్రం చేసి, కలలను కాల్చేస్తే భరించలేని వేదనకు గురి చేస్తే.... ఆమె చేతులెత్తితే.....? సావిత్రి జీవితంలో జరిగింది ఇదే. ఈ ఆలోచన ఆమెకు ఓ క్రొత్త మార్గం చూపించింది. ఒంట్లో ఆనారోగ్యం ఉన్నా ఆమె మెదడులో చురుకుతనం తగ్గలేదు. ఓల్గా చెప్పినట్లు 'పంచాది నిర్మల వారసురాల్ని నేనని కలమెత్తి గద్దించిన' కంఠం సావిత్రి గారిది.

ఆధార గ్రంథాలు :

1. బందిపోట్లు- సావిత్రి

2. నీలి మేఘాలు - స్త్రీవాద కవిత్వం

3. తెలుగు సాహిత్య విమర్శ- వెలమల సిమ్మన్న

4. మనుధర్మ శాస్త్రం -మోహన్ పబ్లికేషన్స్

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Sept. 2025 Page No. : 174-178

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

ఓల్గా 'ప్రయోగం'లో చర్చించిన స్త్రీవాద సమస్యలు

డా.కె.వి.శాంతకుమారి

తెలుగు అధ్యాపకులు, ఎస్.ఆర్.ఆర్ & సి.వి.ఆర్

ప్రభుత్వ డిగ్రీ కళాశాల స్వ విజయవాడ, ఆంధ్రప్రదేశ్.

భారతీయ సంస్కృతీ వృక్షానికి వున్న రెండు ప్రధానమైన పట్టు గొమ్మలు కుటుంబ, వివాహ వ్యవస్థలు. ఈనాటికీ ప్రపంచ దేశాల్లో మన యీ వ్యవస్థల పట్ల ప్రత్యేక గౌరవం, నమ్మకం కనబడుతుంది. కానీ మన దేశంలో మాత్రం యీ వ్యవస్థలు బీటలు వారుతున్నట్లు కనబడుతున్నాయి. ముఖ్యంగా వివాహ వ్యవస్థలోని దీర్ఘకాలికత కొరవడి, వివాహాలు విడాకులకు దారితీయడం చూస్తున్నాం. వివాహ వ్యవస్థ విచ్ఛిన్న మైతే సహజంగానే కుటుంబ వ్యవస్థ కూడా విచ్ఛిన్న మవుతుంది. మరి ఇలా విచ్ఛిన్నమవుతు నమ్మకాన్ని కోల్పోతున్న యీ వివాహవ్యవస్థకు ప్రత్యామ్నాయింగా ఏ వ్యవస్థ ఏర్పడబోతుంది? అని పరిశీలిస్తే సహజీవన వ్యవస్థ కనబడుతుంది. ఈ వ్యవస్థలో లోపాలు లేవా అంటే దీనిలో వుండే లోపాలు దీనిలోనూ వుంటాయి. అయినప్పటికీ ప్రస్తుత యువత దీనికి మొగ్గు చూపుతుంది త్వరలో వివాహ వ్యవస్థ కనుమరుగై పోతుంది అని ఆర్.జి.వి.లాంటి ప్రముఖులు వ్యాఖ్యానిస్తుంటే, మరోవైపు అత్యంత అట్టహాసంగా ఐదురోజుల వేడుకలతో వివాహాలు జరుగుతున్నాయి. పోనీ వీటిని చూసి హమ్మయ్యా అనుకుందామంటే పెళ్లి ఫోటోలు ముద్రించక ముందే వివాహాలు విఫలమవుతున్నాయి. దీనికి కారణమేమైవుంటుంది అనివిచారిస్తే స్త్రీ, పురుషులు ఇద్దరూ అన్నిటా సమానంగా వుండి, సమానత్వాన్ని అన్నింటా సమానంగా కోరుకోవడమే కారణం అంటున్నారు. వివాహంలో సాధ్యం కాని సమానత్వాన్ని సహజీవనంలో సాధించే ప్రయత్నం చేస్తున్నారు. మరి అందులో నైనా సాధించగలుగుతున్నారా అంటే లేదనే చెప్పాలి.

అసలు యీ సహజీవన మూలాలు ఎక్కడివి? దీనికి సంబంధించి సాహిత్యం ఏమైనా చర్చించిందా? అందులో ముఖ్యంగా ప్రాచీన ఆచార సాంప్రదాయాలకు విలువనిచ్చే తెలుగు జాతికి సంబంధించిన సాహిత్యం ఏమైనా చర్చించిందా? అని పరిశీలిస్తే సహజీవనం గురించీ ముప్పైఏళ్ల క్రితమే ఓల్గా రచించిన 'ప్రయోగం' అనే నవలిక కనిపిస్తుంది. ఆ తరువాత అనేక రచనలు వచ్చాయి. ఇంకా వస్తువున్నాయి కానీ తెలుగు సాహిత్యంలో సహజీవన వ్యవస్థపై చర్చించిన మొదటి రచనగా దీన్ని చెప్పుకోవాలి.

అంతకుముందే చలంవంటి కొందరు రచయితలు దీని గురించీ తమ రచనల్లో ప్రస్తావించినప్పటికీ దీనిని ప్రత్యేకంగా వివాహానికి ప్రత్యామ్నాయి వ్యవస్థగా సూచిస్తూ ఎవరూ లోతుగా చర్చించలేదు.

అయితే యీ ప్రయోగంలో వివాహవ్యవస్థలోని ఏఏ అంశాలను రచయత్రి చర్చించారు? అవి నేటి కాలానికి ఎలా, ఎంత వరకు వర్తిస్తాయి? అనే అంశం పరిశీలిద్దాం. ప్రయోగంలో రచయిత్రి ఆర్థిక స్వేచ్ఛ, పితృస్వామ్యం, ఇంటిచాకిరీ, జెండర్ వివక్ష, లైంగిక స్వేచ్ఛ, వునరు త్పత్తి అనే ఆరు అంశాలను కొలంకషంగా చర్చించారు.

1. ఆర్థికస్వేచ్ఛ :-

స్త్రీల స్వేచ్ఛకు కావలసిన ముఖ్యమైన ముడిసరుకు ఆర్థిక స్వేచ్ఛలో వుంటుంది. ఒక స్త్రీకి ఎన్ని సుగుణాలు, తెలివితేటలా వున్నప్పటికీ ఆర్థింకంగా పురుషుని మీద ఆధారపడి వున్నట్లయితే ఆమె అతని అధికారానికిలోబడి వుండవలసే వస్తుంది. ఇదే విషయాన్ని చలం తన 'స్త్రీ' నవలలో కూడా చెబుతారు. *"అన్నింటికన్నా, విద్య కన్నా ముఖ్యం స్త్రీకి స్వతంత్ర ఆర్జన మనుషుల్ని గానీ, దేశాల్ని గానీ అణగదొక్కాలంటే ఆర్థిక అసహాయత్యం ముఖ్యసూత్రం అందుచేతనే స్త్రీ ముఖ్యంగా బానిస అయ్యింది." -1*

అయితే నేడు చాలామంది స్త్రీలు ఉద్యోగం చేస్తూ, సంపాదిస్తున్నారు కదా! ఇంకేమిటి సమస్య అనుకుంటే అది ఆర్థిక స్వేచ్ఛ కానే కాదు. ఇది పురుషుడికి మరింత సహాయపడడానికే గానీ, స్త్రీకి తన సంపాదనపై నిర్ణయం తీసుకునే హక్కులేదన్నది వాస్తవం. స్త్రీకి తన సంపాదన పై ఖర్చు విషయంలో నిర్ణయా ధికారం వున్నప్పుడు మాత్రమే వారికి ఆర్థిక స్వేచ్ఛ వున్నట్లు చెప్పుకోవాలి. అది యీనాటికీ భర్త నిర్దేశం ప్రకారమే జరుగుతుంది. అసలు స్త్రీలు ఏ చదువులు చదువుకోవాలి? ఏ రంగంలో స్థిరపడాలి అనే అంశం కూడా వారి కుటుంబాల్లోని పురుషుల నిర్ణయాలపైనే జరుగుతాయి. దీనికి భిన్నంగా కనిపిస్తుంది 'ప్రయోగం' నవలికలోని సునంద. ఈమె మొదటినుండీ తనపైవున్న పురుషాధికారాన్ని, కంట్రోళ్లనూ భరించలేక ఇంటినుండీ బయటకువచ్చి, చిన్న చిన్న ఉద్యోగాలు

చేస్తూ, చదువు పూర్తి చేసుకొని, మంచి ఉద్యోగం సంపాదించుకుని, స్వాతంత్ర్య జీవనం సాగించింది. ఎవరికైనా స్వేచ్ఛ కావాలంటే మొదట ఆర్థికంగా తన కాళ్లపై తాను నిలబడటం ఎంతో అవసరం అని గుర్తించింది.

2. పితృస్వామ్యం:-

ఉత్పత్తి పరికరాల్ని చేజిక్కించుకోవడం ద్వారా సమాజం మాతృస్వామ్య వ్యవస్థనుండీ పితృస్వామ్య వ్యవస్థకు మారి పోయిందన్నది చరిత్ర చెబుతున్న సత్యం. ఇటువంటి పితృస్వామ్య కుటుంబాల్లో తండ్రి కుటుంబ పెద్దగా వ్యవహరిస్తాడు. కుటుంబ యజమానిగా వున్న తండ్రి కుటుంబం లోని సభ్యులందరి తరపునా తనే నిర్ణయాలు తీసుకుంటాడు. అక్కడే స్త్రీ అణచివేత ప్రారంభమవుతుంది. స్త్రీలు ఆర్థికావసరాలన్నిటికీ పురుషుడిపై ఆధారపడి వుండడం వల్ల కుటుంబ బానిసగా వుండక తప్పడం లేదు. 'ప్రయోగం' నవలికలోని సునంద యీ పురుష స్వామ్యాన్ని అంగీకరించలేదు. కుటుంబంలోని తన తండ్రి పెత్తనాన్ని సహించలేక తన పదిహేనవ ఏట నుండీ తండ్రితో యుద్ధం చేసింది. ఇంజనీరింగ్ చదవాలన్న తన కోరికను కాదని, తన చెల్లెలి కొడుక్కిచ్చి పెళ్లి చేస్తానన్న తండ్రినెదిరించి, ఇల్లు విడిచి బయటకొచ్చేసింది. తనస్వేచ్ఛను తనే సాధించుకోవాలనుకున్నది తప్ప ఎవరి దగ్గర పొందాలనుకోలేదు. స్వేచ్ఛఅనేది ఒకరిచ్చేది కాదని ఆమెకు తెలుసు. స్త్రీలను కుటుంబ బానిసలుగా అణిచి వేస్తున్న పితృస్వామ్యాన్ని వ్యతిరేకించాలంటే దానికి ముందు సాధించవలసింది ఆర్థికస్వావలంబన అని తెలిసిన వ్యక్తి సునంద.

3. ఇంటిచాకిరీ :

స్త్రీలను కుటుంబ సేవకులుగా మార్చిన మరో అంశం ఇంటిచాకిరీ. దీన్ని ప్రయోగంలో స్థూలంగా చర్చించారు రచయిత్రి ఓల్గా. సాధారణంగా పితృస్వామ్య కుటుంబంలో ఇంటి పనంతా స్త్రీలదిగానే వుంటుంది. చిన్న పిల్లలప్పటినుండే ఆడపిల్లలకు ఇంటి పనులు నేర్పిస్తారు. మగ పిల్లలు ఆటలాడు కుంటుంటే, ఆడపిల్లలు ఇంట్లో తల్లులకు సహాయం చేస్తుంటారు. ఇలా ఆడపిల్ల నేర్చుకున్న పనులు తన కోసం కాదు... భవిష్యత్తులో అత్తవారింట్లో వారికీ, భర్తకు సేవలు చేయడానికి మాత్రమే. ఇక ఇంటి బయటకు వెళ్లి చేసే పనులు ముఖ్యంగా ఆర్థిక సంబంధమైన పనులు మాత్రం పురుషులకి అప్పగిస్తారు. దీనికి కారణం డబ్బుతో ముడిపడిన పనులు స్త్రీలు నిర్వహించ లేరు అనే ఒక భావం కూడా దీని వెనుక వుంటుంది. ప్రయోగం నవలిక లోని కథానాయకుడు నరేంద్ర కూడా ఇలాంటి వాతావరణంలో పెరిగినవాడే. అందుకే పెళ్లి తరువాత సునంద తనను ఇంటిపని చేయ్యమని, తాను బజారుకి వెళతా నంటుందేమోనని భయపడుతాడు. అంతర్జాతీయ రాజకీయాలు మొదలు సంగీత, సాహిత్యాల

వరకూ అనర్గళంగ మాట్లాడే సునందకు అసలు వంటొచ్చా? అని అనుమాన పడతాడు. చివరికి పెళ్లి చేసుకొని తిండి సుఖం కూడా లేకుండా వంటింట్లో మగ్గాలేమోన నిభయపడి, సునందనే వదులుకుంటాడు. ఎంత ఆదర్శ భావాలున్న పురుషుడైనా యీ నాటికీ వంటయింటి బాధ్యత భార్యదే అని భావించడం ఇక్కడ కనబడుతుంది. ఈ విషయంలో చలం గారు-

" ఒక భర్తకే గాక, తత్సంబంధమైన సోమరి పోతులందరి సేవ చేయ్యాలి స్త్రీ. వంట విషయమై నియోగింపబడిన జీతం, భత్యంలోని ఒక స్త్రీ బానిస సంఘంలో తేరగా పడి వుండడం వల్ల యి పురుషులకు రుచులెక్కువైనాయి."- 2

4. జెండర్ వివక్ష :

పుట్టుకతో స్త్రీ పురుష భేదాలుగా శారీరంకంగా వచ్చేది సెక్స్,సమాజం చేత సంస్కృతి పేరుతో బలవంతంగా రుద్ద బడ్డయి జెండర్. ఉ.దా.కి 'పురుషులు ఏడవకూడదు, స్త్రీలు సిగ్గుపడాలీ మొ.వి.. జెండర్ భావనలు. ప్రయోగంలోని కథానాయకుడు నరేంద్ర సునంద విషయంలో ఇలాగే ఆలోచిస్తాడు. 'అసలు అలా ధైర్యంగా, ఆత్మస్థైర్యంతో తలెత్తుకు తిరిగే సునంద రేపు తను ఆమె దగ్గరకు తీసుకున్నప్పుడైనా సిగ్గు పడుతుందా' ? అని అనుమానం వస్తుంది. తన వెనుక కాక తన పక్కన నిలబడే సునంద కంటే తను లేచేసరికి కాఫీ కప్పు, ఇంటికి వచ్చేసరికి తల్లో పూలతో సిగ్గుపడుతూ ఎదురు చూసి, వంటింట్లో కొసరి కొసరి తినిపించే అమ్మాయిని పెళ్లి చేసుకోవడానికే మొగ్గు చూపుతాడు. ఇలాంటి జెండర్ భావజాలంతో నరేంద్ర ఆలోచించడం కనబడుతుంది.

5. **లైంగిక స్వేచ్ఛ:**

సమాజంలో ఎక్కువగా విమర్శకు గురై, తక్కువగా ఆచరణలో వున్న స్వేచ్ఛ లైంగిక స్వేచ్ఛ. స్త్రీలు ఇంటా, బయట కూడా లైంగిక దోపిడీకి, అణిచివేతకూ గురౌతున్నార నేది స్త్రీ వాదుల ఆరోపణ. ఒక స్త్రీతో పరిచయం మామూలుగా వున్నంత వరకూ పురుషుడు మర్యాదగానే వ్యవహరిస్తాడు. అదే ఆ స్త్రీతో శారీరక అనుబంధం ఏర్పడితే ఆమెపై తనకేదో హక్కు వున్నట్లు భావిస్తాడు. ఆహక్కును ప్రదర్శించడానికి అంతవరకూ లేని చనువు, బాధ్యత, జాగ్రత్త పేరుతో ఆధిపత్యం ప్రదర్శిస్తుంటాడు. ఇది గుర్తించలేని స్త్రీలు దీన్ని ప్రేమగా భావించి వీటికి లొంగిపోయి, మెల్లగా పురుషుడి అధికారంలోకి వెళ్ళిపోతారు. ఇదేవిధంగా నరేంద్ర కూడా ప్రవర్తించబోతే, సునంద ఒప్పుకోదు. సున్నితంగా తిరస్కరిస్తుంది.

6. **పునరుత్పత్తి:-**

ఉత్పత్తిలో ఎక్కువ భాగం పురుషుడిదైతే పునరుత్పత్తిలో మాత్రం స్త్రీదే సింహ భాగం. అందుకే పునరుత్పత్తిలో పూర్తి స్వేచ్ఛ కావాలంటారు స్త్రీ వాదులు.

" సమాజంలో ఉత్పత్తి వనరుల మీద ఆధిపత్యం కోసం జరిగే పోరాటాల్లో భాగంగా స్త్రీల సంతానోత్పత్తిశక్తిమీద కూడా ఆధిపత్యం కోసం యీపోరాటం జరుగుతుంది"-3

అంటారు ఓల్గా తన ఉపన్యాసంలో.

స్త్రీలు పిల్లల్ని కనాలా? వద్దా? కంటే ఎంత మందిని, ఎప్పుడు కనాలనే విషయంలో నిర్ణయాధికారం స్త్రీలకే వుండాలి అంటారు స్త్రీవాదులు. ఇది ఈనాటికీ సాకారం కాలేదు. ప్రయోగం నవలిక లోని సునంద యీ విషయంలో కూడా నిశ్చితమైన అభిప్రాయంతో వుంటుంది. పెళ్లి చేసుకుందామన్న నరేంద్రతో *" పెళ్లి పేరుతో తన స్వేచ్ఛను పాడు చేసుకో లేననీ, ఇలాగే ఎవరింట్లో వారుంటూ స్నే హంగా వుందామనీ, ఇష్టమైనప్పుడు కలుద్దామని అంటుంది".-4*

పిల్లల ప్రసక్తి తెచ్చిన నరేంద్రతో ఆ విషయం తనింకా ఆలోచించలేదు అంటుంది. అంటే ఇది బాధ్యత లేకపోవడం కాదు... కనాలనిపించినప్పుడు ఆలోచించవచ్చునంటుంది. అసలు తను పిల్లల్ని కని పెంచగలదో? లేదో? అని అనుమాన పడుతుంది. పిల్లలు అనేది చాలా పెద్ద బాధ్యత కాబట్టి జాగ్రత్తగా ఆలోచించి నిర్ణయం తీసుకోవాలనడంలోనే ఆమె బాధ్యత మనకు కనిపిస్తుంది. ఈ విధంగా పునరుత్పత్తిలో తన పాత్ర ప్రాధాన్యతనూ, హక్కులనూ గుర్తించిన వ్యక్తిగా సునంద కనబడుతుంది.

పై విధంగా ఆరు ముఖ్యమైన అంశాలను 'ప్రయోగం' నవలిక చర్చించింది. స్త్రీలు నేటికీ వీటిల్లో ఏ ఒక్క అంశమూ పూర్తిగా సాధించలేకపోయారు. కొద్దిపాటి ఆర్థికస్వేచ్ఛ, ఇంటిచాకిరీ నుండీ కొద్దిపాటి వెసులు బాటు తప్పిస్తే మిగిలిన సమస్యలన్నీ నేటికీ అలానే వున్నాయి. అందుకే నేటి యువతరం వివాహానికి ప్రత్యామ్నాయ వ్యవస్థగా సహజీవన వ్యవస్థను సమర్థిస్తున్నట్లు తోస్తుంది. ఇది వారి ఆకాంక్షలకు ఎంతవరకూ న్యాయం చేస్తుందనేది వేచి చూడవలసిందే!

పాదసూచికలు :-

1. చలం- గుడిపాటి -స్త్రీ స్వీట్ హోమ్ పబ్లికేషన్స్, 5వ ముద్రణ పుట-77
2. చలం- గుడిపాటి -స్త్రీ సంపాదన స్వీట్ హోమ్ పబ్లికేషన్ విజయవాడ, 5వ ముద్రణ పుట-52
3. ఓల్గా - ఉపన్యాసం జాషువా ప్రారంభ సంచిక 6.03.94 హైదరాబాదు.
4. ఓల్గా ప్రయోగం ఇండియా టుడే సాహిత్య వార్షిక సంచిక 1994 పుట 126.

చరవాణి: 9912579570

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Sept. 2025 Page No. : 179-183

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

21वीं सदी का साहित्य में नारी विमर्श

Dr. Ranjita Bharti
Assistant Professor, HOD - Hindi Dept, Valliammal college for Women, Chennai.

21वीं सदी की नारी सशक्तिकरण के साथ कार्यक्षेत्र में भी निष्ठापूर्वक अपनी कर्तव्य को समाज में कंधा से कंधों मिलाकर कर रही है।

आज की नारी हर क्षेत्र में आगे बढ़ रही है। और सफलता प्राप्त कर रही है। आज नारी घर को संभालने के साथ-साथ परिवार को सफल जहाँ बनाती वही अपना कैरियर को भी सफलता की सीढ़ियों में चढ़कर आगे बढ़ रही है। नारियों का कला, साहित्य, संगीत इत्यादि क्षेत्रों में काफी सफलता प्राप्त कर रही है।

गाँधी जी के अनुसार एक शिक्षित नारी सिर्फ खुद को शिक्षित न करके पूरे समाज को शिक्षित करती है। आज की नारी शिक्षा का दामन छोड़ती नही है। या फिर घरेलू हिस्सा का शिकार बने।

सशक्त नारी आज सशक्त भारत में हर क्षेत्र में अपनी पहचान पुरुषों से भी बढ़-चढ़ कर रही है। सरकारी नौकरी और प्राइवेट सेक्टर में भी उन्हें कई ऊँचाइयों तक पहुँचती हुए भारत सरकार की कई नई-नई योजना है। जैसे - बेटी बचाओ या बेटी पढ़ाओ।

लड़के-लड़कियों में अन्तर करके अब लड़कियों को पीछे की पंक्ति भावात्मक रूप से नहीं दे सकती है।

नारी सृष्टि की रचनाकार है, नारी के बिना समाज की कल्याण अधूरा है। नारी माँ, बेटी और पत्नी इत्यादि रिश्तों को भली-भाँति निभा रही है।

नोकरी पेशा नारी की समस्या :

21वीं शदी की महिलाएँ अब घर में बैठकर समय बर्बाद नहीं करती है बल्कि समय के साथ कंधा से कंधा मिलाकर आगे बढ़ती है। अब नारी पति पर पूरी जिम्मेदारी न बनकर अपनी कैरियर को फोकस बना कर आगे नौकरी को स्वीकार करती है, चाहे इसके लिए उन नारियों के परिवार व समाज की जितनी भी यातना सहनी पड़ी वह, पीछे नहीं रहती है, जिसका परिणाम वह सफल और उन्नत होती है।

एक कामकाजी महिला जहाँ अपनी कैरियर को पे के लिए एड़ी-चोटी का जोर लगाती है, वही नौकर मिल जाने के बाद बाद अपने सिर्फ परिवार पर ध्यान देती न कि अपने परिवार यानि पति के परिवार वालों को अब पराया या (दूसरा) सौतेला व्यवहार करती है। यह देख पति सौचता है कि पत्नी की अपरिपक्वता एवं बचपना स्वभाव घर को सुख शांति को बर्बाद न कर दे।

नौकरी पेशा नारी :

अल्पना मिश्री की कहानी 'इस जहाँ में हम में' जहाँ जया घर बाहर के सभी कामों को एक समझदार एवं परिपक्तवता से निभाती है। पति परदेश में है किन्तु परिवार में प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष में उन्हीं की चलती है, जया के जीवन में दोहरी चाल की धरोहर है। ऑफिस में सभी सहकर्मी के टीका टिप्पणी एवं प्रताड़ना को सहती हुई जीवन को खानोसी से जीती है।

सुषमा सिन्ही की कहानी कर्तव्यहीनता में एक बहू समाजसेविका को समाज के लिए समज है किन्तु अपनी सासू माँ के समय नहीं जो जन्म-मृत्यु से अस्पताल में लड़ रही है।

एक तलाक सुदा महिला को काम करने से मालकिन हर वक्त शक एवं चिड़ाचिड़ापन स्वभाव को दर्शाता है, जिसकी शिकायत करने पर मालकिन काम से बाहर निकाल देती है, आदित्य देव की कहानी 'संदेश का साँप' में प्रस्तुत किया गया है।

काम काजी महिला 21वीं सदी के दौर में सक्षम, आत्मनिर्भर, एवं जागरूक है। घर व बाहर की जिम्मेदारियों को निभाते हुए सफल होती है, किन्तु मन से हमेशा दुःखी रहती है।

सशिम शिना कहानी 'शराबी' में पति द्वारा प्रताड़ित पत्नी से जब पड़ोसन पूछते है कि तुम्हारे पति क्यों तुम्हें मारते है - तब पत्नी कहती है कि पति शराबी है। किन्तु पति दहेज के लालच के कारण पत्नी पर अत्याचार करते हैं।

दहेज की समस्या :

दहेज एक सामाजिक अवगुण या विकार है, जो समाज को राक्षस की तरह खा जाता है, दहेज के लालची में लोग किसी भी शर्त में दहेज को वसूल करते है। चाहे लड़की पढ़ी-लिखी हो या अनपढ़ हो। दहेज का प्रभाव या चकाचौद शादी के पहले या कुछ दिनों तक परिवार वालों की मुसकान पर निर्भर होता है, किन्तु धीरे-धीरे बहू की समझदारी और परिपक्वता परिवार वालों के सामने नजर आने लगती है।

सुषमा सिन्हा की कहानी 'अनपढ़' में दहेज में लाई कापी पैसे को कारण बहू की अयोग्यता को साबित करती है। अनपढ़ बहू ससुर को आये हार्ट अटैक का इलाज करवा नहीं

पाती है। घर पर पैसा होने के बावजूद भी बहू में जागरूकता की कमी परिवारवालों को खून की आँसू बहाने पर मजबूर कर देती है। अतः दहेज एक सामाजिक क्रीड़ा है जो बहू या लड़की योग्यता एवं परिपक्वता पर छुपा देती है।

दहेज में लाई भारी भरकम रकम पत्नी को सिर्फ महत्व हीन में मात्र एक या दो साल लगता है। किन्तु चरित्रहीन पति दूसरी पत्नी की तलाश में रहता है और अपनी प्रेम-प्रसंग को कायम रखता है।

डॉ. राजेश की कहानी 'उपेक्षित' में लाई लाखों की सम्पत्ति को पति मात्र अपनी अय्यासी का खेल समझ कर उसका इस्तेमाल करता है। शादी के कुछ हफ्तों के बाद ही पति अपनी अफेयर मैरिजज अफेयर में लिप्त हो जाता है। पत्नी के तमाम वाद-विवाद के बाद भी वह अपनी पितूर नहीं है।

अकेलापन की समस्या :

21वीं सदी की नारी आज सक्षम, सशक्तिशाली और अकेलापन वाली जीवन जीती है, कभी पति के छोड़ने, कभी पति के मर जाने या फिर कैरियर या नौकरी को लेकर अकसर अकेलापन का शिकार हो जाती है। कभी शादी को बड़ी समझौता या परिवारिक कलह के कारण अकेली ही जीवन बिताना उचित या आवश्यक समझती है।

आदित्य देव जी की कहानी 'सन्नाटे भरे गलियारा' में नायिका पति के छोड़ने के कारण अकेलापन का शिकार होती है। समाज में अकेली महिला को सभी लोग भोग विलास का साधन समझता है। यहाँ तक कि फैक्टरी का मालिक भी तारा को अकेला जान उसका हाथ पकड़ कर अश्लील हरकत करने की कोशिश करता है।

एक पत्नी जो पति को घर से निकाली जाती है, वह सिर्फ पति को घर में उपेक्षित नहीं होती है बल्कि मायके में भी तरह-तरह से यातना या भाईयों की पत्नियों के द्वारा शोषित होती है। घरेलू हिंसा सहते-सहते वह मानसिक रूप से दुःखी हो जाती है।

अकेली महिला हमेशा दया का पात्र या फिर षड्यंत्र की राजनीति रचती है, मायने में दल का जन्म होता है, एक दल (बुआ) ननद और सास का और दूसरा दल भाभियों का होता है। अतः एक औरत दूसरे औरत के दुःख का कारण बनती है।

इंटरनेट प्यार :

आज के इस इंटरनेट जमाने में 21वीं सदी की महिलाएँ इंटरनेट से चैटिंग करके लड़कों पर डोरे डालने आम बात है। डिपी बदल-बदलकर चैटिंग से आत्मिक सुख को दर्शाना आज सादारण सी बात है। काली, मोटी और राक्षसी दिखनी वाली लड़कियाँ जो एक युवा के नज़रों में है, किन्तु ईश्वर दावारा प्रदत्त सृष्टि में रूप, रंग कोई मायने नहीं रखता है।

नर्गिस की कहानी 'शो खत्म हुआ' में युवा अपना प्रेमिका को चैटिंग के माध्यम से पसंद करता है, किन्तु साक्षात्कार होने के बाद सिर्फ लड़की के रूप रंबा देखकर उसे अस्वीकार कर देता है।

एक लड़की के लिए लड़के के द्वारा अस्वीकार उसके हृदय को हिला कर देता है, जिसका परिणाम वह संकुचित मानसिकता का शिकार होती है।

एक लड़की का काला-रंग उसके छवि को ही धूमिल कर देती है। अगर माँ-पिता अपनी आर्थिक समस्या से जूझ रहे हो तो वह लड़की को बेमेल विवाह या नरकमय जीवन जीने के लिए मजबूर हो जाती है।

पुष्पा चिले की कहानी 'सपनों का राजकुमार' में तीपा एक अमीर व अहंकारी लड़की है। समय से शादी न हो पाने के कारण सपना समाज के ताने व ढलती उम्र की के कारण दुःखी होते हुए पिता के ड्राइवर से शादी कर लेती है।

कभी-कभी वर के लिए ज्यादा उम्मीद होना, और उसका पूरा न होना एक लड़की के असंतुलित मानसिकता को दर्शाता है, जिसका परिणाम अयोग्य वर के साथ शादी करना मजबूरी या लाचारी बन जाती है।

सुषमा सिन्हा की कहानी 'बहू-बेटी' में एक सासू माँ पने दामाद का बेटी के प्रति प्रेम देखकर बेटी की भाग्यवान समझती है वही बहू के प्रति बेटे का प्रेम व सेवा देखकर बेटे को जोरू का गुलाम कहती है।

एक महिला का बहू-बेटी में फर्क करना अपरिपक्व मानसिकता को दर्शाती है, जो बहू को अवगुणों का खान और बपेटी को गुणों का खान कहती है, एक अच्छी सासु माँ अपनी बहू-बेटी को भी आदर्श संस्कार देते ही सामाजिक व्यावहारिकता को सीख देना ही एक अच्छी माँ की पहचान है।

लिव इन रिलेशनशिप :

अलका प्रमोद की कहानी 'एक और मानवी' में बेटी पढ़ाई के कारण शहर से दूर जाकर शिक्षा और नौकरी करती है। परिवार वालों के शादी के लिए दबाव बनाने पर बेटी शादी को महत्व हीन मान कर लिव इन रिलेशनशिप में मर्जी के साथ रहना उचित समझती है।

आज के आधुनिक युग की दौड़ में हर नारी अपनी महत्वाकांक्षाओं के पीछे दौड़ता हुआ नज़र आती है। इस बदलाव युग में परिवार वारों के ज्ञान या अनुभवी पूर्ण समझती है। जवानी के दिनों में सब कुछ निर्वाह हो जाती है किन्तु बुढ़ापे में जीवन साथी के गुण-दोष को गिनाने के बजाय उसे सुधारना एवं आदर्श जीवन साथी का प्रमुख कार्य बपन जाता है।

एक दाम्पत्य जीवन का उदाहरण - पति पत्नी के अंतिम दिनों में सरकारी व गैर सरकारी काम सिखाने के लिए हर असंभव कोशिश करता है ताकि पति के जाने के बाद आत्मनिर्भर बन कर रहे, किसी के सामने हाथ न फैलाये। और बुढ़ापे में अपना निर्वाह स्वयं कर सके।

'एक सौतेली बेटी है' कहानी में एक आदर्श सौतेली माँ अपने सौतेली बेटी को अपनी संगी बनाकर एक आदर्श माँ की भूमिका आदा करती है। एक औरत अगर समझदारी व परिपक्वता से काम करे तो एक मिसाल या उदा. प्रस्तुत करती है।

इक्कीसवीं सदी की कहानियों के माध्यम से समाज में होरही बुराइयों को दूर करना ही कहानियों में अच्छाइयों को लाने ही कहानीकार का लक्ष्य है।

21वीं सदी की कहानियों में मानसिक प्रवृत्ति एक मानव से नही पशु प्रवृत्ति को जागृति करती है।

Add : E-9, Anna Nagar East, Chennai-600102
E-Mail: ranjitabharti150@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Sept. 2025 Page No. : 184-187

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

దళిత స్త్రీ వాద సాహిత్యం - సామాజిక చైతన్యం

Dr. Anitha Margaret Nelaturi
M.A., M.Phil., Ph.D.,
Lecturer in Telugu, SRR & CVR Government Degree College (A), Vijayawada-520004, Andhra Pradesh

భారతీయ సమాజంలో దళితులు ఆదిమ తెగలకు చెందిన భూమి పుత్రులు అయినప్పటికి కాలక్రమంలో అగ్రవర్ణాలుగా పిలవబడిన వర్గాల చేతిలో పీడించబడి అస్పృశ్యులుగా, పంచములుగా తృణీకరించబడి అణిచివేతకు గురయ్యారు. ఊరి చివరకు నెట్టివేయబడి విద్యకు, సంపదకు, అధికారానికి దూరమయ్యారు. క్రమంగా క్రైస్తవ మిషనరీల రాక, విద్యా సంస్థల ఏర్పాటు వారి తోడ్పాటుతో విద్య నభ్యసించి నాగరిక సమాజంలోనికి వచ్చారు. పితృస్వామ్య సమాజంలో అణిచివేతకు గురైన స్త్రీలకు జీవసత్యాలు కల్పించిన మహనీయులు జ్యోతిరావు పూలే, సావిత్రిబాయి పూలే, దళిత స్త్రీల విముక్తికి విద్య మూల హేతువని గుర్తించి స్త్రీ సమానత్వం కొరకు అహర్నిశలు కృషి చేశారు. వీరికి కొనసాగింపుగా డాక్టర్ బి.ఆర్. అంబేద్కర్ విద్యను ప్రధాన నినాదంగాను, ఆయుధంగాను స్వీకరించి స్త్రీ దాస్య విముక్తి కోసం మార్గనిర్దేశం చేశారు. అలాగే మహాకవి గుర్రం జాషువా తన రచనల ద్వారా దళితులను, దళిత స్త్రీలను చైతన్యం గావించాడు. సమాజంలో వారికి జరుగుతున్న అన్యాయాలను ఎదిరించే క్రమంలో స్పందన, నిరసన, సంస్కరణ, విమర్శ, చైతన్యం, ప్రతిఘటన అనే భావజాలంతో వారి సామాజిక స్థితిగతులను సమాజానికి వినిపించారు. దళిత సాహిత్యం పోరాటాలలో నుండే పుట్టింది. స్వాతంత్ర్య పోరాటాలు, కమ్యూనిస్టు ఉద్యమాలు, హేతువాద భావనలు, వేమన రచనలు, గుర్రం జాషువా రచనలు, అంబేద్కర్, పూలే ల పోరాటాలు దళితులలో చైతన్యాన్ని, పోరాట స్ఫూర్తిని పెంచాయి. వారి హృదయ వేదనను లోకానికి చాటడానికి సాహిత్యం వేదిక అయ్యింది.

తాడి నాగమ్మ, జాలా మంగమ్మలు మొదటితరం దళిత స్త్రీ వాద రచయిత్రులుగా 1930లలో సాహిత్యాన్ని వెలువరించారు. కేవలం రచనలే కాక, సామాజిక ఉద్యమకారిణులుగా నాయకత్వం వహించారు. మరొక వైపు క్రైస్తవ మతాన్ని స్వీకరించిన దళితులలో జ్ఞానరత్నమ్మ, వేశపోగు గుల్బానమ్మ, పిల్లి విజయ ఛార్లెస్ భక్తి ప్రధాన రచనలు చేశారు. స్వాతంత్ర్యోద్యమ కాలంలో, సంస్కరణోద్యమంలో వెలువడిన గృహలక్ష్మి, భారతి, హిందూ సుందరి వంటి పత్రికలలో ఒకరిద్దరు దళిత రచయిత్రుల రచనలు చోటు చేసుకున్నాయి.

దళిత స్త్రీ వాద సాహిత్యానికి కేంద్ర బిందువు దళిత స్త్రీ. ఆమెకు సంబంధించిన ఆర్తి, ఆకలి, అణిచివేత, ఆశలు, ఆలోచనలు, బాధలు, దోపిడి, దౌర్జన్యాలు, విముక్తి కోసం కనే కలలు, చేసే పోరాటాలు ఈ సాహిత్య వస్తువులు. తరాలు మారినా, వ్యవస్థలు మారినా, మారని దళిత స్త్రీల జీవితమే ఇందులో ఆవిష్కరించబడుతుంది.

సాంఘిక, ఆర్థిక, రాజకీయ న్యాయాన్ని స్వేచ్ఛ సమానత్వాలను తనకు దూరం చేస్తున్న వ్యవస్థలను అలవాట్లను దళిత స్త్రీ వాద సాహిత్యం బలంగా వ్యతిరేకిస్తుంది. తదనుగుణంగానే ఈ సాహిత్యంలో వర్ణవ్యవస్థను, కులాధిపత్యాన్ని, పురుషాధిక్యతను, ఆర్థిక దోపిడిని, లింగవివక్షతను, సాంఘిక అసమానతలను ఎండగట్టడం జరిగింది. వేల సంవత్సరాలుగా వర్ణ, వర్గ, పురుషాధిక్య వ్యవస్థల దోపిడి, దౌర్జన్యాలకు తీవ్రంగా నలిగిపోయి, నష్టపోయిన పీడితులు, దళిత స్త్రీ లే. స్వతంత్ర భారతంలో సాగిన సామాజిక ఉద్యమాలు దళిత స్త్రీలను గుర్తించలేదు. ఏ రాజకీయ పక్షం కూడా వీరిపై జరిగే దోపిడి, దౌర్జన్యాలను నిరసిస్తూ వారి వైపు ఉండి పోరాడలేకపోయాయి.

దళిత స్త్రీ వాదతత్వానికి బీజం వేసినది ఆచార్య కొలకలూరి ఇనాక్ గారి రచనలు. వీటిలో ముఖ్యమైనవి **ఊరబావి, సర్కారు గడ్డి, సమత** మొదలగునవి. కత్తి పద్మారావు గారి **కట్టెల మోపు** మొదలైన రచనలు. జి. కళ్యాణరావు గారి '**అంటరాని వసంతం**' నవలలో స్త్రీ పాత్రలను చిత్రించేటప్పుడు దళితులలోని పోరాటతత్వాన్ని, తెగింపుని, ఆత్మగౌరవాన్ని వీడలేదు. ఆచార్య కొలకలూరి మధుజ్యోతి '**దళిత సంస్కృతి**' లో దళిత స్త్రీలను దేవతలకు వదిలివేసి వారిని జోగినిలుగా గుర్తించి ఊరందరి సొత్తుగా భావించే అనాగరిక సంస్కృతిని నిరసిస్తూ '**ఈ వ్యవస్థ ఎందరో స్త్రీలను జీవచ్ఛవాలను**' చేసిందని వివరించారు. చుండూరు, కారంచేడులలో జరిగిన మారణహోమాలకు వ్యతిరేకంగా దళిత ఉద్యమం వచ్చిన తర్వాత దళిత స్త్రీ వాద రచనలకు మరింత గుర్తింపు వచ్చింది. హేతుబద్ధంగా ప్రశ్నించే ధోరణి అలవడింది. పూలే, అంబేద్కర్‌ల జీవిత విశేషాలను తెలుగు సాహిత్యంలో పొందుపరచినవారు విజయ భారతి, లీలాకుమారిగార్లు, సంస్కరణోద్యమ దృక్పథంలో దళితులను హరిజనులు అనడంలో గల హిందూ సంస్కరణని గూర్చి స్వరూపరాణి '**బిరుదు**' కవితలో '**పేదవారికి హరిజనులనే బిరుదు ఒకటి తగిలించారు. మనుషులందరూ హరిజనులు కారా? కాకుంటే శివజనులైనా కావాలి కదా**' అంటూనే ఈ హరిజన అనే పదాన్ని మానవ డిక్షనరీలో నుండి తొలగించకపోతే ప్రతిఘటన వస్తుందంటూ హెచ్చరించింది. కుల పితృస్వామ్య వ్యవస్థల మూలాలు వేదాలలో ఉండటాన్ని గమనించి కె. దుర్గాదేవి రాసిన '**అన్నీ వేదాల్లోనే ఉన్నాయిష ..... స్త్రీ పతనం కూడా**' అని విమర్శించండి. గురజాడ రాసిన దేశమంటే మట్టి కాదోయ్ – దేశమంటే మనుషులోయ్ అనే కవితకు జ్యోతిర్మయి స్పందిస్తూ – దేశమంటే మట్టి కాదని తెలుసు, దేశమంటే

మనుషులని తెలుసు, కాని ఆ మనుష్యుల మధ్యనున్న అంతరాలేమిటని ప్రశ్నిస్తుంది. శ్రీశ్రీ రాసిన మరో ప్రపంచం గురించి రాస్తూ మరో ప్రపంచం వర్ణ కుల భేదాన్ని నిర్మూలించేదై ఉండాలి. ఆ ప్రయత్నం మొదటి నుండే ప్రారంభం కావాలి. లేకుంటే ఒక్కసారి వర్ణబేధం, ధనస్వామ్యం, రెక్కలు గట్టుకొని ఎక్కడికో పారిపోతుందంటే అది ఒక చక్కని కలే అవుతుంది అని అంటుంది. దళితులకు మనిషి హోదానే లేకుండా చేసిన వర్ణవ్యవస్థను దాని అంతర్భాగమైన కుల వ్యవస్థను దళిత రచయిత్రులు ఎండగట్టారు.

శ్రమ విభజనగా ప్రారంభమై, శ్రామికుల విభజనగా మారి దళితులను పాతాళానికి తొక్కేసిన వర్ణవ్యవస్థను వ్యతిరేకించడం, గౌరవానికి గుర్తింపుకు, ఆస్థికి విద్యకు దూరం చేసిన వర్గ వ్యవస్థను తిరస్కరించడం వారి జన్మ హక్కుగానే భావించడం జరిగింది. ఆ వర్గ, కుల వ్యవస్థల పట్ల వారి కసి, తిరస్కారం వారి రచనలలో ఇలా కనిపిస్తుంది. **'నేను ముళ్ళ కంపలో చిక్కుకొని అల్లాడుతున్న పాలపిట్టను ఎటు కదిలించినా ముళ్ళన్నీ గుచ్చుకున్నది నాకే, ఇది ఈనాటి ముళ్ళు కావు, తరాల నుండి చుట్టూ పేర్చిన బానిస సంకెళ్ళు'** అని **మంకెన పువ్వు** అనే సంకలనంలో చల్లపల్లి స్వరూపరాణి దళిత స్త్రీల ఆవేదనను తెలియజేస్తారు. **'దళితురాలు'** అనే కవితలో దరిశె శశినిర్మల గారు కులాధిపత్యాన్ని వివరిస్తూ 'ఎవరో ఎందుకు నా తోటి ఆడమనిషే నన్ను కొనుక్కొంటుందట తన పెద్దకులం కొత్త చీరకు నన్ను జరీగా వాడుకుంటుందట తన పెదాల ఎర్రరంగుగా నన్ను పూసుకుంటుందట' అని ఆక్రోశిస్తారు. **"చూస్తున్నావుగా కులం గోతిలో ఇరుక్కున్న నన్నూ నా బతుకు గనుల్లోకి దూరి తోడి తోడి రాసుల్ని మింగే ఈ పెద్ద కుల దయ్యాల్ని"** అని **'పుండు'** కవితలో సీతాలక్ష్మి కుల రక్కసిపై తన వేదనను తెలియజేస్తారు. కేవలం సమస్యలను ఏకరువు పెట్టడంలోనే దళిత స్త్రీ వాద రచనలు ఆగిపోలేదు. విముక్తి కోసం చేసే ప్రయత్నాలను, విముక్తి పట్ల ఉన్న నిబద్ధతను దళిత స్త్రీ వాద రచయిత్రులు ఎలుగెత్తి చాటారు. **"బావులు, చెరువులు తవ్విన నా దోసిట్లో నీళ్ళకు బదులు నా కన్నీళ్ళు రాలిపడ్డాయి. పంటలు పండించిన నా గిన్నెలో అన్నానికి బదులు పస్తులు నిండాయి"** అని **'మట్టి చేతులు'** అనే కవితాశీర్షికలో చల్లపల్లి స్వరూపరాణి తమ శ్రమపై జరుగుతున్న దోపిడిని నిరసిస్తూ ఆవేదన వ్యక్తం చేస్తారు. **'కాలంతో పోటిపడి'** అనే రచనలో జి.విజయలక్ష్మి అనే రచయిత్రి **'కత్తుల మీద కవాతు చేస్తూ కాలంతో పోటీపడి నెత్తుటి మడుగుల్లో ఇప్పుడు నడచివస్తున్నాం'** అని ఎన్ని కష్టాలు నష్టాలు ఎదురైనా వాటిని సమర్థంగా ఎదుర్కొని ముందుకు నడుస్తాం అనే ధీమాను ఆశావాద దృక్పథాన్ని తెలియజేస్తారు.

దళిత స్త్రీ వాద రచనలు మనల్ని నిలదీస్తాయి. ఈ దోపిడికి, దౌర్జన్యాలకు కారణమెవరని ప్రశ్నిస్తాయి. గతం చేసిన అవమానాలను, వర్తమానంలో జరుగుతున్న వెక్కిరింతలను ఎలుగెత్తి

చాటుతాయి. న్యాయం, స్వేచ్ఛ, సమానత్వం, సౌభ్రాతృత్వం భావాలకు పెద్ద పీట వేస్తూ, విముక్తి ఆకాంక్షతో పోరాట స్ఫూర్తితో సాగుతుంది ఈ ఉద్యమం. ఈ సాహిత్యం వాస్తవికతను వెలుగులోనికి తీసుకొని రావాలనే తపన, సాహిత్యం ద్వారా సామాజిక మార్పును ఆశించడం దీనిలో ముఖ్య అంశాలుగా ఉన్నాయి. దళిత సాహిత్యంలో విరహ వేదనలు, వెన్నెల జలకాలు, వాలుచూపులు మచ్చుకైనా కనిపించవు. వరికోతలు, గుండె కోతలు, వ్యధాభరిత హృదయాలు, అవమానాలు, ఉవ్వెత్తున ఎగసిపడాలనే కసి మాత్రమే కనిపిస్తాయి. సాహిత్యంలోనికి వారి జీవితాలు ప్రవహించడమే దీనికి కారణం. సమాజంలో మరి ముఖ్యంగా స్త్రీలలో, మరీ ముఖ్యంగా దళిత స్త్రీలలో చైతన్యస్థాయిని పెంపొందించడంలో ఈ రచనలు ప్రధాన పాత్ర వహిస్తాయనడంలో ఎటువంటి సందేహం లేదు. బ్రతుకే భావజాలమైన సాహిత్య రూపం తెలుగులోని దళిత స్త్రీ వాద సాహిత్యం.

ఆధార గ్రంధాలు

1. తెలుగు సాహిత్య చరిత్ర – ద్వా.నా.శాస్త్రి
2. తెలుగు సాహిత్యం – విభిన్న ప్రక్రియలు, ధోరణులు – భావవీణ ప్రత్యేక సంచిక
3. తెలుగు సాహిత్య సమీక్ష – డాక్టర్ జి.నాగయ్య
4. మహిళా సాహిత్య వికాసం – డా. పి.ఉష

Dr. Anitha Margaret Nelaturi,
M.A., M.Phil., Ph.D.,
Lecturer in Telugu,
SRR & CVR Government Degree College (A),
Vijayawada-520004
Andhra Pradesh

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Sept. 2025 Page No. : 188-193

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

हिंदी साहित्य में नारी विमर्श : संघर्ष, चेतना और सृजन

योगिता कपिलराव देशमुख

शोध छात्रा, पृथ्वीराज देशमुख मुलींची सैनिकी शाळा,

विभागाध्यक्ष, धर्मापुरी, ता.जि. परभणी महाविद्यालय।

डॉ. प्रतिभा जी. येरेकर, शोध निर्देशक

प्रोफेसर एवं हिंदी, लाल बहादूर शारत्नी, धर्माबाद जि. नांदेड।

भूमिका:-

साहित्य समाज का दर्पण माना जाता है। समाज में जो भी परिवर्तन, संघर्ष और चेतना जन्म लेते हैं, वे साहित्य में अवश्य प्रतिबिंबित होते हैं। भारतीय समाज की संरचना सदियों तक पितृसत्तात्मक मूल्यों पर आधारित रही है, जहाँ स्त्री को प्रायः गौण और आश्रित स्थान दिया गया। उसे घर-परिवार की मर्यादा, परंपराओं और रूढ़ियों की जंजीरों में बाँधकर उसकी स्वतंत्रता और व्यक्तित्व को दबाया गया।

हिंदी साहित्य में प्रारंभिक काल से लेकर आधुनिक काल तक स्त्री की छवि अनेक रूपों में उकेरी गईकभी वह आदर्श पत्नी और माँ के रूप में, कभी त्याग और बलिदान की मूर्ति के रूप में, तो कभी सौंदर्य और श्रृंगार की वस्तु के रूप में सामने आई। किंतु बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में जब स्त्री ने स्वयं अपने अधिकारों और अस्मिता की आवाज़ उठाई, तब साहित्य में उसका वास्तविक स्वर मुखर हुआ। यही स्वर आगे चलकर नारी विमर्श के रूप में स्थापित हुआ।

नारी विमर्श केवल स्त्री-पुरुष समानता की मांग तक सीमित नहीं है। यह स्त्री के आत्मसम्मान, शिक्षा, स्वतंत्रता, सामाजिक न्याय और रचनात्मक क्षमता को मान्यता देने वाला आंदोलन है। हिंदी साहित्य में यह विमर्श महादेवी वर्मा, मन्नू भंडारी, कृष्णा सोबती, अमृता प्रीतम जैसी लेखिकाओं के माध्यम से और भी सशक्त हुआ। इनके लेखन ने यह सिद्ध कर दिया कि स्त्री केवल सहनशीलता और करुणा की प्रतिमा नहीं, बल्कि संघर्ष, चेतना और सृजन की प्रतीक भी है।

प्रास्ताविक:-

हिंदी साहित्य में नारी विमर्श एक सशक्त और महत्वपूर्ण धारा के रूप में उभरा है। लंबे समय तक स्त्री को साहित्य में केवल सौंदर्य, प्रेरणा या त्यागमूर्ति के रूप में चित्रित किया जाता रहा, परंतु जब स्त्रियों ने स्वयं अपने जीवन, पीड़ा और संघर्ष को शब्दों में व्यक्त करना प्रारंभ किया, तभी साहित्य में स्त्री का वास्तविक स्वर प्रकट हुआ।

"हिंदी साहित्य में नारी विमर्श : संघर्ष, चेतना और सृजन" शीर्षक लेख का उद्देश्य यही है कि साहित्य में स्त्री के बदलते हुए स्वरूप, उसके अधिकारों के प्रश्न और उसकी स्वतंत्र चेतना का अध्ययन किया जाए। यह विमर्श केवल शोषण और पीड़ा तक सीमित नहीं है,

बल्कि इसमें स्त्री की रचनात्मकता, उसकी जिजीविषा और उसकी आत्मनिर्भरता का भी उद्घोष है।

इस लेख में हिंदी साहित्य की विभिन्न धाराओंभक्ति काल से लेकर समकालीन साहित्य तकमें स्त्री की स्थिति और उसके संघर्षों का विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है। साथ ही महादेवी वर्मा, मन्नू भंडारी, कृष्णा सोबती, अमृता प्रीतम जैसी लेखिकाओं के योगदान को भी रेखांकित किया गया है। वर्तमान समय में जब स्त्री शिक्षा, राजनीति और कला के क्षेत्र में नए कीर्तिमान गढ़ रही है, तब भी उसे अनेक सामाजिक चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। ऐसे में नारी विमर्श आज भी उतना ही प्रासंगिक है।यह प्रास्ताविक इसी बात पर बल देता है कि हिंदी साहित्य का नारी विमर्श स्त्री के संघर्षों की गाथा ही नहीं, बल्कि उसकी चेतना और सृजनशीलता का अमर दस्तावेज है।

नारी विमर्श की संकल्पना और ऐतिहासिक पृष्ठभूमि:-

"नारी विमर्श" आधुनिक हिंदी साहित्य की एक सशक्त धारा है, जिसका संबंध स्त्री के जीवन, उसकी अस्मिता, स्वतंत्रता और अधिकारों से है। सामान्य अर्थ में नारी विमर्श का तात्पर्य स्त्री से जुड़े प्रश्नों पर संवाद करना है, किंतु साहित्यिक संदर्भ में यह एक गहन बौद्धिक आंदोलन के रूप में उभरता है। यह विमर्श केवल स्त्री की पीड़ा और शोषण को अभिव्यक्त करने तक सीमित नहीं है, बल्कि उसके संपूर्ण व्यक्तित्व, उसकी रचनात्मकता, उसकी स्वायत्तता और उसके सामाजिक-राजनीतिक अधिकारों को पहचान देने वाला आंदोलन है।

पश्चिम में अठारहवीं–उन्नीसवीं शताब्दी में जब औद्योगिक क्रांति, लोकतांत्रिक मूल्यों और स्त्री-स्वतंत्रता आंदोलनों की शुरुआत हुई, तब स्त्रीवादी चिंतन का उदय हुआ। मैरी वॉलस्टोनक्राफ्ट की "Vindication of the Rights of Woman" (1792) को स्त्री अधिकारों का घोषणापत्र माना जाता है। वहीं बीसवीं सदी में सिमोन द बोउवार की "The Second Sex" (1949) ने यह स्पष्ट किया कि स्त्री "जन्म से स्त्री नहीं होती, बल्कि समाज उसे स्त्री बना देता है।" इन पश्चिमी चिंतनधाराओं ने विश्वभर में स्त्री विमर्श की चेतना को प्रबल किया।

भारतीय परिप्रेक्ष्य में स्त्री विमर्श का आधार सदियों से चली आ रही पितृसत्तात्मक व्यवस्था, रूढ़ियाँ और सामाजिक असमानताएँ रही हैं। स्त्री को कभी देवी और शक्ति का स्वरूप मानकर पूजा गया, तो कभी उसे अशिक्षा, पर्दा-प्रथा, दहेज और बालविवाह जैसी कुरीतियों में जकड़कर दबा दिया गया। उन्नीसवीं शताब्दी के सामाजिक सुधार आंदोलनोंराजा राममोहन राय, ईश्वरचंद्र विद्यासागर, ज्योतिबा फुले और सावित्रीबाई फुले जैसे समाजसुधारकों ने स्त्री शिक्षा और स्वतंत्रता के प्रश्न उठाए। यही प्रयास आगे चलकर साहित्यिक आंदोलन का हिस्सा बने।

हिंदी साहित्य में नारी विमर्श की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि देखते हुए हम पाते हैं कि

भक्तिकाल में मीराबाई जैसे संत कवियों ने स्त्री की आत्मिक स्वतंत्रता को स्वर दिया।

आधुनिक काल में भारतेंदु हरिश्चंद्र और प्रेमचंद ने स्त्री के सामाजिक प्रश्नों को कथा-साहित्य का हिस्सा बनाया।

महादेवी वर्मा ने 'श्रृंखला की कड़ियाँ' में स्त्री-जीवन की पीड़ा और यथार्थ को गहन संवेदना के साथ प्रस्तुत किया।

स्वतंत्रता के बाद और समकालीन युग में कृष्णा सोबती, मन्नू भंडारी, प्रभा खेतान, मृदुला गर्ग जैसी लेखिकाओं ने नारी विमर्श को व्यापक स्वरूप दिया।

अतः नारी विमर्श की संकल्पना केवल साहित्यिक प्रवृत्ति नहीं, बल्कि एक सामाजिक-सांस्कृतिक आंदोलन है। इसका ऐतिहासिक विकास स्त्री के अधिकारों, उसके संघर्षों और उसकी सृजनात्मकता को मान्यता दिलाने की प्रक्रिया के रूप में देखा जा सकता है।

हिंदी साहित्य में नारी का चित्रण और उसका परिवर्तन:-

हिंदी साहित्य के विकासक्रम में नारी का चित्रण समय और समाज के अनुसार निरंतर परिवर्तित होता रहा है। साहित्यकारों ने अपने युगीन संदर्भों और मान्यताओं के अनुरूप नारी की छवि को प्रस्तुत किया।

१. प्रारंभिक काल – आदर्श एवं पौराणिक छवि:-

हिंदी साहित्य के आदिकाल और मध्यकाल में नारी का स्वरूप मुख्यतः पौराणिक कथाओं और आदर्शों से जुड़ा हुआ दिखाई देता है। वह प्रायः सती, पतिव्रता, त्यागमूर्ति और प्रेरणास्रोत के रूप में चित्रित की गई। तुलसीदास ने 'रामचरितमानस' में सीता को आदर्श पत्नी और पतिव्रता का प्रतीक बताया। उस काल में नारी की भूमिका गृहस्थ जीवन तक सीमित थी।

२. भक्ति काल – आध्यात्मिक और आत्मिक स्वतंत्रता:-

भक्ति युग में नारी का चित्रण केवल परिवार की सीमाओं में बंधा नहीं रहा। मीराबाई जैसी संत कवयित्रियों ने अपने आत्मिक अनुभवों के माध्यम से स्त्री की स्वतंत्र चेतना को अभिव्यक्त किया। मीरा ने सामाजिक बंधनों को तोड़कर ईश्वर-प्रेम को जीवन का ध्येय बनाया। इस युग में स्त्री का स्वर धार्मिक भक्ति के माध्यम से मुखर हुआ।

३. आधुनिक काल – सामाजिक यथार्थ और संघर्ष:-

भारतेंदु हरिश्चंद्र के युग से हिंदी साहित्य में यथार्थपरक दृष्टि का प्रवेश हुआ। स्त्री-शिक्षा, पर्दा-प्रथा, बालविवाह, दहेज आदि प्रश्नों पर साहित्यकारों ने लेखन किया।प्रेमचंद ने 'सेवासदन', 'निर्मला', 'गोदान' जैसे उपन्यासों में स्त्री की दुर्दशा और सामाजिक कुरीतियों का यथार्थ चित्रण किया।इस दौर में स्त्री को अब केवल आदर्श न मानकर सामाजिक संघर्षों में उलझी मानवीय इकाई के रूप में देखा जाने लगा।

४. छायावाद और प्रगतिवाद – संवेदनशील और जागरूक नारी:-

महादेवी वर्मा ने स्त्री की गहन संवेदनाओं, उसकी पीड़ा और स्वतंत्रता की चाह को अपने लेखन में स्वर दिया। उनकी 'श्रृंखला की कड़ियाँ' नारी के यथार्थ जीवन का गहन दस्तावेज है।

प्रगतिवादी लेखकों ने भी स्त्री को सामाजिक-राजनीतिक आंदोलनों के संदर्भ में प्रस्तुत किया। वह केवल परिवार तक सीमित न रहकर सामाजिक चेतना की वाहक बनी।

५. समकालीन साहित्य – संघर्ष, चेतना और सृजन:-

स्वतंत्रता के बाद और विशेषकर १९७० के दशक से स्त्री ने स्वयं अपनी कहानी लिखनी शुरू की।

मन्नू भंडारी की 'आपका बंटी' में टूटी हुई गृहस्थी में पिसते बच्चों और स्त्री की मनोदशा का चित्रण है।

कृष्णा सोबती की 'जिंदगीनामा' और 'मित्रो मरजानी' स्त्री के विद्रोही स्वर और उसकी कामनाओं का यथार्थ चित्रण करती हैं।

अमृता प्रीतम की 'पिंजर' विभाजन की त्रासदी में स्त्री की अस्मिता और पीड़ा को स्वर देती है। समकालीन लेखिकाएँमृदुला गर्ग, प्रभा खेतान, गीतांजलि श्री इत्यादिने नारी को स्वतंत्र सोच और सृजनशील व्यक्तित्व के रूप में चित्रित किया।

अतः यह स्पष्ट है कि हिंदी साहित्य में नारी का चित्रण आदर्श और त्यागमूर्ति से लेकर विद्रोही, चेतनशील और सृजनशील व्यक्तित्व तक पहुँचा है। यह परिवर्तन समाज की बदलती परिस्थितियों और स्त्री की आत्मचेतना का प्रत्यक्ष परिणाम है।

हिंदी साहित्य में नारी विमर्श के प्रमुख आयाम:-

हिंदी साहित्य में नारी विमर्श केवल स्त्री-जीवन की पीड़ा और शोषण का आख्यान नहीं है, बल्कि यह स्त्री के बहुआयामी स्वरूपउसके संघर्ष, उसकी चेतना और उसकी सृजनशीलताका उद्घोष है। साहित्य में नारी विमर्श को समझने के लिए उसके कुछ प्रमुख आयाम निम्नलिखित हैं :

१. स्त्री-शिक्षा और आत्मनिर्भरता:-

हिंदी साहित्य में नारी विमर्श का एक महत्वपूर्ण आयाम है स्त्री-शिक्षा की अनिवार्यता। शिक्षा के माध्यम से ही स्त्री अपनी अस्मिता को पहचान पाती है और आत्मनिर्भर बनती है। महादेवी वर्मा, मन्नू भंडारी और प्रभा खेतान के लेखन में स्त्री-शिक्षा और आत्मनिर्भरता का महत्व बार-बार रेखांकित हुआ है।

२. स्त्री-स्वतंत्रता और आत्मसम्मान:-

नारी विमर्श स्त्री के आत्मसम्मान और उसकी स्वतंत्र पहचान पर बल देता है। कृष्णा सोबती की 'मित्रो मरजानी' या मृदुला गर्ग की 'उसके हिस्से की धूप' जैसी रचनाएँ स्त्री की स्वतंत्र सोच और जीवन-शैली का प्रत्यक्ष चित्रण करती हैं।

३. विवाह संस्था और पारिवारिक संरचना की समीक्षा:-

हिंदी साहित्य में विवाह और परिवार की परंपरागत व्यवस्था की गहन समीक्षा की गई है। मन्नू भंडारी के 'आपका बंटी' और अमृता प्रीतम के 'पिंजर' जैसे उपन्यास यह स्पष्ट करते हैं कि स्त्री अक्सर इन संस्थाओं में अपनी स्वतंत्रता खो बैठती है। नारी विमर्श इन रूढ़िगत संरचनाओं को प्रश्नांकित करता है।

४. यौनिकता और शारीरिक स्वतंत्रता:-

समकालीन नारी विमर्श ने स्त्री की यौनिकता और शारीरिक स्वतंत्रता पर भी खुलकर चर्चा की है। यह आयाम लंबे समय तक साहित्य में वर्जित रहा, किंतु कृष्णा सोबती, मृदुला गर्ग और गीतांजलि श्री जैसी लेखिकाओं ने इसे साहसपूर्वक सामने रखा। इससे स्त्री के संपूर्ण व्यक्तित्व की वास्तविक पहचान बनी।

५. श्रम और आर्थिक सशक्तिकरण:-

नारी विमर्श स्त्री को केवल घर तक सीमित न मानकर कार्यस्थल पर उसकी भूमिका और उसके श्रम की मान्यता पर भी बल देता है। समकालीन कथा-साहित्य में कामकाजी स्त्री, संघर्षशील स्त्री और ग्रामीण मजदूर स्त्री के यथार्थ चित्रण द्वारा इस पहलू को मुखर किया गया है।

६. ऐतिहासिक एवं राजनीतिक चेतना:-

नारी विमर्श स्त्री को केवल निजी जीवन तक सीमित न रखकर सामाजिक, ऐतिहासिक और राजनीतिक परिप्रेक्ष्य में भी प्रस्तुत करता है। विभाजन की त्रासदी पर आधारित अमृता प्रीतम का 'पिंजर' और समकालीन उपन्यासों में स्त्री की सामाजिक-राजनीतिक चेतना इसका प्रमाण है।

हिंदी साहित्य में नारी विमर्श के ये आयाम यह सिद्ध करते हैं कि स्त्री केवल दया, करुणा और त्याग की प्रतिमा नहीं, बल्कि संघर्षशील, आत्मचेतन और सृजनशील व्यक्तित्व है।

साहित्य ने उसकी बहुआयामी छवि को उजागर किया है, जिससे वह समाज में अपनी स्वतंत्र पहचान बनाने में सक्षम हुई है।

समकालीन परिप्रेक्ष्य में नारी विमर्श की प्रासंगिकता:-

आज का समय स्त्री-चेतना और नारी विमर्श के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है। इक्कीसवीं सदी में स्त्री ने शिक्षा, राजनीति, साहित्य, कला, विज्ञान और व्यापार जैसे क्षेत्रों में उल्लेखनीय उपलब्धियाँ हासिल की हैं। वह अब केवल परिवार तक सीमित न रहकर समाज की मुख्यधारा में सक्रिय भागीदारी निभा रही है। फिर भी अनेक स्तरों पर स्त्री आज भी भेदभाव, शोषण और हिंसा का शिकार है। ऐसे में नारी विमर्श की प्रासंगिकता और भी अधिक बढ़ जाती है।

१. सामाजिक प्रासंगिकता:-

आज भी बालिका भ्रूण हत्या, दहेज प्रथा, घरेलू हिंसा और कार्यस्थल पर शोषण जैसी समस्याएँ विद्यमान हैं। नारी विमर्श इन मुद्दों को सामने लाकर समाज को आत्मचिंतन करने के लिए बाध्य करता है।

२. आर्थिक और शैक्षिक प्रासंगिकता:-

वैश्वीकरण और आधुनिकता के बावजूद ग्रामीण भारत की बड़ी संख्या में स्त्रियाँ शिक्षा और रोजगार से वंचित हैं। नारी विमर्श इन असमानताओं को रेखांकित कर स्त्रीशिक्षा और आर्थिक सशक्तिकरण की आवश्यकता पर बल देता है।

३. राजनीतिक प्रासंगिकता:-

महिला आरक्षण, पंचायत स्तर पर महिलाओं की भागीदारी, तथा संसद और विधानसभाओं में स्त्रियों की भूमिका नारी विमर्श को राजनीतिक परिप्रेक्ष्य में भी सार्थक बनाती है। यह विमर्श स्त्री को निर्णय-निर्माण की प्रक्रिया में बराबरी का अधिकार दिलाने का आधार है।

४. सांस्कृतिक और साहित्यिक प्रासंगिकता

समकालीन हिंदी साहित्य में स्त्री की बहुआयामी छविस्वतंत्र, विद्रोही, संघर्षशील और रचनात्मकको प्रस्तुत किया जा रहा है। साहित्य आज भी स्त्री की आवाज़ को मंच प्रदान करता है। इससे यह स्पष्ट होता है कि नारी विमर्श केवल आंदोलन न होकर संस्कृति और साहित्य की धारा भी है।

५. वैश्विक परिप्रेक्ष्य:-

आज स्त्री प्रश्न केवल भारत तक सीमित नहीं है, बल्कि यह एक वैश्विक विमर्श है। संयुक्त राष्ट्र जैसी संस्थाएँ 'लैंगिक समानता' और 'महिला सशक्तिकरण' को सतत विकास का आधार मानती हैं। अतः नारी विमर्श की प्रासंगिकता अंतरराष्ट्रीय स्तर पर भी उतनी ही महत्वपूर्ण है।

समकालीन समय में नारी विमर्श की प्रासंगिकता निर्विवाद है। यह स्त्री को समान अधिकार दिलाने, उसकी अस्मिता को पहचान दिलाने और उसके सृजनात्मक व्यक्तित्व को प्रतिष्ठा दिलाने का आधार है। साहित्य और समाज दोनों के लिए यह विमर्श भविष्य की दिशा तय करने वाला है।

निष्कर्ष:-

हिंदी साहित्य में नारी विमर्श एक ऐसी सशक्त धारा है जिसने स्त्रीजीवन के विविध पक्षों को उजागर किया है। प्रारंभ में जहाँ नारी को केवल आदर्श, त्याग और पतिव्रता की मूर्ति के रूप में प्रस्तुत किया गया, वहीं आधुनिक और समकालीन साहित्य ने उसे संघर्षशील, आत्मनिर्भर, विद्रोही और सृजनशील व्यक्तित्व के रूप में चित्रित किया।।

नारी विमर्श ने यह सिद्ध किया कि स्त्री केवल परंपरागत भूमिकाओं तक सीमित नहीं है, बल्कि वह समाज की निर्माता और परिवर्तन की वाहक भी है। शिक्षा, रोजगार, राजनीति, साहित्य, कलाहर क्षेत्र गें उसकी सक्रियता इस तथ्य की पुष्टि करती है।

आज के समय में, जब स्त्री असमानता, हिंसा और शोषण जैसी चुनौतियों से जूझ रही है, वहीं दूसरी ओर अपनी उपलब्धियों और आत्मचेतना से नई राहें भी बना रही है, तब नारी विमर्श की प्रासंगिकता और भी बढ़ जाती है। यह केवल साहित्यिक प्रवृत्ति नहीं, बल्कि सामाजिक परिवर्तन का सशक्त आंदोलन है।

अतः यह कहा जा सकता है कि हिंदी साहित्य में नारी विमर्श स्त्री के अधिकार, अस्मिता और स्वतंत्रता का घोषणापत्र है। यह न केवल अतीत की स्मृति और वर्तमान की यथार्थता है, बल्कि भविष्य की दिशा भी है। संघर्ष, चेतना और सृजन की यह यात्रा नारी को समाज में उसके उचित स्थान तक पहुँचाने में सहायक सिद्ध होगी।

संदर्भ

1. महादेवी वर्मा,श्रृंखला की कड़ियाँ, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, 1975.
2. प्रेमचंद,रोवारादन, रारस्वती प्रेरा, वाराणरी, 1918.
3. प्रेमचंद,निर्मला, सरस्वती प्रेस, वाराणसी, 1927.
4. अमृता प्रीतम,पिंजर, हिंद पॉकेट बुक्स, नई दिल्ली, 1950.
5. मन्नू भंडारी,आपका बंटी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1971.
6. कृष्णा सोबती,मित्रो मरजानी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1966.
7. कृष्णा सोबती,जिंदगीनामा, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1979.
8. मृदुला गर्ग,उसके हिस्से की धूप, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 1980.
9. प्रभा खेतान,छिन्नगस्तिका, वाणी प्रकाशन, 1995.
10. गीतांजलि श्री,माई, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1993.
11. चंद्रिका प्रसाद जिज्ञासु,नारी प्रश्न और हिंदी साहित्य, आलोचना प्रकाशन, इलाहाबाद, 1982.
12. रमेशचंद्र शाह, हिंदी साहित्य में नारी विमर्श, लोकभारती प्रकाशन, प्रयागराज, 2002.
13. निर्मला जैन,नारी विमर्श और हिंदी उपन्यास, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2005.
14. भारतीय साहित्य परिषद,समकालीन नारी लेखन, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 2010.

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Sept. 2025 Page No. : 194-201

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

ડિજિટલ સંવાદ: ફેસબુક અને ઈન્ટરનેટમાં સાહિત્યિક સર્જનાત્મકતા-નવમાધ્યમ

ડૉ. સાધના આર. ટાંક
ગુજરાતી વિભાગ,
કાપડિયા એમ.એન.એન.એસ. આર્ટસ એન્ડ ધી એસ.એન.એસ.બી.એસ. કોમર્સ કોલેજ, સંખેડા

પ્રસ્તાવના :

૨૧મી સદીની ઓળખ "ડિજિટલ યુગ" તરીકે થાય છે. એક સમયે માણસ માહિતી માટે પુસ્તકો, પત્રકારિતા અને શિક્ષણ પર આધાર રાખતો હતો. પરંતુ ઈન્ટરનેટના આગમન પછી વિશ્વ જાણે હાથની આંગળીઓ પર આવી ગયું. આજે માણસને જે જાણવા હોય તે તરત જ મોબાઈલ સ્ક્રીન પર ઉપલબ્ધ છે. ઈન્ટરનેટે ફક્ત માહિતી પહોંચાડવાની રીત જ બદલી નથી, પરંતુ માનવ જીવનના દરેક ક્ષેત્રને અસર કરી છે.

આ પરિસ્થિતિમાં ફેસબુકે વિશેષ સ્થાન મેળવ્યું છે. તે શરૂઆતમાં ફક્ત મિત્રતા અને સંવાદ માટેનું પ્લેટફોર્મ હતું, પણ આજે તે વૈશ્વિક સ્તરે સંચાર, વેપાર, સાહિત્ય, કલા અને રાજકારણ સુધીના બધા ક્ષેત્રોનું નવમાધ્યમ બની ગયું છે.

ફેસબુક એક એવું સાધન છે જ્યાં વ્યક્તિ માત્ર વાંચક નથી, પરંતુ લેખક, કલાકાર, સમીક્ષક અને દર્શક — બધું જ છે. આ સ્વતંત્રતા ફેસબુકને સાચા અર્થમાં "નવમાધ્યમ" બનાવે છે. અહીં વિકસતી ભાષા પણ પરંપરાગત નથી; તે એક મિશ્રિત, ઝડપી અને સર્જનાત્મક સ્વરૂપ ધરાવે છે, જેને આપણે "નવભાષા" કહી શકીએ.

૧.૧ - ઈન્ટરનેટ અને ફેસબુક : નવમાધ્યમનું સ્વરૂપ :

પરંપરાગત માધ્યમો — જેમ કે અખબાર, મેગેઝિન, રેડિયો કે ટીવી —માં વાચક કે શ્રોતાની ભૂમિકા મર્યાદિત હતી. વ્યક્તિએ ત્યાં ફક્ત "સ્વીકારવું" હતું. પરંતુ ઈન્ટરનેટે માધ્યમની એ એકતરફી દિવાલ તોડી નાખી. ફેસબુક જેવા પ્લેટફોર્મ પર વ્યક્તિ હવે "ભાગીદાર" છે.

નવમાધ્યમની કેટલીક વિશેષતાઓ :

1. **પરસ્પર સંવાદિતા (Interactivity) :**
   ફેસબુક પર પોસ્ટ મૂકતા જ મિત્રો કોમેન્ટ, લાઈક કે શેર દ્વારા તરત પ્રતિભાવ આપે છે.
2. **ઝડપ (Speed) :**
   પરંપરાગત પ્રકાશન પ્રક્રિયાની જગ્યાએ, ફેસબુક પર વિચારો એક પળમાં દુનિયાભરમાં ફેલાઈ શકે છે.
3. **લોકશાહી અભિગમ (Democracy) :**
   અહીં કોઈ સંપાદક કે પ્રકાશકની છૂટછાટની જરૂર નથી. દરેક વ્યક્તિને અભિવ્યક્તિનો અધિકાર છે.
4. **બહુઇન્દ્રિય અનુભવ (Multimedia) :**
   શબ્દો સાથે ફોટા, વિડિઓ, લાઈવ સ્ટ્રીમ, ઈમોજી — બધું જ જોડાય છે.
5. **સાંસ્કૃતિક સંમિશ્રણ (Cultural Fusion) :**
   ફેસબુક પર ગ્રામ્ય બોલીઓથી લઈને વૈશ્વિક અંગ્રેજી સુધીની ભાષાઓ એકસાથે મળે છે.

ઈન્ટરનેટ અને ફેસબુક: સાહિત્ય માટેનું માધ્યમ :

- **ડિજિટલ જગ્યા**: સાહિત્ય માટેની નવી દુનિયા, જ્યાં લેખકને સ્વતંત્રતા અને તાત્કાલિક વાચક પ્રતિસાદ મળે છે.
- **ફોર્મેટની વિવિધતા**: પેજ, ગ્રુપ, સ્ટેટસ, પોસ્ટ – દરેક લખાણ એક નવું સાહિત્યિક સ્વરૂપ.
- **સામાજિક ક્રિયા-પ્રતિક્રિયા**: લાઈક, કોમેન્ટ, શેર દ્વારા રચનાને જીવંત પ્રતિભાવ.
- **લોકપ્રિયતા**: કોઈ પણ રચના મિનિટોમાં વૈશ્વિક સ્તરે વાયરલ બની શકે છે.

આ લક્ષણો પરથી જણાય છે કે ઈન્ટરનેટ અને ફેસબુક સાચા અર્થમાં "નવમાધ્યમ" છે, જ્યાં જાણકારી સાથે સર્જનાત્મકતા અને અભિવ્યક્તિનો ઉદાર પ્રવાહ જોવા મળે છે.

૧.૨- ફેસબુક પર વિકસતી નવભાષા :

ફેસબુકનો સૌથી રસપ્રદ પાસો એ છે કે અહીં એક નવી ભાષા વિકસતી જોવા મળે છે. તેને **નવભાષા** કહી શકાય.

નવભાષાના લક્ષણો :

- **ટૂંકાણ (Brevity):**
  લાંબા વાક્યોની બદલે નાના સ્ટેટસ — "મજાની જિંદગી" કે "Dil happy" , 'Love U ઝીંદગી'જેવી અભિવ્યક્તિ.
- **કોડ મિક્સિંગ (Gujarati + English):**
  "Aaje mood khub mast che yaar" — ગુજરાતી અને અંગ્રેજી ભળીને નવી ગુંજારવ ઊભો કરે છે.
- **ઈમોજી અને સ્ટિકર:**
  શબ્દો વગર માત્ર □□❤□ જેવા ચિહ્નો પણ સંદેશ પૂરું પહોંચાડી દે છે.
- **નવા શબ્દોની રચના:**
  યુવાનો પોતાના મિજાજ પ્રમાણે નવા શબ્દો બનાવે છે, જે ઝડપથી લોકપ્રિય થઈ જાય છે.
- **લોકભાષાનું સ્થાન:**
  ગ્રામ્ય બોલી કે શહેરી સ્લેંગ — બંને અહીં સ્વીકાર્ય છે.

નવ ભાષાઓ: ડિજિટલ સાહિત્યની રીત

1. **ટેક્સ્ટ ભાષા** – કવિતા, વાર્તા, શાયરી, ટૂંકા સ્ટેટસ.
2. **વિઝ્યુઅલ ભાષા** – ફોટોગ્રાફ, ગ્રાફિક્સ, ડિઝાઇન.
3. **ઇમોજી ભાષા** – ભાવનાઓને ટૂંકામાં અને અસરકારક રીતે રજૂ કરવી.
4. **વિડિયો ભાષા** – લાઇવ કવિતા પઠન, વાર્તાકથન, શોર્ટ ફિલ્મ.
5. **મલ્ટિમીડિયા સંયોજન** – ફોટો + ટેક્સ્ટ + સંગીત = અસરકારક સાહિત્યિક અનુભવ.

6. **મીમ્સ અને વાયરલ સામગ્રી** – વ્યંગ્ય, હાસ્ય અને સામાજિક ટિપ્પણીનું નવું સાધન.
7. **ઇન્ટરેક્ટિવ ભાષા** – કોમેન્ટ, પોલ, રિએક્શન દ્વારા વાચક-લેખક સંવાદ.

આ રીતે નવભાષા પરંપરાગત વ્યાકરણની સીમાઓ તોડી, ડિજિટલ યુગની ભાવનાઓ વ્યક્ત કરે છે.

૧.૩ - સર્જનાત્મકતાની નવી અભિવ્યક્તિ:

ફેસબુકે સામાન્ય વ્યક્તિને સર્જક બનવાની તક આપી છે.

- **કવિતા અને ગઝલ:**
  યુવાનો બે લીટીની શાયરી પોસ્ટ કરે છે અને હજારો લોકો તેને વાંચે છે.
- **લોકગીતો અને વાર્તાઓ:**
  લોકવાર્તાઓને આધુનિક સ્વરૂપ આપી રજૂ કરવામાં આવે છે.
- **ચિત્રકલા અને ફોટોગ્રાફી:**
  કલાકાર પોતાની કૃતિ વિશ્વમાં ક્યાંય બેઠા પ્રદર્શિત કરી શકે છે.
- **મીમ અને હાસ્ય:**
  થોડા શબ્દો અને એક તસવીરથી હજારો લોકોને હસાવી દેવાનું નવું કલા સ્વરૂપ ઊભું થયું છે. આ દરેક મળીને ફેસબુકને "ડિજિટલ લોકસર્જન"નું કેન્દ્ર બનાવે છે.

સાહિત્યમાં અસર:

- **ટૂંકાણમાં અભિવ્યક્તિ**: થોડા શબ્દોમાં ગહન અર્થ (જેમ કે ટ્વિટર કવિતા).
- **નવી શૈલીઓનો ઉદય**: હાઈકુ, માઈક્રોફિક્શન.
- **સામાજિક મુદ્દાઓ**: પર્યાવરણ, નારીશક્તિ, રાજકીય મુદ્દા ઝડપથી વાચકો સુધી પહોંચે છે.
- **લોકસાહિત્યનું ડિજિટલીકરણ**: ગઝલ, લોકગીત, વાર્તા ફેસબુક દ્વારા વૈશ્વિક સ્તરે પહોંચે છે.
- **વાચક-લેખક સંબંધ**: "લાઈવ" સંવાદથી સર્જનાત્મકતાને નવી ઊર્જા મળે છે.

ઉદાહરણો

- ફેસબુક ગ્રુપો (*Gujarati Kavita, Storytellers, અભિવ્યક્તિ, GAZAL*) પર રોજ કવિતા-વાર્તા શેર થતી રહે છે.
- મીમ્સ દ્વારા સામાજિક ટિપ્પણી – હાસ્ય સાથે ગંભીર સંદેશ પ્રસારિત થાય.
- FB Live → કવિઓનું કાવ્યપઠન, વાર્તાકથન, ચર્ચા વગેરે.
- ઈમોજી આધારિત કવિતાઓ – નાવીન્ય સભર પ્રયોગ.
- પ્રાદેશિક કવિઓ-લેખકોને વૈશ્વિક મંચ મળતું થાય.

ફાયદા અને પડકારો:

ફાયદા :

1. દરેકને અભિવ્યક્તિનો અધિકાર.
2. ગુજરાતી ભાષાને નવો રંગ અને ઊર્જા.
3. સર્જકોને તરત પ્રતિસાદ.
4. વિચારવિમર્શ અને લોકશાહી ચર્ચાનો મંચ.

પડકારો :

1. **અશુદ્ધિની સમસ્યા** : ભાષાની શુદ્ધતામાં ઘટાડો.
2. **અતિરેકતા** : વપરાશથી સર્જનાત્મક ગુણવત્તા ઘટવી.
3. **ગુણવત્તા અને પ્રમાણનો પ્રશ્ન** – દરેક રચના સાહિત્યિક સ્તરે ઊંચી નથી. અતિરેક વપરાશથી સર્જનાત્મક ગુણવત્તા ઘટવાણી ભીતિ રહે છે.
4. **ફેક કન્ટેન્ટ અને કોપીરાઇટ મુદ્દા** – સર્જનાની ચોરી સામાન્ય બની છે. નકલ (Plagiarism)ની સમસ્યા સર્જાય છે.
5. **ડિજિટલ પ્લેટફોર્મના નિયમો** – સર્જનાત્મક સ્વતંત્રતા ક્યારેક મર્યાદિત.
6. **ટ્રેન્ડ વિ. સાહિત્યિક મૂલ્ય** – વાયરલ થવા માટે ક્યારેક ગુણવત્તાનો બલિદાન.
7. **વાચકનું ધ્યાન** – ટૂંકા સમયમાં અસરકારક અભિવ્યક્તિ કરવી પડકારરૂપ.

૧.૪- ગુજરાતી ભાષા અને ફેસબુક:

ફેસબુકે ગુજરાતી ભાષાને એક નવો મંચ આપ્યો છે. ગુજરાતી સાહિત્યકારો પોતાની કૃતિઓ લાખો વાચકો સુધી તરત પહોંચાડી શકે છે. નવલકથાકાર, કવિ, ગઝલકાર — બધા માટે આ પ્લેટફોર્મ પ્રેરણાદાયક બન્યું છે. એક તરફ યુવાનો ગુજરાતી ભાષાને રોમન લિપિમાં લખે છે, બીજી તરફ ઘણા ગુજરાતી ગ્રુપ્સ શુદ્ધ ગુજરાતી લિપિમાં સાહિત્ય સર્જન કરે છે. આ રીતે ફેસબુકે ગુજરાતી ભાષાને વૈશ્વિક સ્તરે પહોંચાડવામાં મહત્વપૂર્ણ યોગદાન આપ્યું છે.

૧.૫- ફેસબુક પર વિકસતી નવભાષા:

ઈન્ટરનેટ અને ખાસ કરીને ફેસબુકે માનવીની ભાષાને નવા સ્વરૂપો આપ્યા છે. તેને "**નવભાષા**" કહી શકાય.

૧. શબ્દપ્રયોગ:

- અંગ્રેજી, હિન્દી અને ગુજરાતી શબ્દો ભેગા કરીને લખવાની પ્રથા (Code Mixing).
- ટૂંકા શબ્દો : *GM* (Good Morning), *HBD* (Happy Birthday), *TC* (Take Care).
- ઈમોજી અને સ્ટિકર દ્વારા ભાવ અભિવ્યક્તિ.

૨. વાક્યરચના:

- લાંબા વાક્યોની જગ્યાએ નાના, સ્પષ્ટ અને ઝડપી સંદેશ.
- કાવ્ય-ગઝલ કે ગીતને પણ ટૂંકા "સ્ટેટસ"માં વ્યક્ત કરવી.

૩. સર્જનાત્મકતા:

- લોકો નવા શબ્દો ઘડે છે, હાસ્યપ્રદ મીમ કે શાયરી બનાવે છે.
- લોકગીત કે કહેવતોને આધુનિક રૂપ આપે છે.

૪. લોકભાષા અને શૈલી:

- ગ્રામ્ય બોલીથી લઈને શહેરી સ્લેંગ સુધી બધું જ સ્વીકાર્ય.
- ફેસબુક ભાષામાં લોકપ્રિય શબ્દો ઝડપથી ફેલાઈ જાય છે.

૫. અસર

- ગુજરાતી ભાષાના નવા શબ્દભંડારની રચના.
- યુવાનોમાં અભિવ્યક્તિનો આત્મવિશ્વાસ વધ્યો.
- પરંતુ, ક્યારેક શુદ્ધ ભાષા પ્રત્યે ઉદાસીનતા પણ જોવા મળે છે.

નિષ્કર્ષ:

ઈન્ટરનેટ અને ફેસબુક જેવા પ્લેટફોર્મ સાહિત્ય માટે માત્ર એક **નવું માધ્યમ** જ નથી, પરંતુ તેણે **નવ ભાષાઓ, નવી શૈલીઓ અને સર્જનાત્મકતાના નવા દરવાજા** ખોલ્યા છે. જો કે, ગુણવત્તા, નૈતિકતા અને મૂલ્યવાન સાહિત્ય વચ્ચે સંતુલન જાળવવાની જરૂર છે. ડિજિટલ યુગનું સાહિત્ય પરંપરાગત સાહિત્યને પડકાર આપે છે, પરંતુ સાથે સાથે તેને સમૃદ્ધ પણ બનાવે છે. ફેસબુક અને ઈન્ટરનેટે અભિવ્યક્તિ, સર્જનાત્મકતા અને સંચારને એક નવી દિશા આપી છે. તે પરંપરાગત માધ્યમોથી અલગ **નવમાધ્યમ** છે, જ્યાં દરેક વ્યક્તિ સર્જક છે. અહીં વિકસતી **નવભાષા** પરંપરાગત ભાષાની સીમાઓ તોડી તાજગી, ઝડપ અને સર્જનાત્મકતા આપે છે.ચોક્કસ પડકારો હોવા છતાં, ફેસબુકે માનવ સમાજને લોકશાહી સર્જનાત્મકતા, ત્વરિત સંવાદ અને ભાષાની નવી ઊર્જા આપી છે. ડિજિટલ યુગમાં ફેસબુક માત્ર સામાજિક નેટવર્ક નથી, પરંતુ તે એક સાંસ્કૃતિક ક્રાંતિનું કેન્દ્ર છે.

संदर्भ :

- Bhatt, I. (2019). *Gujarati language and its evolution: A historical perspective*. Gujarat University Press.
- Chaudhary, P., & Shah, M. (2020). *The role of HEIs in promoting regional languages: A study of Gujarati*. Indian Journal of Language and Cultural Studies, 12(2), 98–112.
- Desai, A. (2019). *Gujarati language in the digital age: Challenges and opportunities*. Sahitya Academy Journal.
- Joshi, M. (2021). *Digital Media and Creative Writing in India*. New Delhi: Orient Blackswan.
- Shah, R. (2022). *Social Media and Literature: A Contemporary Study*. Journal of Humanities and Digital Studies, 8(1).

- **Castells, M. (2009).** *Communication Power*. Oxford University Press.
  (ઈન્ટરનેટ અને ડિજિટલ સંચાર પર આધારિત પુસ્તક.)
- **Danah Boyd (2014).** *It's Complicated: The Social Lives of Networked Teens*. Yale University Press.
  (યુવાનો અને સોશિયલ મીડિયાની ભાષા-સંસ્કૃતિ વિષે વિશ્લેષણ.)
- **Gujarati Literature on Internet (Various Articles, Blogs, Forums).**
  (ગુજરાતીમાં ઈન્ટરનેટ પર સર્જનાત્મકતાના ઉદાહરણો.)
- **Times of India, Divya Bhaskar, BBC Gujarati – Online Portals.**
  (ગુજરાતીમાં ફેસબુક-ઈન્ટરનેટ ઉપયોગ વિશેના અહેવાલો.)
- **Open-access Research Journals** – *Indian Journal of Language and Cultural Studies*, *Journal of Communication Studies*.
  (નવમાધ્યમ અને ભાષા વિશેનાં મફત ઉપલબ્ધ સંશોધન લેખો.)

સંપર્ક સૂત્ર : 9428074307 Sadhnachandegra2012@gmail.com

Author : Dr. SADHANA RANCHHOD TANK

COLLEGE : Kapadia N.M.M.S. Arts and The S.N.S.B.S. Commerce College, sankheda

Adhyapak Sahayak (Asst. Prof.), GUJARATI Departent

UNIVERSITY : GOVIND GURU UNIVERSITY-GODHARA

EMAIL: sadhnachandegra2012@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Sept. 2025 Page No. : 202-210

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

சூழலியல் பார்வையில் "ஒரு கிராமம் சாகிறது"-கவிதைத்திறனாய்வு

முனைவர் இரா. சரஸ்வதி
உதவிப்பேராசிரியர், தமிழ்த்துறை,
SDNB மகளிர் வைணவக் கல்லூரி, குரோம்பேட்டை, சென்னை-44

குறிப்புச்சொற்கள் :

சூழலியல், கவிதையின் விளக்கம், நவீனக்கவிதை, சூழலியல் பார்வையில் ஒரு கிராமம் சாகிறது பகுப்பாய்வு,வேளாண் வீழ்ச்சி, இயற்கையோடு இயைந்த வாழ்வு, சுற்றுச்சூழல் பாதிப்பு,கலைகளின் அழிவு, சூழல்-கலாச்சார உறவு.

அறிமுகம்

இலக்கியம் என்பது சமுதாயத்தைப் பிரதிபலிக்கும் கண்ணாடி மட்டுமல்ல. அது மனிதனின் வாழ்வியல், கலாச்சாரம், சூழலுடன் பிணைந்த நுண்ணறிவுகளை வெளிப்படுத்தும் கருவியாக உள்ளது. குறிப்பாக, கவிதைகள் புலன்களின் வாயிலாக ஒரு சமூகத்தின் உணர்வுகளையும், இயற்கையையும் கொண்டாடுகின்றன. இயற்கை-சுற்றுச்சூழல், மனித வாழ்வியல் ஆகியவற்றின் ஒருங்கிணைந்த வடிவமாகவும் திகழ்கிறது. அது இன்று நாம் சந்திக்கும் மிக முக்கியமான பிரச்சனைகளான பசுமை அழிவு, நீர்தட்டுப்பாடு, பல்லுயிர்களின் அழிவு, உலர்ந்த நிலங்கள் போன்ற சூழலியல் சிக்கல்களை உள்ளடக்கியது.

நவீன இலக்கியப் படைப்புகள் பெரும்பாலும் சூழல் அழிவை, தொழில்மயமாதலின் பாதிப்புகளை, மனிதன் இயற்கையோடு கொண்டிருந்த உறவின் சிதைவுகளை வெளிப்படுத்துகின்றன. குறிப்பாகக் கவிதைகள், சமூகச் சிந்தனைகளோடு சேர்ந்து சுற்றுச்சூழல் சிக்கல்களையும் உயிரோட்டமாகப் பதிவு செய்கின்றன.

சூழலியல்

நம்மைச் சுற்றியுள்ள காடு கடல் மலை, வயல், பாலை ஆகிய அனைத்தையும் உள்ளடக்கியதே சூழலியம். அதில் வாழும் உயிரினங்கள், மலர்கள், நிலத்திற்கான பொழுதுகள், இசைக்கருவிகள், தெய்வங்கள் அனைத்தையும் சேர்த்ததே சூழலியம். சூழலியல் என்பதே கொடுத்தலும் பெறுதலுமே. சூழலியல் அடிப்படையிலேயே நம் முன்னோர் நிலத்தைக் குறிஞ்சி, முல்லை, மருதம், நெய்தல் என்று வகைப்படுத்தினர். பாலை என்பதை,

முல்லையும் குறிஞ்சியும் முறைமையின் திரிந்து
நல்லியல்பு இழந்து நடுங்கு துயர்உறுத்துப்
பாலை என்பதோர்படிவம் கொள்ளும்![1]

குறிஞ்சியும் முல்லையும் தன்னியல்பில் மாறும் போது பாலை என்று பெயர் பெறும் என்று நிலப்பாகுபாட்டைத் திணைப் பாகுபாட்டாய்ச் செய்திருந்தனர்.

மனித செயல்பாடுகளுக்கும் குறிப்பாக கவிதை எழுதுவதற்கும் அதை உருவாக்கும் சூழலுக்கும் இடையிலான தொடர்புகளை வரைவதில் சூழலியல் கவனம் செலுத்துகிறது. 20 ஆம் நூற்றாண்டில் பிற்பகுதியில் சூழலியல் பற்றிய விழிப்புணர்வும் அதன் தேவையும் அதிகரித்து வந்துள்ளது. இயற்கையையும் சூழல் சார்ந்த அக்கறையையும் வெளிப்படுத்தும் கவிதைகள் இன்று பரவலாக எழுதப்படுகின்றன

சூழலியல் கவிதைகள் எழுதும் தமிழ் கவிஞர்கள் இயற்கையும் அதன் அழிவுகளையும் தங்கள் கவிதைகளில் பதிவு செய்கின்றார்கள். இன்றைய தமிழ் கவிஞர்கள் இயற்கையை மனிதச் செயல்பாடுகளின் எதிர்மறை விளைவுகளில் இருந்து பாதுகாப்பதன் முக்கியத்துவத்தை தங்கள் கவிதைகளில் பதிவுசெய்யத் தவறுவதில்லை. சூழலில் சார்ந்த படைப்புகள் வெறும் கதை கட்டுரைகளோடு நின்று விடாமல் கவிதைகளாகவும் உருவாகி வருகின்றன.

எது கவிதை :

“உள்ளத்து உள்ளது கவிதை
இன்ப உருவெடுப்பது கவிதை
தெள்ளத் தெளிந்த தமிழில் உண்மை
தெரிந்து உரைப்பது கவிதை” [2]

என்று கவிதைக்கு கவிமணி விளக்கம் கொடுக்கிறார். ஆனால் நவீன கவிதைகள் எப்படி இருக்க வேண்டும் தெரியுமா?

"தெளிந்த சிற்றோடை போல் சிரித்தோடி கலைத்துவ மணம் பரப்ப வேண்டும். வரிகளின் மொழிகள் நளினமாகத் தாளமுடன் நடனமாடி கீதம் போல், வீணையின் நாதம் போல் ஒலித்து நெஞ்சில் அரங்கேற வேண்டும்.வெறும் சொற்களை மட்டும் சுடவிட்டுப் பட்டாசு போல் வெடிக்க விட்டால் பார்க்க விந்தையாகவும் வேடிக்கையாகவும் மனதைத் துள்ள வைக்கும்! ஆனால் அவையெல்லாம் ஒளியற்ற விண்ணில் புகையாக மறைந்து மண்ணில் குப்பையாக நிறைந்து மாசுகளாக மண்டிக்கிடப்பவை" என்கிறார் வைகைச் செல்வி .

'வார்த்தை விதை ஒன்று
மூளைக்குள் தெறிக்க
முளைவிட்டு உணர்வுக்குள்
கணுக் கணுவாய் பயிர் வளர
செங்குருதிப் புனல் பாய
மண்ணுக்குள் அடிக்கரும்பாய்
மனசெல்லாம் சர்க்கரையாய்
நெஞ்சுக் குழிக்குள்ளே
இறங்கி வழிந்தோடி
உறங்கும் உயிர் பந்தை
உசுப்பிப் புரட்டுவது கவிதை'[3]

என்று கவிதைக்கு அழகான விளக்கம் தருகிறார் கவிஞர் வைகைச் செல்வி.

கவிதையின் தனித்துவம் :

கவிதையின் தனித்துவ பண்பு சுருங்கச் சொல்லி விளங்க வைத்தல். சுருங்கச் சொல்லி சுவையை அளித்தல். காவிய கம்பனின் இராமகதை போல், கண்ணதாசன் படைத்த இயேசு காவியம் போல் பசு மரத்து ஈட்டி போல் படிப்போரின் உள்ளத்தில் பாய்ந்து தைத்து குருதியுடன் கலக்க வேண்டும்.

சுருங்கச் சொல்லி கதை புனையும் கவிதை ஒரு குட்டி திரைப்படம். கருத்தாட்சி, கரு **(Theme)** ,சொல்லாட்சி, நடையாட்சி **(style)** ,அணியாட்சி மூலம் உள்ளத்தைக் கவர்ந்த கவிதையே காலத்தால் அழியாத கவிதையாக என்றும் நிலைத்திருக்கும்.

ஒரு கிராமம் சாகிறது :

சங்க இலக்கியத்தில் இருந்து இன்றைய இலக்கியம் வரை இயற்கையைப் பாடுவதில் தமிழ் இலக்கியத்திற்கு இணை தமிழ் இலக்கியமே. இயற்கை அழிந்தால் வாழும் சமூகமும் வருங்கால சந்ததியினரும் இன்னும் உயிர்பெறாத உயிரினங்களுக்கும்

கூட அழிவைத் தரும் என்பதை உணர்த்தும் கவிதையே மீனாட்சி எழுதிய" ஒரு கிராமம் சாகிறது".

"ஒரு கிராமம் சாகிறது" என்ற கவிதை, பெயரிலேயே சூழலியல் வலியுறுத்தலைக் கொண்டுள்ளது. ஒரு கிராமம் மரணத்தை நோக்கிச் செல்கிறது என்பதை சித்தரிக்கும் இந்தப் பாடல், உண்மையில் மனிதனின் அலட்சியத்தாலும், இயற்கை வளங்களின் வீழ்ச்சியாலும், தொழில்மயமாதலின் அழுத்தங்களாலும் உருவாகும் சூழல் சிதைவின் சான்றாகத் திகழ்கிறது.

மிகச் சாதாரணமாகத் தொடங்கும் இப்பாடல், சோககரமான யதார்த்தங்களை உரத்த குரலில் வெளிப்படுத்துகிறது. இது ஒரு கிராமம் பற்றிய பாடலாக மட்டுமல்லாது, சூழலியல் அழிவின் புனைவான ஆவணமாகவும் திகழ்கிறது.

சூழலியல் பார்வையில் ஒரு கிராமம் சாகிறது பகுப்பாய்வு

1.நீர்ப்பற்றாக்குறை/வேலையில்லாத் திண்டாட்டம்:
ஒரு சமுதாயத்தை சார்ந்த மக்கள் தான் வாழும் வாழ்விடத்தை விட்டு புலம்பெயராமல் இருக்க வேண்டுமெனில் அங்கு அவர்தம் வாழ்வாதாரமான உணவு, உடை, உறையுள் போன்ற அத்தியாவசிய தேவைகள் பூர்த்தியாக வேண்டும்.

ஒருகிராமம் சாகிறது கவிதையில் சுட்டிக்காட்டப்படும் இளைஞர்கள் காய்ந்த வைகை மணல் போல் உதிர்களாகி விட்டார்கள். கையை மண் மீது வைக்கும் போது நீர் ஊற்று பெருக்கெடுக்கக்கூடிய வைகை ஆறு, இன்று மணல் திட்டுக்களாய்க் காட்சியளிக்கின்றது. அதுவும் ஈரக்கசிவுடைய மணல் அன்று. வெயிலின் கொடுமையால் காய்ந்து உதிரிகளாகி விட்ட மணல் .

மணல் வெயிலில் காய்ந்து காற்றில் உதிரிகள் ஆகிவிட்டது போன்று இளைஞர்கள் படித்து தங்கள் ஊரிலேயே வளமாய் வாழ வழியின்றி வைகை மணல் போல் உதிரிகளாகி விட்டார்கள் என்பதை வருத்தத்தோடு தெரிவிக்கின்றது இந்த கவிதை.

"எங்கள் இளைஞர்கள் காய்ந்த வைகை மணல் போல்
உதிரிகளாகி விட்டார்கள்"[4]

கவிதையில் ஆறுகள் வற்றுகின்றன. நீர் இல்லாமை வாழ்வின் அடிப்படைத் தேவையைச் சீரழிக்கிறது.இது சூழலியல் நெருக்கடியின் முக்கிய அங்கம்.

2. வேளாண்மையின் வீழ்ச்சி

மரங்கள் வெட்டப்படுவதால் மழை வற்றிப் போகின்றது. மழையின்றி நெல் வயல்கள் காய்ந்துவிடுதல் விவசாயத்தின் அழிவைக் குறிக்கிறது. தொழில் மயமாதலால் விவசாயிகள் நிலத்தை இழக்கிறார்கள். இயற்கை வளங்களின் குறைவாலும் பசியின் சாபம் மேலோங்குகிறது.சொந்த மண்ணில் தம் வாழ்வாதாரம் தடைபடும் போது அதனைத் தேடி மக்கள் செல்வது இயல்பே எனும் கருத்தைப் படம் பிடித்துக்காட்டுகிறது.

"எங்கள் இளைஞர்கள் காய்ந்த வைகை மணல் போல்
உதிரிகளாகி விட்டார்கள்" [5]

3. இயற்கையோடு இயைந்த வாழ்வு:

இளமைப் பருவம் என்பது கவலைகள் இன்றி வானில் சிறகடித்து பறக்கும் அழகிய காலம் அது. பிரச்சனைகளின் ஊடாக வருந்தும் பெரியோர்கள் கூட குழந்தையாகவே இருந்திருக்கக் கூடாதா என்று ஏக்கம் கொள்ளச் செய்யும் பருவம் அது. அத்தகைய குழந்தை பருவத்தில், 'சின்னப் பிள்ளைகளின் முகத்தின் மேலே திடீரென முதுமை மேடுகள்' ஏன் இந்த திடீர் மாற்றம் ?

“வெள்ளரிப் பிஞ்சுகளைக் கடித்தபடி
வேலன் சதங்கையுடன்
ஆலம் விழுதுகளில்
ஊஞ்சலிட்டுக் களித்தாடிய
சின்னப் பிள்ளைகளின் முகங்களிலே
திடீரென முதுமை மேடுகள்” [6]

மரங்கள் அழிக்கப்பட்டு அதனால் அம்மரத்தில் வாழும் உயிரினங்கள் நாசமாவதையும் ஆலம் விழுதுகளில் மகிழ்ந்து விளையாடிய சின்னப்பிள்ளைகள் தங்களின் மகிழ்ச்சி பறிபோன வருத்தத்தில் முகங்களில் சோகம் படர முதுமை மேடிட்டது போன்று காட்சியளிக்கின்றனர். இது, இயற்கையும் மனிதனும் ஒன்றுடன் ஒன்று

பின்னிப்பிணைந்ததே என்பதைக் காட்டுவதாய் அமைந்துள்ளது . இயற்கையின் அழிவு மனிதகுலத்தின் அழிவையே காட்டுகின்றது.

"கணக்கால் கொலுசு கீதமிட
கண்ணாடி வளை பேச
சிற்றோடையில் மஞ்சள் குளித்து
ஈரச்சேலையுடன்
தெம்மாங்கு நடை நடந்து
தெருக்களைக் கவிதைக் களமாக்கிய
கன்னிப் பெண்களின்
கருங்கண்களில்
சிவப்பு வரிகளே மிச்சம்"[7]

இது, கன்னிப்பெண்களின் கலகலப்பும் கனவுகளும் கலைந்து அழுது சிவந்த கண்களில் சிவப்பு வரிகளே மிச்சமாக உள்ளதைக் காட்டுகின்றது.

4.சுற்றுச்சூழல் பாதிப்பு

நிலம்,நீர், காற்று ஆகிய மூன்று இயற்கை நமக்கு அள்ளிக் கொடுத்த கொடை. அதனைப் பேணிப் பாதுகாத்து நாமும் துய்த்து அடுத்த தலைமுறைக்கும் பத்திரமாய்க் கைமாற்றிக் கொடுப்பது நம் கடமை. ஆனால் நாமோ முடிந்தவரை அதைச் சீர்குலைப்பதிலேயே முனைப்பாய் இருக்கிறோம்.

"கனவுச்சிலிர்ப்புகளையும்
மூக்கு நுனி புன்னகைகளையும்
விரைவு வண்டி புகைகள்
கொண்டு போய் நாளாச்சு." [8]

புகைவண்டி புதிதாய் கிராமத்திற்கு விடப்பட்ட போதும் அதற்காக அழிக்கப்பட்ட மரங்கள் எத்தனை எத்தனை. புகைவண்டி வெளிவிடும் புகையால் கனவுச்சிலிர்ப்பும் புன்னகையும் மறைந்து போனதைக் காற்று மாசுப்படுவதுடன் ஒப்பிட்டுப் பார்க்க முடிகின்றது.

"மாடப்புறா பறந்த திசையெல்லாம்

கிழிசல் கிழிசலாய்க் கட்சிக் கொடிகள்.
கிராமத்தின் குரல்வளை நெரிக்கும்
மலை பாம்பு வாய் கொண்ட
யானைநிற ஒலிபெருக்கிகள்”[9].

மரங்கள் அழிந்ததால் அதில் வாழும் உயிரினங்கள் விரட்டப்பட்டன. பறவைகள் பறந்த திசைகளில் கட்சிக்கொடிகள் பறக்கும் அவலநிலைக்கு கிராமம் தள்ளப்பட்டது. அமைதியே உருவாய்க்கொண்ட கிராமம் ஒலிப்பெருக்கியின் சத்தத்தால் மாசடைந்து கிடக்கிறது.

5.கலைகளின் அழிவு:

மனம்மகிழ்வான தருணங்களிலெல்லாம் ஆடிப்பாடி களித்த மக்கள் இன்றோ சினிமாக் கொட்டகையில் சிக்குண்டுத் தவிக்கின்றனர்.

“சுங்கடிப் புடவை சுற்றி
செவ்வந்திப் பூச்செருகி
செந்தூரப் போட்டு மின்ன
மாரியம்மன் கும்மி தட்டி
குரவையிட்ட பெண்ணழகு
சினிமாக் கொட்டகைகளில்
கசங்குகிறது” [10]

அறிவியல் கண்டுபிடிப்புகள் மனிதனின் ஆக்கப்பூர்வமான வளர்ச்சியைக் காட்டியபோதும், அவற்றால் பாரம்பரிய கலைகள் நசுக்கப்படுவது ஏற்புடையதன்று.

6.சூழல் – கலாச்சார உறவு:

கிராமம் என்பது தமிழரின் அடையாளம். இயற்கை அழிவு கிராமத்தின் கலாச்சார அழிவையும் குறிக்கிறது. கரிசல் மண் விளைச்சலுக்கும் துணிச்சலுக்கும் பெயர் பெற்றது. அம்மண்ணின் விளைச்சல் நிலங்கள் அழிக்கப்பட்டு தொழிற்சாலைகள் உருப்பெறுகின்றன. பஞ்சாலைகளில் இருந்து பறக்கும் துகள்கள் எல்லை காக்கும் அய்யனாரையே இடம் பெயரச்செய்து விட்டதை,

“எங்கள் கரிசல் மண்ணின்
வீரமும் தீரமும் காட்டிய
கருவிழிகளில்
ஆலைப்பஞ்சுத் துகள்கள்
ஒட்டிக்கொண்ட
அந்த
முதல் நாள் அன்றே
எல்லை கொண்ட அய்யனார்
எடுத்துக் கொண்ட முதல் காவு
எங்கள் கிராமியமே.
சுயம்புக்குமா சாவு”[11]

என்ற வரிகள் சுட்டுகின்றன. தொழில் மயமாதல் நாட்டின் வளர்ச்சிக்குத் தேவையான ஒன்றுதான் என்றாலும் அதற்காக கிராமங்கள் அழிக்கப்படுவதும் அதன் எழில் சிதைக்கப்படுவதும் ஏற்புடைத்தன்று.

தொகுப்புரை

- "ஒரு கிராமம் சாகிறது" என்பது வெறும் கவிதை அல்ல; அது ஒரு சூழலியல் எச்சரிக்கை மணி.
- கிராமத்தின் மரணம் என்பது சூழலின் மரணத்தைச் சுட்டுகிறது.
- இயற்கையைப் புறக்கணிக்கும் மனித சமுதாயம், தன்னைத்தானே அழித்துக்கொள்வதைப் பாடல் தெளிவாகக் காட்டுகிறது.
- சூழலியல் விமர்சனத்தின் அடிப்படையில் பார்க்கும்போது, இந்தப் பாடல் மனிதனை இயற்கையோடு மீண்டும் இணைக்க முயற்சிக்கும் ஒரு அழைப்பு.
- வறட்சி, நீர் பிரச்சினை, தொழிற்சாலைகளின் மாசு, பசுமை அழிவு போன்றவை நவீன உலகின் மிகப் பெரிய சவால்கள்.
- மனிதனின் பேராசை, தொழில்மயமாதல், இயற்கையைப் புறக்கணித்தல் ஆகியவற்றின் விளைவுகளை இந்தக் கவிதை எச்சரிக்கிறது.

அடிக்குறிப்புகள்

1.சிலப்பதிகாரம்(காடுகாண் காதை, 64-66)

2.தமிழ் இலக்கிய வரலாறு-ஸ்ரீசந்திரன் ப.344

3. வைகைச் செல்வி- ஒரு கவிதையும் பல கவிதைகளும்

4.ஒருகிராமம் சாசிறது- இரா. மீனாட்சி ப.51

5.மேலது ப.52

6.மேலது ப.51

7.மேலது ப.51

8.மேலது ப.51

9.மேலது ப.52

10.மேலது ப.53

11.மேலது ப.52

துணை நூல் பட்டியல்

- சு.சரவணன். *சூழல் இலக்கியக் கொள்கைகள்.* திருச்சி: அன்னம் பதிப்பகம், 2015.
- பா.ராசேந்திரன். *இயற்கை மற்றும் தமிழ் இலக்கியம்.* கோயம்புத்தூர்: மனிமேகலை, 2002
- இரா.மீனாட்சி,ஒருகிராமம் சாகிறது.
- கு. வெ. பாலசுப்ரமணியம்-சங்க இலக்கியக் கொள்கை
- ந. சுப்பு ரெட்டியார்-தொல்காப்பியம் காட்டும் வாழ்க்கை
- வைகைச் செல்வி ,ஒரு கவிதையும் பல கவிதைகளும்.
- வ.மீ.சாமிநாதன். *தமிழ் கவிதைகளில் இயற்கை.* மதுரை: புத்தக வெளியீடு, 2005.
- இரா.இராசமாணிக்கன். *தமிழ் இலக்கியத்தில் சூழல் சிந்தனைகள்.* சென்னை: நியூ செஞ்சுரி புக் ஹவுஸ், 2010

புலனம்: 9710689903

saraswathy.r@sdnbvc.edu.in

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Sept. 2025 Page No. : 211-213

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट के कहानी संग्रह 'जिंदगी जीने के वास्ते' की कहानियों में जीवन-विमर्श

डॉ. इन्दु. पी.

सहायक प्राध्यापक, एम. ओ. पी. वैष्णव महिला महाविद्यालय, नुंगमबक्कम, चेन्नई।

भूमिका :-

हिंदी साहित्य की समृद्ध परंपरा में कहानी एक ऐसा साहित्यिक रूप है, जिसने समय-समय पर समाज की यथार्थवादी तस्वीर को शब्दों में ढालने का काम किया है। कहानीकार अपने युग के सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक और नैतिक पक्षों को कथ्य और शिल्प के माध्यम से पाठकों के सामने प्रस्तुत करता है। इसी संदर्भ में डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट का नाम विशेष उल्लेखनीय है। उनका कहानी संग्रह "जिंदगी जीने के वास्ते" जीवन की जटिलताओं, मानवीय संवेदनाओं और समाज के बदलते मूल्यों की गहन पड़ताल करता है।

इस संग्रह की प्रमुख कहानियाँ– '"लाडली", '"बहू के पैर"', '"दहलीज"', '"जिंदगी जीने के वास्ते"', '"देर है, पर..."', '"उनकी ठिठोली"', '"मिलाप"', '"महानदी"', '"दो भाई"', और '"हँसते जख्म"'' जीवन के विविध विमर्शों को उद्घाटित करती हैं। इन कहानियों में स्त्री-जीवन, पारिवारिक संबंध, सामाजिक विषमता, पीढ़ीगत संघर्ष, मानवता की तलाश और यथार्थ का चित्रण गहरे प्रभाव के साथ मिलता है।

कथाकार का व्यक्तित्व और कृतित्व :

डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट साहित्यकार ही नहीं, एक संवेदनशील समाजचिंतक भी हैं। वे अपने जीवनानुभवों, वकालत के क्षेत्र से जुड़े अनुभवों और समाज की विसंगतियों को कहानियों के माध्यम से सामने लाते हैं। उनकी रचनाओं में न्यायप्रियता, नैतिकता, मानवीय मूल्यों और संवेदनाओं की रक्षा की गहरी चिंता दिखाई देती है। वे पात्रों के माध्यम से समाज की परतें खोलते हैं और पाठक को सोचने पर विवश कर देते हैं।

1. लाडली : स्त्री जीवन का संवेदनात्मक विमर्श :

यह कहानी स्त्रियों की स्थिति, उनकी उपेक्षा और घर-परिवार में उनके महत्व को रेखांकित करती है। "लाडली" नाम से ही यह संकेत मिलता है कि स्त्री घर में प्रिय और मान-सम्मान की हकदार होनी चाहिए। लेकिन सामाजिक व्यवस्था में कहीं न कहीं बेटी और बहू दोनों के प्रति दृष्टिकोण भिन्न होता है। डॉ. सिहाग ने इस कहानी में स्त्री के आत्मसम्मान, अधिकार और भावनात्मक संघर्ष को बड़े मार्मिक ढंग से प्रस्तुत किया है।

2. बहू के पैर : परंपरा बनाम आधुनिकता का विमर्श :

भारतीय परिवारों में बहू के आगमन से जुड़े रीति-रिवाज और अपेक्षाएँ इस कहानी का आधार हैं। परंपरा

में बहू के पैर पूजे जाने का प्रतीकात्मक महत्व है, किंतु कहानी यह प्रश्न उठाती है कि क्या यह आदर व्यवहार में भी उतरता है? बहू को सम्मानित करना मात्र औपचारिकता न होकर वास्तविक मान्यता का विषय है। यह कहानी आधुनिक पारिवारिक मूल्यों और स्त्री की गरिमा के पक्ष में खड़ी दिखाई देती है।

3. दहलीज : सीमाओं और संघर्षों का विमर्श :

"दहलीज" कहानी स्त्री–जीवन की सीमाओं का प्रतीक है। एक ओर घर की चौखट है, जिसके भीतर स्त्री की जिम्मेदारियाँ और अपेक्षाएँ बंधी हैं, तो दूसरी ओर बाहर की दुनिया है, जहाँ उसकी स्वतंत्रता और अस्तित्व की खोज है। दहलीज केवल घर का हिस्सा नहीं, बल्कि स्त्री के सामाजिक बंधनों और मानसिक संघर्षों का प्रतीक है।

4. जिंदगी जीने के वास्ते : अस्तित्व का विमर्श :

यह शीर्षक कहानी संग्रह का भी नाम है और संग्रह की केंद्रीय संवेदना को प्रकट करती है। इस कहानी में जीवन के संघर्ष, छोटे–छोटे सुख और अस्तित्व की निरंतर लड़ाई सामने आती है। लेखक यह संदेश देते हैं कि जीवन केवल सांस लेने का नाम नहीं है, बल्कि संघर्षों के बीच भी सम्मानपूर्वक जीने की कला है।

5. देर है, पर.. : आशा और उम्मीद का विमर्श :

यह कहानी निराशा से जूझते मनुष्य के लिए आशा का दीपक जलाती है। शीर्षक ही संकेत देता है कि न्याय, प्रेम या परिवर्तन भले ही देर से आए, पर आता अवश्य है। इस कहानी में लेखक ने जीवन के संघर्षशील पक्ष और इंसानी जिजीविषा को मार्मिकता के साथ प्रस्तुत किया है।

6. उनकी ठिठोली : व्यंग्यात्मक विमर्श :

यह कहानी समाज में मौजूद दिखावे, पाखंड और हास्यास्पद स्थितियों को उजागर करती है। ठिठोली केवल हँसी–मजाक नहीं, बल्कि गहरी सामाजिक आलोचना का माध्यम है। पात्रों की गतिविधियों और संवादों के माध्यम से लेखक ने सत्ता और व्यवस्था पर व्यंग्य किया है।

7. मिलाप : संबंधों और संवेदना का विमर्श :

"मिलाप" कहानी रिश्तों की गर्माहट और आपसी समझ की आवश्यकता पर जोर देती है। समाज में बढ़ती दूरी, अहंकार और स्वार्थ के बीच मिलाप मानवीय रिश्तों की असली पहचान है। यह कहानी पाठक को यह सोचने पर विवश करती है कि यदि संवाद और प्रेम कायम रहे तो परिवार और समाज दोनों में सामंजस्य बना रह सकता है।

8. महानदी : प्रकृति और संस्कृति का विमर्श :

"महानदी" कहानी नदी के माध्यम से जीवन, संस्कृति और मानवीय प्रवाह को प्रस्तुत करती है। नदी केवल भौगोलिक इकाई नहीं, बल्कि सभ्यता और संस्कृति की धुरी है। इस कहानी में लेखक ने नदी को मानवीय पीड़ा और संघर्षों का साक्षी बनाकर प्रस्तुत किया है।

9. दो भाई : पारिवारिक संबंधों का विमर्श :

यह कहानी भाई–भाई के रिश्तों में बढ़ते स्वार्थ, विवाद और विघटन की ओर इशारा करती है। पारंपरिक संयुक्त परिवार से लेकर आधुनिक एकल परिवार की प्रवृत्ति तक, इस कहानी में भाईचारे का विघटन मार्मिकता के साथ सामने आता है।

10. हँसते जख्म : यथार्थ का विमर्श :

"हँसते जख्म" कहानी में लेखक ने जीवन की विडंबना को उजागर किया है। मनुष्य अपने दर्द और घावों को हँसी के पर्दे में छिपाता है। यह कहानी यथार्थवादी दृष्टि से बताती है कि समाज में अनेक लोग अपनी पीड़ा को ढँककर हँसते हुए जीने की कोशिश करते हैं।

विमर्शात्मक विश्लेषण :

इन दस कहानियों का अध्ययन करने पर स्पष्ट होता है कि :

- **स्त्री विमर्श :** "लाडली", "बहू के पैर", "दहलीज" जैसी कहानियाँ स्त्री के सम्मान, स्वतंत्रता और संघर्ष की आवाज हैं।
- **सामाजिक विमर्श :** "दो भाई", "मिलाप", "उनकी ठिठोली" कहानियाँ पारिवारिक और सामाजिक विषमता का चित्रण करती हैं।
- **अस्तित्व विमर्श :** "जिंदगी जीने के वास्ते", "हँसते जख्म" कहानियाँ मनुष्य के जीवन–संघर्ष और अस्तित्व की खोज को सामने लाती हैं।
- **सांस्कृतिक/प्रकृति विमर्श :** "महानदी" जैसी कहानियाँ मनुष्य और प्रकृति के रिश्ते को रेखांकित करती हैं।
- **आशा और भविष्य का विमर्श :** "देर है, पर..." कहानी संघर्षों के बीच उम्मीद की किरण जगाती है।

इस प्रकार यह संग्रह बहुआयामी विमर्शों से भरा हुआ है और जीवन की गहराइयों को विविध रूपों में प्रस्तुत करता है।

निष्कर्ष :

डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट का कहानी संग्रह "जिंदगी जीने के वास्ते" अपने भीतर जीवन की संपूर्णता को समेटे हुए है। इन कहानियों में पारिवारिक जीवन की जटिलताएँ, स्त्री की स्थिति, सामाजिक विषमता, रिश्तों का बदलता स्वरूप और जीवन–संघर्षों के बीच जीने का हौसला दिखाई देता है। कथाकार ने सरल भाषा, प्रभावी संवाद और संवेदनशील कथानक के माध्यम से पाठकों को न केवल कथा का आनंद दिया है बल्कि विचार के लिए भी सामग्री प्रदान की है।

यह संग्रह हिंदी साहित्य में उन रचनाओं की श्रेणी में आता है, जो समाज की बदलती मानसिकता और जीवन की सच्चाई को यथार्थ के धरातल पर चित्रित करती हैं। नरेश सिहाग की कहानियाँ केवल पढ़ने के लिए नहीं, बल्कि जीवन जीने की प्रेरणा देती हैं।

संदर्भ ग्रंथ :

1. सिहाग, नरेश। जिंदगी जीने के वास्ते (कहानी संग्रह)। भिवानी : बोहल प्रकाशन, 2022।

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Sept. 2025 Page No. : 214-217

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

इक्कीसवीं सदी के हिंदी उपन्यासों में किसान आत्महत्या

रघुवीर दान चारण

शोधार्थी, हिंदी विभाग, मिजोरम विश्वविद्यालय, आइजोल।

शोध सार :

21वीं सदी के हिंदी उपन्यासों में किसान आत्महत्या का विषय गंभीरता के साथ उभरा है। इस सदी के उपन्यासकारों ने किसान जीवन की इस त्रासदी को न केवल अपने कथा साहित्य में चित्रित किया है, बल्कि उन आर्थिक, राजनीतिक एवं सामाजिक कारणों को भी संवेदनशीलता के साथ उकेरा है जो किसान आत्महत्या की वजह बनते है। यह किसान आत्महत्याएँ सिर्फ घटना मात्र नहीं है, बल्कि एक पूरा षड्यंत्र है जो किसान के पास इसके अतिरिक्त कोई अन्य मार्ग शेष नहीं छोड़ता।

अखबारों की सुर्खियों के शीर्षक से किसान आत्महत्या पीछे की वजह समझे तो वह कर्ज की समस्या, पानी की समस्या आदि हो सकती हैं, लेकिन यहां पर प्रश्न यह उठता है कि किसान को कर्ज की आवश्यकता क्यों पड़ी? अगर किसी पारिवारिक वजह से उसने कर्ज लिया भी तो वह उसे चुका क्यों नहीं सका? और क्यों बात इतनी आगे बढ़ गई कि उसके पास आत्महत्या के अतिरिक्त कोई और विकल्प नहीं है? इन सभी प्रश्नों के के उत्तर 21वीं सदी के उपन्यासकारों ने दिए है।

मूल आलेख :

भारत में जब से बहुराष्ट्रीय कंपनियों का आगमन हुआ और खेती फॉर्म हाउसों में होने लगी तभी से किसानों की बदहाली का खेल शुरू होता है। देश में मल्टीनेशनल कंपनियों के आने तथा नई अर्थनीति लागू होने से किसानों का जीवन अस्त–व्यस्त हो गया है। आत्महत्या जैसी किसानों की घातक समस्या का सबसे पहले जिक्र 1990 ई० में प्रसिद्ध अंग्रेजी अखबार 'द हिन्दू' के ग्रामीण मामलों के संवाददाता पी० साईनाथ ने किया। किसान आत्महत्या के सन्दर्भ में पी० साईनाथ का कहना है कि– 'अच्छे मानसून के दौरान भी किसानों के आत्महत्या के ज्यादा मामले सामने आए हैं और सूखे के दौरान भी। कपास, गन्ना, मूंगफली, वनिला, काफी और काली मिर्च जैसी नगदी फसलें उगाने वाले किसान भी आत्महत्या करते हैं। वहीं धान और गेहूँ उपजाने वाले किसानों में आत्महत्या की दर कम है। तो क्या तर्क देना सही होगा कि सूखे से नगदी फसल वाले किसान आत्महत्या करते हैं, खाद्यान्न उत्पादन करने वाले नहीं। भारतीय खेती पर दक्षिण–पश्चिम मानसून का अहम प्रभाव पड़ता है, लेकिन मानसून की कमी किसानों की आत्महत्या का मुख्य कारण नहीं है। नकदी फसल के किसानों की आत्महत्या के ज्यादातर मामलों में कर्ज लागत का बढ़ना, सिंचाई का तरीका और फसल का उचित दाम नहीं मिलने की भूमिका ज्यादा होती है।'[1]

संजीव ने अपने उपन्यास 'फॉस' में किसानों के दुःख–दर्द और आत्महत्या जैसे ज्वलंत मुद्दों को उठाया है। इस उपन्यास में महाराष्ट्र के यवतमाल जिले के बनगाँव का चित्रण किया गया है। लेकिन इसमें आंध्रप्रदेश और कर्नाटक के किसानों सहित भारत के उन सभी किसानों की कहानियाँ भी शामिल हैं जिन्होंने जी०एम० बीजों का इस्तेमाल करने के लिए फुसलाया गया और फिर कर्ज दिया गया। प्राकृतिक आपदाओं की मार के कारण भोले–भाले किसानों की जिंदगी कर्ज और सूखे के बोझ तले इस तरह दबती गई और किसान आत्महत्या करने पर विवश होता गया। किसानों के द्वारा की गई आत्महत्या को पात्र और अपात्र को लेकर शासन तंत्र किस प्रकार परेशान करता है। आत्महत्या को पात्र बनाने के लिए रिश्वत की डिमांड की जाती है। किसानों की आत्महत्या जैसी गंभीर समस्याओं को संजीव इस प्रकार दिखाते हैं– 'ऐसे ही अकेले पड़ते–पड़ते लोग इतने अकेले हो जाते हैं कि जीवन ही व्यर्थ लगने लगता है, सोचते हैं मेरे जीने में क्या है और मरने में क्या। बल्कि मरना एक मुक्ति है और जीना एक बंधन। आये दिन तो आत्महत्या की खबरें सुनते रहते हैं। जिधर देखो उधर, कोई पेड़ की डाल पर लटका पड़ा है, कोई कुएँ में गिरा पड़ा है तो कोई कीटनाशक खाकर मुँह से झाग फेंक रहा है।"[2]

पानी जैसी समस्या को 'हलफनामे' उपन्यास में दिखाया गया है। जिसकी वजह से किसान आत्महत्या कर रहा है। स्वामीराम दो बार बेहतरीन काश्तकार का इनाम भी पा चुका था। लेकिन सूखे की वजह से बोरबेल लगाने के लिए स्वामीराम को वहां के लाला से कर्ज लेना पड़ता है। लाला से कर्ज इसलिए लेना पड़ा कि सरकार द्वारा इस एरिया को डार्क एरिया घोषित कर दिया गया है। इसी अवसर का लाभ उठाकर लाला महकमे से मिली भगत करके बोरिंग का धंधा शुरू कर किया। इस तरह वहाँ के छोटे किसान कर्ज में पूरी तरह डूब जाते हैं। जिसका जिक्र लेखक ने इस प्रकार किया है 'स्वामी की बस इतनी इच्छा थी कि अकाल का समाधान हो, खेत को जानवर को, आदमी को गुजारे लायक पानी मिले। इसके लिए वह कुछ भी करने को तैयार और तत्पर था। उसका धीरज अब घटता जा रहा था। लाला की सौदेबाजी के किए उसमें गुस्सा पैदा हो रहा था। पानी गाड़ने की बात से आँखों के सामने लाला की मूरत नाचने लगी।"[3]

मल्टीनेशनल कंपनियों के आने के बाद की कीमतों में हो रही वृद्धि बीजों और कीटनाशकों के दामों से देश के किसान को सही समय पर न तो बीज मिल पाता है और न ही सिंचाई की सुविधा हो पाती है। शिवमूर्ति ने 'आखिरी छलाँग' उपन्यास में इसका जीवंत उदाहरण इस प्रकार दिया है 'सोचा था इस साल वरुणा सरसों बोयेंगे। कहते हैं बड़ी अच्छी पैदावार होती है। लेकिन मौके से हाथ में पैसा न आ पाने के चलते नहीं बो सके। आलू का बीज खरीदने के किए पैसा जुटाना पहाड़ हो गया। दस रुपये किलो का बीज खरीद कर बोये थे। डर है कि तैयार होने तक आलू का रेट गिरकर दो रुपये किलो से भी नीचे न चला जाये। अषाढ़ बीतते–बीतते जैसे ही किसान के घर से निकल कर बाजार में पहुँची, फिर दस रूपये किलो बिकने लगती है। सारे हालात तो मर जाने के हैं। जिन्दा कैसे रहा जाये।'[4]

किसानी जीवन का दुःख–दर्द, खेती–बाड़ी सीमित और छोटी जोतों के खेतों से अधिक उपज देने के लिए महँगे खाद–बीज, कीटनाशक, बिजली, डीजल, ट्यूबवेल, जुताई–बुआई, मजदूरी, उपज को बाजार तक ले जाने का किराया भाड़ा आदि के लिए, बैंकों और अन्य वित्तीय संस्थानों से लिए गए कर्ज के मकड़जाल में फँस कर टूटते बिखरते, अपनी जमीने गंवाते, छोटे–बड़े किसान निराश और हताश के दलदल में फँसकर आत्महत्या कर रहे हैं। इसी मकड़जाल में फँसे पहलवान नामक एक किसान के माध्यम से कथाकार शिवमूर्ति ने 'आखिरी

छलाँग' उपन्यास में आत्महत्या करते किसान को दिखाया है। 'वे मन ही मन तत्काल खोपड़ी पर सवार खर्चों का हिसाब लगाने लगे। ट्यूबवेल का बिल सवा चार सौ रुपये। इंजीनियरिंग पढ़ रहे बेटे का मासिक खर्च डेढ़ हजार रुपये। खाद के लिए दो हजार रुपये। बैल का खुर ठीक न हुआ तो ट्रैक्टर से खेत की जोताई के लिए हजार–बारह सौ रुपये मोटा–मोटी पांच हजार रुपये। धान का भाव इस समय गिरकर पाँच सौ रुपये कुन्टल हो गया है। यही दो महीने रोका जा सके तो छः पौने छः सौ का रेट मिल सकता है लेकिन लगता है कि रोकना नहीं हो पाएगा।"[5]

पंकज सुबीर का उपन्यास 'अकाल में उत्सव' कहावतें और मुहावरे से लवरेज एक ऐसे किसान की दुःख भरी कहानी है जिसमें अत्यधिक वर्षा और ओले पड़ने से रामप्रसाद जैसे छोटे जोत के किसान की सारी फसल बर्बाद हो जाती है और मुआवजा भी नहीं मिलता। अब सवाल यह है कि दुबारा वह अपने खेतों में बीज कैसे बोए और अपने परिवार को दो वक्त की खाने की व्यवस्था कैसे करे? रात–दिन यही सोचता रहता था और अंत में जिंदगी से हार जाता है और आत्महत्या करने पर विवश हो जाता है। जिसका जिक्र उपन्यास में इस प्रकार है– 'म्यारे घर में तो पूँजी–भाँग खाने का भी पइसा नी है साब। जो था सब खेती में लगइ दिया था। फसल की आसवे बठ्या था कि सब सत्यानाश हुइ गयो। अबे तो छोरा–छोरी के खिलाने का भी पइसा नी है म्योरे पास। रिपोर्ट का सारू पइसा कहाँ से आएगा साब। रामप्रसाद ने दयनीय स्वर में उत्तर दिया।"[6]

इसकी कहानी दो एकड़ जमीन के जोत वाले छोटे किसान रामप्रसाद के इर्द–गिर्द घूमती है। किसान खेतों में रात–दिन जीतोड़ मेहनत करता है तभी तो फसलें भी अच्छी होती हैं परन्तु महाजन खलिहान पर ही फसल को उठवा लेता है। रामप्रसाद को इतना मिलता है कि वह शायद ही सालभर अपने परिवार वालों को खिला सके। खेत में जोतने बोने तथा अन्य खर्चों के लिए रुपयों की जरूरत के लिए अपनी पत्नी कमला का गहना महाजन के यहाँ गिरवी रखकर पूरा करता है। धीरे–धीरे एक एक करके सारे गहने महाजन के यहाँ बिक जाते हैं और अंत में गहनों के नाम पर मात्र एक गहना श्तोड़ीश ही बची है। जिसे रामप्रसाद बेचना नहीं चाहता फिर भी ऐसी विपत्ति आन पड़ती है कि उसे तोड़ी हमेशा के लिए बेचना पड़ता है।

अंत में रामप्रसाद बैंक द्वारा लिया गया कर्ज के फर्जीवाड़े का शिकार होता है। ऊपर से प्रकृति की मार से उसकी सारी फसल बर्बाद हो जाती है। बैंक के कर्जे को सुनकर उसे ऐसा सदमा लगता है कि वह आत्महत्या कर लेता है और अंत में भ्रष्ट शासन तंत्र के चलते उसे पागल सिद्ध कर दिया जाता है। जिसे लेखक ने उपन्यास में इस प्रकार दिखाया है– 'हाँ बैंक में उसके नाम से किसी ने फर्जी किसान क्रेडिट कार्ड बनवा लिया था, तब से बहुत परेशान थे वह। मेरे पास भी आये थे वह। कुछ परेशान भी थे और दिमागी हालत भी खघ्राब हो रही थी उनकी। कुछ तो भी बोल रहे थे। सदमा लगा था उनको।'[7] किस प्रकार किसान महाजनी, सामंती व्यवस्था सूदखोरी और कर्ज के दलदल में फैसकर आत्महत्या करने पर विवश हो रहा है।

निष्कर्ष :

किसानों का शोषण आजादी से पहले भी होता था और आज भी हो रहा है बशर्ते इनके शोषण का स्वरूप बदल गया है। आजादी से पहले किसान जमींदार, सामंत, सूदखोर और अंग्रेज शासकों से परेशान था। वहीं आज सरकारी बैंकों द्वारा लिया गया कर्ज से, साथ में प्राकृतिक आपदाओं से भी। देश को आजाद हुए 73 साल हो गए हैं। जिस उम्मीद के साथ किसानों और मजदूरों ने आजादी की लड़ाई लड़ी थी। आज भी वैसा कुछ नजर

नहीं आ रहा है। दिन–ब–दिन किसानों की स्थिति दूभर होती जा रही है। खेती से जुड़ा मेहनतकश पहले से ज्यादा दयनीय अवस्था में जी रहा है।

संदर्भ ग्रन्थ :

1. पी० साईनाथ, किसान आत्महत्या का गड़बड़ झाला, बीबीसी न्यूज, 14 जुलाई 2014
2. संजीव, फाँस, पृ. 43
3. राजू शर्मा, हलफनामे, पृ. 128
4. नया ज्ञानोदय, जनवरी, 2008 पृ. 79
5. शिवमूर्ति, आखिरी छलांग, नया ज्ञानोदय (पत्रिका) जनवरी 2008 पृ. 79
6. पंकज सुबीर, अकाल में उत्सव, पृ. 203
7. पंकज सुबीर, अकाल में उत्सव, पृ. 223

ई–मेल– rdcharan777@gmail.com

मोबाइल नंबर– 9928494969

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Sept. 2025 Page No. : 218-222

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

AI के युग में बाल साहित्य पर संभावित प्रभाव

भुवनेश्वरी .एस
पीएच डी, शोधार्थी,
उच्च शिक्षा और शोध संस्थान, दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा, चेन्नई।

आज का बालक कल का राष्ट्र निर्माता होता है। बालक के सर्वांगीण विकास हेतु बच्चों में शिशु अवस्था से ही मूल्यों का बीजारोपण शुरू किया जाता है। बाल साहित्य के द्वारा बच्चों का मार्गदर्शन करके उन्हें सकारात्मक दिशा देने का कार्य किया जाता है। समाज और राष्ट्र के निर्माण हेतु बाल साहित्य अत्यन्त आवश्यक होता है। बाल साहित्य का निर्माण बच्चों कई मानसिक, सामाजिक एवं नैतिक विकास को ध्यान में रखते हुए किया जाता है। जिसके माध्यम से बच्चा एक जिम्मेदार और जागरूक नागरिक बन सके।

बाल साहित्य का मुख्य उद्देश्य ही बच्चों में मानसिक, भावनात्मक और नैतिक विकास के साथ उन्हें उनमें, समाजिक, सांस्कृतिक चेतना और अपने देश के प्रति जागरूक बनाना भी है। बच्चों को जीवन में भले और बुरे के बीच का अंतर समझाना होता है, उन्हे अच्छे नागरिक बनाने एवं उनमें – कल्पनाशक्ति और सृजनात्मकता को बढ़ाव देना होता है।

बाल साहित्य के संबंध में पं. सोहनलाल द्विवेदी जी का विचार है कि "सफल बाल साहित्य वही है जिसे बच्चे सरलता से अपना सके और भाव ऐसे हों जो बच्चों के मन भाएँ। यों तो अनेक साहित्यकार बालकों के लिए लिखते रहते है किंतु सचमुच जो बालकों के मन की बात को बालकों की भाषा में लिख दे, वही सफल बाल साहित्य लेखक है।" 'बाल साहित्य' का नाम आते ही हमारे हमें समझ आता है कि शिशु, बालक और किशोर तीनों वर्गों के लिए उनकी मानसिकता की जान समझकर समय, समाज को देख कर लिखा गया है। जिसमें उनकी आयु के अनुरूप मनोरंजन, ज्ञान, व्यवहार, सामाजिकता तथा बौद्धिक विकास की प्रेरणा विद्यमान रहती हैं। बाल साहित्य के सृजन से पूर्व इन वर्गों को ध्यान में रखना आवश्यक है यदि नहीं रखा गया तो सारा साहित्य एक दूसरे की सीमा का अतिक्रमण कर सकता है जिसके कारण उसकी उपयोगिता संदिग्ध हो सकती है।

मनोविज्ञान के अनुसार 'आयु के आधार पर बाल–साहित्य को मुख्य रूप से तीन वर्गों मैं विभाजित किया जा सकता है –

1) 0–6 वर्ष – शिशु अवस्था – शिशु साहित्य।
2) 7–12 वर्ष – बाल्य अवस्था – किशोरावस्था।
3) 13 – 16 वर्ष – बाल साहित्य किशोर साहित्य।

बाल साहित्य जो कि प्रायः शिशु और बालकों की मानसिकता के अनुरूप ही अपनी सार्थकता को सिद्ध

करते है। आयु के साथ मानसिकता में परिवर्तन स्वाभाविक है और इस मानसिकता को ध्यान में रखकर लिखी गयी रचना ही श्रेष्ठ है।

आज समय के अनुरूप बाल साहित्य का अर्थ विस्तृत हो रहा है अर्थात मनोरंजन, ज्ञान, प्रेरणा तथा समसामयिक आवश्यकताओं की पूर्ति करने वाला साहित्य ही सच्चा बाल साहित्य है। आज इक्कीसवी सदी में बालकों कों बाल साहित्य से जोड़े रखना बाल साहित्यकारों के लिए एक बड़ी चुनौती का विषय है, क्योंकि आज का युग AI (एआई) का युग हो गया है।

1. सकारात्मक प्रभाव

(i) व्यक्तिगत रूचि के अनुसार सामग्री उपलब्धता :

आज के युग में AI अब व्यक्तिगत रुचि के अनुसार सामग्री उपलब्ध कराने में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है, चाहे वह शिक्षा हो, मनोरंजन हो या साहित्य हो। यह AI तकनीक हर क्षेत्र में बस कुछ ही क्षणों में उस विषय के अनुरूप साम्रगी प्रस्तुत कर देता है। जैसे बच्चों की पढ़ने की गति, रुचि और समझ के अनुसार, स्तर के अनुरूप सरल भाषा में परिणाम प्रस्तुत करता है। हर प्रकार के सवाल का जवाब AI के पास होता ही है। बच्चे AI से सवाल पूछ सकते है और उनके उत्तर को लिए उन्हें ज्यादा इतंजार नहीं करना पड़ता है। शायद इसकी इन्ही सुविधाओं के कारण AI आज हर घर का सदस्य बन गया है। एक ऐसा दोस्त जो हमसे बाते करें सके।

(ii) भाषा अनुवाद की सुविधा :

AI का नया मॉडल 200 भाषाओं में अनुवाद की सुविधा प्रदान करता है। AI की दुनिया ने अनुवाद के कार्यों को सरल एवं व्यापक बना दिया है। (एआई) कृत्रिम बुद्धिमत्ता की कई व्याख्याएँ है परंतु बुनियादी स्तर पर इसे मशीनों के माध्यम से मानवीय बुद्धिमत्ता के प्रतिनिधि के रूप में परिभाषित किया जा सकता है। AI को तकनीकी के आधार पर चार प्रकारों में बाँटा जा सकता है। प्रतिक्रियाशील, सीमित स्मृति, मन का सिद्धांत और आत्म जागरुक कृत्रिम बुद्धिमत्ता AI लिखित और मौखिक दोनों प्रकार के अनुवाद को कर सकता है। AI पर आधारित अनुवादिनी एप की मदद से 82 क्षेत्रीय भाषाओं का अनुवाद संभव हुआ है। प्रौढ साहित्य की अपेक्षा बाल–साहित्य समाज का अधिक कल्याण कर सकता है। उदाहरण के लिए समाज में जी समस्याएँ मौजूद है उनका निराकरण बाल मन की संस्कारी बना कर किया जा सकता है।

(iii) संवादात्मक कहानियों का विकास संवादात्मक कृत्रिम बुद्धिमत्ता :

एक ऐसी तकनीक है जो सॉफ्टवेयर को ध्वनि आधारित अर्थात मानवीय वार्तालापों को समझने और उनका उत्तर देने में सक्षम है। परंपरागत रूप से सॉफ्टवेयर के साथ मानवीय बातचीत पूर्व प्रोग्राम किए गए इनपुटी रही है, जहाँ उपयोगकर्ता पूर्व निर्धारित आदेश दर्ज करते हैं या बोलते है।

संवादात्मक ए आई आज हमारी आवश्यकता बन चुकी है। यह एक सहज ज्ञान युक्त उपकरण है, जो स्वाभाविक, रोजमर्रा की भाषा का उपयोग कर तकनीकी जुड़ाव या तकनीक के साथ बात करने में सक्षम बनाता है। वह हमारे फोन का वर्चुअल असिस्टेंट हो या स्मार्ट होम डिवाइस जो एलेक्सा, गूगल नेस्ट, गूगल होम आदि वॉयस एक्टिवेटेड असिस्टेंट (Voice Activated Assistant) ये ए आई के श्रेष्ठ उदाहरण है। आज इन संवादात्मक ए आई उपकरणों के द्वारा बच्चे या बड़े जिस प्रकार की भी कहानी या गीत, कविता और यहाँ तक

की चुटकुले भी ए आई इद्वारा सुना दिया जाता है। जिससे उनकी माँग की पूर्ति तुरंत हो जाती है। इस प्रकार संवादात्मक कहानियों का विकास AI के माध्यम से हो रहा है।

(iv) ऑडियो-विजुअल (AI) के माध्यम से कहानी सुनाने की नई तकनीकें :

ऑडियो विजुअल (एवी) एक इलेक्टॉनिक मीडिया है जिसमें ध्वनि और दृश्य दोनों घटक होते हैं। जैसे टेलीविजन कार्यक्रम, फिल्में, स्लाइड प्रस्तुतियाँ, कॉपोरेट कॉन्फ्रेंसिग, सर्च सेवाएँ और लाइन थिएटर प्रोडक्शंस आदि भाते हैं। एलसीडी प्रोजेक्ट, बीसीडी प्लेयर, कम्प्यूटर मल्टीमीडिया, वर्चुअल क्लासरूम आदि दृश्य और श्रव्य साम्रगी के विभिन्न प्रकार है जो कि बच्चों की प्रारंभिक शिक्षा में अपना महत्वपूर्ण स्थान रखता है। यह बच्चों की प्रत्येक स्मार्ट बोर्ड के द्वारा छात्रों का पूरा ध्यान सीखने पर केन्द्रित होता है इससे कक्षा में अनुशासन भी बना रहता है और इंटरेक्टिव सत्र के द्वारा बच्चों की तर्कशक्ति का विकास भी होता है जो कि बच्चों के शिक्षण में भी अपना स्थान सुनिश्चित कर चुका है। AI तकनीक ही संचार एवं मनोरंजन उद्योग की जीवन रेखा है। www. lenovo.com के सौजन्य से।

नकारात्मक प्रभाव एवं चुनौतियाँ :

आज का युग डिजिटल क्रांति का युग है जिसने हमारे जीवन के हर एक पहलू को परिवर्तित किया है, चाहे वह शिक्षा को क्षेत्र हो या मनोरंजन का क्षेत्र, इससे बाल साहित्य भी अछूता नहीं रह गया है। बाल साहित्य जिसका उद्देश्य न केवल मनोरंजन बलिक शिक्षा और संस्कारी का भी विकास करना है, आज अनेक प्रकार की चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है। डिजिटल क्रांति और ए आई के विकास ने जहाँ बाल साहित्य के नये मार्ग खोले हैं वही पारम्परिक बाल साहित्य के उद्देश्य और प्रभाव पर भी प्रश्न उठाये है।

(i) मानवीय संवेदनाओं की कमी :

आज की पीढ़ी एकल परिवार प्रणाली और डिजिटल क्रांति के कारण डिजिटल उपकरणों से है उतने ही अपनों से दूर होते जा जितने पास रहे हैं। आज सबका सच्चा दोस्त उनका मोबाइल ही है। माता–पिता और बच्चे एक ही घर में तो रहते है लेकिन उनकी दुनिया अलग हैं। जहाँ बच्चे नानी और दादी की कहानियों से दूर होते जा रहे हैं वहीं डिजिटल साम्रगी और उपकरणों से जुड़ते ही जा रहे हैं जिससे पुस्तकों और के प्रति लगाव और संवेदना घटती जा रही है। आज किसी लंबी यात्रा के दौरान भी अपने बाजू में बैठे व्यक्ति से संवाद न के बराबर ही गया है क्योंकि सोशल मीडिया ही लोगों का हमसफर बन गया है। बाल साहित्यकार सुदर्शन कहते हैं कि आज की "बाल कहानियों में चमक–दमक और तड़क–भडक अधिक है, लेकिन गहराई और संवेदना कम होती जा रही है। हमें इस संतुलन को पुनः स्थापित करना होगा।'

(ii) पारंपरिक लोककथाओं और सांस्कृतिक विरासत से दूरी :

बाल साहित्य ही किसी समाज की संस्कृति और शिक्षा के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण होता है। यह बच्चों के मानसिक, भावनात्मक और नैतिक विकास में आवश्यक तत्व होता है। लेकिन इक्कीसवी सदी में एआई और डिजिटल टेक्नोलॉजी ने हर व्यक्ति के जीवन शैली की प्रभावित किया है। स्मार्टफोन, टैबलेट और डिजिटल कटेंट की लोकप्रियता ने लोककथाओं और सांस्कृतिक विरासत के प्रति बच्चों के आकर्षण को कम किया है। जिससे बच्चों की सृजनतात्मकता पर को प्रभावित किया है।

भारत में बाल साहित्य की समृद्ध परम्परा रही है। पंचतंत्र, हितोपदेश, जातक कथाएँ, तेनालीराम की

कहानियाँ, अकबर और बीरबल के किस्से और लोककथाएँ हजारो वर्षों से बच्चों को नैतिक शिक्षा देने और अपनी संस्कृति से मनोरंजन के माध्यम से जोड़ने में सफल रही है। इन कथाओं के माध्यम से बच्चों में कल्पनाशीलता, व्यवहारिक ज्ञान और सही गलत की पहचान कराने में अपना महत्वपूर्ण योगदान देती रही है। लेकिन आज के तकनीकी प्रगति ने बालको की दुनिया को बदल दिया है। बच्चे मोबाइल टेबलेट और ऑडियोबुक्स से विदेशी भाषा और हिंसात्मक कार्टून एवं ऐनिमेटेड कहानियों से आकर्षित हो रहे है जो कि अंग्रेजी भाषा और अन्य विदेशी भाषाओं से जुड़कर अपनी संस्कृति संस्कृति को भूलते जा रहे हैं।

(iii) बच्चों की कल्पनाशक्ति में कमी और स्वास्थ्य पर प्रभाव :

प्रख्यात बाल मनोवैज्ञानिक और लेखक डॉ. कृष्ण कुमार ने अपनी पुस्तक 'डिजिटल युग में बालमन (2019) मैं तकनीकी प्रभावों के कारण बच्चों में पठन आपत में आए परिवर्तनों का विश्लेषण किया है। लेखक कहते है "कि वह आज के बच्चे ज्ञान के स्रोत के रूप में पुस्तकों से अधिक स्क्रीन पर निर्भर है। उनके ध्यान–केन्द्रण समय कम हुआ है और वे त्वरित सूचना और मनोरंजन चाहते हैं।" (कुमार 2019 पृ. 45)

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास द्वारा 2022 में किए गए एक सर्वेक्षण के अनुसार 8–14 वर्ष के 65% बच्चे पारम्परिक पुस्तकों की तुलना में डिजिटल माध्यमों पर कहानियां पढ़ना या सुनना पसंद करते हैं। इससे गहन पठन और कल्पनाशक्ति के विकास पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ रहा है। स्क्रीन के अत्यधिक उपयोग से होने वाली स्वास्थ्य समस्याओं में आँखो में सूखापन, थकान, सिरदर्द और धुंधली दृष्टि आज आम समस्या हो गयी है। मोबाइल से गर्दन में दर्द (टेक्स्ट नेक), त्वचा की समस्याएँ, नींद में कमी और मानसिक स्वास्थ्य संबंधी समस्याएँ उत्पन्न हो रही है।

कॉपीराइट और मौलिकता का संकट :

भारत का ए आई कॉपीराइट सकंट : एनएम की धारा (17) लॉ अधिनियम के अन्तर्गत 'मौलिक कृतियाँ, जो कि मानव के बौद्धिक श्रम की उपज है जैसे साहित्य, नृत्य, संगीत और कलात्मक की कृतियाँ आदि की संरक्षण प्रदान करने का कार्य करती है। "कॉपीराइट कानून में मौलिकता अवधारणा ही मानवीय रचनात्मकता और चेतना में निहित है। अपितु कृत्रिम ए आई द्वारा निर्मित मानवीय विचार का अभाव एक महत्वपूर्ण प्रश्न उठाता है कि क्या इन कृतियों की कानूनी रूप से मौलिक' माना जा सकता है और क्या इसे कॉपीराइट संरक्षण के योग्य मान सकते हैं।"

जब कोई व्यक्ति कुछ बनाने में अपना उचित समय और प्रयास खर्च करता है तो उसे कॉपीराइट के उपकरण इवारा उसे बौद्धिक संपदा की रक्षा करके उस रचना पर उसके स्वामित्व के अधिकारों की निश्चित न्यूनतम सुरक्षा सुनिश्चित करता है। रचनात्मकत ही प्रगति की कुंजी है।

कॉपीराइट कानून विचारों की भावना की रक्षा करता है न कि स्वयं के विचारों की। कॉपीराइट अधिनियम 1957 की धारा (17) के अन्तर्गत साहित्यिक कार्यों, नाटकीय कार्यों संगीत कार्यों, कलात्मक कार्यो, सिनेमैटाग्राक फिल्मों और ध्वनि रिकॉर्डिंग पर कॉपीराइट संरक्षण लागू होता है। इस नियम के अनुसार कॉपीराइट 60 वर्षो तक रहता है। "वेबसाइट डिजाइन, ग्राफिक कला, लोग, कार्यक्रम और सामग्री आदि भारत में कॉपीराइट कार्यालय किसी भी व्यापक वेबसाइट में पंजीकरण की सेवा की मांग नही करता इसलिए इस पर पूर्ण विचार और मौलिकता में संदेह बना रहता है।"

सामग्री की सत्यता और नैतिकता का अभाव :

वर्तमान समय में चैट जी पीटी (Chat GPT) और गूगल का AI का इस्तेमाल करके कठिन से कठिन विषयों को आसान भाषा में समझा जा सकता है लेकिन अंग्रेजी या अन्य भाषाओं का अपनी भाषा में अनुवाद करना हो तो शब्दों के हेर फेर के कारण परिणाम में परिवर्तन देखने को मिलते है। यह उपलब्ध सामग्री की सत्यता को प्रभावित करता है। इसी प्रकार समाज की व्यवस्था में सभी मानदंडो का पालन किया जाता है। इसलिए सामाजिक व्यवस्था में नैतिकता का अधिक महत्व होता है लेकिन AI के क्षेत्र में नैतिकता का आभाव होता है क्योंकि वह मानवीय संवेदनाओं का अनुभव नहीं कर सकता है। "सोशल मीडिया के प्लेटफार्म पर डाला गया डेटा नुकसान पहुँचा सकता है (Hacking, malus are, fishing और spam इसके अलावा (AI selfdriving cars) और AI weapons जैसी परिस्थितियों में सही गलत का फैसला करना कठिन हो जाता है।"

इस प्रकार कृत्रिम बुद्धि या आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस ने हमारे जीवन पर गहरी छाप छोड़ी है। तकनीकी विकास के इस युग बाल साहित्य के समक्ष विभिन्न चुनौतियाँ है, मगर इन्हीं चुनौतियों में नये अवसर भी छुपे हुए हैं। हमें तकनीक को अपनाकर रचनात्मक और उपयो की जिम्मेदारी से कर परम्परागत और आधुनिक प्रस्तुति के बीच संतुलन स्थापित कर बाल साहित् को और ऊँचाइयों तक ले जा कर समान बनाना होगा। हम 'कलम से लिखे या की बोर्ड से' यह सुनिश्चित करना होगा कि डिजिटल AI युग में भी बाल साहित्य अपनी मूल संवेदनाओं और संस्कृति से जुड़ा है।

संदर्भ :

1. आलेख –1. एम सजीवी कनी, व्यक्तित्व एवं समाज निर्माण मे बाल साहित्य की भूमिका से उद्धृत, पृ. सं. 153
2. www.naplaw.co.in - nm law.co.in
3. Hindi.law tenedo.com
4. Hindi to money.com/AI

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Sept. 2025 Page No. : 223-226

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

सपनों की होम डिलिवरी उपन्यास : नारी जीवन के संदर्भ में

डॉ. वर्षाराणी जबडे

सहायक प्राध्यापिका, हिन्दी विभाग, सी. एस. बेम्बलगी कला, शा. एम. आर. पालरेशा विज्ञान और जी. एल. राठी वाणिज्य महाविद्यालय, रामदुर्ग, बेलगावी (कर्नाटक)–591123

प्रत्येक भाषा के साहित्य में स्त्री के विविध रूपों का वर्णन मिलता है। एक समय ऐसा था जब स्त्री का संसार केवल चारदिवारों के बीच ही था। परिवर्तन संसार का नियम है। जैसे–जैसे काल बदलते गये, स्त्री ने अपना एक अस्तित्व बनाया। वर्तमान समाज में स्त्री प्रत्येक क्षेत्र में आगे बढ रही है। आर्थिक रूप से स्वतंत्र हो रही है। हिन्दी साहित्य के अंतर्गत नारी अस्मिता, स्त्री स्वतंत्रता आदि को लेकर बहुत कुछ लिखा गया है। हिन्दी साहित्य के अंतर्गत अनेक महिला लेखिकाओं का महत्वपूर्ण योगदान रहा है।

हिन्दी साहित्य में ममता कालिया का योगदान अविस्मरणीय है। उन्होंने अपने लेखनी के माध्यम से साहित्य के अनेक विधाओं में अपना योगदान दिया है। नारी–संघर्ष के संदर्भ में लिखा गया 'सपनों की होम डिलिवरी' उपन्यास बहुत ही मार्मिक कहा जा सकता है। इसमें रूचि शर्मा नाम के पात्र के माध्यम से नारी की संघर्ष गाथा को प्रस्तुत किया गया है। रूचि शर्मा एक सामान्य नारी से दो टी. वी. चैनल पर एक मशहूर पाककला विशेषज्ञ बन जाती है। उसने यह सफर खुद के काबिलियत पर तय किया था। पहले पति को बार–बार मौका देने के बाद भी वह सुधरता नहीं है। इसके बाद की जिन्दगी का रास्ता वह खुद बनाती है। इस संदर्भ में लेखिका अपने प्राक्कथन में लिखती है– "महिलाओं के साथ दिन भर में जाने कितनी ऐसी घटनाएँ होती रहती हैं जिन पर, यदि वे गंभीरता से सोचे तो भारतीय परिवारों की निंदियाँ उड जाए। यह कहना कि स्त्री स्वभाव से सहनशील होती है, सहनशीलता का उपहास उडाना है क्योंकि दिन पर दिन इनका घेरा चुनौतिपरक होता जा रहा है"। इसी का चित्रण हम 'सपनों की होम डिलिवरी' उपन्यास के अंतर्गत देखते है।

प्रस्तुत 'सपनों की होम डिलिवरी' उपन्यास रूचि शर्मा के जीवन से संबंधित घटनाओं को उजागर करता है। उपन्यास की शुरूआत रूचि के टी. वी. चैनलों के प्रोग्रामों से होती है। रूचि 'क' तथा 'म' इन दो चैनलों में अपनी पाककला प्रस्तुत करती है। बहुत ही कम समय में उसका नाम मशहूर हो जाता है। पत्रिकाओं में भी उसके व्यंजन की विधि छपती थी। धीरे–धीरे रूचि शर्मा मशहूर पाककला व्यंजन विशेषज्ञ बन जाती है। दो चैनलों में उसका साप्ताहिक कार्यक्रम आता 'सुरूचि' और 'स्वाद'। दोनों कार्यक्रमों में रूचि का अत्याधुनिक रसोई में व्यंजन बनाते हुए दर्शाया जाता। एक जगह पर निर्देशक रूचि को कहता है– "मछली को तैरना कौन सिखाता है, औरत तो जन्मजात रसोई की रानी होती है"। उसके कई कुकरी बुक भी प्रकाशित हो चुके थे। अखबार और

पत्र–पत्रिकाएँ रूचि व्यंजन स्तंभ लिखवाती और सचित्र छपती थी। जैसे कि 'रूचि की रसोई', 'रूचि के रसिले व्यंजन', 'रूचि रसना' आदि।

टी.वी. पर वह आधे घंण्टे के कार्यक्रम में दो–दो व्यंजन प्रस्तुत करती है। रूचि का बोलने का ढंग बहुत प्रभावशाली था। जिससे दर्शक रूची के चैनल देखने के लिए आकर्षित होते थे। रूची अपने काम के प्रति बहुत ही सजग थी। कहा जाता है कि नारी हमेशा अपने कर्तव्य के बारे में सोचती रहती है मगर उसको अपने स्वयं के लिए समय नहीं रहता है। वह अपनी इच्छा आकांक्षा के प्रति हमेशा नजरअंदाजी करती है। रूचि शर्मा के बारे में कहा जाए तो वह देशभर में पाककला विशेषज्ञ है। उसके व्यंजनों के प्रति सभी आकर्षित होते किन्तु अपने घर में खाना पकाने के लिए उसके पास समय नहीं रहता है। कहा जाए तो वह स्वयं के लिए भोजन बनाने में काफी आलसी थी। वह चाय–काफी और ठंडे पेय पदार्थ पर दिन निकालती थी या फिर रेडिमेट पैकेटों से काम चलाती। उसके फ्लैट में रसोई के नाम पर एक छोटा सा एरिया था। जहाँ एक सिंक ओर एक प्लेटपाम के सिवा ओर कोई उपकरण ही नहीं थे। उसके दोनों चैनल में दो सहायक थे किन्तु घर में उसका अपना कोई नहीं था। वह दफ्तर से थकी मांदी घर आती तो, घर सारा सामान बिखरा पड़ा रहता था। ऐसी हालात आज बहुत सारी नौकरी पेशा महिलाओं की देखने को मिल रही है।

वर्तमान में हम देख रहे है कि नौकरी पेशा स्त्री का जीवन मशीन की तरह बनता जा रहा है। पूरा दिन दफ्तर में बितता है और घर आने पर घर परिवार की जिम्मेदारी कंधे पर होती है। रूची संदर्भ में देखा जाएँ वह पति के गलत व्यवहार से तंग आकर पति का घर छोडकर आयी थी। रूचि को भी लग रहा था कि उसका जीवन भी मशिनी बनता जा रहा था। वह ओशिवरा के विक्टोरिया चैम्बर्स नामक फ्लैट में अकेली रहती थी। रूचि एक सफल महिला तो थी ही लेकिन फिर भी एक इन्सान भी है, जो कभी–कभी अकेलेपन का शिकार बन जाती थी। रूची के पास सब कुछ था। पैसों की कोई कमी नहीं थी किन्तु उसके अपने कोई उसके साथ नहीं थे। माता–पिता भी अचानक चल बसते है। पहला पति प्रभाकर हमेशा नशे में रहता था। उसका चरित्र भी इतना साफ नहीं था। उसका बेटा गगन भी बहुत ही कम उम्र में ही पिता की देखा–देखी गलत रास्ते पर चलने लगा था। इन सभी बातों से तंग आकर वह पति और बेटे को छोडकर आती है। उसके बाद उसने अपनी अधुरी पढाई पूरी की और दो टी. वी. चैनलों पर पाककला विशेषज्ञ बन जाती है।

रूचि का वैवाहिक जीवन बहुत ही संघर्षमय था। रूचि का पहला विवाह बिना उसकी सहमति के उसके दादा–दादी ने पुण्य कमाने के इच्छा से और जल्दी में तय कर दिया था। रूची और प्रभाकर का बेटा गगन जब चार साल का था तब वह उन दोनों को छोडकर चली आयी थी। उसके बाद उसने अपने भूतकाल को मुडकर नहीं देखा था। गगन जैसे–जैसे बडा होता गया पिता के कहे नुसार अपने माँ के पास पैसे की माँग रखने लगा। प्रभाकर जानता था कि रूची के पास पैसा बहुत है। वह बेटे के कंधों पर बंदूक रखकर रूची को भावनिक तौर पर सताने लगा था। माँ आखीर माँ होती है। रूची भी एक बेटे की माँ थी। सब कुछ मालूम होते हुए भी वह गगन को पैसे देती थी। जब गगन बडा तो हुआ तो उसने अपने पिता से कह दिया कि आज के बाद मैं अपनी माँ से पैसे नहीं माँगूगा। उनसे पैसे माँगने की मुझे शर्म आ रही है। प्रभाकर को बेटे इस बात का बहुत गुस्सा आता है और वह उसी क्षण उसको घर से बाहर निकाल देता है।

रूचि की उम्र ४० वर्ष की थी। जीवन के इस मोड पर रूची को अकेलापन बहुत ही खलने लगा था।

उसको एक साथी की तलाश थी जो सर्वेश नारंग के रूप में पूरी होती है। उपन्यास की नायिका रुचि है और नायक सर्वेश। दोनों एक ही धरातल पर खड़े हैं। ठोकर खा चुके हैं। पूर्व में उनके विवाह टूट चुके हैं। इस टूटन के बावजूद वे खुद पूरी तरह नहीं टूटे हैं, बस थक से गए हैं। इसलिए मन के किसी कोने में किसी से जुड़ने की आस भी है और तलाश भी। पति की प्रताड़ना ने रुचि को तलाक लेने पर मजबूर किया। उसके बाद उसने पाक कला विशेषज्ञ के तौर पर अपनी पहचान बनाई और बैंक बैलेंस भी। दूसरी तरफ, पत्नी के हाथों बार–बार अपमान झेलने वाले सर्वेश ने भी शादी टूटने के बाद खोजी पत्रकारिता के अपने करियर को महत्व देता है।

सर्वेश नारंग ५० वर्ष का एक खोजी पत्रकार था। उसका भी अपने क्षेत्र में काफी नाम था। तीन साल पहले वह अपनी पत्नी से अलग हो चुका था। उसका भी एक बेटा था जिसने नशे में लत होकर अपनी जान गँवाई थी। पिता को इस बात की भनक तक नहीं लगी थी। सर्वेश को अपने आप पर बहुत गुस्सा आने लगता है क्योंकि वह पूरी दूनिया की खबरें जुटाने में व्यस्त रहता था मगर अपना ही बेटा कब नशे की लत में पड गया इसकी उसको भनक तक नहीं लगी। रूची और सर्वेश दोनों उम्र के इस दौर में थे कि दोनों में से किसी ने नहीं सोचा था कि वे फिर से किसी से प्यार करने लगेंगे।

रूचि के अनेक प्रशंसक और प्रशंशिकाएँ थी। वे रूचि को पत्र भेजते है। साधारणतः ऐसे पत्रों में रूचि की प्रशंसा ही होती है। अच्छे पत्र लिखने वालों को महिने में एक बार टी.वी. पर रूचि के प्रोग्राम में बुलाया जाता था। अचानक ही एक दिन किसी ने शिकायत भरा खत भेजा था। वह खत सर्वेश नारंग का था। उसने कहा था कि रूचि द्वारा बनायी गयी दलिया भरी आलु टिक्की बूढे लोगों के पाचन के लिए सही नहीं है। चैनल नहीं चाहता था कि यह विषय आगे बढे। इसलिए सर्वेश को 'सुरुचि' कार्यक्रम में बुलाया गया। वहाँ पर सर्वेश नारंग ने वहीं टिक्की उस तरह बनाया कि सब उम्र के लोग उसका मजा उठा सके। लोगों को यह बहुत पसंद आया। इसके बाद उसे 'स्वाद' कार्यक्रम में भी बुलाया गया। बिना वक्त गँवाए सर्वेश ने अपना व्यंजन पेश किया। सर्वेश नारंग ने बहुत ही आकर्षक ढंग से पकौडे बनाने की विधि पेश की। पकौडे आप सब खाते खिलाते होंगे। अपने गौर किया होगा कि हर घर के पकौडों का स्वाद कुछ अलग और कुछ खास होता है। अक्सर लोग अपना सीक्रेट बताते नहीं है।

इस सभी घटना के बाद रूची और सर्वेश बडे रोमांटिक ढंग से नजदिक आते है। ५० वर्ष का सर्वेश ४० वर्ष की रूचि को कोर्ड भेजकर पूछता है– 'क्या तुम मेरी वेलेंटाइन बनोगी।' सर्वेश रूचि के साथ रहने का प्रस्ताव रखता है। लेकिन रूचि सहजीवन को गलत रिवाज मानती है। उसे लगता है कि सहजीवन नितांत अस्थायी, अस्थिर ओर असंगत है, जिसमें पुरूष से ज्यादा स्त्री का नुकसान है। रूचि का मानना था कि वह एक बार दलदल में फँसकर बडी मुश्किल से बाहर आयी थी। वह सर्वेश से कहती है "मैं सहजीवन को गलत रिवाज मानती हूँ। हमारे ऊपर समाज की जिम्मेदारी है।" बाद में दोनों औपचारिक विवाह संबंध में बंध जाते है।

सर्वेश नारंग ने अपने पूर्व जीवन के बारे में रूची को सब कुछ बताया था किन्तु रूची ने सर्वेश को अपने पूर्व जीवन के पूरे सत्य को नहीं बताया था। उसने अपने बेटे गगक के बारे में सर्वेश को नहीं बताया था। एक दिन ऐसा आता है कि गगन अचानक रूची के पास आता है और एक माँ का दिल अपने बेटे को गले से लगाने से नहीं रूकता है। प्रभाकर और गगन के बीच वही बात दोहराती है जैसे रूची के साथ हुआ था। प्रभाकर हमेशा नशे में रहता था। अपने बेटे गगन के तरफ ध्यान ही नहीं देता था। एक दिन तो उसने अपने बेटे गगन को

ही घर से निकाल दिया और कहा या तो अपनी माँ को फोन कर पैसे माँग या उसके पास ही जा। प्रभाकर आगे कहता है– "बडा आया माँ का हिमायती। भाग जा उसी के पास। देखता हूँ कितने दिन रखती है"। गगन प्रभाकर की बात नहीं मानता है और घर छोडकर चला जाता है। जिस प्रकार रूचि प्रभाकर से तंग आकर घर छोडकर आयी थी सी प्रकार गगन भी प्रभाकर से दूर हो जाता है।

वह सर्वेश से छुपाकर गगन को अपने फ्लैट में रख लेती है। एक दिन गगन एक जुएँ के अड्डे पर पकडा जाता है। संयोगवश सर्वेश उसी इलाके में काम पर गया था। गगन की खराब हालत देखकर उसे अपने बेटे अंश की याद आती है जो नशे के कारण चल बसा था। सर्वेश गगन को सुधार घर में रखना चाहता था मगर उसके पाँव अपने आप पता नहीं कैसे उसके घर तक गगन को ले आते है। सर्वेश की माँ को सारी हकिकत बताता है और इस बात का भी खोज करता है वह रूची का बेटा है। अचानक रूची और गगन की भेंट सर्वेश के घर में होती है तो रूची शर्मिंदा हो जाती है। वह निर्णय लेती है अब वह बेटे के साथ रहेगी और सर्वेश का घर छोडकर चली जाएगी किन्तु सर्वेश रूची का निर्णय नहीं मानता है। वह रूची और गगन के साथ रहना चाहता है। रूची को सर्वेश की बात माननी पडती है और उपन्यास का अंत सुखान्त में बदल जाता है। यहाँ पर उपन्यास भी समाप्त होता है।

रूची शर्मा अपने जीवन को लेकर जो भी निर्णय लेती है उन निर्णयों को सफल बनाने के लिए जी जान से मेहनत करती है। वह प्रभाकर जैसे इन्सान को छोडकर आती है। अपना अस्तित्व खुद बनाती है। उम्र के ४० वर्ष में दूसरे साथी के साथी के साथ विवाह बंधन में बंध जाती है क्योंकि वह जानती है कि बिना ब्यास किसी पुरूष के साथ रहना हमारे समाज का रिवाज नहीं है। इस प्रकार वह एक आदर्श स्त्री कही जा सकती है। कभी कभी स्वयं के लिए कुछ निर्णय लेना भी अनिवार्य होता है। रूची शर्मा जिसमें खरी उतरती है और एक मिसाल बनती है।

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Sept. 2025 Page No. : 227-236

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

हिंदी साहित्य में दलित विमर्श

डॉ धन्या. बी

सहायक प्रोफेसर – विभागाध्यक्षा, सरकारी कॉलेज आट्टिंगल, केरल विश्वविद्यालय।

शोध सार :–

बड़ी शर्मिंदा की बात है कि विश्व बंधुता का संदेश देने वाली भारतीय संस्कृति, आज भी भेदभाव की कठोर बीमारियों से ग्रसित है। भारतीय समाज, प्राचीन काल से ही वर्ण व्यवस्था द्वारा नियंत्रित रहा है। प्राचीन काल से ही शूद्र या अछूतों को वेदाध्ययन, पठन–पाठन, यज्ञ आदि से वंचित करके उच्च वर्ग या सवर्ण, निम्न वर्ग के शिक्षा अध्ययन के अधिकार उन्हीं से छीन लिया। इस प्रकार उन्हें अंधकार में डाल गये। वर्तमान काल में भी उनकी हालत वैसे ही आगे बढते रहते हैं। शिक्षा का अधिकार निम्नवर्ग को प्राप्त होने पर भी, हमारे समाज के दृष्टिकोण में पूर्ण रूप से बदलाव नहीं आया है।

जिस के इस क्रूर व्यवस्था द्वारा व्यथित, पीडित वर्ग में पड़ी दलितों का संवेदनात्मक चित्रण हिंदी लेखकों ने अपनी लेखनी का विषय बनाया और समाज के सम्मुख वेदना भरी जीवन प्रस्तुत करके इस विषय पर समाज की आँखें खोलने की कोशिश करते रहते हैं। साहित्य समाज के दर्पण होने के नाते एक हद तक उनका प्रयत्न सफल हो गए हैं।

बीज शब्द : दलित, संस्कृति, वेदाध्ययन, आंखें खोलना, संवेदनात्मक, जंजीर बांधना।

मूल आलेख :

सदियों से पीड़ित और अपने सभी अधिकारों से वंचित, दमित एक जनता, जो सभ्य सवर्ण समाज के दुर्व्यवहारों के कारण आगे आने में पैरों में जंजीर बांधने वाले थे। उन पिछड़े या दलित लोग, समाज सुधारकों और साहित्यकारों के परिश्रम के जरिए अपने खोए हुए अधिकार को वापस मिलने के लिए कोशिश करते रहते हैं। आदिकाल से लेकर आधुनिक काल तक अनेक कवियों, साहित्यकारों द्वारा इसका प्रयास चलते आ रहे हैं। आधुनिक काल में प्रेमचंद, निराला, अमृतलाल नागर, नागार्जुन, आदि अनेक लेखकों ने दलितों से जुड़ी समस्या को बड़ी ईमानदारी से अपनी रचनाओं में उठाया और अपने लेखन का महत्त्वपूर्ण प्रश्न बना दिया।

दलित साहित्य को लेकर मतभेद :

दलित साहित्य तर्क का विषय भी बन गया है। दलित रचनाकारों का कहना है, कि प्रेमचंद, निराला, अमृत लाल नागर, नागार्जुन आदि सभी रचनाकारों ने दलितों से जुड़ी साहित्य बड़े मार्मिक ढंग से रची है, लेकिन ये सभी रचनाकार सवर्ण हैं। इसलिए दलित समाज की पीड़ा, यातना, शोषण आदि का प्रत्यक्ष अनुभव इन्हें नहीं है। कहने का मतलब यह है कि दलित समाज को विषय बनाकर लिखा इनका साहित्य, प्रामाणिक और प्रत्यक्ष

अनुभूति का नहीं, बल्कि करुणा और सहानुभूति का साहित्य है। प्रेमचंद की अनेक कहानियों और उपन्यासों में दलित जीवन की त्रासदी व्यक्त की है। परंतु उसका हल करने की सूचनाएं उनमें नहीं हैं। एक हद तक उनका मानना सही है कि स्वानुभूति द्वारा रचित रचना, देखा–सुनी रचना से बेहतरीन होगा।

दलित शब्द की उत्पत्ति :

'दलित' शब्द की उत्पत्ति 'दल' धातु से हुई, जिसका अर्थ पिछड़ा, शोषित, रौंदा हुआ, अछूत, अविकसित आदि है। अपृश्य, अंत्यज, दास, हरिजन, शूद्र आदि भी कई नाम उन्हें दिए हैं। वर्णव्यवस्था, धर्मव्यवस्था को नकारने वाले विद्रोही, संघर्षरत समाज दलित है।'[1]

दलित साहित्य :

जिस साहित्य में दलित, बरसों से पीड़ित, शोषित व्यक्तियों के अंतरमन की अभिव्यक्ति के साथ–साथ मनुष्यत्व की कामना की जाती है, वही दलित साहित्य है। दलित साहित्यकार भी दो प्रकार के हैं : दलित साहित्यकार और गैर–दलित साहित्यकार। भक्ति काल में कबीरदास से लेकर आधुनिक काल में प्रेमचंद, निराला, राहुल सांकृत्यायन आदि अनेक साहित्यकारों ने दलित जीवन की दयनीय अवस्था का मार्मिक चित्रण अपनी रचनाओं का विषय बनाया है।

दलित साहित्य का प्रारंभ :

सबसे पहले वर्ण व्यवस्था को चुनौती सिद्धों और नाथों ने दी, क्योंकि उनमें काफी संख्या दलितों की थी। उनका विरोध विशेष रूप से धार्मिक आचार पर था। भक्तिकाल में निर्गुण कवियों ने जाति व्यवस्था, वर्ण व्यवस्था के विरुद्ध आवाज उठाई। आगे आते–आते दयानंद सरस्वती, राजा राम मोहन राय, बी. आर. अंबेडकर आदि समाज सुधारकों ने भी दलितों के अधिकार के लिए आवाज उठाई। आधुनिक काल में आते वक्त प्रेमचंद, निराला, राहुल सांकृत्यायन आदि अनेक साहित्यकारों ने वर्ण व्यवस्था और जाति–पाँति के विरुद्ध अपनी रचनाओं के माध्यम से समाज का ध्यान इस विषय की ओर आकृष्ट किया। अब अनेक समकालीन साहित्यकारों द्वारा समाज के सम्मुख हलचल मचाने वाले विधा के रूप में दलित विमर्श बन गया।

दलित लेखन में अस्पृश्यता, शोषण का अनुभव एक साथ व्यक्तिगत और सामाजिक दोनों रूपों में विद्यमान है। कोई सवर्ण लेखक दलित लेखकों के समान इनका अनुभव नहीं कर सकता है। विख्यात् दलित चिंतक कंवल भारती ने लिखा है – 'दलित साहित्य से अभिप्राय उस साहित्य से है, जिनमें दलितों ने स्वयं अपनी पीडा को रूपायित किया है, दलित साहित्य उनका उसी की अभिव्यक्ति का साहित्य है। यह कला के लिए कला का नहीं, बल्कि जीवन का और जिजीविषा का साहित्य है।'[2]

हिंदी में दलित साहित्य :

हिंदी साहित्य में दलित साहित्य का शुभारंभ कहानियों और कविताओं के माध्यम से हुआ। लेकिन उनकी पहचान बनी आत्मकथाओं से।

दलित कविता :

कविता मानव मन की चेतना का प्रतीक है। अनेक दलित साहित्यकारों ने दलित पीड़ा को कविता की शैली में प्रस्तुत किया। आदिकाल और भक्ति काल के कवियों की रचनाओं से इस का सख्त प्रमाण मिलते हैं। आदिकाल में सिद्धों और नाथों की रचनाओं में और...भक्तिकाल में कबीर दास, रैदास आदि की रचनाओं द्वारा।

रैदास जन्म से दलित हैं, इसलिए उन्हें पहला दलित कवि मानना कोई अनुचित बात नहीं होगा।

आधुनिक हिंदी साहित्य में हीडामन द्वारा रचित 'अछूत की शिकायत' को पहली दलित कविता कहते हैं, जो 1914 में सरस्वती पत्रिका में प्रकाशित हुई। दलितों का पीड़ादायक सजीवात्मक चित्रांकन, विद्रोहात्मक प्रवृत्तियों का गंभीर और दर्दभरी चित्रण 'बस! बहुत हो चुका' संग्रह में देख सकते हैं।

'जब भी देखता हूँ मैं
झाड़ू या गंदगी से भरी बाल्टी – कनस्तर
किसी हाथ में मेरी रगों में, दहकने लगते हैं।
यातनाओं के कई हजार वर्ष एक साथ।
आँखों में उतर आता है।
इतिहास का स्याहपन
अपनी आत्मघाती कुटिलताओं के साथ।
असंख्य मूक पीडाएँ, कसमसा रही हैं।
मुखर होने के लिए रोष से भरी हुई।
बस! बहुत हो चुका।
चुप रहना।'[3]

आपकी कविताएँ पाठकों या सवर्ण समाज से सवाल पूछती हैं। 1991 में प्रकाशित 'सदियों का संताप' कविता पाठकों के हृदय में बड़ी घाव लगाती है। इस संग्रह द्वारा तत्कालीन मुख्य धारा का नींव तोड़ डाली।

'चूल्हा मिट्टी का, मिट्टी तालाब की
तालाब ठाकुर का।
भूख रोटी की, रोटी बाजरे की
बाजरा खेत का, खेत ठाकुर का
हल ठाकुर का, हल का मूठ पर हथेली अपनी
फसल ठाकुर की, कुआँ ठाकुर का
खेत–खलिहान ठाकुर के
गली मुहल्ले ठाकुर का, फिर अपना क्या?
गाँव?
शहर?
देश?'[4]

यह भी नहीं, वाल्मीकि जी अपनी कविताओं द्वारा संघर्ष करने की प्रेरणा भी देते हैं। 'धुरी पर घूमती धरती' इसका ज्वलंत उदाहरण है।

मोहनदास नैमिशराय :

दलित साहित्य की अस्मिता को बनाए रखने में मोहनदास नैमिशराय का महत्वपूर्ण स्थान है। वे सचमुच दलित आंदोलन के प्रवर्तक हैं। आप स्वयं कहते हैं, 'दलित साहित्य में आक्रोश आता है... साहित्यकार का उद्देश्य

है समतामूलक साहित्य का निर्माण करना। इसका उत्तम दृष्टांत है आपकी कविता 'क्रांति का हथौड़ा'।'

'क्रांति का हथौड़ा
महलों की पुख्ता दीवारों को
भले ही न तोड़ पाए
पर क्रांति की गूँज अभी जिंदा है
यह सब सुनाने के लिए ही
क्रांति की हथौड़ा रुकने न पाए।
क्रांति मरघटों से नहीं आती....
क्रांति मरघटों से नहीं आती....
क्रांति मजदूर के बदन के पसीने से फूटती है।'[5]

जयप्रकाश कर्दम :

दलित साहित्य की लगभग सभी विधाओं में अपनी तूलिका चलाकर साहित्यकार और पत्रकार के रूप में विख्यात दलित साहित्यकार हैं जयप्रकाश कर्दम। आपके द्वारा संपादित दलित पत्रिका है 'दलित साहित्य'। आपके प्रमुख काव्य संग्रह हैं – 'तिनका–तिनका आग', 'बस्तियों से बाहर', 'गूँगा नहीं था मैं'।

'तुम कोठी बंगलों में रहते, मैं रहता झोपड़ पट्टी में
तुम ए.सी कूलर में सोते, मैं तपता श्रम की भट्टी में
तुम दूध–मलाई में नहाओ, मैं रोटी को मुंहताज रहूं
तुम मालिक मैं नौकर ठहरा, फिर समता का संसार कहाँ है।'[6]

सूरजपाल चौहान :

अलीगढ़ में जन्मे सूरजपाल चौहान मशहूर दलित कवि और कथाकार है। 'प्रयास' उनकी प्रमुख काव्य संग्रह है। आपकी 'धन्यवाद शहर' कविता दलित जीवन के उत्पीडन का दयनीय चित्रण है।

कंवल भारती :

दलितों की वेदना का यथा तथ्य चित्रण करने वाले लेखक कंवल भारती का एकमात्र काव्य संग्रह है 'तब तुम्हारी निष्ठा क्या होती'।

'यदि वेदों में लिखा होता
ब्राह्मण ब्रद्म के पैर से हुए हैं पैदा।
उन्हें उपनयन का अधिकार नहीं।
तब तुम्हारी निष्ठा क्या होती? ....
'हमारे खेतों–घरों में दास कर्म करना
तब तुम्हारी निष्ठा क्यों होती।'[7]

निष्कर्ष :

निष्कर्षतः कहें, तो उपर्युक्त दलित कवियों के साथ–साथ अन्य अनेक कवियों और कवयित्रियों ने भी अपनी दलित कविताओं के द्वारा समाज से विघटन, जातिवाद तथा विद्वेष की भावना को दूर करना चाहती है.

साथ ही भोगे हुए अपने अनुभवों को गहराई से कविता में व्यक्त करते हैं। इन्होंने भाग्यवाद, अवतारवाद, पूर्वजन्म या परंपरावादी साहित्यिक प्रवृत्तियों के विरुद्ध रोष, आक्रोश एवं कठोर शब्दों का प्रयोग करता है। दलित कविता दलित जीवन का प्रतिबिंब है।

दलित कहानियाँ :

दलित कहानियाँ भी कविताओं के समान समाज का आईना बन गईं। प्रमुख दलित कहानीकारों में ओमप्रकाश वाल्मीकि, जयप्रकाश कर्दम, सूरजपाल चौहान, दयानंद बटोही, रत्नकुमार संभरिया आदि आते हैं।

ओमप्रकाश वाल्मीकि जी के 'सलाम' (2000), 'घुसपैठिए' (2003) आदि दो कहानी संग्रह हैं, पत्र–पत्रिकाओं में प्रकाशित हुई।

'सलाम' कहानी संग्रह में कुल 14 कहानियाँ संकलित हैं, जिनमें 'सलाम', 'सपना', 'बैल की खाल', 'भय', 'कहाँ जाएँ सतीश', 'गोहत्या', 'ग्रहण', 'बिरम की बहू', 'पच्चीस चौका डेढ़ सौ', 'अंधड़ जिनावर', 'कुचक्र', 'अम्मा', 'खानाबदोश' आदि शामिल हैं। ओमप्रकाश वाल्मीकि जी ने अपनी कहानियों के माध्यम से दलितों की समस्त समस्याओं और उन पर समाज में फैली विसंगतियों को आम जनता तक पहुँचाने का प्रयास किया है।

2003 में प्रकाशित 'घुसपैठिए' बारह कहानियों का संग्रह है। इसमें उच्च शिक्षण संस्थाओं में दलित छात्रों के प्रति होने वाले भेदभाव का यथार्थ चित्रांकन मिलता है।

2013 में प्रकाशित 'छत्तरी' कहानी संग्रह की सभी कहानियों ने दलित कथा संसार में एक नई दीवार खड़ी की और नए परिवर्तन दिए हैं। आपने अपनी सभी कहानियों के माध्यम से दलितों की समस्त समस्याओं को आम जनता तक पहुँचाने का प्रयास किया है, तथा समाज में फैली विसंगतियों पर अपनी तूलिका से शब्दों का तीखा तीर चलाया है। गाँव में फैली हुई जाति–भेद की कठोर और मार्मिक चित्रांकन 'सलाम' कहानी संग्रह में व्यक्त की गई है, जबकि 'घुसपैठिए' उच्च शिक्षण संस्थाओं में दलित छात्रों के प्रति होनेवाले भेदभाव का ज्वलंत दृष्टांत है। जयप्रकाश कर्दम की 'तलाश', 'खरोंच' आदि कहानियां भी प्रमुख दलित कहानियां हैं. आपकी कहानियां दलित राजनीति आंदोलन से प्रभावित होती दिखाई पड़ती हैं। 'मूवमेंट' कहानी इस तथ्य का उत्तम दृष्टांत है।

सूरजपाल चौहान का 'हैरी कब आएगा' कहानी संग्रह में कुल मिलाकर 14 कहानियां हैं। दयानंद बटोही, रत्नकुमार सांभरिया आदि अनेक कहानीकारों ने अपने जिए हुए सच को अपने कथा संसार में कहीं न कहीं प्रस्तुत करते हैं। दलित समाज की समस्याएँ, मुद्दे और जीवित यथार्थ को अनुभव की सचाई से प्रस्तुत करते हैं।

निष्कर्ष :

दलित जीवन की वास्तविकता, स्वत्वभाव, विद्रोह, संघर्ष, क्रांति का निर्माण, सवर्णों द्वारा झेलने पड़े समस्याओं का मार्मिक तथा सजीव चित्रांकन उपर्युक्त सभी दलित कहानियों में देखा जा सकता है।

आत्मकथाएँ :

ऐसे कहने में अत्युक्ति नहीं होगी कि दलित साहित्य के सबसे प्रखर रूप आत्मकथाओं में ही देखा जा सकता है। दलित आत्मकथाओं के द्वारा ही दलित साहित्य, पूरे समाज का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट किया। हिंदी के प्रमुख दलित आत्मकथा लेखक हैं– मोहनदास नैमिशराय, ओमप्रकाश वाल्मीकि, कौसल्या बैसंत्री, सूरजपाल चौहान, तुलसीराम आदि।

मोहनदास नैमिशराय (अपने-अपने पिंजड़े) :

'अपने–अपने पिंजड़े' मोहनदास जी द्वारा रचित ख्यातिप्राप्त आत्मकथा है। इसमें उन्होंने अपने जीवन की निर्मम सच्चाइयों और मानवीय पीड़ाओं को पूरी सघनता से व्यक्त किया है। यह आत्मकथा तत्कालीन सामाजिक, राजनीतिक व्यवस्था की कठोर अनीतियों को सहकर अभिशप्त होकर लिखी गई है। कठोर जातीयवादी व्यवस्था में लेखक का जन्म हुआ था। लेकिन अधिक दिन तक वह माँ के प्यार का अनुभव न पा सका। इस वेदना की याद में वे लिखते हैं – 'माँ की मृत्यु का अहसास मुझे उस समय कहाँ था भला? होता भी कैसे? जमीन पर घिसटने वाला शिशु था, तब मैं पीछे रह गया था, ठूंठ सा बाप बिना टहनी–पत्तों का ऐसा दरख्त जिसके सीने में कोंपलें नहीं खिलतीं, यूँ मेरे भाई भी थे और बहनें भी, पर प्यार से अधिक कहीं उनमें सहानुभूति थी। बस्ती में कुछ औरतें मुझे बिन माँ का बच्चा कहकर पुकारतीं–दुलारती थीं।'[9]

अपनी आत्मकथा में मोहनदासजी ने मेरठ शहर की जो स्थिति है उसका सच्चा चित्रण दिखाने की कोशिश की है – 'शहर का भूगोल बदल रहा था, पर इतिहास वैसा ही था।' संकरी गलियों में धंसे कच्चे मकानों पर संस्कृति की छाप थी। शहर में अनगिनत बस्तियाँ थीं, जिनमें सुबह जलेबी–कचौड़ी बनाई जाती। शाम को बालूशाही और इमरती। पर हमारी बस्तियाँ नंगी और सपाट होतीं, गंधहीन पर अजीब सी दुर्गंध परिवेश में फैली होती। घर–घर में चमड़ा भरा होता, आंगन में चमड़े के गीले टुकड़े सूखने के लिए पड़े होते। ऐसे बस्तियों के आस–पास हवा चलती, तो महसूस होता यही कहीं चमारवाड़ा है।'[10]

प्रस्तुत आत्मकथा में लेखक यह व्यक्त करते हैं कि समाज के सभी धर्म या जाति के व्यक्तियों ने दलितों को अपमानित करने का अवसर कभी नहीं छोड़ा था। दलितों को प्रताड़ित एवं अपमानित करने वाली ऐसी सामाजिक व्यवस्था का चित्रण हृदयस्पर्शी ढंग से किया है।

ओमप्रकाश वाल्मीकि (जूठन) :

'जूठन' दिल दहला देने वाली एक दलित लेखक की सच्ची कहानी है। इस आत्मकथा को पढ़ते वक्त शर्म आती है कि बहुत क्रूर और अमानवीय सामाजिक व्यवस्था में हमने सांस ली है।

लेखक का पूरा परिवार मजदूरी का काम करता था। फिर भी कभी भी भूख मिटा न सकता था। सर्दी के समय जूहड़ों का जीना मुश्किल था। कठिन काम करने पर भी दोपहर में बची–खुची रोटी मिलती थी, जो खासतौर पर जूहुड़ों के लिए बनाई जाती थी। कभी–कभी जूठन भी भंगन की टोकरी में डाल दी जाती थी। दिन भर काम करने पर भी दलितों के पसीने की कीमत जूठन ही थी। फिर भी किसी को कोई शिकायत, शर्मिंदगी या पश्चाताप नहीं। निर्धनता को शोषण करने वाला एक क्रूर समाज था, जहाँ श्रम का मोल नहीं मिलता था। यह भी नहीं, शादी–ब्याह के अवसर में जूठे पत्तल जूहुड़ों के टोकरे में डाल दिए जाते थे। इसके संबंध में लेखक ने व्यक्त किया है कि यह कल्पना की चीज नहीं, दलित समाज की हकीकत है – 'पूरी के बचे–खुचे टुकड़े, एक साथ मिठाई का टुकड़ा या थोड़ी बहुत सब्जी पत्तल पर पाकर बाछें खिल जाती थीं। जूठन चटकारे लेकर खाई जाती थी।'[11]

दलितों के जीवन यथार्थ को लेखक के इन वाक्यों में देखा जा सकता है – 'जोहड़ी के किनारे पर चुहुड़ों के मकान थे। जिनके पीछे गाँव भर की औरतें, जवान लड़कियां, बड़ी–बूढ़ी यहाँ तक की नवेली दुल्हिनें भी इस डब्बावाली के किनारे खुले में टट्टी–फरागत के लिए बैठ जाती थीं। रात के अंधेरे में ही नहीं, दिन के उजाले

में भी पर्दों में रहने वाली त्यागी महिलाएँ घूंघट काढ़े, दुशाले ओढ़े इस सार्वजनिक खुले शौचालय में...'निवृत्ति पाती थीं । ... .तंग गलियों में घूमते सुअर, नंगा धडंग, बच्चे, कुत्ते, रोजमर्या के झगड़े बस यही था वह वातावरण, जिसमें बचपन बीता। इस माहौल में यदि वर्ण व्यवस्था को आदर्श व्यवस्था कहनेवालों को दो–चार दिन रहना पड जाए, तो उनकी राय बदल जाएगी।'[12]

निष्कर्ष :

आत्मकथा के सौंदर्य शास्त्र को बदलने वाली और पाठकों को अपनी ओर खींझने वाली आत्मकथा है वाल्मीकि जी की 'जूठन'। इसे एक खुला लेखन कह सकते हैं। भोगा हुआ यथार्थ का सच्चा चित्रण इसमें देखा जा सकता है। इसके माध्यम से लेखक ने अपने बचपन एवं परिवार की गरीबी का वर्णन करते हैं। दलितों की कुछ विशेषताओं, जो अमीरों में न देख सकते हैं – इसके संबंध में आप व्यक्त करते हैं कि गरीबों के पास गरीबी है, साथ दिल, दिमाग और खुशी भी। दुर्व्यवहार करने वालों को भी माफ देने का हृदय दलितों में है। आपने प्रस्तुत संकलन द्वारा इस बात को सिद्ध करने का प्रयास भी किया है और यह प्रसंग तथा घटनाएँ प्रत्यक्ष रूप से देखा भी जा सकता है।

कौसल्या बैसंत्री (दोहरा अभिशाप) :

कौसल्या जी ने अपनी आत्मकथा में स्वयं भोगने वाली संघर्षों और अपने माँ–बाप के संघर्षो से भरे जीवन का चित्रण किया है। इसमें दलित समाज की अच्छाई और बुराई का चित्रण किया है। सवर्णों में विधवा विवाह करने के लिए अनुमति नहीं दी जाती थी। लेकिन इसके विरुद्ध दलित समाज में चलने वाली अच्छी प्रथा यह है कि दोबारा शादी करने में कोई रोक नहीं थी, लेकिन इसे विवाह न कहकर 'पाट' कहा जाता है।

अंबेडकर जी की भाषण लेखिका पर बहुत प्रभाव डाला। वे लिखती हैं कि – 'अफीम खिलाने में अहिल्या (अपनी मां की ग्यारहवीं संतान) बहुत चिड़चिड़ी हो गई थी और बहुत रोती थी। उसका जिगर बढ़ गया था। एक दिन उसको तेज बुखार हुआ। मां ने उस दिन मिल से छुट्टी ली। मूर मेमोरियल अस्पताल हमारे स्कूल के रास्ते से हटकर था। मां ने कहा, इसे अस्पताल ले जाकर लाइन में खड़े रहना, क्योंकि बाद में बहुत बड़ी लाइन लग जाएगी। मैंने अहिल्या को पीठ पर लिया और छोटी बहन मधु ने दोनों बस्ते पकड़े। माँ ने कहा वह घर का काम खत्म करके अस्पताल पहुंच जाएगी। तब हम स्कूल चली जाएंगी। लेकिन माँ की वहाँ पहुँचने के पहले ही अहिल्या की मृत्यु हो जाती है।'[13] एक माँ की मजबूरी और लाचारी का चित्रण बड़ी मार्मिक ढंग से लेखिका ने अपने अनुभव द्वारा व्यक्त की है।

औरतें काम पर जाती हैं और पुरुष उन्हीं के पैसों से सुखद जीवन बिताते हैं। मारपीट करके और गालियाँ देकर औरतों का पैसा छीन लेते हैं और इससे जुआ खेलते और शराब पीते है। इस प्रकार औरत की कमाई उड़ा देते हैं। लेखिका ने अपनी आत्मकथा में रामकुंवर और जयराम की जिंदगी के माध्यम से यह व्यक्त किया है।

दलित स्त्रियाँ सवर्ण पुरुषों के द्वारा शोषण का शिकार बनती थीं। इस संबंध में लेखिका लिखती हैं – 'सखराम की औरत दिहाड़ी पर मजदूरी कर रही थी। वह सीमेंट–ईंट ढोकर मिस्त्री को देती थी। वह देखने में सुंदर थी। मिस्त्री बदमाश था। वह आते–जाते उसे छेड़ता था। एक दिन वह सीमेंट का गोला बनाकर उसकी छाती पर मारा। उस औरत ने उसे गालियां दीं। लेकिन वह बेशर्म हंसता रहा। साथ में खड़े मजदूर भी यह देखकर हंसते रहे। यह बात उसने अपने पति से कही, लेकिन वह अपनी पत्नी को मारा और घर से बाहर

निकाला। बस्ती से बाहर निकलने के बाद वह झाड़ी में छिपी रही। रात में वह बस्ती के कुएँ में कूद गई। सबेरे उसका शरीर पानी के ऊपर तैर रहा था। उसके माँ–बाप आए और कहने लगे कि इसने हमारी नाक कटवाई, अच्छा ही हुआ कि यह कुलटा मर गई'।[14]

निष्कर्ष :

कौसल्या जी की आत्मकथा में अभिव्यक्ति संदर्भ, परिवेश, समस्या और संघर्ष का चित्रण पूर्ण रूपेण उजागर हुआ है। दलित जाति में जन्म लेने से एक औरत के जीवन में शिक्षित होने के लिए झेले गए संघर्ष, निम्न जाति की वजह से प्रगति के रास्ते रोकने वाली कठिनाइयाँ, नारी होने के कारण घर और बाहर से होने वाला अपमान और शोषण, यह सब कितना सहना पड़ता है, अपनी आत्मकथा में इन प्रसंगों, घटनाओं और संघर्षों का चित्रण मार्मिक ढंग से किया है। यह भी नहीं, सदियों से एक स्त्री जो पीड़ा सहती आ रही थी, उसे लेखिका ने स्वयं अपनी जिंदगी में भी सहा था। उनका वैवाहिक जीवन भी अच्छा नहीं था और अत्यंत संघर्ष से जूझना पड़ा। कौसल्या जी ने सिर्फ सवर्ण पुरुष का नहीं बल्कि दलित स्त्री–पुरुष का दोहरा चरित्र भी इस आत्मकथा के माध्यम से प्रस्तुत किया है।

सूरजपाल चौहान (तिरस्कृत) :

'तिरस्कृत' दलित जीवन की सच्चाइयों को उद्‌घाटित करती है। इसमें ब्राह्मणवाद द्वारा दलितों के शोषण की प्रक्रियाओं को उजागर करते हुए दलित जीवन का प्रामाणिक चित्रण प्रस्तुत किया गया है। ओमप्रकाश वाल्मीकि जी के समान चौहान जी को भी दलित होने के कारण शिक्षा प्राप्त करने में अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। ब्राह्मणवादी वर्चस्व को समाप्त करने के लिए दलितों को शिक्षा प्राप्त करना जरूरी था। लेकिन सवर्ण यह सोचते थे कि दलित अशिक्षित और अज्ञानी होने से ही दलितों को जिंदगी भर सेवक रख सकते हैं। इसलिए वे दलितों को शिक्षा देना नहीं चाहते। अपने अनुभव से चौहान जी यह पुष्ट करते हैं– 'जाति का पुछल्ला ब्रह्मराक्षस की तरह सदैव मेरे पीछे लगा रहा। संस्कृत विषय पढ़ानेवाले अध्यापक वेदपाल शर्मा मुझे समय–समय पर ओछापन याद दिलाते रहे। मैं तड़प उठता था उस द्रोणाचार्य की बातें सुनकर। एक दिन अपने साथी अध्यापकों से मेरी ओर संकेत कर उसने कहा था, यदि देश के सारे चूहड़े–चमार पढ़–लिख जाएँ तो गली–मोहल्लों की सफाई कौन करेगा? जूते बनाने का काम कौन करेगा?'[15]

स्कूल में निम्न जाति के छात्रों को बाहर ही बिठाते थे। रोज लेखक और अन्य दो छात्रों को गंदी नाली के पास के पीपल के नीचे बिठाता था। कोई सवर्ण बच्चे इससे दोस्ती न बनाता था। अध्यापकों ने भी यही सिखाया कि दलितों से दोस्ती करना पाप है, वे घृणित लोग हैं। स्कूली जीवन से ही जाति व्यवस्था का विष छात्रों के मन में डाल दिया था। कॉलेज में अनुपम जैन लेखक का सहपाठी और घनिष्ठ मित्र है, जिसके घर लेखक का खूब आना–जाना व पारिवारिक संबंध हैं। यह परिवार चौहान को राजपूत चौहान या उच्च जाति से संबंध समझते थे। इसलिए दलितों के बारे में मौके–बेमौके जाहिर करते रहते हैं, लेकिन ज्यों ही लेखक के दलित होने का पता चलता है, तो दोस्ती, पारिवारिक संबंध सब क्षणभर में टूटते हैं और नफरत से व्यवहार करते हैं। सरकार से मिलने वाले वजीफे के लिए कॉलेज के सूचना पट्ट पर दलित छात्रों की सूची लगी हुई थी। उसमें मेरा नाम भी था। मेरे नाम पर नजर पड़ते ही अनुपम जैन तुरंत बोला– 'अरे चौहान! क्या तुम राजपूत नहीं हो – शड्यूल्ड कास्ट हो क्या?' अनुपम के ये शब्द सुनकर मैं बुरी तरह झेंप गया था। मेरे मुँह से बोल नहीं निकले।

मैं उचकचा कर रह गया था उस समय। 'अबे देखो! चूहड़े भी ठाकुर व राजपूत बनने लगे।' अनुपम मुँह बिचकाकर और बड़बाता क्लास रूम की ओर बढ़ गया।'[16]

निष्कर्ष :

तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था की अमानवीयता को 'तिरस्कृत' में उजागर किया है। चौहान जी इसमें अपने अनुभवों को विमर्शनात्मक दृष्टिकोण के जरिए प्रस्तुत करके इन अनुभवों को समस्त दलित समाज के साथ इस तरह जोड़ दिया है कि यह अधिकांश दलित–पीड़ित आबादी की कथा बन जाती है। दलितों के बीच पनपते ब्राह्मणवाद को बहुत तीखे रूप में व्यक्त किया है, जो दलित समाज की एकता व संगठित होने में अवरोध है। निस्संदेह कह सकते हैं कि सूरजपाल चौहान की आत्मकथा 'तिरस्कृत' बहुत जरूरी सवालों को उठाने वाली दलित मुक्ति के दस्तावेज की रचना है।

उपन्यास :

उपर्युक्त विधाओं के अतिरिक्त दलित उपन्यासकारों ने भी अपनी अस्मिता को सिद्ध करने के लिए जोरदार पहल की है। सशक्त भाषा से अपनी जिंदगी के हर एक पहलू को व्यक्त किया है। जयप्रकाश कर्दम का 'छप्पर', धर्मवीर का 'पहला खत', टी.पी. वरुण का 'अमरज्योति', मोहनदास नैमिशराय का 'मुक्तिपर्व', शरणकुमार लिंबाले का 'नववानर' आदि दलित साहित्यकारों द्वारा रचित जीवंत उपन्यासों का उत्तम दृष्टांत है।

उद्देश्य :

अपनी भोगी हुई यथार्थ को खुले तौर पर रचनाओं द्वारा समाज के सम्मुख प्रस्तुत करके दलितों की समस्याएं तथा हल करने का उपाय, सरकार द्वारा अनुकूल योजनाएं, उनके सामाजिक, मानसिक, शैक्षिक विकासों के लिए परियोजनाएं तैयार करना, परंपरागत मनोवृत्ति में बदलाव आदि अनेक उद्देश्य लक्षित हैं। दलित साहित्यकार उद्देश्य प्राप्ति की दृष्टि से एक हद तक सफल रहा है. ऐसे साहित्य और साहित्यकारों के कारण भविष्य में नया समाज, नया राष्ट्र, नया भारत वर्ष बनेंगे।

निष्कर्ष :

निष्कर्ष रूप में कह सकते हैं कि जाति व्यवस्था से विकृत बना एक अंग है दलित। वे परंपरा से शोषित, उपेक्षित, तिरस्कृत हैं. जो शोषित हैं उनका जबान 'दलित साहित्य' है। इसमें क्रांति, सामाजिक परिवर्तन, बदलाव, नई व्यवस्था की मांग, अधिकारों की प्राप्ति की आवाज, व्यवस्था को नकारने की चेतना उभरकर देखी जा सकती है। शोषितों के मन का आलेख, आत्मा की जबान, संघर्ष का प्रतीक का दस्तावेज है दलित साहित्य। दलित कविता हो, उपन्यास हो, कहानी हो, आत्मकथा हो, सभी विधाओं में दलित जीवन की भोगी हुई यथार्थ का संवेदनात्मक चित्रण देखा जा सकता है। इसलिए निस्संदेह कह सकते हैं कि आत्मचेतना से परिपूर्ण यह साहित्य आम आदमी की जिंदगी से जुड़ा साहित्य है दलित साहित्य आज के जमाने की आवश्यकता भी है।

सहायक ग्रंथ सूची :

1. इक्कीसवीं सदी का दलित साहित्य, डॉ भरत धोंडीराम सागरे, पूजा पब्लिकेशन।
2. दलित साहित्य की भूमिका, कंवल भारती, परिवर्धित संस्करण, इतिहास बोध प्रकाशन।
3. समकालीन हिंदी कविता विविध आयाम, सं. डॉ. प्रदीपा कुमारी आर, विद्या प्रकाशन।

4. समकालीन हिंदी साहित्य, प्रो. डॉ. हणमंतराव पाटील, प्रो. डॉ. सुधाकर शेंडगे, विद्या प्रकाशन।
5. समकालीन साहित्य में प्रतिरोध, सं. डॉ. जयकृष्णन जे।
6. समकालीन हिंदी साहित्य और नए विमर्श, सं. डॉ. प्रमोद कोवप्रद, जवाहर पुस्तकालय।
7. बस! बहुत हो चुका, ओमप्रकाश वाल्मीकि, सदियों का संताप।
8. सदियों का संताप, ओमप्रकाश वाल्मीकि।
9. क्रांति का हथौड़ा, (दर्द के दस्तावेज) मोहनदास नैमिशराय।
10. मेरे अधिकार कहां है, जयप्रकाश कर्दम, गूंगा नहीं था मैं।
11. तब तुम्हारी निष्ठा क्या होती, कंवल भारती, बोधिसत्व प्रकाशन।
12. अपने–अपने पिंजड़े, मोहनदास नैमिशराय, वाणी प्रकाशन।
13. अपने–अपने पिंजड़े, मोहनदास नैमिशराय, वाणी प्रकाशन।
14. ओमप्रकाश वाल्मीकि – जूठन – राधाकृष्ण प्रकाशन।
15. ओमप्रकाश वाल्मीकि – जूठन – राधाकृष्ण प्रकाशन।
16. कौसल्या बैसंत्री – दोहरा अभिशाप – परमेश्वरी प्रकाशन।
17. कौसल्या बैसंत्री – दोहरा अभिशाप – परमेश्वरी प्रकाशन।
18. तिरस्कृत, अनुभव प्रकाशन।
19. तिरस्कृत, अनुभव प्रकाशन।

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. इक्कीसवीं सदी का दलित साहित्य, डॉ भरत धोंडीराम सागरे, पूजा पब्लिकेशन, कानपुर, 2014, पृः 9
2. दलित साहित्य की भूमिका, कंवल भारती, पृ. 67
3. बस! बहुत हो चुका, ओमप्रकाश वाल्मीकी, (पृ. 79–80)
4. सदियों का संताप, ओमप्रकाश वाल्मीकि पृ. 3
5. क्रांति का हथौड़ा, मोहनदास नैमिशराय, पृ. 80
6. मेरे अधिकार कहाँ है, जयप्रकाश कर्दम, गूंगा नहीं था मैं, पृ. 46
7. तब तुम्हारी निष्ठा क्या होती, कंवल भारती, बोधिसत्व प्रकाशन, पृ. 62
8. अपने–अपने पिंजड़े, मोहनदास नैमिशराय, वाणी प्रकाशन, पृ. 10 प्रकाशन वर्ष – 2000
9. तब तुम्हारी निष्ठा क्या होती, कंवल भारती, बोधिसत्व प्रकाशन, पृ. 62
10. अपने–अपने पिंजड़े, मोहनदास नैमिशराय, वाणी प्रकाशन, पृ. 10, प्रकाशन वर्ष – 2000
11. वही, पृ. 12
12. वही, पृ. 17
13. दोहरा अभिशाप – परमेश्वरी प्रकाशन – दिल्ली 1999, पृ. 56
14. वही, पृ. 56
15. तिरस्कृत, अनुभव प्रकाशन, गाजियाबाद, पृ. 16
16. तिरस्कृत, अनुभव प्रकाशन, गाजियाबाद, 2006 पृ. 17

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Sept. 2025 Page No. : 237-240

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

अनेकान्तवाद विचारों की विविधता और सहिष्णुता का संदेश

इन्द्र भंसाली 'अमर'

40, महेश नगर विस्तार–बी, जयपुर–302015

महावीर स्वामी इस युग की सबसे उत्कृष्ट विभूतियों में से एक हैं। वे स्वयं किसी धर्म के प्रवर्तक नहीं थे। वे श्रमण धर्म के पालक थे एवं उनके अनुयायी श्रावक धर्म का पालन करते हैं। उनके द्वारा उद्‌बोधित प्रवचनों को जिन वाणी से संबोधित किया जाता था। तीर्थकंर जीव अपने जन्म से ही श्रुतिज्ञान, मतिज्ञान एवं अवधि ज्ञान से सम्पन्न होते हैं। उनके तीर्थंकर जीव होते हुए भी उनकी घोर तपस्या, त्याग, सहिष्णुता, सहनक्षमता, क्षमागुण, निर्विकारता, निस्संगता, अनासक्ति भाव में लगभग साढे बारह वर्ष रहने एवं अनेक उपसर्गों को कर्म निर्झरा के लिए झेलने के बाद ही उन्हें केवल ज्ञान की प्राप्ति हुई एवं अपने विशिष्ट दिव्य गुणों के आधार पर भगवान महावीर की संज्ञा प्राप्त की। उनके निर्वाण के लगभग 250 वर्ष बाद उनकी जिनवाणी को श्रवण करने वाले श्रावकों एवं श्रमण परम्परा के साधु–साध्वियों में से उनके गुरूवर्या ने इसे जैन दर्शन का नाम दिया जो कालांतर में जैन धर्म के नाम से प्रचलित हुआ। जिन शब्द का अर्थ भी ''इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करना'' है जिसके आधार पर जैन उन्हें कहा गया जो तीर्थंकर महावीर के पद चिन्हों पर चलकर जो अपनी इन्द्रियों को जीतने के लिए प्रवृत हुए।

महावीर स्वामी ने अनेक समाज सुधारक नियमों के अतिरिक्त तत्कालीन समाज के समक्ष पंचमहाअणुव्रतों ''ब्रह्मचर्य, सत्य, अचौर्य, अहिंसा एवं अपरिग्रह'' के सिद्धातों पर अमल करने पर जोर दिया। इनमें से प्रथम चार तो पूर्व तीर्थकंरों द्वारा समाज को श्रमण धर्म पालन करने हेतु पूर्व से ही प्रचलित थे। महावीर ने इनमें ''अपरिग्रह'' जोडकर इन्हें पंचमहाअणुव्रत की संज्ञा दी। पर भगवान महावीर का योगदान इन सिद्धान्तों को समझने व जीवन में उतारने के लिए इससे भी अधिक महत्वपूर्ण रहा जब उन्होनें अपने अनेकान्तवाद (स्यादवाद्) के सिद्धांत को प्रवचनों के माध्यम से संसार को दिया।

''अनेकान्तवाद'' वास्तव में पंचमहाअणुव्रतों में से सत्य, अहिंसा एवं अपरिग्रह की तो विशेष व्याख्या से बना ही है पर इसमें संयम के रूप में ब्रह्मचर्य एवं अनैतिक परिग्रह के माध्यम से अचौर्य भी रेखांकित हो जाता है। अनेकान्तवाद यथार्थ में सत्य की गहराईयों का अन्वेषण है और अहिंसा के सूक्ष्मतम दृष्टिकोण को भी उजागर करता है। भगवान महावीर का मानना था कि किसी भी घटना या तथ्य को एकांगी पकड़ना आग्रह है, सत्य का विपर्यास है एवं अनन्तधर्मा वस्तु के एक धर्म को मान्यता देकर उसके शेष धर्मों को नकारना स्वयं में अपूर्णता है।

हर वस्तु का, घटना का, तथ्य का, पूर्ण विवेचन करना ही यथार्थ को पाना है। किसी भी तथ्य को उसकी संपूर्णता से देख पाना ही अनेकान्तवाद है। उनका कथन था कि सामने आने वाला सत्य भी संभव है पूर्ण सत्य न हो और उसकी सत्यता को प्रभावित करने वाले अनेक पहलू हमारे समक्ष उजागर ही न हुए हों। यही नहीं वस्तुनिद् घटना का मात्र आँखों के सामने भी पूर्ण तरह से घटित हुआ सत्य भी अपूर्ण या भ्रम भी हो सकता है। जैसे एक घड़े को घड़ा कहना उसके अस्तित्व का बोध तो देता है पर वह क्या वास्तव में मात्र घड़ा ही है या उसके अस्तित्व के साथ और भी कुछ शामिल है, इसका बोध तभी संभव है जब हम अनेकान्तवाद के सिद्धान्त के यथार्थ को पहचानें। घड़े का शरीर मिट्टी का है जो उसके नास्तित्ववाद को पोषित करता है। मिटटी से घड़े को रूप दिया जाना सत्य का एक अलग पहलू है जहाँ कुम्हार, जल और अग्नि को मान्यता मिलती है। अतः घड़े को समग्र दृष्टि से देखने पर हमें उसके अन्तिम रूप के साथ मिट्टी, चाक, जल, एवं अग्नि ही नहीं कुम्हार एवं उसके श्रम के भी दर्शन होते हैं और ये सब समझने के बाद ही हमें उसका मूल्य भी समझ में आता है। यही नहीं घड़े द्वारा जल को शीतल किया जाना भी याद आना चाहिए। घड़े को इस तरह उसके पूर्ण रूप में समझना ही स्यादवाद् या अनेकान्तवाद है। स्यादवाद् को मानसिक रूप से समझने के लिए एवं उसे जीवन में उतारने हेतु हम एक दृष्टान्त लेते हैं।

एक 5–6 वर्ष का बालक था। वह पूर्णतः अनाथ था। एक दिवस उसे कहीं से भी भोजन प्राप्त नहीं हुआ। वह भूख से व्याकुल होकर एक ढाबे पर गया व वहां से एक रोटी उठाकर भागने लगा। ढाबे वाला चिल्लाया, चोर! चोर! और लोगों ने बच्चे को पकड़कर पहले तो पीटा, फिर उसे पुलिस के हवाले कर दिया। पुलिस ने यत्रंवत एफ.आई.आर. लिखकर उसे अदालत में जज के समक्ष पेश कर दिया। जज बच्चे की वय और चोरी की वजह जानकर पीड़ा व करूणा से भर उठा। उसने पुलिस और ढाबे वाले दोनों की भर्त्सना की व कहा हमारे इस समाज पर लानत है जो इस बच्चे में अपराधी ढूंढता है। तुम लोगों ने क्या इसकी वय पर व इसकी आवश्यकता पर ध्यान देने का जरा भी श्रम किया? इसे तो पता भी नहीं है कि उसने अपराध किया है व भागने की प्रक्रिया इसलिये हुई कि उसे लगा कि उससे वह रोटी कोई छीन न ले। हमारा समाज उसके रोटी उठाये जाने को मात्र चोरी समझता है तो यह समाज के स्वरूप की कमजोरी को प्रकट करता है जो इस छोटे बच्चे को जीवन के समस्त साधनों से तो वंचित रखता है, इसकी भूख को भी अस्वाभाविक मानता है। ईश्वर ने भूख को प्राणी का स्वभाव बनाया है तो इस बच्चे द्वारा रोटी का उठाया जाना अस्वाभाविक कैसे हो सकता है? यह अदालत उन अपराधियों के लिए बनी है जिनके कृत्य पाप की श्रेणी में आते हैं। यह बच्चा तो न पाप समझता है न पुण्य, यह अपराधी कैसे हो सकता है? जज ने सत्य के चरम को छूते हुए पुलिस की भर्त्सना की एवं ढाबे वाले पर जुर्माना करते हुए बच्चे को पेट भर कर भोजन कराने का आदेश दिया। किसी भी सिद्धांत की संपूर्णता उसके अन्दर मानवीयता की खोज के साथ ही समाप्त होती है। महावीर स्वामी का अनेकान्तवाद भी इसी तरह सत्य को समग्र रूप में संपूर्णता के साथ समझना ही है। यह आवश्यक है कि मनुष्य इसे समझने के लिए अंतः चक्षुओं का भी प्रयोग करे। सत्य का बाहरी ढांचा उसके आन्तरिक स्वरूप को प्रकट नहीं करता और अनेकान्तवाद यही करता है कि सत्य के बाहरी ढांचे यानि कि हमें सीधा–सीधा जो नजर आता है उसके अतिरिक्त भी उसके आन्तरिक स्वरूप को प्रभावित करने वाले कारणों एवं पहलुओं पर भी अन्वेषण करना चाहिये ताकि हमारे द्वारा उनके ऊपर लिये गये निर्णयों में गलती न हो। सत्य की उपेक्षा अथवा उसकी गंभीरता को न

समझना मन की हिंसक प्रवृति का द्योतक है। यह स्थिति किसी न किसी के प्रति अन्याय का कारण बन सकती है जिसका ध्यान रखना ही आवश्यक है।

वर्तमान में समाज इतनी छोटी सोच वाला हो गया है कि वह स्वार्थ व पूर्वागृहों से बाहर न निकल पाने के कारण स्वंय के हित के बारे में सोचने के अतिरिक्त कुछ सोच ही नहीं पाता। जीवन में ऐसा कोई कृत्य नहीं जहाँ पर हम अनेकान्तवाद के सिद्धान्त का प्रयोग न कर सकें। अनेकान्तवाद मात्र सत्य का समग्र अन्वेषण है, यह सत्य के पीछे के सत्य को पहचानने में हमारी सहायता करता है। यह हमारे मन और मतिष्क का एक अंग बन जाना चाहिए ताकि अपने कृत्यों को इसकी छलनी में से गुजारते हुए सत्य के रूप की अंतिम परिणिति तक पहुंच सकें। यह हमारी समस्त समस्याओं के समाधान का मार्ग प्रशस्त करता है। अपने रिश्तों में स्वार्थ जोड़ देना भी सत्य को अनदेखा करना है। अपने सामाजिक जीवन को सफल बनाने के लिए अनेकान्तवाद के सिद्धान्त का प्रयोग मनुष्य को अपने विचारों को परिष्कृत करने हेतु करना चाहिए। स्वार्थ या पूर्वाग्रह हमें सदैव कुछ निर्णयों से रोकते हैं मगर इसके प्रकाश में हम उचित निर्णय लेकर अपनी गल्तियों से बचकर अपने सामाजिक जीवन को मधुर व तनाव रहित बना सकते हैं। वास्तव में जीवन में सत्य को स्थान देने पर मनुष्य तनाव रहित रह सकता है पर यहाँ भी एक शर्त है कि इस सत्य में मानवीयता का स्थान सर्वोपरि रहना चाहिये।

अतः अनेकांतवाद को समग्र रूप से समझे जाने के लिये वैचारिक संसार की विस्तृत मीमांसा की आवश्यकता होती है। एक ही सत्य के प्रति अलग–अलग लोगों की सोच अलग–अलग लोगों की सोच अलग–अलग होती है क्योंकि संसार में विचारों की विविधता ही इसके प्रति समग्र रूप से जागृत होने या रह पाने का मार्ग है। सत्य की राह में असत्य व भ्रम के कांटे अवश्य आते हैं, जो सत्य के स्वरूप को बादलों की तरह आच्छादित करते हैं, पर अनेकान्तवाद की छलनी का प्रयोग, जहां निस्पृह भाव से निर्णय लिये गये हों, निष्पक्षता के प्रति सुदृढ़ता हो, वैचारिक क्षमताऐं विवेकसम्मत हों, न्याय दृष्टि का निवेश हो, निस्वार्थता व सहिष्णुता के मार्ग खुले हों, सत्य को समग्र रूप से देख पाने व समझ पाने का सामर्थ्य देता है। अतः अनेकांतवाद सत्य के प्रति आग्रह है, सत्य को पहचानने व समझने का मार्ग है। यह सत्य को समझने की पराकाष्ठा है जहां सत्य अपने समस्त विवेचनों, दृष्टिकोणों एवं विश्लेषण के मार्ग स्वयं खोल देता है। इसलिये अनेकांतवाद किसी खनिज में उपस्थित उसके मूल तत्व की खोज के समान है या हम कह सकते हैं कि यह सत्य के उस स्वरूप को पहचानना है जब वह हमारे समक्ष स्वयं को चुनौती की तरह पेश कर रहा हो।

ऐसा सत्य जो सत्य के महत्व को ही ध्वस्त कर दे यानि कि वे सत्य जो हमें भले ही हानि न पहुंचाये मगर दूसरे पक्ष को अनावश्यक रूप से हानि पहुंचाते हों तो सत्य के उस पक्ष को भी अनदेखा नहीं किया जा सकता। एक दृष्टान्त यहाँ भी इसे समझने के लिए लेना आवश्यक होगा। मान लीजिये जंगल में आपके सामने एक हिरन शिकारियों से बचता हुआ भागता हुआ आता है व आपके सामने किसी मार्ग पर चला जाता है तो शिकारियों को सत्य के नाम पर सही मार्ग बताना अनेकान्तवाद के सिद्धान्त का हनन करता है क्योंकि हम सत्य के अनावश्यक पक्ष को उजागर करते हुए हिंसक पात्र बन सकते हैं। वहीं यदि कोई चोर हमारे सामने से सामान लिए भागता नजर आता है तो उसका पीछा करने वालों को उसके सही मार्ग को बताना अनेकान्तवाद के सिद्धान्त की रक्षा करता है क्योंकि यह जानते हुए भी कि चोर को पकड़े जाने पर उसे पीटा जायेगा या पुलिस में दे दिया जायेगा, यह सोचकर उसकी रक्षा का प्रयत्न करना जिन लोगों का सामान चोरी हुआ है उनके साथ

अन्याय ही नहीं होगा बल्कि उनके दुःख का कारण बनकर हिंसा की प्रवृति बनेगा। सत्य के प्रति सोच की यही समग्रता अनेकान्तवाद की देन है, अतः हमें निर्णय लेते हुए यह ध्यान देना होगा कि सत्य में मानवीयता का अंश नष्ट नहीं होना चाहिए।

हम समाज की विषमताओं के बीच रोज कहीं न कहीं से गुजरते हैं। एक उदाहरण लें कि समाज में से दो व्यक्ति चुनाव में खड़े होते हैं। एक हमारा मित्र है जो समय के अनुसार सिद्धान्तों से समझौता करने का आदी है। दूसरा व्यक्ति अपने सिद्धान्तों से समझौता नहीं करने के लिए प्रसिद्ध है मगर इसीलिये कुछ अलोकप्रिय भी है। ऐसे समय हमारा रूझान पहले व्यक्ति की तरफ ही सामान्यतः स्वाभाविक माना जावेगा क्योंकि वह न केवल हमारा मित्र है बल्कि समय पर हमारे स्वार्थ के लिये अपने सिद्धान्तों की बलि भी देने को तैयार रहेगा। अतः चुनाव की दृष्टि से देखा जाये तो जनहित, निरपेक्षता व निष्पक्षता के कारण एवं अनेकान्तवाद की कसौटी पर कसे जाने के पश्चात दूसरे व्यक्ति को ही वोट देकर चुना जाना चाहिए। यदि समाज भी अपने यहाँ चुनावों में अनेकान्तवाद के सिद्धान्त पर नेताओं का चयन करने लगे तो हमें अधिक चरित्रवान नेता मिलेंगे। क्या हमें यहाँ लगता है कि हमारी सहिष्णुता ने ही अनेकान्तवाद के माध्यम से हमें चरित्रवान नेता के चुनाव तक पहुंचाया। मनुष्य के लिये यह अस्वाभाविक नहीं कि वह मानवीय कमजोरियों का शिकार ना हो पर यदि इच्छाशक्ति जागृत करने की कोशिश की जाये व मन की दृढ़ता पर सहिष्णुता के माध्यम से संयम बनाये रखा जाये तो अनेकांतवाद का मार्ग हमें अन्ततः जीवन के हकर उस सत्य के प्रति समर्पित होने की भावना व शक्ति देता है जिसके आगे हमारा जीवन पूर्वाग्रहों व स्वार्थों से मुक्त होकर हमें अनावश्यक तनावों से भी मुक्त रखता है।

मो. नं. 8949508217

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Sept. 2025 Page No. : 241-244

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

मालती जोशी कृत 'वो तेरा घर, ये मेरा घर' में छिन्नित वृद्ध समस्या

डॉ. ए. परविन

सहायक प्राध्यापिका, SDNB Vaishnav College for Women, Chromepet-44.

भूमिका :

हिंदी साहित्य की प्रसिद्ध कथाकार मालती जोशी ने अपनी कहानी ष्वो तेरा घर, ये मेरा घरष् के माध्यम से केवल पारिवारिक जीवन की झलक नहीं दी है, बल्कि बदलते सामाजिक परिवेश और पारिवारिक मूल्यों पर गहन प्रश्न भी उठाए हैं। यह कहानी वृद्धजनों की स्थिति, उनके साथ हो रही उपेक्षा और भावनात्मक संघर्ष को संवादों की मार्मिकता द्वारा प्रस्तुत करती है।

आज का समाज तेजी से बदल रहा है। संयुक्त परिवार की परंपरा धीरे–धीरे टूट रही है और परमाणु परिवारों का चलन बढ़ रहा है। ऐसे माहौल में वृद्धजन, जो कभी घर की आधारशिला और मार्गदर्शक शक्ति माने जाते थे, अब कहीं न कहीं बोझ या असुविधा के प्रतीक के रूप में दिखाए जाते हैं। इस कहानी में लेखक ने वृद्ध पिताजी की जीवन–स्थितियों और उनकी मानसिक अवस्थाओं को संवादों के माध्यम से जीवंत कर दिया है। कहानी केवल एक घर की नहीं, बल्कि आज के समय में हर घर और पूरे समाज की सच्चाई का प्रतिबिंब है।

वृद्धावस्था की समस्याएँ और संवाद–विश्लेषण :

कहानी मूल रूप से संवादों पर आधारित है। इन संवादों में छिपा हुआ कटाक्ष, असहजता, उपेक्षा और कभी–कभी प्रेम का भाव, वृद्धजनों की स्थिति को बखूबी उभारता है। इसे विभिन्न आयामों में देखा जा सकता है।

उपेक्षा और मानसिक अकेलापन :

वृद्धावस्था की सबसे बड़ी समस्या अकेलापन है। जब परिवार के लोग उन्हें बोझ समझने लगते हैं, तब उनके अस्तित्व की कठिनाई और बढ़ जाती है। कहानी की शुरुआत का हल्का–फुल्का माहौल तब बदल जाता है जब पिताजी को घर लाने की बात होती है। बेटा कहता है :

'मैं सोच रहा था... इस शनिवार–इतवार सागर जाकर बाबूजी को लिवा लाता।'

इस पर बच्चों और पत्नी के प्रत्युत्तर तुरंत माहौल बदल देते हैं। स्पष्ट शब्दों में कहा जाता है :

'बड़े–बुजुर्ग घर में होते हैं तो थोड़ा बंधन तो हो ही जाता है। बच्चों के हँसने–बोलने पर, खाने–पीने पर

बंदिश लग ही जाती है।'

यह संवाद सीधे–सीधे यह दर्शाता है कि वृद्ध की उपस्थिति परिवार की स्वतंत्रता में बाधा मानी जा रही है। इस मानसिकता के कारण बुजुर्ग अपने ही घर में पराये और असहज महसूस करते हैं।

असुविधाजनक गृह व्यवस्था :

घर में जगह होते हुए भी वृद्धजन को स्थायी ठिकाना नहीं मिल पाता। यह केवल 'स्पेस' की समस्या नहीं बल्कि आदर और सम्मान का मसला है।

'तीन बेडरूम वाले घर में भी बाबूजी के लिए निरापद बस यही स्थान था। वे दीवान पर आराम से सो जाते थे...'।

कभी बेटी के कमरे में सोना अनुमति नहीं क्योंकि वह जवान हो रही है, कभी बेटे के कमरे में असुविधा है। परिणामस्वरूप हॉल का दीवान ही उनका स्थायी ठिकाना बन जाता है। उनके सामान– दवाइयाँ, मफलर, टोपी, चश्मा वहीं बिखरे रहते हैं और घर का 'ड्रॉइंग रूम' मेहमानों के लिए अनुपयुक्त हो जाता है।

यह परिस्थिति वृद्ध के लिए सम्मानजनक कोना न मिलने की पीड़ा को उजागर करती है।

स्वास्थ्य संबंधी समस्याएँ और उपेक्षा :

उम्र बढ़ने के साथ शारीरिक स्वास्थ्य कमजोर होना स्वाभाविक है। लेकिन परिवार यदि सहानुभूति के बजाय खीज व्यक्त करे, तो समस्या और बढ़ जाती है।

'बुढ़ापे के कारण रात में कई बार उठना पड़ता था। सो पप्पू के कमरे का ही आश्रय लेना पड़ता था. .. प्रसन्ना, सुबह–सुबह उनके मुख–प्रक्षालन से खीज उठता था।'

यहाँ स्पष्ट है कि बाबूजी की स्वास्थ्य समस्या परिवार के लिए चिंता का विषय कम और झुंझलाहट का कारण अधिक है। यह व्यवहार वृद्धावस्था को और कठिन बना देता है।

भावनात्मक दूरी और बोझ की भावना :

जब घर के छोटे–बड़े सदस्य ही बुजुर्ग को बोझ मानने लगें, तो उनका मनोबल टूट जाता है।

'एक स्थिति यह आई कि बाबूजी बच्चों के लिए 'अझेल' हो गए। यह 'अझेल' शब्द भी बच्चों का ही गढ़ा हुआ था, जो प्रसाद जी को बहुत चुभा था।'

सरल–सा शब्द 'अझेल' एक गहरे भावनात्मक घाव की तरह है। ऐसे शब्द रिश्तों से स्नेह और अपनापन छीन लेते हैं और वृद्धजन को मात्र अतिरिक्त जिम्मेदारी बना देते हैं।

महिलाओं की भूमिका एवं वृद्धजन स्त्रियाँ :

कहानी में बुजुर्ग स्त्रियाँ भी हाशिए पर दिखाई देती हैं। उनका मूल्य केवल सेवा–सहयोग करने तक सीमित कर दिया जाता है।

'बेचारी जब भी आई हैं, खुद ही खटती रही हैं। अब यह किसना की बहू आ गई है तो थोड़ा हाथ बँटा देगी।'

यह दर्शाता है कि वृद्ध महिलाओं से भी सेवा की अपेक्षा की जाती है, बजाय उन्हें आराम और संबल देने के। वृद्धावस्था में भी उनका योगदान और श्रम प्रमुखता से दिखता है, जबकि उनकी आवश्यकताओं पर बहुत कम ध्यान दिया जाता है।

वृद्ध पिता की चिंता में झलकती बेटियों की पीड़ा :

पत्नी के निधन के बाद वृद्ध पिता अब अकेले घर संभालते हैं। ऐसे में जब उनकी विवाहित बेटियाँ अपने मायके आती हैं, तो उन्हें थोड़ी राहत की उम्मीद होती है। लेकिन यह राहत उनके लिए नहीं, बल्कि घर के काम–काज में मदद के रूप में देखी जाती है। वे इस बात को बड़े दुःख और चिंता के साथ व्यक्त करते हैं :

'बेचारी जब भी आई हैं, खुद ही खटती रही हैं। अब यह किसना की बहू आ गई है तो थोड़ा हाथ बँटा देगी।'

इस एक वाक्य में एक वृद्ध पिता की विवशता, बेटियों के श्रम की अनदेखी, और घर की जिम्मेदारियों में उलझी स्त्रियों की दशा झलकती है।

स्वतंत्रता एवं स्वावलंबन की आकांक्षा :

बुजुर्ग केवल सहानुभूति नहीं चाहते, वे अपनी स्वतंत्रता और आत्म सम्मान बरकरार रखना चाहते हैं।

'मुझे लाने–ले जाने की जरूरत नहीं है बेटा! मेरी जब मर्जी होगी, चला आऊँगा। पर जब तक मेरे हाथ–पाँव चल रहे हैं, मुझे 'वो तेरा घर, ये मेरा घर' यहीं रहने दो। यहाँ मेरे दोस्त–अहबाब हैं, नाते–रिश्तेदार हैं, पास–पड़ोस है।'

यहाँ वृद्ध की आकांक्षा स्पष्ट है– वे निर्भरता नहीं चाहते, बल्कि अपनी सामाजिकता और जीवन के ढर्रे को बनाए रखना चाहते हैं।

आर्थिक चिंता और 'घर' का महत्व :

वृद्धों के लिए घर केवल ईंट–पत्थर का मकान नहीं होता, बल्कि जीते–जागते स्मृतियों और पहचान का स्रोत होता है।

'मकान तो बेचना ही है। जो भी खरीदेगा, वही किसना से भी निपट लेगा।'

और

'यह मेरे लिए सिर्फ ईंट–गारे की इमारत नहीं है। मेरा मानसिक संबल है यह।'

जहाँ परिवार मकान को केवल आर्थिक मूल्य में देखता है, वहीं बाबूजी के लिए वह अस्तित्व और आत्मसम्मान का प्रतीक है। यह विरोधाभास वृद्ध और नयी पीढ़ी की सोच में दूरी को दर्शाता है।

वृद्ध और सामाजिक यथार्थ :

संवादों के जरिए कहानी केवल परिवार की नहीं बल्कि व्यापक समाज की स्थिति उजागर करती है। आज भी अनेक घरों में बुजुर्गों के लिए स्थायी स्थान नहीं है, न ही उनके लिए भावनात्मक सहयोग। उन्हें परिवार के एडजस्टमेंट के बोझ के रूप में देखा जाता है। इस सामाजिक वास्तविकता को कहानी बड़ी बारीकी से उद्घाटित करती है।

संवादों से स्पष्ट वृद्धावस्था की जटिलताएँ :

- उपेक्षा और मानसिक तनाव।
- भावनात्मक दूरी और बोझ का अहसास।
- स्वास्थ्य समस्याएँ और संवेदनहीनता।
- गृह व्यवस्था की असुविधा।

- आर्थिक चिंता और विरासत का प्रश्न।
- स्वतंत्रता की लालसा और आत्मसम्मान का संघर्ष।

ये सभी समस्याएँ आज भी जीवंत सच्चाइयाँ हैं, जिन्हें साहित्य ने संवेदनशील रूप से उभारा है।

निष्कर्ष :

कहानी 'वो तेरा घर, ये मेरा घर' केवल एक साहित्यिक रचना नहीं है, बल्कि यह हर उस घर की मार्मिक तस्वीर है जहाँ वृद्धजन उपेक्षा, असुविधा, भावनात्मक अकेलेपन और असुरक्षा से जूझ रहे हैं। संवादों के माध्यम से लेखक ने समाज की कठोर हकीकत को ऐसे ढंग से प्रस्तुत किया है कि पाठक केवल पढ़ता ही नहीं बल्कि महसूस भी करता है। यह कहानी हमें यह संदेश देती है कि :

- वृद्धजनों को परिवार में सम्मानजनक स्थान मिलना चाहिए।
- उनके स्वास्थ्य, भावनाओं और आत्मसम्मान का ख्याल रखना परिवार की जिम्मेदारी है।
- मकान' केवल संपत्ति नहीं बल्कि पहचान और भावनात्मक सुरक्षा का आधार है।

परिवार और समाज तभी पूर्ण कहलाएंगे जब वे अपने बुजुर्गों के अनुभव और जीवन–सत्य को स्वीकार कर उन्हें गरिमा के साथ जीवन जीने का अवसर देंगे। प्रसाद जी जैसे वृद्ध पात्रों की स्थिति हमें सोचने पर मजबूर करती है कि यदि आज हम बुजुर्गों के साथ उचित व्यवहार नहीं करेंगे तो कल यह स्थिति हमारी भी हो सकती है। इसीलिए परिवार को संवेदनशील और सहृदय होकर वृद्धजन के लिए सम्मानजनक कोना, भावनात्मक सहयोग और आत्मसम्मान देना ही इस कहानी का केंद्रीय संदेश है।

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Sept. 2025 Page No. : 245-250

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

२१वी सदी के हिंदी उपन्यासों में चित्रित स्त्री (विशेष उपन्यासों के संदर्भ में)

डॉ. रीना निलेश खिचडे

म्हैसाल महाविद्यालय म्हैसाल, तह. मिरज जिला सांगली।

नारी को आदिशक्ति का रूप माना जाता है। परिवार की नींव भी नारी ही है। नारी से ही सृष्टि का निर्माण है, पर फिर भी वह वर्तमान में पुरुष की दासी और प्रताड़िता ही रही है। समाज में नारी की स्थिति सदैव दोयम दर्जे की ही मानी जाती है। स्वाधीनता प्राप्ति के बाद भारतीय जीवन में परिवर्तन आया। धीरे–धीरे स्त्री भी स्वतंत्र होने की कोशिश करती गई उसने अपने अस्तित्व की लड़ाइयां जोर–शोर से शुरू की। आत्मसम्मान के साथ अगर उसे जीना है तो उसे आत्मनिर्भर बनना होगा यह उसने जान लिया। भारतीय नारी किससे मुक्त होना चाहती है के सवाल पर ममता कालिया का कहना है– 'मुक्ति किसी एक व्यक्ति से नहीं वरन् एक व्यवस्था से मिलने की बात होती है। औरत को हमेशा समाज ने चौखटों में बांधकर रखा है, वह उसका वही बंधा–बंधाया रूप देखना चाहता है। समाज चाहता है कि औरत एक गाय या बकरी की तरह अपने बाड़े में बंधी रहे थोड़ी बहुत उछल–कूद या बगावत वहीं से कर ले तो ठीक लेकिन अगर बाड़ा तोड़कर वह आगे आ जाए तो वह उसे मंजूर नहीं।'[१] २१वी सदी के हिंदी उपन्यासों में यह आधुनिकता विभिन्न और बहुमुखी आयाम के साथ उजागर हुई है। जीवन विकास की प्रक्रिया में स्व–के प्रति सचेत स्त्री अपने आत्मसम्मान के प्रति जागृत हुई है। आत्मनिर्भर बनने की उसकी चाहत ने ही उसे विकसित जीवन की ओर अग्रसर किया है। पुरुष के साथ–साथ २१वीं सदी की स्त्री अपने करियर को महत्व देने लगी है। अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के साथ–साथ विवाह आदि संबंधी दृष्टिकोण में आधुनिक कालीन स्त्री में आ रहे सकारात्मक परिवर्तन ने मानव जीवन में निश्चय ही क्रांतिकारी परिवर्तन किए हैं। साहित्यकार अपनी पुरानी मानसिकता से हटकर आज अपने साहित्य को आधुनिक परिवेश के साथ प्रस्तुत कर रहा है। २१वीं सदी के हिंदी उपन्यासों में चित्रित स्त्री को विविध आयामों के साथ विश्लेषित करने का प्रयास किया गया है।

२१वीं सदी में स्त्री निजी जीवन में अपने आत्मसम्मान के प्रति जागृत दिखाई देती है। पुरानी सड़ी–गली परंपराओं से निजात पाकर उसने विज्ञान का सहारा लेकर तथा अपने सकारात्मक मनोविष्कारों के सहारे विकास के नए चरण स्थापित किए हैं। पराधीनता ने उसे व्यावहारिक जीवन में ही नहीं बल्कि मानसिक स्तर पर भी गुलाम बनाया था काफी अरसे के बाद उसने अपने आत्म बल को पहचान है। 'पीली आंधी' उपन्यास दो हिस्सों में बंटा है। पहले हिस्से में माधोबाबू का मुख्य चरित्र है। दूसरे हिस्से में माधोबाबू के भाई सांवर का भरापूरा परिवार

दिखाया गया है। माधोबाबू की दूसरी पत्नी पद्मावती ताईजी के रूप में परिवार की केंद्रीय धूरी संभालती है। सांवर के छोटे बेटे की पत्नी का नाम सोमा है। सोमा मारवाड़ीपन को झटक कर अपने पैसे वाले नपुंसक पति को छोड़कर बंगाली प्रोफेसर (सुजीत) के साथ घर बसाती है। वह सुजीत के बच्चे की मां होने वाली थी। सुजीत की पत्नी चित्रा उसका ख्याल रखती है। वह उसकी महीनों तक देखभाल करती है। सोमा चित्रा से पूछती है कि उसे सुजीत को छोड़ने का दुख नहीं हो रहा? तब वह बताती है– 'हां, दुख तो हुआ था।... फिर बाद में लगा कि यह धोखा तो मैं स्वयं को दे रही हूं। जब प्रेम ही नहीं, तब किस बात की जलालत? प्रेम की भीख नहीं मांगी जाती। मेरा अपना कोई आत्मसम्मान नहीं? और फिर यह किस शास्त्र में लिखा है कि किसी से प्रेम करो तो ताउम्र करते जाओ।' इससे स्पष्ट होता है की चित्रा अपने आत्मसम्मान की रक्षा के खातिर ही सुजीत से प्यार की भीख नहीं मांगती और उससे अलग होने का फैसला करती है।

'एक जमीन अपनी' उपन्यास में लेखिका ने अंकिता को गढ़ने में बहुत मेहनत की है। अंकिता के चरित्र का सबसे सफल पक्ष यह है कि उसे अपनी आत्म स्वाभिमान को ताक में रखना बिल्कुल भी स्वीकार्य नहीं है। नशे में धुत्त सक्सेना के बहकने पर वह उसे चेतावनी देती हैं– 'मि. सक्सेना दिस शोल्डर बिलांग्स टू मी... अपना हाथ जगह पर रखेंगे या मैं उसे जगह बताऊं?'[३] हालांकि यह बेबाकी उसे अपने करियर के रास्ते में कई जगह भारी पड़ती है। पर यही आत्म सम्मान उसे 'माध्यम' की मुख्य कार्यकारी अधिकारी की पदवी भी देती है। नीता के आचरण से मर्माहित होती, तिलक को मुंहतोड़ जवाब देती, मां की चिंता करती, शहर के बेमुरव्वत होने से क्षुब्द होती, चौथे पेग के लिए हरींद्र को टोकती और सुधांशु को 'औरत बोनसाई का पौधा नहीं है' – का पाठ पढ़ाती अंकिता कहीं भी अस्वाभाविक नहीं लगती।

२१वीं सदी में आत्मनिर्भर बनने की चाहत हर एक के दिल में जागृत हुई है। पुरुषी मानसिकता ने उसे सदियों से जकड़ दिया था, उसके आजाद होने की झटपटाहट भी सदियों से शुरू थी। आधुनिक कालीन स्त्री इस नए तेवर के साथ जरूर अवतरित हुई दिखाई देती है। हर क्षेत्र में उसका हुआ सशक्त आगमन जिसके फल स्वरुप वह आत्मनिर्भरता के साथ जीवन जी रही है। 'विजन' उपन्यास की नायिका डॉ. नेहा, डॉ. आर. पी. शरण जो 'शरण आई सेंटर' के निर्माता थे, उनकी बहू बन गई। डॉ नेहा अपने पेशे के प्रति जागृत दिखाई देती है। वह सोचती है कि अगर वह डॉक्टर होने का फर्ज नहीं अदा कर सकती तो मेडिकल कॉलेज का पैसा अपने ऊपर क्यों खर्च कराया? नेहा खुद से ही सवाल पूछती है। अजय के साथ वह अपनी तुलना नहीं करती, क्योंकि उसने अपनी पढ़ाई के लिए अपने पिता का पैसा खर्च किया है। वह अपने पिता का कर्जदार है। वह पराश्रित है। यह सोचते हुए वह अपने आप से कहती है– 'तुम प्रतिबद्ध डॉक्टर। अपनी प्रतिभा, अपनी कुशाग्रता और अपनी लगन की धनी, स्वावलंबी हो। अपना स्वाभिमान रखो। स्वाभिमान किसी का डर नहीं मानता। पराश्रित से बंधकर आत्मनिर्भर कैसे हो सकती हो?'[४] इससे डॉ. नेहा ने स्पष्ट किया है कि जो पराश्रित होता है उससे बंधकर कभी भी आत्मनिर्भर नहीं बना जा सकता। आत्मनिर्भरता के लिए स्वावलंबी होना जरूरी है।

'एक जमीन अपनी' उपन्यास में सुधांशु अपना घर ताश का अड्डा बना देता है। वह अपने घर में दोस्तों के साथ शराब पीता है, ताश खेलता है, गंदे गंदे मजाक करता है। सुधांशु अंकिता को अपनी इच्छा अनुसार ढालना चाहता है। अंकिता इसका जब विरोध करती है तो सुधांशु उसे इतना मारता है कि उसका गर्भपात हो जाता है। अंकिता इससे विद्रोही बन कहती है, 'मेरे लिए भी उसका मरना ही जिंदगी से तुम्हारा निष्कासन है.

.. वरना उसकी शक्ल में जिंदगी भर मुझे तुमको ढ़ोना पड़ता... क्योंकि वह हमारा बच्चा नहीं था... तुम्हारी कामुकता का परिणाम था... मुझे तुमसे घृणा है, घृणा है... घृणा... तुम्हारी ऐय्याशियों और ज्यादतियों को सती–साध्वी बन मांग में सजाए झेलती जाना... इस मुगालते में रहना कि मैं स्त्रीत्व की पूर्णता का भ्रम जीती रहूंगी, लो, इसी वक्त यह रिश्ता खत्म।'[५] आखिर सहन करने की भी कोई सीमा होती है। घुटन भरे दांपत्य जीवन को त्याग कर अंकिता मायके चली जाती है और आत्मनिर्भर बन जाती है।

सदियों से गुलामी, शोषण, उत्पीड़न, दमन इनसे जर्जर स्त्री ने अपना अस्तित्व ढूंढने के लिए अब सामाजिक बंधनों की चौखट लांघ दी है। २१वीं सदी की स्त्री करियर को अपने जीवन का महत्वपूर्ण और अभिन्न अंग मानने लगी है। समकालीन या पौराणिक काल में विवाह को स्त्रियां बहुत महत्व देती थी और पति को परमेश्वर मानती थी। पर अब स्थिति में बदलाव आ गया है। स्त्री अब विवाह और बच्चे को भी अपने करियर में बाधक मानती है। आज की स्त्री कैरियरिस्ट बन गई है। 'विजन' उपन्यास में डॉ. नेहा की आदर्श डॉ. आभा जो मेडिकल कॉलेज की सीनियर डॉक्टर थी वह भी अपने करियर को महत्व देती हुई नजर आती है। दिल्ली की आभा बरेली शहर की बहू बन गई। शादी के बाद जब मुकुल ने हनीमून जाने का नियोजन किया तो डॉक्टर आभा ने उसे इंटरव्यू की अनिवार्यता बतायी। फिर भी मुकुल ने उसे मनाने की बहुत कोशिश की, पर आभा ने कहा– 'हम हिल स्टेशन फिर कभी चलें तो कैसा रहे मुकुल?'[६] इससे पता चलता है की आभा जीवन के सबसे हसीन पलों को भी करियर के लिए कुर्बान कर देती है। इसके बाद आभा और मुकुल दिल्ली में नौकरी करने लगे, पर छुट्टियों में वह बरेली आते थे। एक बार जब वह छुट्टी पर आए तो मुकुल के माता–पिता ने जिद पकड़ ली की आभा को कुछ दिन यही छोड़ जाए। तब मुकुल ने आभा को समझाया। पर आभा के अंदर का डॉक्टर हर बार जाग उठता है और वह कहती है– 'मैं भी जाऊंगी। मुझे जाना होगा। मेरे पेशेंट्स...'।[७] और वह साड़ी उतार कर सलवार कमीज पहन कर तैयार हो जाती है। इससे मुकुल और आभा में तनाव पैदा हो जाते हैं। इसकी परिणति अंत में आभा मुकुल से तलाक मांगती है और आभा सोचने लगती है– 'पति की अनुगामिनी बनना ही तो जीवन का ध्येय नहीं। सहगामीनी होती तो बात कुछ और होती।'[८] उसकी इस सोच से साबित होता है कि वह करियर को भी वैवाहिक जीवन जितना ही महत्व देती है।

'पीली आंधी' उपन्यास में नायिका सोमा परंपरा की सब सीमा रेखाएं लांघकर सुजीत के साथ रहने लगती है। सुजीत शादीशुदा आदमी था। सुजीत की पत्नी चित्रा एक समझदार वैचारिक पात्र है। वह अपने पति से गर्भवती हुई सोमा का ध्यान रखती है। उनकी जिंदगी से जाते–जाते उसने सोमा को बी. एड. की परीक्षा देने के लिए कहा और बाद में उसने ही उसे कॉलेज में नौकरी दिलवाई। जाते–जाते उसने सोमा से कहा– 'जो तुम्हारे साथ घटा, वह तुम्हारे साथ या किसी और भी औरत के साथ घट सकता है, कम से कम अपने पैर पर खड़ी औरत भीख तो नहीं मांगती?"[९] इससे स्पष्ट होता है की चित्रा खुद तो कैरियरिस्ट है ही साथ में वह सोमा को भी करियर का महत्व बता कर जाती है।

आज समाज में हर व्यक्ति को विचार स्वातंत्र्य दिया गया है। पुरुषों के साथ स्त्रियां भी अपने स्वतंत्र विचार सबके सामने प्रस्तुत करने में नहीं झिझकती। 'पीली आंधी' उपन्यास में सोमा स्वतंत्र विचारों से प्रभावित है। सोमा पढ़ी–लिखी युवती है। जिसका विवाह सांवर के छोटे बेटे गौतम से होता है। सुजीत से प्यार करने लगी। एक दिन जब दोनों एक दूसरे के बहुत करीब आ जाते हैं तब सुजीत वहां से चला जाता है, तब सोमा सोचती

है,–'आखिर गलत क्या है? ऐसा कौन सा अपराध मैं कर रही हूं? क्या अभी इस वक्त भी दुनिया के सैकड़ो स्त्री–पुरुष, एक दूसरे को प्यार नहीं कर रहे होंगे? क्या उनका शरीर साथ नहीं? और क्या सभी पति–पत्नी है? किसी पराए पुरुष को यदि मैं अपनाना चाहती हूं तो अनोखा क्या है? क्या कभी विवाहित स्त्री ने अन्य विवाहित पुरुष से प्यार नहीं किया है? फिर यह भय और ग्लानि क्यों?'[१०] सोमा अनैतिक संबंधों को भी गलत नहीं मानती। उसके स्वतंत्र विचार से वह पाठकों को भी यह सोचने के लिए बाध्य करती है कि वह कहां गलत है? सोमा इस रिश्ते को गलत नहीं समझती उसकी यह सोच स्वतंत्र विचारों की द्योतक है।

भारतीय संस्कृति में विवाह परंपरा अत्यंत प्राचीन काल से चली आ रही है। विवाह संस्कार के द्वारा ही स्त्री–पुरुष पारिवारिक जीवन में प्रवेश करते हैं। विवाह के बंधनों में समय अनुसार परिवर्तन होता आ रहा है। आधुनिक जीवन शैली में लोग इस संस्था को मानने से इनकार करते हैं। वे बिना विवाह किए एक–दूसरे के साथ पति–पत्नी की तरह रहते हैं और जब चाहे मुक्त हो नया साथी खोजते हैं। उन्हें बंधन में जीना मंजूर नहीं है। इससे विवाह परंपरा नष्ट होने की कगार पर खड़ी है। 'पीली आंधी' उपन्यास में सोमा विवाह पद्धति को तोड़ती हुई नजर आती है। जब ताईजी का देहांत होता है तब सोमा अपने आप को रोक नहीं पाती और ससुराल जाती है। वहां उसे कुसुम की सास जब पूछती है कि 'आप जिनके साथ रहती हैं वह भी आए हैं क्या? और आपकी संतान?'[११] इस पर सोमा सोच में पड़ जाती है 'शर्म, अपराध बोध? नहीं लेकिन इसके साथ इतने वर्षों से रह रही हूं? क्या वह मेरा पति नहीं? और क्या जिसके साथ सात फेरों का आज भी बंधन है, कानूनी रूप से तलाक नहीं हुआ वही मेरा पति हुआ? पति नाम का वह पुरुष क्या कभी मेरा अपना हो भी सका था? तब तुम यहां क्या कर रही हो सोमा?'[१२] सोमा यहां विवाह संस्था को चुनौती देती हुई प्रतीत होती है। सोमा के यह सवाल हमें सोचने के लिए बाध्य कर देते हैं कि सिर्फ सात फेरे हो जाने से शादी हो जाती है? जिसके साथ हम मन, वचन, कर्म से जुड़ जाते हैं उसे हम सच्चे अर्थों में विवाह नहीं कह सकते? या फिर सिर्फ पारंपरिक विधि ही विवाह है? ऐसे कई सवाल हमारे सामने भी उपस्थित होते हैं। विवाह सिर्फ एक संस्था मात्र रह गई है। अगर पति–पत्नी में प्रेम ही नहीं तो वह बंधन एक बोझ है और उसे तोड़ देना ही बेहतर है। इसी बात को स्पष्ट करते हुए चित्रा सुजीत की पत्नी कहती है,– 'आज हूं ना? उस दिन तो तूफान मेरे घर में भी उठा था। लेकिन जब प्यार नहीं तब इस व्यवस्था को ढोने से फायदा? क्या इससे अच्छा नहीं कि मैं ही हट जाऊं?'[१३] उक्त कथन से स्पष्ट होता है चित्रा विवाह को सिर्फ एक संस्था मात्र मानती है। चित्रा आधुनिक विचारों से प्रभावित है। वह खुद ही सोमा और सुजीत के बीच से हट जाती है और एक आदर्श पत्नी का उत्तरदायित्व निभाती हुई नजर आती है।

'विजन' उपन्यास में डॉ. आभा डॉ. नेहा का प्रेरणा स्थान है। जब नेहा की शादी की खबर आभा सुनती है तो वह उसे कहती है कि शादी के बाद लड़की जितनी अपने मायके से दूर होती है उतना ही लड़का उसके पास आता है। इसलिए ससुराल वालों की दृष्टि में बहु कड़वी रहती है। आभा की यह बातें नेहा के दिमाग में नहीं घुसती वह सोचती है– 'मैं शादी नहीं करूंगी, मैं शादी हरगिज नहीं करूंगी... जाप करते–करते रो पड़ी थी वह। रुलाई पर शर्म भी आई लेकिन आंसू थमे तब न? तब ही तो कहे–ब्याह करने की जरूरत क्या है आभा दी? डॉक्टर बनकर अपना खर्च नहीं कमा सकते हम? कौन सी पढ़ी–लिखी लड़की आजकल आत्मनिर्भर नहीं? हमारी मांएं नहीं कर पायीं, दुखिया रहीं।उनका दुख देखकर ही तो संतान को प्रायश्चित करना होगा। नहीं सोच

पाई नेहा कि यदि कोई अपनी इच्छा से ब्याह करना चाहे तो? आभा दी का उत्तर होगा– कौन चाहेगा हथकड़ियां लगवाना? बेड़ियां पहनना...'[१४] इससे स्पष्ट है कि नेहा शादी से ज्यादा करियर को महत्व देती है, साथ ही डॉ. आभा तो शादी को हथकड़ियां या बेड़िया कहती है।

आभा के पिता उसकी शादी कर देना चाहते थे इसलिए लड़का देख रहे थे। पहले ही कदम पर उन्हें ठोकर मिली पहला लड़का शराबी और स्मोक करने का आदी था। दूसरा इंजीनियर था पर सट्टा खेलता था। तीसरे लड़के का जीवन लक्ष्य था विदेशी कार और लड़कियां उसकी सोच थी कि– 'माता–पिता को खुश करना भी तरक्की है सो ब्याह हो जाए तो क्या हर्ज है? विवाह ऐसा मान्यता प्राप्त पर्दा है जो 'ऐब' कहीं जाने वाली कई बातों को ढंक लेता है।'[१५] स्पष्ट है कि आजकल के युवकों की सोच भी कितनी घिनौनी होती जा रही है। विवाह के नाम पर गलत काम करने को बढ़ावा देना यही उनका काम है। विवाह जैसे पवित्र संस्कार पर कीचड़ उछाला जा रहा है। अंत में नेहा अजय को शादी का अर्थ पूछती है– 'तुम एक स्त्री को ब्याह कर इसीलिए लाए थे अजय की वह स्त्री बनकर तुम्हें खुश करें और स्त्रीपन का लाभ उठाकर तुम्हारे खतरे दूर करें।'[१६] उक्त कथन से स्पष्ट होता है कि नेहा अंत में विद्रोही बनती है वह अजय को विवाह का सही अर्थ पूछती है। ऐसा लगता है कि जैसे नेहा अजय से नहीं सारी पुरुष जाति से ही विवाह का अर्थ पूछ रही हो।

अंत में मैं इंदुबाली के इन विचारों का समर्थन करूंगी वह कहती हैं –'मैं निश्चित रूप से मानती हूं कि स्त्री और पुरुष में समानता होनी चाहिए मगर इस समानता के चक्कर में स्त्री यदि पुरुष के दुर्गुणों को अपनाती चली जाती है तो वह कैसी नारी मुक्ति? मैं देख रही हूं कि आज की स्त्री कमजोर चाहे नहीं रही मगर उसकी दृष्टि, उसकी दिशा ठीक नहीं है। वह अपनी जड़ों से कट चुकी है। शालीनता के उसके संस्कार हवा हो गए हैं। वह 'नग्नता' को 'आधुनिकता' मानने के भ्रम में जी रही है। देह और पैसा ही उसके लिए महत्वपूर्ण हो गए हैं। मगर क्या ऐसा करके वह स्वाभिमान और आत्मसम्मान के साथ जी पाती है? क्या उसकी सोच मुक्त हुई है? नहीं, बिल्कुल नहीं। मैं सिगरेट, शराब और नग्न नारी में विश्वास नहीं करती। मैं तो स्त्री को उसी ज्योति के रूप में देखना चाहती हूं जो उजाला तो दे मगर छूने पर जला भी दे।'[१७] स्पष्ट है स्त्री को अपनी जड़ों से कटकर अपना अस्तित्व ढूंढने की जरूरत नहीं। स्त्री स्वयं में ही एक शक्ति है। उसे इस शक्ति का एहसास होना जरूरी है।

निष्कर्ष :

स्वातंत्र्योत्तर कालीन भारतीय जनजीवन का विकासोन्मुखी परिवर्तन आधुनिकता के परिवेश को लेकर आगे बढ़ता हुआ दिखाई देता है। यह आधुनिकता वैज्ञानिक, तकनीकी, समाज–वैज्ञानिक के साथ–साथ निजी जीवन व्यवहार के संदर्भ में भी प्रभाव डालती है। जीवन विकास की प्रक्रिया में स्व–के प्रति सचेत भारतीय स्त्री अपनी आत्मसम्मान के प्रति जागृत हो रही है। आत्मनिर्भर बनने की उसकी चाहत ने ही उसे विकसित जीवन की ओर अग्रसर किया है। आधुनिककालीन स्त्री अपने करियर को महत्व देने लगी है। पुरुषी मानसिकता से निजात पाकर वह आत्मनिर्भर बनने लगी है। अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के साथ–साथ विवाह संबंधी दृष्टिकोण में भी आधुनिक कालीन समाज में आ रहे सकारात्मक परिवर्तन ने स्त्री जीवन में निश्चय की क्रांतिकारी परिवर्तन किए हैं।

संदर्भ :

१. नारी अस्मिता के प्रश्न, डॉ. रेणुका नैयर, मिल पब्लिकेशन, नई दिल्ली, २००३, पृ. १५

२. प्रभा खेतान, पीली आंधी, नई दिल्ली, राजकमल प्रकाशन, २००१, पृ. २६०
३. चित्रा मुदगल, एक जमीन अपनी, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, २००२ पृ. ४०
४. मैत्रेयी पुष्पा, विजन, नई दिल्ली, वाणी प्रकाशन, २००२, पृ. १४६
५. चित्रा मुद्गल, एक जमीन अपनी, नई दिल्ली, सामयिक प्रकाशन, २००२, पृ. १६
६. मैत्रेयी पुष्पा, विजन, नई दिल्ली, वाणी प्रकाशन, पृ. १०४
७. वही, पृ. ११७
८. वही, पृ. १३०
९. प्रभा खेतान, पीली आंधी, नई दिल्ली, राजकमल प्रकाशन, २००१, पृ. १४०
१०. वही, पृ. २४६
११. वही, पृ. १५५
१२. वही, पृ. १५५
१३. वही, पृ. २५६
१४. मैत्रेयी पुष्पा, विजन, नई दिल्ली, वाणी प्रकाशन, २००२, पृ. ३६
१५. वही, पृ. ५६
१६. वही, पृ. २३३
१७. साहित्य सिलसिला, महिला कथाकार साक्षात्कार विशेषांक –१, अजय कुमार शर्मा (संपा.) जुलाई–सितंबर २०१०, जालंधर, पृ. ३४

मो. नं. ९१७५५७६५२०

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Sept. 2025 Page No. : 251-253

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

आदिवासी विमर्श : लोकजीवन और साहित्य की अन्तर्धाराएँ

प्रतीति पाण्डेय

शोधार्थी, नेहरु ग्राम भारती मानद विश्वविद्यालय, प्रयागराज।

भारतीय संस्कृति अपनी विविधता और बहुलता के लिए विश्वभर में प्रसिद्ध है। इसकी गहराई और व्यापकता का अंदाजा इस तथ्य से लगाया जा सकता है कि भारत में असंख्य जातीय समूह, बोलियाँ और जीवन–शैलियाँ पाई जाती हैं। इन सबमें आदिवासी समुदायों का विशेष महत्व है। वे भारत की सभ्यता के सबसे प्राचीन वाहक माने जाते हैं। उनके लोकजीवन, बोली–भाषा, खान–पान, नृत्य–संगीत और धार्मिक आस्थाएँ भारतीय संस्कृति को अद्वितीय बनाती हैं। आदिवासी विमर्श इसी विशिष्ट अस्मिता, उनके संघर्ष और साहित्यिक चेतना को सामने लाने का माध्यम है। यह केवल एक साहित्यिक प्रवृत्ति नहीं, बल्कि सामाजिक–राजनीतिक चेतना और अधिकारों की पुकार भी है।

आदिवासी समुदायों का इतिहास अत्यंत प्राचीन है। वैदिक और उत्तरवैदिक काल से पहले से ही वे भारतीय भूभाग पर निवास करते रहे हैं। सिंधु घाटी सभ्यता और प्राचीन कृषि संस्कृति में भी उनकी उपस्थिति की झलक मिलती है। उपनिवेश काल में अंग्रेजों ने उनके जंगलों और खनिज संसाधनों का भरपूर दोहन किया। इस कारण वे आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक रूप से हाशिए पर चले गए। अंग्रेजों और जमींदारों के अत्याचारों के विरुद्ध उन्होंने समय–समय पर विद्रोह किए। संथाल विद्रोह, भील आंदोलन, मुंडा आंदोलन और बिरसा मुंडा जैसे क्रांतिकारियों की गाथाएँ उनके संघर्ष और स्वाभिमान की सजीव मिसाल हैं।

भारत में आदिवासी समुदायों की बड़ी विविधता देखने को मिलती है। झारखंड और छत्तीसगढ़ में मुंडा, उरांव, संथाल और हो प्रमुख हैं। मध्यप्रदेश और ओडिशा में गोंड, भील और बोंडा जनजातियाँ पाई जाती हैं। राजस्थान और गुजरात में मीणा और गरासिया, जबकि उत्तर–पूर्व में नागा, मिजो, खासी और गारो प्रमुख हैं। प्रत्येक जनजाति की अपनी विशिष्ट पहचान है। उनकी बोली–भाषाएँ द्रविड़, ऑस्ट्रिक, मुंडा और तिब्बती–चीनी भाषा परिवार से संबंधित हैं। करमा, सरहुल, जनी–शिकार, मंडई जैसे त्योहार कृषि चक्र और प्रकृति से गहराई से जुड़े होते हैं। इनके नृत्य और गीत सामूहिक चेतना और उत्सवधर्मिता का प्रतीक हैं।

आदिवासी समाज का आर्थिक जीवन पारंपरिक रूप से स्थानांतरित कृषि, शिकार, वनोपज संग्रह और पशुपालन पर आधारित रहा है। वे जंगल से महुआ, साल बीज, शहद और बांस जैसे संसाधन प्राप्त करते हैं।

खनन और उद्योगों के विस्तार ने उनके जीवन पर गहरा प्रभाव डाला। जल–जंगल–जमीन से विस्थापन, साहूकारों का शोषण, गरीबी और बेरोजगारी उनकी सबसे बड़ी समस्याएँ बन गईं। यही आर्थिक संकट उनके साहित्य और लोकगीतों में बार–बार सामने आता है।

धार्मिक दृष्टि से आदिवासी समाज प्रकृति–पूजक है। वे सूर्य, चंद्रमा, नदी, जंगल, पहाड़ और धरती को देवता मानते हैं। टोटेमिक विश्वास और ग्रामदेवता की पूजा उनकी परंपरा का हिस्सा है। महुआ से बनी मदिरा उनके उत्सवों और धार्मिक अनुष्ठानों में विशेष महत्व रखती है। उनके धार्मिक अनुष्ठान न केवल आस्था के प्रतीक हैं, बल्कि सामुदायिक एकता और सामूहिक आनंद का भी अवसर होते हैं।

सामाजिक दृष्टि से आदिवासी समाज सामूहिकता और समानता पर आधारित है। इसमें अपेक्षाकृत लैंगिक समानता देखने को मिलती है। महिलाएँ खेतों के काम में, नृत्य–गीतों में और सामाजिक निर्णयों में सक्रिय रहती हैं। गोंड महिलाओं में गोदना, भील स्त्रियों के रंग–बिरंगे परिधान और नागा महिलाओं की अलंकरण परंपरा उनकी सांस्कृतिक विशिष्टता है। फिर भी आधुनिक समय में शिक्षा, स्वास्थ्य और रोजगार के क्षेत्र में उन्हें गंभीर चुनौतियों का सामना करना पड़ता है।

आदिवासी साहित्य की नींव मौखिक परंपरा पर टिकी है। लोकगीत, लोककथाएँ, नृत्य–नाट्य और मिथकीय गाथाएँ उनकी संस्कृति का मूल आधार हैं। इनमें श्रम, प्रेम, प्रकृति और विद्रोह की गूँज सुनाई देती है। गोंड आर्ट, वारली पेंटिंग, पिथोरा कला, बाँस–बेंत शिल्प, लकड़ी की नक्काशी और गोदना कला विश्वभर में सराही जाती हैं। ये कलाएँ केवल सौंदर्यबोध नहीं, बल्कि उनकी सामूहिक चेतना और प्रकृति से गहरे जुड़ाव का प्रतीक हैं।

आधुनिक आदिवासी साहित्य में उनके जीवन की समस्याएँ और संघर्ष मुखर रूप से सामने आए हैं। महाश्वेता देवी ने द्रौपदी और अरण्येर अधिकार जैसी रचनाओं में आदिवासी अस्मिता और शोषण को प्रस्तुत किया। रमणिका गुप्ता की सीता मौसी, रणेंद्र की ग्लोबल गाँव के देवता और महुआ मांझी की मरंग गोडा नीलकंठ हुआ जैसी रचनाओं में आदिवासी स्त्री चेतना, विस्थापन और अस्मिता का सशक्त चित्रण मिलता है। ये रचनाएँ यह प्रमाणित करती हैं कि आधुनिक साहित्य ने आदिवासी मुद्दों को गंभीरता से उठाया है।

राजनीतिक दृष्टि से आदिवासी विमर्श अधिकार और अस्मिता पर केंद्रित है। झारखंड आंदोलन और उसका राज्य निर्माण, नगा आंदोलन और उत्तर–पूर्व के संघर्ष इसी विमर्श के अंग हैं। जल–जंगल–जमीन पर अधिकार के लिए होने वाले आंदोलन यह स्पष्ट करते हैं कि आदिवासी समस्या का मूल कारण संसाधनों का दोहन और विस्थापन है। साहित्य और समाजशास्त्र, दोनों मिलकर इस विमर्श को मजबूत आधार प्रदान करते हैं।

आधुनिक समय में आदिवासी समाज अनेक चुनौतियों का सामना कर रहा है। खनन और उद्योगों से भूमि–अधिग्रहण, प्राकृतिक संसाधनों का ह्रास, शिक्षा और स्वास्थ्य सुविधाओं की कमी, भाषाई संकट और सांस्कृतिक लोप जैसी समस्याएँ गंभीर हैं। बाहरी संस्कृति का प्रभाव और धर्मांतरण ने भी उनकी परंपराओं को प्रभावित किया है।

आदिवासी विमर्श केवल साहित्यिक आंदोलन नहीं है, बल्कि यह सामाजिक और राजनीतिक चेतना का

भी हिस्सा है। यह हमें सामूहिकता, प्रकृति–प्रेम और श्रम–सम्मान का नया दृष्टिकोण प्रदान करता है। यह विमर्श दलित विमर्श से भिन्न है क्योंकि इसका केंद्र विस्थापन और संसाधनों पर अधिकार है। आदिवासी विमर्श इस बात पर जोर देता है कि विकास तभी सार्थक है जब उसमें आदिवासी समाज की अस्मिता और अधिकारों की रक्षा सुनिश्चित हो।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि आदिवासी विमर्श भारतीय साहित्य और समाज का अभिन्न हिस्सा है। इसमें लोकजीवन की अंतर्धाराएँ, सांस्कृतिक विविधता और आधुनिक संघर्ष सजीव रूप से प्रतिबिंबित होते हैं। आदिवासी संस्कृति हमें यह सिखाती है कि सच्चा विकास तभी संभव है जब जल–जंगल–जमीन और आदिवासी अस्मिता की रक्षा की जाए। साहित्य इस चेतना को जन–जन तक पहुँचाने का सबसे सशक्त माध्यम है।

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Sept. 2025 Page No. : 254-259

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

एस० आर० हरनोट की कहानियों में पर्यावरण विमर्श

गायत्री बाल्मीकि

पी–एच.डी., शोधार्थी, हिन्दी–विभाग, विद्यासागर विश्वविद्यालय, मेदिनीपुर, पश्चिम बंगाल।

एस० आर० हरनोट समकालीन हिंदी साहित्य के प्रमुख हस्ताक्षर हैं। इनकी रचनाओं में पर्यावरणीय समस्याओं की खुलकर अभिव्यक्ति हुई है। पर्यावरण को नुकसान पहुँचाने में समाज के प्रत्येक वर्ग की भूमिका को इन्होंने बड़ी बेबाकी से लिखा है। विशेषकर राजनेता, प्रशासक और उद्योगपतियों का वर्ग जो अंदर–अंदर अपने फायदे के लिए एक–दूसरे के साथ सांठगांठ कर पर्यावरण का बेड़ा गर्क करने में कोई कसर नहीं छोड़ता और बाहर–बाहर खुद को पर्यावरण हितैषी साबित करने में तुला रहता है, उसके इस दोगले रवैये को इन्होंने प्रमुखता के साथ दिखाया है। हिमाचल के पहाड़ों में पले–बढ़े होने के कारण हरनोट जी इस सच्चाई को और अधिक गहराई से समझ सके हैं। इन्होंने बहुत नजदीक से मनुष्य की स्वार्थ लिप्सा के कारण पहाड़ों को उजड़ते देखा है। जीव–जंतुओं की कई प्रजातियों के विलुप्त होने के ये साक्षी रहे हैं। यही कारण है कि इनकी रचनाओं में पर्यावरण के प्रति जैसी संवेदनशीलता नजर आती है वह अन्य साहित्यकारों में दुर्लभ है। खासकर एक कहानीकार के रूप में ये पर्यावरण विमर्श को और भी सफलतापूर्वक अपने पाठकों तक पहुँचा पाने में सक्षम हुए हैं। वस्तुतः पर्यावरणीय विघटन के फलस्वरूप नकरात्मक रूप से प्रभावित हो रहे जीव–जगत के सभी पक्षों का तात्विक विश्लेषण कर समाज को पर्यावरण के प्रति सजग करना हमेशा से हरनोट जी का प्रमुख उद्देश्य रहा है।

कहानी की बात करें तो यह अपने जन्मकाल से अभिव्यक्ति की सबसे सशक्त विधा रही है। इसमें निहित रोचकता के कारण जटिल से जटिल विषय को भी इसके द्वारा बहुत ही सहजता के साथ समाज तक सम्प्रेषित किया जा सकता है। अतः एस० आर० हरनोट भी पर्यावरण से संबंधित अपने विचारों को जन–जन तक पहुँचाने के लिए कहानी को माध्यम के रूप में चुनते हैं। इनकी पर्यावरणधर्मी कहानियां पाठकों को अंदर से झकझोर देती हैं। इन्हें पढ़कर शायद ही कोई ऐसा सहृदय पाठक हो जिसके मन में अपने अस्तित्व की लड़ाई लड़ते जीवों के लिए संवेदना और उन्हें इस कगार पर लाकर छोड़ने वालों के प्रति क्रोध का भाव न पनपे। इन्होंने अपनी कहानियों के जरिए पर्यावरण के खिलाफ हो रहे षड़यंत्रों के विरुद्ध जन समुदाय में क्रांति लानी चाही है, जिसमें बहुत हद तक इन्हें सफलता भी मिली है। इनकी कहानियां पर्यावरण के प्रति हमारे कुरूप व्यवहारों से हमें रूबरू कराती हैं। फलतः हम इस ओर आत्मचिंतन आरंभ कर देते हैंय हमारे मन में प्रकृति और पर्यावरण के प्रति लगातार खत्म हो रही कोमल भावनाएं पुनः अपना क्षेत्र विस्तार करने लगती हैं। इन्हें पढ़ने के दौरान हम स्वंय को उसी माहौल में पाते हैं, जिनसे इन कहानियों का जन्म हुआ हैय वे सारी बातें जिनसे हरनोट जी व्यथित रहते हैं मानो वे हमारे हृदय को भी छलनी कर रही हों।

'माफिया' कहानी की बात करें तो इसमें हरनोट जी सफेदपोश नेताओं और उनके साथ मिलीभगत कर रहने वाले मौकापरस्त लोगों द्वारा पर्यावरण के साथ की जा रही बदसलूकियों को उद्घाटित करते हैं। कहानी के प्रमुख पात्र चुन्नी का पिता परसिया, जंगलायत का गार्ड, गांव का प्रधान, वन अधिकारी और यहाँ तक कि वन राज्य मंत्री, जिनपर जंगल के पारिस्थितिक तंत्र की रक्षा की सबसे बड़ी जिम्मेदारी है वे सब तस्करी के गोरखधंधे में शामिल हैं। वे बाहर–बाहर खुद को वन्य अधिकारों के रक्षक बताते हैं, लेकिन हकीकत में असली माफिया वे ही हैं। एक रात जैसे ही चुन्नी गौशाले में पशुओं की खाल और लकड़ियों के मोटे–मोटे जत्थे को देखता है वैसे ही उसे अपने पिता के गोरखधंधे की सारी जानकारी प्राप्त हो जाती है। इस बात का चुन्नी के दिलो–दिमाग पर गहरा असर पड़ता है, जिसकी अभिव्यक्ति उसके द्वारा अपने पिता से पूछे गए इस सवाल से होती है– "बापू–बापू ! मास्टरजी बताते हैं कि पेड़ काटना अपराध है। पाप होता है। फिर तू क्यों काटता है?"

इस पर परसिया उसे यह जवाब देकर अपने जिम्मेदारियों की इतिश्री कर लेता है – "चुन्नी, हम तो जंगलात वाले हैं, इनसे पैसा आता है। तुझे पढ़ाना–लिखाना है। बड़ा अफसर बनाना है।"

इस कहानी को पढ़ने के दौरान हम यह समझ पाते हैं कि सरकारों द्वारा पर्यावरण रक्षा के नाम पर किस प्रकार केवल खानापूर्ति की जा रही है। नए–नवेले वन राज्य मंत्री पदभार ग्रहण करने के बाद जब चुन्नी के गांव में दौरे के लिए आते हैं तो उसी मोरनी धार को जहाँ वह मोर–मोरनी की अठखेलियों का रसानुभावन करने जाया करता है, उसे नेशनल पार्क में बदल दिया जाता है ताकि इससे पार्टी और मंत्री जी के पर्यावरण के प्रति केवल लोकदिखावन संवेदनशीलता को लोगों के सामने पेश कर आगामी चुनावों की पृष्ठभूमि तैयार की जा सके। विडम्बना की बात यह है कि मोरनी धार को नेशनल पार्क में तब्दील करने से उसकी स्थिति सुधरने के बजाए और भी बिगड़ जाती है। नेशनल पार्क तक रास्ता बनाने के लिए बड़ी संख्या में पेड़ काटे जाते हैं। हालांकि इससे राजनेताओं को क्या ही मतलब? उन्हें तो बस किसी तरह वोटों की राजनीति करनी है। यहाँ तक कि मंत्री साहब को खुश करने के लिए परसिया, प्रधान और गार्ड मिलकर मोर के मांस की व्यवस्था करते हैं। यह वही मोर होता है जिससे चुन्नी को काफी लगाव था। मोरनी धार को नेशनल पार्क में इसलिए रूपांतरित किया गया था, क्योंकि उसमें राष्ट्रीय पक्षी मोर का निवास था। राजनेताओं के पर्यावरण के प्रति झूठी संवेदनशीलता को समझने के लिए इससे बड़ा और क्या ही प्रमाण हो सकता है कि जिस नेशनल पार्क का उद्घाटन करने के लिए मंत्री साहब आए थे, वे वहीं रहने वाले नेशनल बर्ड को ही खाकर पचा गए।

इनकी कहानियों के पात्र पर्यावरण के प्रति अपने प्रेम और कृतज्ञता को जिस तरह व्यक्त करते हैं वह सचमुच एक आदर्श व्यवहार है। इनसे हमें शिक्षा लेनी चाहिए कि किस प्रकार पर्यावरण, जिसके बदौलत ही हमारा अस्तित्व बरकरार है उसके प्रति संरक्षणात्मक रवैया अपनाकर हम अपने मनुष्य होने की पहचान को जीवित रख सकते हैं। 'बेजुबान दोस्त' कहानी में एक सीमेंट कम्पनी किशन के गांव में मौजूद चीड़ के संरक्षित वन को काटना चाहती है, क्योंकि वहाँ चूना पत्थर का विशाल भण्डार है, जिससे सीमेंट तैयार किया जाता है। एक दिन जब पेड़ों को काटने वाले अत्याधुनिक औजारों से लैस शृंखलाबद्ध ट्रकें जंगल की ओर आ रही होती हैं तब किशन अपने बेजुबान दोस्तों (वे पशु जिन्हें वह उस जंगल में प्रतिदिन चराया करता है) को अपने साथ लेकर सड़क जाम कर देता है। इस पर उसकी अम्मा उसे कम्पनी और प्रशासन के कोप से बचाने के लिए जब वहाँ से हट जाने को कहती है तब वह उन्हें जो उत्तर देता है उससे हमें भी कुछ सीखना चाहिए। वह कहता है –

"अम्मा मैं नी ले जाता डंगरों को यहाँ से। तू नी जानती ये कम्पनी के लोग आज मेरे जंगल को काट देंगे। देख–देख कितने ट्रक वहाँ पार से आ रहे हैं।"[2] इसके बाद पुलिस की लाठियां चलती हैं, फिर भी किशन वहाँ से पीठ दिखाकर भागता नहीं।

यह कहानी कम्पनियों के सामाजिक उत्तरदायित्व वाली अवधारणा के काले सच को भी सबके सामने लाती है। गांव में सीमेंट की फैक्ट्री लगने के कारण वहाँ का पर्यावरण प्रदूषित हो रहा था। मिट्टी की उर्वरता भी कमने लगी थी। यहाँ तक कि सीमेंट बनाने के लिए जरूरी चूना पत्थरों के खनन के उद्देश्य से लगातार किए जा रहे विस्फोटों के कारण वहाँ बहने वाली सदानीरा नदी के स्रोत भी नीचे धंस गए थे। इस कारण लोगों का गुस्सा कम्पनी पर न फूट पड़े इसके भय से कम्पनी गांव भर में खूब दान करती, कई परिवारों की बेटियों के ब्याह का खर्च भी उठा लेती, जगह–जगह पानी के नल और हैंडपम्प लगवा देती, मंदिरों का मरम्मत करवाती, सराय बनवाती, जातरा, मेले, बड़े–बड़े सांस्कृतिक आयोजन इत्यादि करवाती। अर्थात् हर वो कार्य जिनसे कम्पनी स्वंय द्वारा की जा रही ज्यादतियों को ढंक सके उन्हें करती। पर्यावरण दिवस पर तो कम्पनी कुछ ज्यादा ही सक्रिय रहती। इस दिन सारे कार्यक्रमों का खर्च कम्पनी ही वहन करतीय हजारों सफेद टोपियां और टी–शर्ट्स बनवाती और उन्हें गांववासियों में बांटती। इस कहानी से हमें यह शिक्षा मिलती है कि कम्पनियां चाहे जितनी ही बार समाज और पर्यावरण के प्रति अपनी प्रतिबद्धता का राग अलापे, हकीकत में उनका उद्देश्य केवल लाभ कमाना ही होता है।

समकालीन परिस्थितियों के परिप्रेक्ष्य में 'माफिया' और 'बेजुबान दोस्त' ये दोनों ही कहानियां बिल्कुल व्यवहारिक लगती हैं। हम अक्सर समाचारों में पढ़ते–सुनते हैं कि आज फलां जगह फलां मंत्री और उद्योगपतियों द्वारा पर्यावरण की रक्षा के लिए फलां कार्य किया गया। जब उन कार्यों का गहराई से विश्लेषण किया जाता है तो वही ढ़ाक के तीन पात। वे सब बस खानापूर्ति ही होते हैं। यदि ये लोग वाकई में पर्यावरण के प्रति इतने ही प्रतिबद्ध होते तो आज हम जलवायु परिवर्तन के जिस भयानक दौर से गुजर रहे हैं उसकी नौबत ही नहीं आती। एस० आर० हरनोट ने अपनी कहानियों में राजनेताओं, प्रशासकों, उद्योगपतियों जैसे अघोषित माफियाओं से जमकर लोहा लिया है। ये अपनी सारी शक्ति इस बात को साबित करने में लगा देते हैं कि पर्यावरण के असली दुश्मन यही लोग हैं, जो कि सही भी है। यदि यह बात गलत होती तो फिर कैसे सुंदरवन जैसे संरक्षित वन क्षेत्र से गाहे–बगाहे पेड़ों और वन्य जीवों की तस्करी की खबर हमें मिल जाती है? कैसे चिड़ियाघरों से पशु–पक्षी गायब हो जाते हैं? कैसे छत्तीसगढ़ के फले–फूले हसदेव के जंगल को किसी एक कम्पनी के लाभ के लिए काटने का आदेश दे दिया जाता है? कैसे हैदराबाद विश्वविद्यालय के कैंपस के अंदर आईटी सेक्टर के निर्माण के लिए कई वन्य जीव–जंतुओं के आश्रयस्थल सैकड़ों पेड़ काट दिए जाते हैं? कैसे एक रूपए की वार्षिक लीज पर लाखों की संख्या में पेड़ों से युक्त हजार एकड़ से भी ज्यादा जमीन एक कम्पनी को सालों के लिए दे दिया जाता है?

जब भी कोई सरकार की पर्यावरण विरोधी विनाशात्मक विकास कार्य की आलोचना करता है या ऐसा करने को सोचता भी है तब सरकार और उसके नुमाइंदे इससे इलाके का विकास होगा, लोगों को रोजगार मिलेगा, जीवनशैली उच्च होगी इत्यादि रटे–रटाए तर्कों का सहारा ले उसके अंदर सुलगते आग को बुझाने की कोशिश में लग जाते हैं। वस्तुतः यह किसी छलावे के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं होता। अगर एक पल के लिए

मान भी लें कि इससे विकास हो भी रहा है, तो भी वह अल्पकालिक है, जिसके लिए पर्यावरण को नष्ट कर देना कहीं से भी तर्कसंगत प्रतीत नहीं होता। अब हरनोट जी से बेहतर इस बात को कौन ही समझ सकता है! इन्होंने मानो अपनी कहानियों में इस सत्य कथा के रेशे–रेशे खोलकर रख दिए हों। हम इनकी 'नदी गायब है' कहानी को ही लें तो इसमें देखते हैं कि टिकम जो कि इसका केंद्रीय चरित्र है उसके गांव की नदी अचानक से गायब हो जाती है। होता यह है कि मुख्यमंत्री की घोषणा के तहत उसे एक सुरंग के माध्यम से दूसरी ओर ले जाया जाता है ताकि उसके पानी से बिजली पैदा की जा सके। यह जानकारी गांव के प्रधान के माध्यम से लोगों को मिलती है। इसपर पुजारी प्रधान से कहता है– "पर हमारा क्या होगा प्रधान जी। इतने गांवों के खेत–क्यार सूख जाएंगे। घराट बन्द हो जाएंगे।"[4] इस पर प्रधान जी बोथरा सा यह जवाब देकर निकल लेते हैं – "पानी रहेगा पुजारी जी। रहेगा। बरसात का पानी इसी में रहेगा। बई वह पहाड़ पर तो नहीं चढ़ेगा न। फिर अब घराट–घरूट कौन चलाता है। बिजली से चक्कियां चलेंगी।..."[5] अब रोज डाइनामाइटों के धमाकों के कारण भारी मात्रा में चट्टानें उस सूखी हुई नदी पर गिरने लगी और उसके किनारे जो घराट थे वे सारे नष्ट हो गए। मतलब देखते ही देखते एक भरा–पूरा पारिस्थितिक तंत्र मृत हो गया, जिसकी चिता पैसों की खनक में चौंधिया चुके नेताओं की आँखों को नहीं दिखी।

'सड़ान' कहानी में सेना से रिटायर्ड कैप्टन नीरम नेगी के पुश्तैनी गांव में भी कुछ ऐसा ही माहौल रहता है। नीरम सेना से सेवानिवृत्त होने के बाद सुकून से जीवन बिताने के लिए शोर शराबे से दूर एक पहाड़ी शहर में जमीन खरीदकर वहाँ घर बनाता है। दुर्भाग्यवश वहाँ उसके घर के नीचे जमीन के अंदर भगवानदास नामक एक पाखंडी संत द्वारा अपनी धार्मिक राजनीति को चमकाने के उद्देश्य से सौ फीट गहरे गुफा के निर्माण का कार्य आरंभ किया जाता है। भगवानदास की योजना यह रहती है कि जैसे ही गुफा सौ फीट की हो जाएगी वह स्वंय ही वैष्णो माता की मूर्ति वहाँ रख देगा, जिससे कि उसका धंधा फलते–फूलते रहे। इसकी पृष्ठभूमि पहले ही तैयार कर ली गई थी। अखबार में इससे संबंधित खबर छपती है – "पहाड़ के गर्भ में प्रकट हुई वैष्णो माता। संत भगवानदास को माता ने दिए दर्शन। माता की प्रतिरूप पिंडियों तक पहुँचने के लिए गुफा का निर्माण। पंडितों द्वारा देवी भागवत का पाठ शुरू।"[6] नेगी पढ़ा–लिखा होने के कारण सारी सच्चाई जानता है। वह यथासंभव इसका विरोध करता है। अपनी अर्जी लेकर वह थाना, जिलाधीश कार्यालय और यहाँ तक कि मुख्यमंत्री से मिलने सचिवालय तक जाता है, लेकिन उसे कोई सकारात्मक फल नहीं मिलता। हालांकि भगवानदास को नेगी के विरोध के चलते अपने 'पुनीत' कार्य को साठ फीट में ही निपटा लेना पड़ता है। अंत में नेगी ने अपने बेटे पारब के नाम इससे संबंधित एक पत्र उच्च न्यायालय को लिखा, जिस पर संज्ञान तब लिया गया जब चिड़िया पुरी खेत को चुग चुकी थी। हद तो तब हो जाती है जब गुफा के ऊपर अवस्थित टैंक के फट जाने से उसका गंदा पानी गुफा के अंदर रिसने लगता है और लोग उसे भगवानदास के कथनानुसार माता का चरणामृत मानकर पीने लगते हैं।

'नदी गायब है' और 'सड़ान' कहानियों के विश्लेषण से हमारे सामने जो सच्चाई सामने आती है वह यह है कि सरकारों ने समाज में अशिक्षा की स्थिति इसलिए बना रखी है ताकि उनके वोट की राजनीति में सहायक उनके औद्योगिक और 'धार्मिक' मित्रों के पर्यावरण और समाज विरोधी क्रियाकलाप निर्बाध रूप से चलते रहें। इसके एवज में भले प्रकृति नेस्तनाबूद हो जाए उनकी बला से। ध्यान देने योग्य बात है कि 'सड़ान' में

भगवानदास जिस जगह गुफा बनाने के लिए खुदाई करवाता है वह ग्रीन बेल्ट का हिस्सा है, जहाँ बिना इजाजत के कुछ किया ही नहीं जा सकता। यह प्रसंग इस बात की ओर भी हमारा ध्यान आकृष्ट करता है कि पर्यावरण की रक्षा के नाम पर आजकल नीति–नियम बना तो दिए जाते हैं, लेकिन जमीनी स्तर पर उनका क्रियान्वयन बिल्कुल शुन्य रहता है। पर्यावरण को बचाने की सारी योजनाएं वोट रूपी राजनीतिक यज्ञ की आहुति में जलकर राख हो जाती हैं। पहाड़ी इलाकों में पर्यावरणीय नैतिकताओं को ताक पर रखकर अधिकाधिक लाभ कमाने के उद्देश्य से किए जा रहे विवेकहीन कार्यों की परिणति हम प्रतिवर्ष वहाँ आनेवाली प्राकृतिक आपदाओं और उनसे होनेवाले व्यापक जन–धन की हानि के रूप में देख सकते हैं। इस संदर्भ में केदारनाथ जल त्रासदी को कैसे ही भूला जा सकता है! सरकारें प्रतिवर्ष इन आपदाओं के शिकार परिवारों के नाम कुछ धनराशि का ऐलान कर जनता के प्रति अपने वास्तविक उत्तरदायित्वों से विमुख हो जाती है।

यहाँ 'आभी' कहानी का जिक्र भी प्रासंगिक हो उठता है। आभी एक चिड़िया है, जो हिमाचल प्रदेश के कुल्लू के दुर्गम आनी क्षेत्र में साढ़े ग्यारह हजार फुट की ऊंचाई पर स्थित जलोरी के पास से लगभग पांच किलोमीटर दूर सरेऊलसर झील को निर्मल बनाए रखने का काम करती है। उसे यह बिल्कुल पसंद नहीं है कि कोई उसके झील को गंदा करे। जैसे ही कोई उसमें एक तिनका भी फेंकता है, उसे वह अपने चोंच के सहारे वहाँ से उठाकर बाहर कर देती है। ऐसा लगता है मानो वह पर्यटकों से झील को गंदा न होने देने के लिए लड़ रही हो। यह बहुत दुरूखद है कि आभी जैसी छोटी सी चिड़िया तो पर्यावरण को स्वच्छ रखने का हर प्रयास करती है, लेकिन खुद को सबसे सभ्य जीव कहनेवाला मनुष्य ऐसा नहीं चाहताय उसे इस बात की तनिक भी चिंता नहीं है कि प्रकृति के साथ छेड़छाड़ कर वह अपने साथ सम्पूर्ण जीव–जगत के अस्तित्व को समाप्त करने पर आमादा है। कहानी में स्थिति तो यहाँ तक आ जाती है कि आभी को उसके इलाके में आनेवाले पर्यटकों के पर्यावरण विरोधी रवैये के कारण मनुष्यों से डर लगने लगता है। जंगल में माफियाओं का आतंक आभी को और भी भयभीत कर देता है। शिकारियों द्वारा घायल किये गये एक मादा चीता को अन्य आभियों के सहयोग से वह बचाने का वह हर संभव प्रयास करती है।

इस कहानी के मूल में यह बात है कि मनुष्य एक भ्रम में जी रहा है और यह भ्रम है स्वंय को सबसे बुद्धिमान मानना। यह कहानी हमारे समक्ष प्रश्न खड़ा करती है कि यह मनुष्य की कैसी बुद्धिमता है कि वह अपने ही हाथों अपने ही आश्रयस्थल को नष्ट कर रहा है ? क्या हम आभी को मनुष्य से ज्यादा बुद्धिमान नहीं कह सकते? आभी मनुष्य से आकार में छोटी हो सकती है, लेकिन उसके विचार मनुष्य की तुलना में कहीं अधिक बड़े हैं। आभी प्रकृति और पर्यावरण से प्रेम करती है और मनुष्य बस अपने फायदे के लिए उसकी व्यवस्था को लगातार बिगाड़े जा रहा है। आभी मनुष्य के हाथों घायल मादा चीता को अपने साथियों के साथ बचाने का जिस तरह से प्रयास करती है, उसमें उसके हृदय के सारे कोमल भाव एक साथ नजर आने लगते हैं, जिनकी तिलांजलि मनुष्य बहुत पहले ही दे चुका है।

प्रकृति, पर्यावरण और पारिस्थितिकी जैसे मुद्दों पर हरनोट जी ने कई कहानियां लिखी हैं। इन्होंने हर उन कोणों का विश्लेषण अपनी कहानियों में किया है, जो किसी न किसी तरह पर्यावरण प्रदुषण के साथ जुड़े हैं। ये कहानियां यथार्थ के साथ इस तरह से गुंथी हुई हैं कि पर्यावरण विरोधी मानसिकता वाले लोगों को ये रास आ ही नहीं सकतीं। इनके शब्दों में ऐसी जीवंतता है कि पेड़, पशु–पक्षी, नदी, पहाड़ इत्यादि के दर्द समाज को

एक पल के लिए ही सही लेकिन यह सोचने को बाध्य कर देते हैं कि बस ! अब बहुत हो गया। इनकी कहानियां पाठकों को यथार्थ के धरातल पर लाकर उनके हृदय में पर्यावरण के प्रति आवश्यक कोमलता को उत्पन्न करने का सार्थक प्रयास करती हैं। कहानियों में कहीं भी अनावश्यक कोई भी बात नजर ही नहीं आती। हिमाचल के पहाड़ों में मनुष्यों द्वारा किए जा रहे प्रत्येक पर्यावरण विरोधी गतिविधियों को संदर्भित इनकी कहानियां तब तक प्रासंगिक बनी रहेंगी जब तक कि सम्पूर्ण पृथ्वी का पारिस्थितिक तंत्र औद्योगीकरण से पहले वाले रूप को पुनः प्राप्त न कर ले। ऐसा इसलिए क्योंकि ये कहानियां भले हिमाचल के नष्ट होते पारिस्थितिक तंत्र से उपजी हैं, लेकिन आज पृथ्वी में जहाँ कहीं भी पर्यावरण से बदसलूकी हो रही है उनके स्वरूप और चरित्र कमोबेश एक ही हैं। एस० आर० हरनोट वस्तुतरू हिमाचल के माध्यम से वैश्विक पर्यावरण की सकुशलता के सपने अपनी आंखें में संजोए बैठे हैं, जिनकी अभिव्यक्ति उनकी लिखी कहानियों से हो जाती है।

सन्दर्भ सूची :

1. हरनोट एस.आर., 'नदी गायब है', सं.–उषारानी राव, अनन्य प्रकाशन, दिल्ली, सं.–2023, पृ. सं.– 38
2. वही, पृ. सं.– 38
3. वही, पृ. सं.– 83
4. वही,पृ. सं.– 104
5. वही,पृ. सं.– 104
6. वही,पृ. सं.– 116

संपर्क नंबर – 8637859283

ईमेल – balmikigaytri@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Sept. 2025 Page No. : 260-264

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

कुमार कृष्ण की कविताओं में पर्यावरणीय विमर्श

जय कुमार

सहायक आचार्य, हिंदी विभाग, राजकीय महाविद्यालय करसोग, जिला मंडी (हि0 प्र0)

वर्तमान समय 21वीं सदी के मध्यांतर में प्रवेश करने वाला है। इस समय की गोद में विमर्शों का खेल चला है। साहित्य का ध्यान आकर्षित करने में विमर्श सफल रहे हैं, जैसे स्त्री विमर्श, किसान विमर्श, आदिवासी विमर्श, दलित विमर्श परंतु इसके अतिरिक्त एक महत्वपूर्ण विमर्श है पर्यावरण विमर्श, जिसने पूरी सृष्टि को प्रभावित किया है। वैश्विक पटल पर पर्यावरण विमर्श ने सबको सोचने पर मजबूर किया है। प्रकृति की दीन दुखियारी एवं संकटकालीन दशा को देखकर कुमार कृष्ण चिंतित हैं, वे अपनी कविताओं के माध्यम से आम जनों को सचेत करते हैं।

कविता अतीत और वर्तमान की पड़ताल ही नहीं करती बल्कि भविष्यगत चिंतन एवं चिताओं को भी अपने कलेवर में समेटती है। कवि कुमार कृष्ण की कविताओं ने ऐसे समय में दस्तक दी जब देश औद्योगीकरण, व्यापारीकरण, बाजारीकरण एवं वैज्ञानिकरण की धारा में उन्मुक्त एवं स्वतंत्र होकर विचरण कर रहा था। इसी के परिणाम स्वरुप मनुष्य की उपभोक्तावादी एवं विलासवादी जीवन दृष्टि ने सबसे ज्यादा नुकसान पर्यावरण को पहुंचाया है। मनुष्य ने प्रकृति को निर्वस्त्र कर दिया है जिस प्रकृति को हम पूजनीय मानते थे आज उसका दोहन हम भौतिकवादी एवं उपभोक्तावादी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए करते हैं मनुष्य की लालसावादी प्रवृत्ति के कारण पर्यावरण संकटकालीन दूर से गुजर रहा है। कवि कुमार कृष्ण ने प्रकृति के चिंतन एवं चिताओं को सूक्ष्मता के साथ अभिव्यक्त किया है।

प्रकृति का संकटकालीन दौर से गुजरना मनुष्य के अस्तित्व के लिए विनाशकारी है। यदि हम सहचरी भाव को दोहन या उपभोग में लेते रहे तो भविष्यम् भावी पीढ़ी इसका शिकार बनती रहेगी।

भारतीय संस्कृति वैश्विक सहचरीभाव को अभिव्यक्त करती है। जिसमें प्रकृति के प्रति पूजनीय एवं सम्माननीय भाव अभिव्यक्त होता है। भारत ऋषि– मुनियों का देश माना जाता है, जिन्हें सबसे प्रिय प्रकृति ही थी। इस संदर्भ में अथर्ववेद में कहा गया है, "यह धरती हमारी माता है और हम इसके पुत्र हैं।" माता भूमिः पुत्रौअहमपृथित्याः।[1] पर्यावरण के प्रति माता और पुत्र के भाव को हमने एक तरफा विकास करके प्रकृति को नुकसान पहुंचाया है, जिसके परिणामस्वरुप प्रकृति का हास हो रहा है। हमें न शुद्ध वायु, शुद्ध वातावरण, न ही संतुलित पर्यावरण मिल रहा है। अशुद्धता को शुद्धता में परिवर्तित करने की जिम्मेदारी मनुष्यता के ऊपर है। कुमार कृष्ण पर्यावरण के साथ शाश्वत संबंधों पर जोर देते हैं।

नदियां पर्यावरण की जीवनदायिनी मानी जाती है, उनका निर्मल, स्वच्छ एवं पवित्र जल प्रकृति को सिंचित

करता है। नदिया न केवल जल स्रोत में हमारे जीवन को संजीवनी देती है बल्कि सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक एवं पर्यटन की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण हैं। कुमार कृष्ण की कविताओं में नदियां पर्यावरण की संवेदनशीलता और मानवीय संबंधों का दर्पण बनती हैं। मनुष्य के द्वारा बहती हुई नदियों के जल को रोकना तथा उस पर बड़े–बड़े बांधों का निर्माण करना पर्यावरणीय संकट को बढ़ावा देना है। धीरे–धीरे नदियों का अस्तित्व मिट जाएगा प्रकृति असंतुलित होकर विनाश को बुलावा देगी। कवि इससे चिंतित नजर आते हैं। 'टिहरी का बांध' कविता में वह कहते हैं–

बांधने बांध दिए भिलंगना के भागीरथी के पांव
होने लगी धीरे–धीरे बांध की दीवार
डूबने लगा टिहरी धीरे–धीरे
धीरे–धीरे होने लगी टिहरी की मौत।[2]

अर्थात नदियों में बांध बनने की प्रक्रिया से प्रकृति ही दुखी नहीं मनुष्यता भी विस्थापन का दंश झेलने को मजबूर हो जाती है। जिससे उसके सपने, गांव, यादें सब कुछ नष्ट हो जाता है। कुमार कृष्ण कहते हैं :

डूब गए अनगिनत दादियों के
तुलसी के चबूतरे/डूब गए आंगन/आंगन के पेड़/
डूब गए वे तमाम दरवाजे/जो बचाते रहे बार–बार
परिवारों की पुश्तैनी मर्यादा।[3]

मनुष्य के विकासवादी एवं उपभोक्तावादी संस्कृति ने सबसे ज्यादा नुकसान प्रकृति को पहुंचाया है। विकास के नाम पर पहाड़ों को जिस क्रूरता से कुचला गया पहाड़ों का सीना छलनी किया गया वह दुःखद है। कुमार कृष्ण ने पहाड़ को अपनी कविताओं में मात्र वर्णित नहीं किया बल्कि जिया है। कई पहाड़ों की दुर्दशा देखकर चिंतित है, इसके भविष्य में परिणाम निश्चित है। कुमार कृष्ण अपनी कविता में लिखते हैं–

परेशान पहाड़ ने एक दिन तय किया
वह अपने दुख भरते बसते के साथ
मेहमान बनकर जाएगा बादल के घर।[4]

अर्थात् पहाड़ भी मनुष्य की लालसावादी प्रवृत्ति से परेशान हैं। जिस तीव्रता से मनुष्य ने आधुनिक मशीनों एवं बारूद से तोड़–मरोड़ दिया है, जिसके परिणामस्वरूप बड़े–बड़े पहाड़ भी सरकने लगे हैं। पहाड़ों के सीने से चीरकर सुरंगे निकालकर उनको खोखला कर दिया है। एस आर हरनोट इस संदर्भ में कहते हैं, "आधुनिक विकास के साथ जिस तरह की क्षति पर्यावरण को पहुंची है वह और भी गंभीर है। प्रकृति का जिस क्रूरता से दोहन हुआ है वह भयावह है। पहाड़ों की पीठे दिन–प्रतिदिन नंगी होती जा रही हैं।"[5]

अंधाधुंध विकास जब प्रकृति को पीड़ा पहुँचाने लगे तो मानव को सजग हो जाना चाहिए ताकि वह आने वाले खतरे को समय रहते रोक सके। आज मानव द्वारा किए गए विनाशकारी विकास ने पहाड़ों के सीने में आघात किया है। उनकी पीड़ा को कुमार कृष्ण ने अपनी कविता में कुछ यों अभिव्यक्त किया है–

पहाड़ फट रहा है/रिस रहा है
गल रहा है.....

पहाड़ फटने का मतलब पूरे शहर का फटना है।[6]

भूमंडलीकरण ने जिस तीव्रता से वैश्विक परिदृश्य में बदलाव लाया है उसका सबसे ज्यादा प्रभाव पर्यावरण पर पड़ा है। पूंजीपतियों ने मनुष्य को प्राकृतिक जड़ों से दूर किया है। हिमालय एवं मैदानी क्षेत्र में जिस तरह का भयानक मंजर देखने को मिला है उसे देखकर मनुष्य के अंदर डर समा गया। नदियों के प्रवाह में पेड़ों का सैलाब देखने को मिला है, जिसे देखकर देश की सर्वोच्च संस्था को चिंता एवं चिंतन में डाल दिया है। पर्यावरण की चिताओं को कुमार कृष्ण के दूरगामी कृतित्व ने उजागर किया है। पहाड़ पर्यावरण के प्राण माने जाते हैं उन्हीं पहाड़ों को बचाने की अपील कुमार कृष्ण अपनी कविता में करते हैं–

जंगल का विश्वास है पहाड़
मनुष्य का श्वास है पहाड़
नदी की आस है पहाड़
जीवन की प्यास है पहाड़।[7]

औद्योगीकरण एवं भूमंडलीकरण के कारण पर्यावरण को जो नुकसान हुआ उससे मानवीय जीवन संकटग्रस्त हो गया है। भिनभिनाती हुई गाड़ियों को दौड़ने के लिए जिस तरीके से फोरलेन तथा सिक्स लेन का निर्माण किया जा रहा हैं, उसकी कीमत पर्यावरण एवं मनुष्यता को चुकानी पड़ रही है। मनुष्य भी इसके कारण विस्थापन का दंश झेलने को मजबूर होता है। कवि कविता में कहते हैं –

मेरे देखते ही देखते गायब हो गई
बच्चों के वस्तों से तख्ती, स्लेटध कलम दवात
चुलो से धुआं।[8]

कुमार कृष्ण ने बढ़ते औद्योगीकरण के कारण असंतुलित होते पर्यावरण की ओर संकेत किया है। कवि औद्योगीकरण एवं खनन से नष्ट और नदियों और पहाड़ों की वेदना को अभिव्यक्ति देते हैं। इस संदर्भ में बच्चन सिंह कहते हैं, "कुमार कृष्ण की कविताओं में पहाड़ी गांव की तकलीफ है जो हर गांव की तकलीफ बन जाती है उनमें पहाड़ों का रंग है जंगलों का दर्द है।"[9] उनका काव्य औद्योगीकरण की अंधी दौड़ पर प्रश्न चिन्ह उठाता है। पेड़ प्रकृति का श्रृंगार माने जाते हैं जिससे प्रकृति के सौंदर्य में अप्रतिम वृद्धि होती है, प्रकृति हरी–भरी नजर आती है। जब पर्यटन एवं उद्योगों के नाम पर हजारों पेड़ों की बलि दी जाती है, पहाड़ों के सीने पर रोपवे बनाए जाते हैं उससे कवि दुखी एवं चिंतित नजर आते हैं। वह कहते हैं–

मैं सुन रहा हूं लगातार बेडिओं में जकड़ी अपनी बेगुनाह नदियों का क्रंदन
देख रहा हूं हरी वर्दी वाले जिंदगी के चौकीदार तमाम पेड़ों के आंसू।[10]

पर्यावरण के ह्रास का सीधा प्रभाव आज के जन–जीवन पर स्पष्ट दृष्टव्य है। आज पहाड़ों में रहने वाले लोग बादल फटने, जमीनी रिसाब से त्रस्त हैं। जंगलों का अंधाधुंध कटाव, सड़कों का अनवरत निर्माण प्रकृति का दोहन कर रहा है जिसका प्रत्युत्तर प्रकृति भी मानव को दे रही है। 2025 में हुई अतिवृष्टि इसका स्पष्ट प्रमाण है। कुमार कृष्ण ने अपनी कविताओं में हरे–भरे पेड़ों से जिंदा पहाड़ों की अनवरत विकसित होती यात्रा को देखा है। जो पहाड़ पेड़ों की हरियाली से हौंसला बनाए हुए हैं और जनजीवन को हरा–भरा बनाते हुए उनका अभिन्न हिस्सा बने हुए हैं। उन पेड़ों के कटाव का सीधा प्रभाव प्रहरी बने उन पहाड़ों में देखा जा सकता है–

मैं नहीं था केवल पहाड़
मैं था तुम्हारे पूर्वजों का हौसला
उनकी हिम्मत, उनकी उम्मीद
उनकी प्यास, उनकी आस
मैं था हरी पगड़ी वाला सिपाही
मैंने पैदा किए तुम्हारे भीतर कई–कई पहाड़
पहाड़ बनने में लगे थे मुझे हजारों साल।[11]

कुमार कृष्ण की कविताएं पर्यावरणीय चेतना का जीवंत दस्तावेज मानी जाती है। प्राकृतिक असंतुलन ने प्रदूषण, वनों की कटाई, जलवायु परिवर्तन एवं प्राकृतिक आपदाओं जैसी समस्याओं को जन्म दिया है। यह केवल विमर्श मात्रा न रहकर मानवीय अस्तित्व की रक्षा का प्रश्न बन गया है। वर्तमान समय में आवश्यकता है पर्यावरण को संतुलित करने की। आज पर्यावरण को भोग की वस्तु न मानकर मनुष्य की सहचरी मानना पड़ेगा। सतत विकास की धारणा को प्रायोगिक रूप में देखना पड़ेगा। पर्यावरण संरक्षण मनुष्य की जीवन शैली और सोच का हिस्सा बनाना पड़ेगा तभी भविष्यगत पीढीयों को संतुलित एवं सुरक्षित पर्यावरण सौंपा जा सकता है। कुमार कृष्ण की कविताओं में पर्यावरणीय चेतना का गहन स्वर दिखाई पड़ता है। पर्यावरणीय शिक्षा मात्र किताबों तक सीमित न रखकर विद्यार्थियों को व्यवहारिक कार्य प्रणाली एवं गतिविधियों से जोड़ना पड़ेगा। प्रकृति के प्रति पूजनीय एवं सम्माननीय दृष्टि से को देखना पड़ेगा। यदि प्रकृति के प्रति उपभोक्तावादी दृष्टि रही तो संकट और गहराता जाएगा। हमें पर्यावरण के अनुकूल विकास करना होगा, नदी नालों के सतत प्रभाव को निरंतर प्रवाहमान रहने देना होगा। कचरा प्रबंधन पहाड़ी क्षेत्र में पर्यावरण को नुकसान पहुंचा रहा है। स्थानीय कचरा प्रबंधन प्रणाली विकसित करनी पड़ेगी और जीवन शैली में नीतिगत बदलाव लाने होंगे। सबसे महत्वपूर्ण सामुदायिक भागीदारी से पर्यावरण को टिकाऊ एवं संतुलित बनाया जा सकता है। आज समाज के प्रत्येक नागरिक को स्वार्थपरता छोड़कर मानव जीवन को सुरक्षित रखने हेतु प्रकृति का बचाव करना होगा। प्रकृति से छेड़छाड़ न करके पौधारोपण, प्राकृतिक स्वच्छता, कूड़े के उचित प्रबंधन हेतु बड़े कदम उठाने होंगे ताकि मानव जाति सुरक्षित रह सके।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :

1. अथर्ववेद, पृथ्वी सुक्त, श्लोक संख्या 12
2. टिहरी का बाँध, कुमार कृष्ण, पृष्ठ 240
3. वही, पृष्ठ 241
4. फेसबुक वाल, 14.8.2025
5. दस प्रतिनिधि कहानियां, एस.आर.हरनोट, पृष्ठ 6
6. पक्षी की चोंच के दाने में उड़ रहा गांव, कुमार कृष्ण, पृष्ठ 170
7. वही, पृष्ठ 230
8. वही, पृष्ठ 211

9. वही, फ्लैट से उद्धृत
10. फेसबुक वाल,14.08.2025
11. उम्मीद का पेड़, कुमार कृष्ण, पृष्ठ 43–44

दूरभाष 9459742598

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Sept. 2025 Page No. : 265-269

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

खेत मजदूर और झारखंड के किसान : इतिहास एवं परंपराएँ

प्रो. जीवन कुमार साह

सहायक प्राध्यापक, इतिहास विभाग, डिग्री कॉलेज, जगन्नाथपुर, प. सिंहभूम, झारखंड 833304

सारांश :

झारखंड, भारत का एक आदिवासी बहुल राज्य, अपनी प्राकृतिक संपदा और सांस्कृतिक विविधता के लिए जाना जाता है। यहाँ के किसानों की अर्थव्यवस्था मुख्य रूप से कृषि पर निर्भर है, जहाँ किसान और खेत मजदूर राज्य की रीढ़ हैं। झारखंड की लगभग 80% ग्रामीण आबादी कृषि से जुड़ी हुई है। आदिवासी समुदाय जैसेरू संथाल, मुंडा, उरांव, हो और अन्य जनजातियाँ मुख्य रूप से खेतीबाड़ी, जंगल उत्पाद संग्रह और पशुपालन पर निर्भर हैं। यह समुदाय न केवल भूमि की उपज बढ़ाने में योगदान देते हैं, बल्कि पर्यावरण संरक्षण और सतत विकास की परंपराओं को भी जीवित रखते हैं। हालाँकि, औद्योगीकरण, प्रवास और जलवायु परिवर्तन जैसी चुनौतियाँ इनके जीवन को प्रभावित कर रही हैं। झारखंड का नाम 'झाड़' अर्थात जंगल से लिया गया है, जो इसकी वन संपदा को दर्शाता है। राज्य की मिट्टी मुख्य रूप से लाल और लैटराइट है, जो धान, मक्का, दालें और सब्जियों के लिए उपयुक्त है। लेकिन सिंचाई की कमी (केवल 8–10% भूमि पर उपलब्ध) के कारण कृषि मुख्य रूप से वर्षा पर निर्भर है। किसान यहाँ पारंपरिक बीजों और मिश्रित फसल प्रणाली का उपयोग करते हैं, जबकि खेत मजदूर, विशेष रूप से आदिवासी, मौसमी प्रवास के माध्यम से अपनी आजीविका कमाते हैं। इतिहास से लेकर आज तक, ये लोग संघर्ष और सृजन की कहानी लिखते आ रहे हैं। यह आलेख झारखंड के किसानों और खेत मजदूरों के इतिहास, परंपराओं और वर्तमान स्थिति पर प्रकाश डालेगा।

बीज शब्द :- जनजातियाँ, आजीविका, परंपराएँ, पुरातात्विक, वंशानुगत, औपनिवेशिक।

शोध विश्लेषण :-

झारखंड के किसानों और खेत मजदूरों का इतिहास प्राचीन काल से जुड़ा है। पुरातात्विक साक्ष्यों से पता चलता है कि यहाँ की आदिवासी जनजातियाँ तांबे युग (7000 ईसा पूर्व) से कृषि करती आ रही हैं। संथाल, मुंडा और अन्य जनजातियां जंगल साफ करके खेती करती थीं, जहाँ धान, बाजरा और सब्जियाँ मुख्य फसलें थीं। ये समुदाय सामूहिक रूप से भूमि का प्रबंधन करते थे, और भूमि को 'खुंटकट्टी'[1] प्रथा के तहत वंशानुगत मानते थे। प्राचीन काल में कृषि के साथ शिकार और संग्रहण भी महत्वपूर्ण था, जो आदिवासियों की प्रकृति से जुड़ी जीवनशैली को दर्शाता है।

औपनिवेशिक काल में झारखंड की कृषि और किसानों का शोषण चरम पर पहुंचा। 1774 से ब्रिटिश काल में यह क्षेत्र संसाधन सीमा बन गया, जहाँ कोयला और खनिज निकासी के लिए जंगलों को काटा गया। आदिवासी किसानों की भूमि छीन ली गई, और उन्हें मजदूर बनने पर मजबूर किया गया। संथाल विद्रोह (1855) और बिरसा मुंडा का उलगुलान (1899–1900) जैसे आंदोलन इसी शोषण के खिलाफ थे। बिरसा मुंडा ने आदिवासियों को 'अबुआ राज'[2] की अवधारणा दी, जहाँ भूमि पर उनका अधिकार बहाल करने की माँग की गई। हालाँकि ब्रिटिश सरकार के समय ही जमींदारी प्रथा और 'परमानेंट सेटलमेंट' जैसी नीतियों ने आदिवासी समुदायों को उनकी जमीनों से बेदखल कर दिया, जिससे एक नया जमींदार वर्ग उभर कर सामने आया। यह ऐतिहासिक मोड़ किसानों और खेतिहर मजदूरों के बीच के संबंधों को समझने में बहुत महत्वपूर्ण है। इस बीच मैं यह भी समझ पाया हूँ कि औद्योगिक परियोजनाओं के कारण विस्थापन एक और बड़ी समस्या है, जिसने मजदूरों के अनुपात को बढ़ा दिया है। इस काल में संथाल मजदूरों का प्रवास चाय बागानों और खानों में बढ़ा, जो गरीबी और मजबूरी का परिणाम था। ब्रिटिश नीतियों ने अर्ध–सामंती जमींदारी प्रथा को मजबूत किया, जिससे ग्रामीण स्थिरता प्रभावित हुई।

स्वतंत्रता के बाद, 1950 के दशक में भूमि सुधार कानूनों ने कुछ राहत दी, लेकिन झारखंड (तत्कालीन बिहार का हिस्सा) में आदिवासियों की भूमि हस्तांतरण पर प्रतिबंध लगाया गया। 2000 में झारखंड राज्य बनने के बाद, कृषि विकास कार्यक्रमों पर जोर दिया गया, जैसे मनरेगा के तहत फल रोपण। हालाँकि, हरित क्रांति ने झारखंड को बाईपास कर दिया, क्योंकि यहाँ की वर्षा–निर्भर कृषि और ऊबड़–खाबड़ भूभाग के कारण। आदिवासी किसान आज भी पारंपरिक फसलों जैसे बाजरा, मक्का और दालों पर निर्भर हैं, लेकिन औद्योगीकरण ने भूमि अधिग्रहण बढ़ाया, जिससे विरोध आंदोलन जैसे 'पथलगड़ी'[3] (2017–18) उभरे।

खेत मजदूरों का इतिहास प्रवास से जुड़ा है। औपनिवेशिक काल से संथाल और अन्य आदिवासी ईंट भट्टों, निर्माण स्थलों पर जाते रहे हैं। आज, झारखंड से लाखों मजदूर केरल, दिल्ली जैसे राज्यों में प्रवास करते हैं, जहाँ वे दैनिक मजदूरी पर काम करते हैं। यह प्रवास गरीबी, कृषि असफलता और रोजगार की कमी से प्रेरित है। हाल के वर्षों में, किसान आंदोलनों जैसे 2020–21 का राष्ट्रीय किसान विरोध झारखंड में भी गूंजा, जहाँ आदिवासी किसानों ने तीन कृषि कानूनों का विरोध किया।

परंपराएँ :

झारखंड के किसानों और खेत मजदूरों की परंपराएँ प्रकृति से गहराई से जुड़ी हैं। आदिवासी समुदायों में कृषि सामूहिक और सतत है, जहाँ मिश्रित फसल प्रथा (मक्का, धान, दालें एक साथ) जलवायु परिवर्तन से मुकाबला करती है। भूमि संरक्षण में जैविक खाद का उपयोग, जैसे गोबर और पत्तियाँ, पारंपरिक है।

महिलाएँ मुख्य रूप से बीज संरक्षण करती हैं, जहाँ पारंपरिक धान की किस्में जैसे 'काला जीरा' संरक्षित हैं। यहाँ के त्योहार कृषि चक्र से जुड़े हैं। 'सरहुल'[4] में साल वृक्ष की पूजा की जाती है, जो फसल की समृद्धि का प्रतीक है। करम उत्सव युवाओं का फसल उत्सव है, जहाँ करम वृक्ष की पूजा और नृत्य होते हैं। सोहराई या बंदना फसल कटाई का उत्सव है, जहां पशुओं की पूजा और दीवार चित्रण 'सोहराई कला'[5] किया जाता है। 'नवाखानी'[6] में नई फसल का पहला भोजन देवताओं को चढ़ाया जाता है। वैसे ही 'रोहिणी उत्सव'[7] बीज बोने का प्रारंभ है। ये उत्सव सामुदायिक एकता और पर्यावरण संरक्षण को बढ़ावा देते हैं।

सांस्कृतिक प्रथाएँ भी विविध प्रकार के हैं। मुंडा जनजाति में बुनाई, मिट्टी के बर्तन और लकड़ी की नक्काशी प्रचलित है। भोजन में बाजरा, मक्का और जंगली सब्जियां शामिल हैं, जैसे 'रुगड़ा'[7] और 'महुआ' से बने पेय। नृत्य जैसे झुमैर और पाइका कृषि उत्सवों में किए जाते हैं। किसान समुदाय पशुपालन को महत्व देते हैं, जहाँ गाय और बैल फसल की रक्षा करते हैं। महिलाओं की भूमिका महत्वपूर्ण है। वे खेती, बीज संरक्षण और घरेलू अर्थव्यवस्था संभालती हैं। हाल में, बाजरा पुनरुद्धार जैसे प्रयास पारंपरिक ज्ञान को बचा रहे हैं। झारखंड के किसान आज भी पारंपरिक औजारों का उपयोग करते हैं, जो स्थानीय कारीगरों द्वारा लकड़ी, बांस और लोहे से बनाए जाते हैं। इनमें देसी हल, हंसिया, कुदाल, और दाव शामिल हैं। बैल कृषि शक्ति का एक महत्वपूर्ण पारंपरिक स्रोत हैं। यह पारंपरिक व्यवस्था सरकार द्वारा वितरित किए जा रहे आधुनिक कृषि उपकरणों जैसे : ट्रैक्टर, पावर टिलर, रोटावेटर के साथ–साथ चल रही है। यह एक 'दो–स्तरीय' कृषि समाज का निर्माण कर रहा है, जहाँ एक ओर सरकार आधुनिकता को बढ़ावा दे रही है, वहीं दूसरी ओर, आर्थिक और तकनीकी बाधाएँ छोटे और सीमांत किसानों को पारंपरिक तरीकों पर निर्भर रहने के लिए मजबूर करती हैं।

वर्तमान स्थिति और चुनौतियाँ :

आज झारखंड के किसान गरीबी और सामाजिक बहिष्कार से जूझ रहे हैं। प्रवास बढ़ रहा है, जहाँ आदिवासी मजदूर अन्य राज्यों में कम वेतन पर काम करते हैं। लेकिन सफल कहानियाँ भी हैं, जैसे राँची के एक किसान का साइकिल से यात्रा कर लाखों कमाना। लेकिन दूसरी तरफ झारखंड में रोजगार की दर देश में सबसे निचले स्तर पर है। कुल कार्यबल में से लगभग 38.5 प्रतिशत किसान और 28.2 प्रतिशत कृषि मजदूर हैं। रोजगार के अवसरों की कमी के कारण, विशेषकर गैर–खनन क्षेत्रों से, बड़े पैमाने पर पलायन होता है। मनरेगा जैसी सरकारी योजनाएँ भी पूरी तरह से सफल नहीं हैंय मजदूरों को बाजार दर से आधी मजदूरी 272 रुपये प्रति दिन पर काम करना पड़ता है, और भुगतान में भी अक्सर देरी होती है। यह पलायन सिर्फ आर्थिक समस्या नहीं है, बल्कि यह ऐतिहासिक भूमि विस्थापन और शोषण का एक आधुनिक प्रतिरूप है।

झारखंड में अनियमित वर्षा, न्यूनतम तापमान में वृद्धि और सूखे की घटनाएँ बढ़ी हैं, जिससे फसल की उत्पादकता पर नकारात्मक प्रभाव पड़ा है। इन मौसमी झटकों से असिंचित क्षेत्रों में कृषि उपज और किसानों की आय में काफी कमी आई है, जिससे गरीबी और असुरक्षा बढ़ी है। जलवायु परिवर्तन के प्रभावों का मुकाबला करने के लिए कृषि विविधीकरण और टिकाऊ पद्धतियों को बढ़ावा देना आवश्यक हो गया है। सरकार के कार्यक्रम जैसे बायोचार और एग्रोफॉरेस्ट्री सतत कृषि को बढ़ावा दे रहे हैं। जलवायु परिवर्तन, भूमि अधिग्रहण और बाजार पहुंच की कमी। लेकिन आदिवासी ज्ञान से मुकाबला संभव है।

निष्कर्ष :

झारखंड के किसान और खेत मजदूर इतिहास की धरोहर और परंपराओं के संरक्षक हैं। सतत विकास और नीतियों से उनकी स्थिति सुधारी जा सकती है। झारखंड के किसानों और मजदूरों का इतिहास उनके भूमि अधिकारों, पहचान और प्रकृति के साथ संबंधों की रक्षा के लिए एक निरंतर संघर्ष की कहानी है। पारंपरिक सामुदायिक व्यवस्था के विघटन, औपनिवेशिक हस्तक्षेप और आधुनिक चुनौतियों ने उनके जीवन को गहराई से प्रभावित किया है। यह रिपोर्ट दर्शाती है कि भूमि से अलगाव की समस्या आज भी जारी है, चाहे वह औपनिवेशिक शोषण के कारण हो या वर्तमान में कमजोर कृषि अर्थव्यवस्था और विकास परियोजनाओं के कारण। भविष्य में,

झारखंड के कृषि समाज को सशक्त बनाने के लिए एक बहुआयामी दृष्टिकोण की आवश्यकता है।

सन्दर्भ व टिप्पणी :

1. यह व्यवस्था आदिवासियों के जीवन और संस्कृति की रीढ़ थी और उनके सामाजिक व आर्थिक अस्तित्व को बनाए रखने में महत्वपूर्ण थी। ब्रिटिश शासन के दौरान इस प्रथा में बदलाव लाने के कारण मुंडाओं और अंग्रेजों के बीच संघर्ष हुआ। 1908 के छोटा नागपुर काश्तकारी अधिनियम (CNT Act) द्वारा खुंटकट्टी प्रथा को कानूनी मान्यता दी गई, जिससे जनजातीय भूमि अधिकारों को संरक्षित किया गया।

2. "अबुआ राज एते जाना, महारानी राज टुंडू जाना'' जल–जंगल–जमीन एवं आदिवासी सभ्यता व संस्कृति की रक्षा के लिए अंग्रेजी हुकूमत के विरुद्ध 'उलगुलान' करने वाले, महान स्वतंत्रता सेनानी, धरती आबा, भगवान बिरसा मुंडा ने यह नारा दिया था। यह सिर्फ कोई वगावत नहीं थी बल्कि यह तो आदिवासी स्वाभिमान, स्वतंत्रता और संस्कृति को बचाने का संग्राम था। बिरसा ने 'अबुआ दिशुम अबुआ राज' यानी 'हमारा देश हमारा राज' का नारा दिया। देखते ही देखते सभी आदिवासी जंगल पर दावेदारी के लिए इकट्ठे हो गये। अंग्रेजी सरकार ने बिरसा के उलगुलान को दबाने की हर सम्भव कोशिश की लेकिन आदिवासियों के गुरिल्ला युद्ध के सामने उन्होंने घुटने टेक दिये।

3. झारखंड के मुंडा जनजातियों द्वारा शुरू किए गए 'पत्थलगड़ी आंदोलन' ने न केवल भारत के आदिवासी समुदायों द्वारा पहचान और प्रथागत अधिकारों के दावे की एक नई लहर ला दी, बल्कि इसने राज्य द्वारा बनाए गए स्थानीय शासन की ग्राम सभा (ग्राम परिषदों) जैसी भागीदारी संस्थाओं के सार्थक सशक्तिकरण पर भी सवाल उठाया। समुदायों का सरकार के अधिकार को चुनौती देने और अपनी पारंपरिक भूमि पर स्वायत्तता स्थापित करने के लिए खुद को लामबंद करना भारत या अन्य जगहों के लिए कोई नई बात नहीं है। भारत के जंगल, विशेष रूप से आदिवासी द्वारा बसे वन क्षेत्र संघर्षों और सामाजिक लामबंदी की विशेषता रखते हैं। भारत के विभिन्न हिस्सों में आदिवासी समुदायों द्वारा स्वशासन के अधिकार की माँग के कई उदाहरण हैं। झारखंड की मुंडा जनजाति ने पत्थलगड़ी आंदोलन शुरू करके स्थानीय शासन में भाग लेने के लिए अपनी प्रथागत प्रथाओं और अधिकारों को सुरक्षित करने की इसी तरह की माँग दोहराई है।

4. झारखंड में मनाए जाने वाले सबसे लोकप्रिय आदिवासी त्योहारों में से एक, सरहुल त्योहार नए साल की शुरुआत का प्रतीक है। यह झारखंड की उरांव, मुंडा और हो जनजातियों द्वारा मनाया जाता है। हिंदू कैलेंडर के पहले महीने, चैत्र मास की तृतीया तिथि के दिन हर साल मनाया जाने वाला सरहुल, बसंत ऋतु के आगमन का प्रतीक है।

5. सोहराई चित्रकला झारखंड की एक पारंपरिक आदिवासी दीवार कला है, जिसे मुख्य रूप से महिलाएँ फसल कटाई और सोहराई पर्व के अवसर पर प्राकृतिक मिट्टी के रंगों से मिट्टी की दीवारों पर बनाती हैं। इसमें प्रकृति, जानवर, पौधे और ज्यामितीय आकृतियों का चित्रण होता है, जो कृषि और पशुपालन पर आधारित जनजातीय जीवन को दर्शाता है। सोहराई कला को 2020 में भौगोलिक संकेत (GI) टैग प्राप्त हुआ है।

6. नवाखानी या नुआखाई झारखंड के किसानों का एक फसल उत्सव है, जो नई फसल की कटाई के बाद मनाया जाता है। इस त्यौहार में लोग फसल के नए दानों का स्वागत करते हैं और अच्छी फसल के लिए ईश्वर को धन्यवाद देते हैं. इसका शाब्दिक अर्थ 'नया खाना' है, और यह मौसम के नए चावल का स्वागत करने के

लिए मनाया जाता है।

7. रोहिणी उत्सव एक खेती से जुड़ा त्यौहार है, जहाँ किसान अच्छी पैदावार के लिए खेत में धान का पहला बीज डालते हैं, जो कि रोहिणी नक्षत्र के दौरान किया जाता है। यह झारखंड में प्रमुखता से मनाया जाता है और अच्छी खेती के लिए इसे शुभ माना जाता है। रोहिणी उत्सव बीज, रोहिणी नक्षत्र में बोए जाने वाले धान के बीजों को संदर्भित करता है, जिससे कीड़े–मकोड़े नहीं लगते और उपज अच्छी होती है।

8. रुगड़ा झारखंड में बरसात के मौसम में मिलने वाला एक जंगली सब्जी है, जिसे पुट्टू और फुटका भी कहते हैं। यह साल के पेड़ों के नीचे जमीन के अंदर उगता है, जिसका स्वाद मटन जैसा होता है और इसे शाकाहारी मटन भी कहा जाता है। यह प्रोटीन, विटामिन बी^{12}, कैल्शियम और एंटीऑक्सीडेंट से भरपूर होता है, जो हड्डियों को मजबूत करने, थकान दूर करने और शरीर को ताकत देने में मदद करता है।

मो. 6299106499

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Sept. 2025 Page No. : 270-275

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

नीरज सिंह के कथा साहित्य में स्त्री सन्दर्भ

सपना देवी

शोध छात्रा, स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग,

वीर कुँवर सिंह विश्ध्वविद्यालय, आरा, बिहार– 802301)

नीरज सिंह समकालीन हिन्दी कथाकारों में स्त्री–जीवन के यथार्थ को प्रस्तुत करने वाले रचनाकार हैं । उनके तीन प्रमुख कहानी संग्रह– 'दूसरा आदम (1985 ई०)', 'अपनों के बीच (2000 ई०)' एवं 'उसका फैसला (2021 ई०)' प्रकाश में आते हैं। उन्होंने अपनी कहानियों के माध्यम से स्त्री–जीवन की समस्याओं, पारिवारिक रिश्तों और उसके अस्तित्व की जटिलताओं को उजागर किया है। उनके स्त्री–पात्र आत्मबल और चेतना से भरे हुए हैं, जो पाठकों को एक गहरी सोच की ओर प्रेरित करते हैं। नीरज सिंह की कहानियाँ न केवल स्त्री–जीवन की वास्तविकता को सामने लाती हैं, बल्कि उसके माध्यम से समाज में व्याप्त असमानताओं, शोषण और विसंगतियों को भी दर्शाती हैं। हिन्दी साहित्य में स्त्री–जीवन एवं उसके संघर्षों पर बहुत कुछ लिखा जाता रहा है। हिन्दी गद्यविधाओं में कहानी, उपन्यास, कविता एवं स्त्री आत्मकथाओं में इसे विशेष रूप से केन्द्रीयता मिली है। समय–समय पर पत्र–पत्रिकाओं में भी स्त्री विशेषांक निकलते रहे हैं। इन सब प्रयासों ने स्त्री–विमर्श को स्वर अवश्य दिया, बावजूद इसके आज इक्कीसवीं सदी में आकर भी स्त्री–शोषण पूर्णतया समाप्त नहीं हुआ है। हाँ, इस शोषण का स्वरूप बदल गया है। पहले जहाँ स्त्री को पढ़ने–लिखने की स्वतंत्रता नहीं थी, वहीं अब उसे यह अधिकार मिलने लगे हैं। डॉ. नीरज सिंह ने अपनी कहानियों में स्त्री–जीवन के विविध सन्दर्भों को उजागर किया हैय इनमें पुरुषवर्चस्ववादी मानसिकता, स्त्री–पुरुष असमानता, घर–परिवार में स्त्री की सहभागिता और स्त्री सशक्तिकरण जैसे पक्ष शामिल हैं। अतः नीरज सिंह के कथा साहित्य में अभिव्यक्त स्त्री–जीवन को समझने के लिए इन सन्दर्भों का अध्ययन आवश्यक है।

भारतीय पितृसत्तात्मक समाज में स्त्री–शोषण आम बात रही है। वैवाहिक–जीवन में तो उसका शोषण और भी बढ़ जाता है। ऐसा इसलिए भी है क्योंकि मायके में जहाँ उसे अपने माता–पिता से जो स्नेह मिलता है, वह उसे ससुराल में कम ही मिल पाता है। यह स्थिति तब और विषम हो जाती है जब उसका पति भी उसका साथ नहीं देता। ऐसी स्त्रियाँ चौतरफा शोषण का शिकार होती हैं। ससुराल में प्रायः स्त्रियों को घर–परिवार के सारे काम–काज करने होते हैं, कभी–कभी तो घर से बाहर के कामों की जिम्मेदारी भी उसी की होती है। स्वतंत्रता के नाम पर भी उसे कुछ नहीं मिलता। इस सन्दर्भ में राजेन्द्र यादव का यह कथन विशेष रूप से उल्लेखनीय है– "आदमी ने औरत की जिस एक चीज को मारा, कुचला या पालतू बनाया है, वह है उसकी स्वतंत्रता। आदमी हमेशा से नारी की स्वतन्त्र सत्ता से डरता रहा है, और उसे ही उसने बाकायदा अपने आक्रमण का केन्द्र बनाया

है। अपनी अखंडता और सम्पूर्णता में नारी दुर्जेय और अजेय है। वहाँ वह ऐसी शक्ति है जो स्वतन्त्र और स्वच्छन्द है,...इसीलिए आदमी ने उसे ही तोड़ा है। तोड़कर ही किसी को कमजोर और पालतू बनाया जा सकता है। आदमी ने लगातार और हर तरह कोशिश की है कि उसे परतन्त्र और निष्क्रिय बनाया जा सके।"[1] विचारणीय है कि जब स्त्री और पुरुष दोनों ही मनुष्य के प्रतिरूप हैं, तो स्त्री अपने ही घर–परिवार में स्त्री–पुरुष असमानता का दंश झेलने को विवश क्यों है?, क्यों उसके रहन–सहन, खान–पान, आने–जाने यहाँ तक कि उसके बोलने और हँसने तक में भेदभाव किया जाता है। नीरज सिंह अपनी कहानियों में कुछ ऐसे ही प्रश्नों को उठाते नजर आते हैं।

ऐसा ही एक प्रसंग 'उसका फैसला' कहानी–संग्रह में संकलित 'छलांग' कहानी में तब देखने को मिलता है, जब बाबू सियाराम सिंह का जोगी बेटा वर्षों बाद बाहर रहने के पश्चात् घर वापस लौट आता है और उसके घर वाले घर में रहने के लिए हाथ जोड़कर विनती करते हैं। इस सन्दर्भ में कहानी का यह प्रसंग उल्लेखनीय है– "बूढ़ी माँ उसके पांवों में माथा रगड़ने लगती और वह उसे समझाता रहता– सब माया का बाजार है माई. ..यहाँ कोई किसी का नहीं है– कोई किसी का नहीं।...गाँव भर के लोगों को जब भरोसा–सा होने लगा था कि उनके सामूहिक अनुरोध पर बाबू सियाराम सिंह का जोगी बेटा गाँव की ही ठाकुर–बाड़ी का पुजारी बनना स्वीकार कर लेगा, तभी एक दिन वह कहीं चला गया था– बहता पानी निर्मला।...लेकिन वह तो मर्द था। वर्षों बाद लौटा तब भी उसे घर में रहने के लिए लोग हाथ जोड़कर विनती कर रहे थे। अगर कहीं वह लड़की होता तो? कोई तैयार होता उसे रखने के लिए?"[2] निःसंदेह यह तथ्य विचारणीय है। हमारे समाज में एक तरफ पुरुष है, जिसे कभी भी, कहीं भी आने–जाने की स्वतंत्रता प्राप्त है, वहीं दूसरी तरफ स्त्री है, जो आज भी सामाजिक बंधनों में जीवन जीने को अभिशप्त है।

एक गृहणी के लिए सामान्य तौर पर जब किसी पुरुष से यह पूछा जाता है कि तुम्हारी पत्नी क्या काम करती है, तो उसका उत्तर होता है– कुछ नहीं...! वह एक गृहणी है। ऐसा कहकर उसके श्रम को मूल्यहीन कर दिया जाता है, जबकि घर–परिवार में खाना बनाने से लेकर बर्तन–कपड़े धुलने तक घर के सारे काम खुद स्त्रियाँ ही करती हैं। यहाँ तक कि वह घर में सबसे पहले उठकर सबसे बाद में सोती हैं। स्त्री शोषण तब और बढ़ जाता है, जब उसके श्रम के मूल्य में भी स्त्री–पुरुष असमानता का भाव दिखाई देता है। ऐसा ही एक प्रसंग 'अपनों के बीच' कहानी–संग्रह में संकलित 'अपने–अपने रास्ते' कहानी में तब देखने को मिलता है, जब स्त्री को उसके श्रम का मूल्य देने की बात आती है तो गंगा सिंह कहता है– "तीन दिनों की आधी मजदूरी पंद्रह रुपया ही होगी। अपने यहाँ औरतों को तो आधी मजदूरी ही मिलती है।...गारा उठाने का काम तो औरत ही करती है...और चूंकि औरतों को आधी मजदूरी ही देनी पड़ती है, इसीलिए यह काम उन्हीं से कराते हैं लोग।"[3] इस प्रकार स्त्रियों के श्रम के मूल्य में भी उसे असमानता का दंश झेलना पड़ता है। इस प्रकार कहीं–न–कहीं धीरे–धीरे उसके मन में भी हीनता का भाव घर कर जाता है और वह पुरुष को खुद से श्रेष्ठ मानने लगती है।

भारतीय समाज में विवाह को केवल दो व्यक्तियों का सम्बन्ध नहीं माना जाता, बल्कि उसे संतानोत्पत्ति और वंशवृद्धि से भी जोड़कर देखा जाता है। ऐसे में यदि विवाह के कई वर्षों बाद भी संतान न हो, तो स्त्री को ही दोषी ठहराया जाता है। यह तथ्य स्त्री–अस्मिता पर गहरी चोट करता है। संतान न होना, पति–पत्नी दोनों की स्थिति हो सकती है, परन्तु दोष केवल स्त्री पर मढ़ा जाता है। यह स्थिति स्त्री संघर्ष और उसकी असमान सामाजिक स्थिति का द्योतक है। एक ऐसा ही प्रसंग 'उसका फैसला' कहानी–संग्रह में संकलित 'छलांग' कहानी

में तब देखने को मिलता है, जब शादी के चार वर्ष पूरे हो जाने पर भी 'रुकसाना बी' माँ नहीं बन पाती, तो उनकी सास अपने बेटे 'सलीम' साहब का दूसरा विवाह कराना चाहती है। लेखक ने बड़े यथार्थवादी ढंग से यह दिखाया है कि किस प्रकार संतानहीनता स्त्री के अस्तित्व और सम्मान पर प्रश्नचिह्न लगा देती है। इस सन्दर्भ में कहानी का यह प्रसंग उल्लेखनीय है– "मायके और ससुराल के लोगों की पूछ–ताछ से परेशान–सी हो गयी थी वे। लगता था, जैसे उनकी गोद कभी भरेगी ही नहीं। सास के तेवर चढ़े रहते। वह तो निकहत का जन्म हुआ अल्लाह के फजल से कि उनकी जान बची। वरना तो उसकी सास ने सलीम साहब की दूसरी शादी के बारे में अपनी रिश्तेदारियों में बातचीत भी शुरू कर दी थी।"[4] यह प्रसंग स्त्री–जीवन की कठिनाइयों और पारिवारिक–सामाजिक मानसिकता का सशक्त चित्रण प्रस्तुत करता है रुकसाना बी स्वयं किसी गलती की दोषी नहीं थीं, फिर भी उन्हें अपमान और भय सहना पड़ा। उनकी सास की चिंता और समाज की तानेबाजी उनके जीवन को असुरक्षित बना देती है। सास की सोच अपने समय के पितृसत्तात्मक मानसिक ढाँचे को दर्शाती है, जहाँ संतान न होने का सारा दोष बहू पर डाल दिया जाता है। उनके तेवर और दूसरा विवाह कराने की जिद उस कठोर सामाजिक व्यवस्था को उजागर करती है। लेखक ने यह भी दिखाया कि अंततः रुकसाना बी की गोद निखह्हत के जन्म से भरती है। इसे अल्लाह का फजल (कृपा) बताया गया है। उक्त प्रसंग यह संकेत करता है कि स्त्री के जीवन में सामाजिक दबाव चाहे कितना ही हो, उसकी स्थिति अक्सर भाग्य और ईश्वर की कृपा पर ही टिकी होती है। साथ ही यह प्रसंग समाज को आत्ममंथन के लिए बाध्य करता है कि स्त्री को मात्र संतानोत्पत्ति का साधन मानना कितना अन्यायपूर्ण है। विवाह प्रेम, विश्वास और समानता का सम्बन्ध होना चाहिए, न कि केवल वंश–वृद्धि का साधन। रुकसाना बी पर की गयी ज्यादती हमें यह सिखाती है कि समाज को अपनी दृष्टि बदलनी होगी, क्योंकि स्त्री–अस्मिता को केवल मातृत्व से नहीं, बल्कि उसकी व्यक्तित्व–क्षमता, शिक्षा और कर्म से आँकना चाहिए।

नीरज सिंह की कहानियों में स्त्री–पुरुष श्रम–विभाजन, जीविका का संकट और सामाजिक परिस्थियों का टकराव सामने आता है। मंगरू और मकबूल जैसे पात्र उस वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं जहाँ आर्थिक विवशता के कारण औरतों का घर से बाहर जाकर काम करना केवल विकल्प नहीं, बल्कि अनिवार्यता बन जाता है। यह तथ्य समाज में स्त्री की मूलभूत भूमिका को भी रेखांकित करता है । यहाँ स्त्री केवल गृहिणी न होकर परिवार की धुरी है, जिसकी सक्रियता और सहनशीलता से ही घर–परिवार चलता है। ऐसा ही एक प्रसंग 'अपनों के बीच' कहानी–संग्रह में संकलित 'अपने–अपने रास्ते' कहानी में तब देखने को मिलता है, जब मंगरू अपनी पत्नी को काम पर भेजने की विवशता बताते हुए मकबूल भाई से कहता है– "अपना–अपना भाग्य होता है मकबूल भाई, हम जैसों के चाहने से क्या होता है! कादिर चचा ठीक ही कह रहे हैं। लाख मना किया घरवाली को कि चुपचाप घर में रहकर बच्चों की देखभाल कर। लेकिन कहाँ मानती है...और अगर मेरी बात मान जाए तब भी नहीं चलने वाला। कटाई–निराई, कोडनी–निकौनी नहीं करें हमारे घर की औरतें तो खाली मरद की कमाई से पेट सचमुच नहीं चलेगा मकबूल भाई!"[5] यह प्रसंग दर्शाता है कि गरीबी और आभाव की स्थिति में स्त्री को घरेलू कार्यों के साथ–साथ मजदूरी करने की विवशता भी झेलनी पड़ती है। यह दोहरी जिम्मेदारी स्त्री की शक्ति और संघर्षशीलता दोनों को उजागर करती है। कह सकते हैं कि स्त्री केवल घर–गृहस्थी चलाने वाली नहीं, बल्कि घर–परिवार के आर्थिक और सामाजिक निर्माण की सह–निर्मात्री भी है।

नीरज सिंह ने अपनी कहानियों में स्त्री–जीवन के संघर्ष, उसकी उपयोगिता और उसके बिना परिवार के बिखराव की गहरी समझ को उजागर किया है। उन्होंने अपनी लेखनी से विशेष रूप से यह दिखाने का प्रयास किया है कि घर की आत्मा स्त्री होती है– उसके बिना घर केवल ढांचा रह जाता है। जब गनेसी की पत्नी मरी, तो उसके साथ घर का संतुलन भी टूट गया। इस सन्दर्भ में 'दूसरा आदम' कहानी–संग्रह में संकलित 'इस बार फिर' कहानी का यह प्रसंग उल्लेखनीय है– "जब गनेसी की पत्नी मरी थी, बैजू मुश्किल से तीन बरस का रहा होगा। उसी समय से गनेसी घर और बाहर सभी कुछ सम्भालता रहा थ । दिन भर दूसरों के खेत में हल जोतता, फिर शाम को घर का काम–काज करता। खुद खाना पकाता, बर्तन–बासन करता, चूल्हा झोंकता और साथ ही बैजू की देख–रेख भी करता।...फिर जब बैजू की मसे भीग आयी थी, गनेसी ने उसकी शादी कर दी थी। बहू के आ जाने से घर हरा–हरा सा लगने लगा था।"[7] यह तथ्य दर्शाता है कि स्त्री केवल खाना पकाने या घर संभालने तक सीमित नहीं, बल्कि वह परिवार को संवेदना, स्नेह और संतुलन प्रदान करती है। जब गनेसी की पत्नी मरी तो पूरा घर भावनात्मक रूप से खाली हो गया, तब गनेसी ने सब कुछ किया– खेत जोता, खाना पकाया, चूल्हा झोंका, लेकिन घर फिर भी 'घर' नहीं लग रहा था। गनेसी की पत्नी की मृत्यु के साथ ही उसकी मानसिक शांति भी चली जाती है। जब उसने अपने बेटे बैजू की शादी कर दी, तो घर 'हरा–भरा' लगने लगा– यह सिर्फ एक वाक्य नहीं, बल्कि इस बात का संकेत है कि स्त्री न हो तो घर सिर्फ ईंट–पत्थर होता है, और जब वह आती है, तो उसे जीवंत बना देती है। वह अकेले ही न केवल भावनात्मक संतुलन बनाए रखती है, बल्कि घर को सामाजिक रूप से भी सम्पूर्ण बनाती है।

भारतीय समाज में 'पितृसत्ता' एक ऐसा ढाँचा है, जो स्त्री को उसके अपने ही घर में अधिकारहीन बना देता है। बेटों को घर का मालिक और बेटियों को 'पराया धन' मानने की सोच आज भी गहरी जड़ें जमाए हुए हैं। इसी के विरोध में नीरज सिंह की कहानी 'छलांग' में यह स्थापित किया गया है कि जब एक स्त्री (माँ) दूसरी स्त्री (बेटी) के पक्ष में खड़ी होती है, तो वह इस शोषण का मुकाबला कर सकती है। ऐसा ही एक प्रसंग 'उसका फैसला' कहानी–संग्रह में संकलित 'छलांग' कहानी में तब देखने को मिलता है, जब 'पप्पू मियां' अपनी बहन 'निकहत' से इस बात पर झगड़ा करते हैं कि वह बेटा हैं इसलिए घर के होने वाले मालिक वह हैं, उनकी बहन नहीं। इस बात से रुष्ट होकर उनकी माँ 'रुखसाना बी' इसका प्रतिरोध करती है। इस सन्दर्भ में कहानी का यह प्रसंग उल्लेखनीय है– "बस्स ! इसके बाद अपने आप पर काबू नहीं रख पायी थीं रुखसाना बी– 'इतनी हिम्मत! मेरी फूल जैसी बेटी को उसकी औकात बताएगा तू नासपीटे! जानता है कि तू क्या कह रहा है ?...किससे कह रहा है? खबरदार, आइन्दा कभी ऐसी बात कही तो जुबान खींच लूंगी तेरी...और तड़ाक–तड़ाक दो तमाचे जड़ दिये थे उन्होंने पप्पू मियां के गालों पर।"[8] यह तथ्य दर्शाता है कि 'निकहत' का दोहरा शोषण हो रहा है– एक भाई द्वारा स्त्री एवं बहन होने के आधार पर और दूसरा सामाजिक ढाँचे द्वारा उसे अपने ही घर में अधिकारहीन समझे जाने के आधार पर। देखा जाए तो यह शोषण केवल संपत्ति का नहीं, अपितु पहचान और अस्तित्व का भी है। 'रुकसाना बी' अपनी बेटी के अपमान पर चुप नहीं रहतीं, बल्कि पितृसत्ता के खिलाफ खड़ी हो जाती हैं। उनका यह साहसिक कदम न केवल बेटी को मानसिक संबल देता है, बल्कि बेटे को भी यह संदेश देता है कि माँ अब पितृसत्ता की सहचरी नहीं, विरोधिनी है। 'रुकसाना बी' का संवाद– 'इतनी हिम्मत ! मेरी फूल जैसी बेटी को उसकी औकात बताएगा तू...दो तमाचे जड़ दिये थे पप्पू मियां के गलों पर'– यह एक स्त्री द्वारा,

दूसरी स्त्री के हक में की गई क्रांतिकारी प्रतिक्रिया है। यह तथ्य स्पष्ट रूप से सिद्ध करता है कि यदि स्त्रियाँ आपस में सहयोग और समर्थन करें, तो वे किसी भी सामाजिक अन्याय और पितृसत्तात्मक शोषण को चुनौती दे सकती हैं।

भारतीय पितृसत्तात्मक समाज में विधवा स्त्रियों की स्थिति ऐतिहासिक रूप से अत्यंत दयनीय रही है। उन्हें न केवल आर्थिक रूप से पराधीन बनाया गया, बल्कि सामाजिक और पारिवारिक स्तर पर भी उनका शोषण होता रहा। नीरज सिंह हिन्दी साहित्य के ऐसे रचनाकारों में हैं, जिन्होंने अपने लेखन से स्त्री की इस रूढ़ छवि को तोड़ा है। उन्होंने अपनी कहानी 'इस बार फिर' में एक ऐसी ही विधवा स्त्री का चित्रण किया है, जो अपने पति की मृत्यु के पश्चात् न केवल अपने परिवार को संभालती है, बल्कि अपने संवेदनात्मक साहस, कर्तव्य बोध और जीवटता से एक नया आदर्श रचती है। वह बहू बनकर भी इस घर में माँ की तरह रहती है और विधवा होने के बाद पुरुष की तरह कमाकर पेट पालती है।

इस सन्दर्भ में 'दूसरा आदम' कहानी–संग्रह में संकलित 'इस बार फिर' कहानी का यह प्रसंग उल्लेखनीय है– "गनेसी को यह भी याद है कि कैसे बहू ने उसकी ओर संकेत करके अपने बाप से तल्ख स्वर में कहा था– बच्चे तो साथ लिए भी जाऊं, मगर इस बूढ़े आदमी को कैसे छोड़ दूँ बाबू, जिसने मात्र इस उम्मीद में कि जब उसके बेटे की बहू आ जाएगी, तो वह सब–कुछ से निश्चिन्त होकर बाकी जिन्दगी हँसते–मुस्कराते काट लेगाय माँ बनकर अपने बेटे को बचपन से ही पाला था। नहीं बाबू, तुम ऐसी बात फिर मत कहना। मैं इस घर की होकर आयी थी, इसी घर की होकर जिन्दगी गुजार लूंगी, जिन्दगी है भी कितने दिन की? दो दिन सुख से कटे, बचे हुए दो दिन तो रोते–रोते कट जाएँगे। गनेसी को उस दिन ऐसा लगा था, जैसे बहू के रूप में बैजू खुद बोल रहा हो। सचमुच मेरी बहू लक्ष्मी है। उस जैसी औरतें मुश्किल से दो–चार होंगी। बैजू के मरने के बाद से तो जैसे वह औरत रही ही नहीं। मर्दों की ही तरह दिन–रात हाड़–तोड़ना और अपनी कमाई से घर का पेट पालना।"[9]

इस प्रकार गनेसी की बहू, विधवा होने को अपनी नियति न मानकर निरंतर आगे बढ़ने का प्रयत्न करती है। यह प्रसंग इस रूप में भी अपना महत्त्व रखता है कि यदि गनेसी की बहू का अपना स्वतंत्र अस्तित्व है, तो सिर्फ इसलिए कि विधवा होने के बावजूद वह परिस्थितियों से कभी समझौता नहीं करती, बल्कि अपनी जीवटता से न सिर्फ अपना, अपितु अपने परिवार का भरण–पोषण करती है। इस प्रकार वह परम्परागत रूढ़ियों को तोड़ती हुई नजर आती है। लेखक ने यहाँ गनेसी की बहू के माध्यम से यह सन्देश दिया है कि स्त्री को यदि अपना स्वतंत्र अस्तित्व पाना है, तो उसे परम्परागत रूढ़ियों को तोड़कर अपने सारे निर्णय खुद ही लेने होंगे। यदि स्त्री औरतपन के दबाव को महसूसे बिना समाज में पुरुषों के कन्धे से कंधा मिलाकर चले तो निश्चय ही वह अपने जीवन की उन तमाम समस्याओं से छुटकारा पा सकती है, जो सिर्फ स्त्री होने के कारण उसे भुगतने पड़ते हैं। कह सकते हैं कि लेखक की यह कहानी पिता, पति, भाई, बेटे या प्रेमी का सहारा लिए बिना एक स्त्री को अपना स्वतंत्र अस्तित्व स्थापित कर आगे बढ़ना सिखाती है।

निष्कर्षतः कह सकते हैं नीरज सिंह की कहानियों में स्त्री केवल पारंपरिक भूमिकाओं में सीमित नहीं है, बल्कि वह संघर्ष, सहनशीलता, आत्मसम्मान और सामाजिक चेतना की सशक्त प्रतीक बनकर उभरती है। उनकी कहानियों के स्त्री पात्र न केवल पितृसत्तात्मक ढाँचे से जूझती हैं, बल्कि उस बनी–बनाई अवधारणा को बदलने

का प्रयास भी करती हैं। 'इस बार फिर' कहानी में 'गनेसी की बहू' एक विधवा स्त्री के रूप में पारिवारिक जिम्मेदारियों को अपने मातृत्व और जीवटता से संभालती है और आवश्यकता पड़ने पर वह पुरुष की भूमिका भी निभाती है। वहीं, 'छलांग' कहानी की 'रुखसाना बी' यह सिद्ध करती है कि यदि एक स्त्री, दूसरी स्त्री के पक्ष में खड़ी हो जाए, तो वह किसी भी शोषण और अन्याय का मुखर विरोध कर सकती है। इन कहानियों में स्त्रियाँ, संवेदना की मूर्ति भर नहीं हैं, बल्कि कर्मठ, आत्मनिर्भर और संघर्षशील व्यक्तित्व के रूप में चित्रित हैं।

नीरज सिंह की कहानियाँ स्त्री को केवल दया, त्याग और करुणा की प्रतिमा नहीं बनातीं, बल्कि उसे सामाजिक चेतना से भरकर प्रतिरोध का रूप देती हैं। गनेसी की बहू का चरित्र हमें यह सिखाता है कि स्त्री के भीतर वह सब कुछ है, जो उसे किसी भी परिस्थिति में विजयी बनाता है। उसकी जैसी स्त्रियाँ उन स्त्रियों का प्रतिनिधित्व करती हैं, जो विपरीत परिस्थितियों में भी संघर्ष, करुणा, श्रम और प्रेम का मार्ग नहीं छोड़तीं। विधवा होने के बावजूद उसने अपने स्त्रीत्व को कभी बोझ नहीं बनने दिया, बल्कि वह सद्‌गुणों से सम्पन्न 'पूरे परिवार की रीढ़' बन गई। उनकी कहानी यह सिद्ध करती है कि एक स्त्री चाहे तो घर और समाज दोनों को पुनर्जीवित कर सकती है। अन्तोगत्वा कहा जा सकता है कि नीरज सिंह की कहानियों की स्त्रियाँ करुणा की नहीं, कर्म की प्रतिमाएँ हैं। वे विपत्ति में टूटती नहीं, बल्कि स्वयं को फिर से गढ़ती हैं।

संदर्भ सूची :

1. यादव राजेंद्र, आदमी की निगाह में औरत, राजकमल प्रकाशन, 2010 संस्करण, पृष्ठ संख्या– 15
2. सिंह, नीरज, उसका फैसला, अभिधा प्रकाशन, मुजफ्फरपुर, संस्करण– 2021, पृष्ठ संख्या– 71,72
3. सिंह, नीरज, अपनों के बीच, ग्रंथलोक प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण– 2000, पृष्ठ संख्या– 57
4. सिंह, नीरज, उसका फैसला, अभिधा प्रकाशन, मुजफ्फरपुर, प्रथम संस्करण– 2021, पृष्ठ संख्या– 68
5. सिंह, नीरज, अपनों के बीच, ग्रंथलोक प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण– 2000, पृष्ठ संख्या– 54
6. सिंह, नीरज, दूसरा आदम, धरती प्रकाशन, बीकानेर, प्रथम संस्करण– 1985, पृष्ठ संख्या– 92
7. सिंह, नीरज, उसका फैसला, अभिधा प्रकाशन, मुजफ्फरपुर, संस्करण– 2021, पृष्ठ संख्या– 67
8. सिंह, नीरज, दूसरा आदम, धरती प्रकाशन, बीकानेर, प्रथम संस्करण– 1985, पृष्ठ संख्या– 93, 94

पत्र–व्यवहार का पता :
ग्राम व पोस्ट– तेरवा दहिगवाँ
जिला– हरदोई, (उत्तर–प्रदेश)
पिन कोड– 241305
ईमेल– sapna246patel@gmail.com
मो०न०– 8545972221

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Sept. 2025 Page No. : 276-280

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

ओमप्रकाश वाल्मीकि कृत 'बस! बहुत हो चुका' काव्य–संग्रह में मानवीय सरोकार

उमा देवी

शोधार्थी, हिंदी विभाग, मौलाना आजाद नेशनल उर्दू यूनिवर्सिटी, हैदराबाद, 500032

शोध सार :

दलित साहित्य पूर्ण रूप से मानवीय अधिकारों की पक्षधरता का साहित्य है, जिसका प्रसार दलित जीवन की अभिव्यक्ति से हो रहा है। ओमप्रकाश वाल्मीकि की कवितायें मानवीय सरोकारों से ओतप्रोत है इनमें दलित जीवन संघर्ष की स्वानुभुति को अभिव्यक्ति किया है। इनकी कविताएँ दलित समाज की संवेदना का दस्तावेज होने के साथ–साथ समानता, गरिमा और मानवाधिकारों की पुकार है। मुख्यधारा के साहित्यकार जहाँ चुप्पी साधे हुए थे वहीं दलित साहित्यकारों ने मुख्यधारा से विपरीत जाकर ऐसी कविताएँ लिखी जो केवल सौंदर्य–बोध या व्यक्तिगत संवेदना तक सीमित नहीं हैं, बल्कि समाज में व्याप्त शोषण, अन्याय और असमानता को उद्घाटित करती हैं। हिंदी दलित साहित्य में ओमप्रकाश वाल्मीकि का नाम आदर के साथ लिया जाता है। दलित साहित्य के ऐसे प्रतिनिधि रचनाकार हैं जिन्होंने साहित्य को सामाजिक न्याय और मानवीय सरोकारों की दिशा में मोड़ दिया। वाल्मीकि जी ने चार काव्य संग्रह प्रकशित है जिसमें 'बस! बहुत हो चुका' काव्य संग्रह का विशेषत महत्व है यह काव्य संग्रह दलित समाज की वास्तविक पीड़ा और प्रतिरोध की सशक्त अभिव्यक्ति है।

बीज शब्द : दलित, शोषण, अन्याय, विद्रोह, जाति, मानवीय सरोकार, मानवाधिकार, पीड़ा, संघर्ष, अभिव्यक्ति, स्व–अनुभूति।

मूल आलेख :

हिंदी काव्य धारा में दलित कविता अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान रखती है। दलित कविता का आरंभ हीरा डोम की कविता 'अछूत की शिकायत' 'सरस्वती 1914, से माना जाता है। यह कविता मूलतः भोजपुरी में लिखी गई है इस कविता के माध्यम से हीरा डोम ने दलित जीवन का चित्र प्रस्तुत किया है। दलित कविता की मूल संवेदना भारतीय समाज में हो रहे जातिगत भेदभाव और शोषण के विरुद्ध आवाज उठाना है। कंवल भारती कहते हैं– "दलित कविता उस तरह की कविता नहीं है, जिसे आमतौर पर कोई प्रेम या विरह में पागल होकर गुनगुनाने लगता है। यह वह कविता भी नहीं है, जो पेड़–पौधों, फूलों और नदियों, झरनों और पर्वतमालाओं की चित्रकारी में लिखी जाती है। यह किसी का शोकगीत और प्रशस्तिगान भी नहीं है। दरअसल यह वह कविता है, जिसे शोषित, पीड़ित, दलित अपने दर्द की अभिव्यक्ति करने के लिए लिखता है। यह वह कविता है, जिसमें दलित कवि अपने जीवन के संघर्ष को उकेरता है। यह दमन, अत्याचार, अपमान और शोषण के खिलाफ युद्धगान है।

यह स्वतंत्रता, समानता और भ्रातृत्व–भाव की स्थापना और लोकतंत्र की प्रतिष्ठा करती है, इसीलिए इसमें समतामूलक और समाजवादी समाज की परिकल्पना है। संक्षेप में दलित कविता जाति और वर्ग–विहीन समाज की स्थापना करने वाली दलितों द्वारा लिखी गई क्रांतिकारी कविता है।"[1]

भारतीय समाज में व्याप्त जाति व्यवस्था में दलितों का जीवन नर्क बना दिया है। सदियों से चले आ रहे शोषण और अत्याचार की व्यवस्था ने दलितों का विकास नहीं होने दिया। हाशिये पर खड़े दलितों की जो दशा आज बनी हुई है वह उसी जाति व्यवस्था का परिणाम है। इसी प्रकार की जातिगत भेदभाव शोषण और अत्याचारपूर्ण नीति को ओमप्रकाश वाल्मीकि जी ने स्व–अनुभव किया और उन्होंने उसकी अभिव्यक्ति अपनी कविताओं के माध्यम से करते हैं। वाल्मीकि जी कविताओं में मानवीय अधिकारों का पक्ष लेकर शोषण, भेदभाव तथा अत्याचारों के विरुद्ध विद्रोह दिखाई देता है। वाल्मीकि जी का मानना है– "दलित साहित्य समाज समानता, भाईचारा और मानवीय स्वतंत्रता की स्थापना के लिए प्रतिबद्ध है। मनुष्य ही उसके लिए सर्वोपरि है। इस प्रकृति में जो कुछ भी हमारे सामने है, वह मनुष्य की ही देन है। इसलिए मनुष्य की महत्ता को स्वीकार करते हुए दलित साहित्य मनुष्यता का साहित्य है।"[2]

'बस! बहुत हो चूका' काव्य संग्रह में दलित समुदाय द्वारा भोगे जातिगत अपमान की मार्मिक प्रस्तुति है। भारतीय संविधान में व्यक्त मौलिक अधिकारों के द्वारा सभी को समता का अधिकार प्राप्त है, लेकिन दलित समाज आज भी पारम्परिक तरीके से जीने को मजबूर है। कवि कहता है कि अब और अपमान सहना संभव नहीं। यह स्वर दलित समाज में सम्मान और गरिमा की पुनःस्थापना की आकांक्षा को अभिव्यक्त करता है। 'बस! बहुत हो चुका' कविता में कवि कहते है–

"जब भी देखता हूँ मैं
झाडू या गन्दगी से भरी बाल्टी–कनस्तर
किसी हाथ में
मेरी रगों में
दहकने लगते हैं
यातनाओं के कई हजार वर्ष एक साथ
जो फैले हैं इस धरती पर
ठण्डे रेतकणों की तरह।"[3]

दलित समाज को भारतीय हिंदू समाज ने कभी–भी समाज का हिस्सा नहीं माना, दलितों को मानव विकास में सहायक मूलभूत संसाधनों से भी वंचित रखा। तथाकथित हिंदू समाज इन संसाधनों पर रोक नहीं लगाता तो उन्हें बेगार करने वाले मुफ्त में कहां से मिलते, उन्हें हुकूमत के लिए गुलाम कहां से मिलते। इसी प्रकार की साजिश हिंदू समाज दलितों के खिलाफ हजारों सालों से करता आया है और दलित इसका शिकार हुए हैं। मूलभूत अधिकारों की मांग ओमप्रकाश वाल्मीकि कविता 'खामोश आहटें' के माध्यम से करते हैं–

"कभी नहीं मांगी बलिश्त भर जगह
नहीं मांगा आधा राज भी
मांगा है सिर्फ न्याय

जीने का हक
थोड़ा–सा आकाश
थोड़ा–सा पीने लायक पानी
थोड़ा–सा सुख
थोड़ा–सा चैन
थोड़ी–सी धूप
थोड़ी–सी हवा
थोड़ी–रोशनी
थोड़ी–सी किताबें
थोड़ा–सा अपनापन।"[4]

भारत जैसे विश्व गुरु देश में दलितों को आज भी विभिन्न प्रकार से भेदभाव का सामना करना पड़ता है। अपनी मेहनत की मजदूरी भी उन्हें नहीं मिलती न रहने को घर न खेती करने के लिए कोई जमीन जो इस देश का निर्माता है जिसके परिश्रम से इस देश का विकास हो रहा है। क्या? यह देश उसके विकास की चिंता करता है उनकी असहनीय पीड़ा, दर्द भरे जीवन पर कभी विचार कर पायेगा। वाल्मीकि जी श्रम को केवल आर्थिक साधन नहीं, बल्कि मनुष्य की पहचान और गरिमा का अभिन्न अंग मानते है। और दलितों की हजारों वर्ष की मेहनत और उससे मिले मुनाफे को इस प्रकार 'फिर भी' कविता में अभिव्यक्त करते है–

"काटे जंगल
खोदे पहाड़
बोये खेत
फिर भी रहे भूखे।
बनायी नहरें
खोदे कुएँ
लगाये नल
फिर भी रहे प्यासे।
लड़े युद्ध
जीते भूखण्ड
बदले राज
फिर भी रहे दास।
हाथों में अथाह शक्ति
सीने में धैर्य
मन में विश्वास
फिर भी सही दुत्कार।"[5]

भारतीय इतिहास में दलित जीवन क्रूरता से भरा था दलितों की दशा मानवता के खिलाफ रही है। दलितों

को पग–पग पर अस्पृश्यता का सामना करना पड़ता था। शोषक वर्ग ने अर्थात् ब्राह्मणवादी, मनुवादी हिंसात्मक तत्वों ने दलितों का संपूर्ण जीवन छिन्न–भिन्न कर दिया था। इसके बावजूद दलित बदले की भावना से परे होकर भाई चारे और आपसी मानव प्रेम में बदलाव की स्थिति खोजता है। 'भय' कविता में ओमप्रकाश वाल्मीकि लिखते हैं –

"तुम्हारे हाथ बढ़े होते
मेरी ओर
प्रेम गंध का स्पर्श लेकर
सच कहता हूं
मैं सीने से नहीं
लिपट जाता तुम्हारे कदमों से
बिछ जाता
धूल बनकर जमीन पर।"[6]

भारतीय संविधान में भारत के प्रत्येक नागरिक को समानता का अधिकार प्राप्त है जबकि दलित के लिए यह स्थिति प्रतिकूल है। समाजशास्त्रीय दृष्टि से अध्ययन के उपरांत यह स्पष्ट है की सम्पूर्ण दलित समाज कई हजार वर्षों से ऐसी स्थितियों से जूझता रहा है। भारतीय हिन्दू धर्म ग्रंथों में चंडाल, अत्यंत पंचम, डोम इत्यादि को मानवीय गरिमा से इतर रखा गया है उनकी तुलना कुत्ते, बिल्लियों जैसे जानवारों से की गयी है। जन्म की प्रक्रिया एक सी और एक सामान खून फिर भी एक मानव को इतना अधिकार और दूसरे को हद से ज्यादा तिरस्कार, एक आकाश का मालिक दूसरा जमीन पर रहने की इच्छा करें तो कुचल दिया जाता है। 'कद' कविता में ओमप्रकाश वाल्मीकि लिखतें है–

"जिस रास्ते चलकर तुम पहुंचे हो
इस धरती पर
उसी रास्ते चलकर आया मैं भी
फिर तुम्हारा कद
इतना ऊंचा
की आसमान भी छू लेते हो
तुम आसानी से
और मेरा कद इतना छोटा
कि मैं छू नहीं सकता
जमीन भी!"[7]

भारतीय समाज में दलितों को किसी प्रकार का अधिकार प्राप्त नहीं था। उनको गुलाम बनाकर रखा जाता था। उच्च वर्ण जरूरत के अनुसार उनका प्रयोग करते थे। खेतों में बैल की भांति प्रयोग करना आम बात थी। दलितों को असहनीय पीड़ादायक और घिनोने कार्य करने के लिए बाध्य किया जाता था। दलित जीवन महज एक उत्पाद की भांति रहा जो कभी भी उखाड़ कर फेंकी जा सकती हैं। ओमप्रकाश वाल्मीकि ने दलितों की

अस्मिता और उनके जीवन की यथार्थ परिस्थितियों को उजागर किया। 'उत्पाद' कविता में लिखतें है–

"पैदा हुए वैसे ही
जैसे होते हैं पैदा
गालियों में कुत्ते बिल्ली।
पैदा हुए, वैसे ही
जैसे होती है खेत में पैदा
खर पतवार हरी
दूब झाड़–झंखाड़।
अँधेरे में वैसे ही
जैसे पैदा हुए
गुमनाम
उपोत्पाद की तरह।"[8]

निष्कर्ष :

जबकि ओमप्रकाश वाल्मीकि संस्कृति का चोला ओढ़े हिंसक, अनैतिक और भेदभाव आधारित क्रूर जाति–व्यवस्था का भंडाफोड़ करते हैं। यह कहने में हिचक महसस नही होती आज भी वैधानिक अधिकारों के बाबजूद भी दलितों पर निरतंर अत्याचार बढ़ रहा है। 21वी सदी में भी मनुवादी विचारधारा कोई राह सूझने नहीं देती आज भी दलितों का दमन हो रहा है। दलित कविता के इतिहास में ओमप्रकाश वाल्मीकि का नाम जुड़ गया है उनकी कविताएं मानवीय सरोकारों से लेस दलित जीवन की स्व–अनुभूति पर आधारित है। इनकी कविताओं में भारतीय समाज व्यवस्था के प्रति विद्रोह तथा मानवीय सरोकारों के प्रति पक्षधरता को साफ तौर पर महसूस किया जा सकता है।

संदर्भ सूचि :

1. कंवल भारती, दलित कविता का संघर्ष, स्वराज प्रकाशन, दिल्ली, 2012, पृष्ट 13
2. ओमप्रकाश वाल्मीकि, राधाकृष्ण पेपरबैक, दिल्ली, अनुभव और यथार्थ, पृष्ठ संख्या, 8
3. ओमप्रकाश वाल्मीकि, बस! बहुत हो चूका, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण 1997, आवृति 2017
4. वही : पृष्ठ संख्या, 61
5. वही : पृष्ठ संख्या, 53
6. वही : पृष्ठ संख्या, 90
7. वही : पृष्ठ संख्या, 76
8. ओमप्रकाश वाल्मीकि, संपादक रविकांत,, सम्पूर्ण कविताएँ, राधाकृष्ण पेपरबैक, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2024, पृष्ठ संख्या, 67

फोन : 9650826403

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Sept. 2025 Page No. : 281-284

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

मन्नू भंडारी का उपन्यास 'आपका बंटी' : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

डॉ निशा मुरलीधरन

असिस्टेन्ट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, एस. आर. एम. इंस्टिट्यूट ऑफ साइंस एण्ड टेक्नॉलजी, वड़पलनी।

संक्षेप :

यह शोध–पत्र मनु भंडारी के उपन्यास "आपका बंटी" का विस्तृत विश्लेषण प्रस्तुत करता है। रचना की संरचना, विषय–वस्तु, पात्र रचना, भाषा–शैली, नैरेटिव तकनीकें और उपन्यास के सामाजिक–ऐतिहासिक–सांस्कृतिक संदर्भ का विवेचन किया गया है। विशेष रूप से बच्चों की मनो–भूमिका, परिवारिक संरचनाओं के भीतर व्याप्त तनाव, लैंगिकता के प्रश्न तथा भारतीय मध्यवर्ग की बदलती मानसिकता पर उपन्यास द्वारा की गई टिप्पणियों को विश्लेषित किया गया है। अंत में उपन्यास के समकालीन साहित्यिक महत्त्व और पढ़ने की संभावनाओं पर विचार प्रस्तुत किए गए हैं।

बीज शब्द : मनु भंडारी, आपका बंटी, बाल–मानस, परिवार, मध्यवर्ग, सामाजिक यथार्थ, फिक्शन, महिला साहित्य

मन्नू भंडारी हिंदी साहित्य की प्रमुख आधुनिक लेखिकाओं में से एक हैं। उनकी कहानियों और उपन्यासों ने भारतीय सामाजिक–राजनीतिक यथार्थ का सूक्ष्म, संवेदनशील और प्रबुद्ध चित्र प्रस्तुत किया है। "आपका बंटी" एक ऐसा ग्रंथ है जिसमें बाल–जीवन और परिवार के बीच की जटिलताओं को बहुत ही सूक्ष्म और प्रभावी तरीके से प्रस्तुत किया गया है। यह रचना न केवल बाल–अनुभवों का वृत्तांत है, बल्कि समाज के भीतर के छोटे–छोटे संघर्षों का एक दर्पण भी है जहाँ बड़े अपने स्वार्थ, भय और आकांक्षाओं के बीच बच्चे निहित अर्थों व भावनाओं के वाहक बन जाते हैं।

इस उपन्यास में मन्नू भंडारी ने पारंपरिक नैरेटिव से हटकर एक संवेदनशील, अंतर्मुखी और मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनाया है। "आपका बंटी" का केन्द्र बिंदु एक बच्चे 'बंटी' के जीवन पर आधारित है। उपन्यास परिवार, बाल–विश्वासघात, माता–पिता के अंदरूनी द्वंद्व और समाज की अपेक्षाओं के प्रभावों को बंटी की दृष्टि से दर्शाता है। बंटी का अनुभव कई बार मौन, कई बार असमंजस और अक्सर अकेलेपन से भरा होता है। बड़े उनसे संवाद करते हैं, परन्तु उनकी भावनाएं और निर्णय अक्सर बच्चे की समझ से परे होते हैं। उपन्यास में पारिवारिक बातचीत, यादों का संचयन, तथा छोटे–छोटे दृश्यों के माध्यम से बड़े मनोवैज्ञानिक तथा सामाजिक प्रश्न उठते हैं – जैसे विवाह, करियर, स्त्री–पुरुष संबंध, आर्थिक दबाव इत्यादि।

मनु भंडारी ने उपन्यास में बच्चे के चिंतन को केंद्रबिंदु बनाया है, वह सिर्फ शैतान या अति सहज पात्र

नहीं है, बल्कि वह समाज और परिवार की जटिलताओं का एक सूक्ष्म परीक्षक है। बंटी के अनुभवों के माध्यम से लेखक बाल–मन की सूक्ष्म संवेदनाओं, भय, आकांक्षाओं और असमर्थताओं का चित्र प्रस्तुत करती हैं। उपन्यास यह प्रश्न उठाता है कि क्या बड़े अपने बच्चों की भावनात्मक दुनिया को समझते हैं? अकसर वह बच्चे की जरूरतों के बजाय सामाजिक–प्रतिमाओं और अपेक्षाओं का पालन करते हैं।

उपन्यास में पारिवारिक संबंधों की आंतरिक तनावरूप रेखांकित है। माता–पिता के बीच की दूरी, उनकी अनकही बातें, और पारिवारिक निर्णयों के प्रभाव बंटी पर गहरे असर डालते हैं। परिवार के बड़े सदस्य अक्सर अपने व्यक्तिगत संकटों और असमानताओं को छुपाने के लिए बच्चों के सामने 'नॉर्मल' होने का नाटक करते हैं। इससे बच्चे में असुरक्षा और भ्रम उत्पन्न होता है।

"आपका बंटी" में मध्यवर्गीय भारतीय समाज की चिंता और आकांक्षाएँ भी दिखाई देती हैं। शैक्षिक सफलता की आवश्यकता, सामाजिक प्रतिष्ठा की चिंता, और आर्थिक सुरक्षा की चाह। ये कारक परिवार के निर्णयों में रचे–बसे होते हैं और बच्चे के जीवन के विकल्पों को प्रभावित करते हैं। उपन्यास यह संकेत करता है कि किस तरह सामाजिक अपेक्षाएँ व्यक्तिगत रिश्तों और बाल्यावस्था की स्वतंत्रता पर प्रतिकूल प्रभाव डाल सकती हैं।

मनु भंडारी की लेखनी में मौन का एक विशिष्ट स्थान है। कई बार वही वाक्य जो सदिश रूप में बोला नहीं जाता, उपन्यास में अधिक प्रभावशाली होता है। बंटी के भीतर के मौन, घर के भीतर के अनकहे शब्द और पुरुष/स्त्री के बीच के अधबचे संवाद उपन्यास की मुख्य संवेदी शक्ति बनते हैं।

बंटी उपन्यास का केन्द्र है, उसकी आँखों से दुनिया का अवलोकन पाठक के लिए मार्गदर्शक बनता है। बंटी केवल एक बाल पात्र नहीं है। वह एक समासीय अनुभूति का प्रतिनिधि है। आशा, भ्रम, भय और प्रेम का मिश्रण। मनु भंडारी ने बंटी के मनोविकास को नाटकीय घटनाओं के बिना ही प्रभावशाली ढंग से दिखाया है। रोजमर्रा की घटनाएँ, छोटी–छोटी टिप्पणियाँ, और घर में बन जाने वाले वाक्य ही उसके आंतरिक परिवर्तन को दर्शाते हैं।

बँटी के माता–पिता दोनों अपने बच्चों के प्रति स्नेह रखते हैं, परन्तु उनकी अपनी आकांक्षाएँ और सीमाएँ भी स्पष्ट रूप से दिखाई देती हैं। अक्सर वे सामाजिक दबाव और आत्म–संदेह के बीच संतुलन बनाते दिखते हैं। उनकी बातचीत में कई बार विडंबना और व्यथित हमीरता मिलती है, जिससे पता चलता है कि परिवार के बड़े भी अपने संघर्षों में अकेले हैं। उपन्यास में अन्य पारिवारिक और सामाजिक पात्र भी बंटी के दृष्टिकोण का परिपूरक कार्य करते हैं – शिक्षक, पड़ोसी, रिश्तेदार आदि। ये पात्र समाज के बहुल दृष्टिकोणों और अपेक्षाओं का प्रतिनिधित्व करते हैं और बंटी के अनुभवों का सामाजिक आयाम स्पष्ट करते हैं।

मन्नू भंडारी की भाषा सरल परन्तु प्रभावशाली है। वे जटिल भावनाओं को सहज, दिनचर्या के वाक्यों और सूक्ष्म विवरणों के माध्यम से व्यक्त करती हैं। उनकी शैली में निम्नलिखित विशेषताएँ प्रमुख हैं :

- **सटीकता और संक्षेप :** अनावश्यक अलंकारिक प्रसंग कम और संक्षेप में विचार प्रकट करना।
- **मनोधार्मिकता :** पात्रों के आंतरिक विचारों और संवेदनाओं का सूक्ष्म चित्रण।
- **वर्णन में सूक्ष्म प्रतीकवाद :** घरेलू वस्तुएं, मौसम, घर की छोटी–छोटी क्रियाएँ उपन्यास के भावनात्मक टोन को बनाने में सहायक होती हैं।
- **संवाद का अर्थपूर्ण प्रयोग :** संवाद अक्सर सीधे नहीं होतेय अधूरे वाक्य, रुक–रुककर बोली गई बातें और

अकस्मात चुप्पियाँ अर्थों को गहरा कर देती हैं।

मन्नू भंडारी ने उपन्यास में प्रथम/तृतीय–व्यक्ति नैरेटिव का संयोजन और विशेष रूप से स्वाभाविक अंतर्मुखी कथन का उपयोग किया है। बंटी की दृष्टि से प्रस्तुत कुछ दृश्य सीधे तथा कुछ परोक्ष रूप में बताए गए हैं। यह दृष्टि पढ़ने वाले को पात्रों के आंतरिक जीवन के निकट लाती है। लेखकाक्रम (झटकेदार घटनाओं) की जगह लगातार सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक परिवर्तनों पर जोर दिया गया है जो उपन्यास को एक 'जीवित अनुभव' बनाता है बजाय किसी प्लॉट–आधारित थ्रिलर के।

"आपका बंटी" में कई बार साधारण वस्तुएँ प्रतीकात्मक अर्थ ग्रहण कर लेती हैं। जैसे पुराने खिलौने, घर की खिड़कियाँ, भोजन की तालिका, या बंटी की किताबें। ये वस्तुएँ केवल दृश्य नहीं होतीं, बल्कि पात्रों के संबंधों, यादों और परिवार के अतीत–भविष्य के संकेत देती हैं। मनोवैज्ञानिक परिस्थितियों को प्रकृति, घर और सामान के माध्यम से दर्शाने की कला उपन्यास के गहरे अर्थ को उभारती है।

मन्नू भंडारी महिला लेखन की उस परंपरा में आती हैं जहाँ निजी अनुभव और सामाजिक संरचना के बीच संबंध पर विशेष ध्यान दिया जाता है। "आपका बंटी" में महिलाओं (विशेषकर माँ के) की आंतरिक जिजीविषा, उनके दमन और उन पर डाले गए सामाजिक अपेक्षाओं का सूक्ष्म चित्रण मिलता है। लेखक महिलाओं की आवाज को अप्रत्यक्ष तरीके से प्रवाहित करती हैं, यानि महिलाओं की चुप्पी, उनके छोटे–छोटे विरोध और संतप्त–प्रेम सभी मिलकर एक मधुर–घोर स्वर बनाते हैं। इससे उपन्यास भारतीय पारिवारिक पितृसत्तात्मक संरचनाओं की आलोचना भी करता है।

उपन्यास का पृष्ठभूमि–समय और सामाजिक–आर्थिक परिदृश्य :

उस काल के भारतीय मध्यवर्ग की मानसिकता को दर्शाते हैं। शैक्षिक महत्व, सामाजिक प्रतिष्ठा, आर्थिक असुरक्षा ये सभी कारक परिवार के निर्णयों और व्यवहार में परिलक्षित होते हैं। मनु भंडारी ने इन कारकों को नाटकीय घटनाओं के बिना, रोजमर्रा के जीवन के माध्यम से प्रभावी रूप से दिखाया है। उपन्यास यह भी संकेत करता है कि समाजिक दबाव किस तरह से बच्चों के मानसिक विकास को प्रभावित कर सकता है और उनकी व्यक्तित्व–गठना में बाधाएँ डाल सकता है।

"आपका बंटी" आज भी समकालीन पाठकों के लिए अत्यंत प्रासंगिक है। आधुनिक परिवारों में जहाँ कार्यस्थल–परिवार संतुलन, मानसिक स्वास्थ्य और बाल–पालन के तरीके परिवर्तन के दौर से गुजर रहे हैं, यह उपन्यास पाठकों को परिवार के भीतर धारित अनकहे सवालों और बच्चों के अनुभवों पर पुनर्विचार की प्रेरणा देता है। समीक्षकों के लिए यह उपन्यास मनोवैज्ञानिक आलेखों, बाल–मनोविज्ञान अध्ययन तथा परिवार–संबंधी सामाजिक शोध के साथ संवाद स्थापित करने योग्य है।

मन्नू भंडारी की लेखनी को अगर समकालीन महिला–लेखिकाओं जैसे काणिकांत, आशा भोंडवेकर (रूढ़ियाँ), या कृष्णा सोबती (खघस तौर पर सामाजिक यथार्थवाद) के साथ देखा जाए तो पता चलता है कि भंडारी का फोकस अधिक सूक्ष्म, अंतर्मुखी और घरेलू है। उनके कथ्य में बड़ा होने वाले सामाजिक–राजनीतिक विमर्श को प्रत्यक्ष रूप से नहीं रखा जाता, परन्तु घरेलू जीवन के स्तर पर तत्त्वों के माध्यम से यही विमर्श गूंजता है। इस दृष्टि से उनका कार्य सूक्ष्म यथार्थवाद (micro-realism) का उत्तम उदाहरण है।

कई आलोचक यह कह सकते हैं कि उपन्यास में घटनाओं का आकार अपेक्षाकृत छोटा है और कथानक

गति धीमी रहेगी जो कुछ पाठकों के लिए चुनौतीपूर्ण हो सकता है। परन्तु यह 'धीमी गति' लेखक की चुनी हुई रणनीति है जिसका उद्देश्य पाठक को पात्रों के आंतरिक जीवन में गहराई से प्रवेश कराना है। एक अन्य संभावित आपत्ति यह हो सकती है कि उपन्यास का कथ्य अत्यधिक स्थानीय या पारिवारिक प्रतीत हो परंतु पारिवारिक यथार्थ में ही सामाजिक संरचना की झलक मिलती है, जिससे उपन्यास का सार्वत्रिक महत्व बनता है।

निष्कर्ष (Conclusion) :

मनु भंडारी का "आपका बंटी" एक संवेदनशील, सूक्ष्म और प्रभावशाली उपन्यास है जो बाल–जीवन, पारिवारिक समीकरणों तथा भारतीय मध्यवर्ग की मानसिकता का प्रमाणिक चित्रण प्रस्तुत करता है। भाषा की सादगी, मनोवैज्ञानिक वास्तविकता का गहरा अनुवाद और प्रतीकात्मक विवरण उपन्यास को साहित्यिक दृष्टि से समृद्ध बनाते हैं। यह रचना न केवल मनु भंडारी के साहित्यिक करियर में महत्वपूर्ण है, बल्कि आधुनिक हिंदी उपन्यास में भी इसकी जगह विशिष्ट है।

संदर्भ सूची :

1. भंडारी, मनु। आपका बंटी. नई दिल्ली : राधाकृष्ण प्रकाशन, 2018. ISBN: 978-818361889
2. आपका बंटी (उपन्यास) मन्नू भंडारी। आपका बँटी : ट्यूटोरियल हिन्दी डॉट कॉम, 26 नवम्बर 2024.
3. आपका बंटी उपन्यास का सारांश। मन्नू भंडारी, हिन्दीकुंज, 31 अक्टूबर 2024.
4. आपका बंटी : मन्नू भंडारी द्वारा रचित प्रसिद्ध उपन्यास, फेमिनिजम इन इंडिया : हिन्दी, सुंदरम कुमार, 8 जुलाई 2024.
5. आपका बंटी उपन्यास का प्रकाशन। पटना वोमएन्स कॉलेज, स्रोत, संदर्भ ग्रंथ : भंडारी, मनु। आपका बंटी, नई दिल्ली : राधाकृष्ण प्रकाशन।
6. मीडिया लेख : "आपका बंटी (उपन्यास) : मन्नू भंडारी।" हिन्दी विकिपीडिया।

nishamup@srmist.edu.in

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Sept. 2025 Page No. : 285-289

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

मिट्टी से बना अन्न



डॉ. टी. अरूणा कुमारी
विभागाध्यक्ष एवं सह आचार्या
हिन्दी विभाग, शासकीय महाविद्यालय स्वायत्त, पाल्वंचा, जिला भद्राद्री कोत्तगूडेम।

सार :

प्राणी मात्र के लिए बुनियादी जरूरत है अन्न या आहार। भगवद्गीता में श्री कृष्ण ने स्पष्ट किया अन्नाद भवंति भूतानि। मिट्टी से अन्न बनाने वाला ईश्वर है किसान। भारतीय सभ्यता में कृषक को देश और समाज का रीढ़ मानते हैं। यह धन कमाने वाला रास्ता नहीं बल्कि पेट भरने का काम है। वेद संस्कृति में किसानों को समाज में उच्च स्थान प्राप्त है। भारतीय ज्ञानाधार ग्रंथों में किसान का महत्व सराहा गया है। बदलते समय के साथ जनता के विचार, आचार एवं सभ्यता में बदलाव आया। कटते संबंधों के कटघरे में फँसकर भी किसान खुद को मिट्टी के लगाव से कटा नहीं पा रहा है। हिन्दी साहित्य में आदिकाल, भक्तिकाल, रीतिकाल एवं आधुनिक काल के सुप्रसिद्ध कवि एवं लेखक किसान की दुर्दशा, गरीबी, शोषण, पीड़ा, गाँव–घर से विस्थापन, औद्योगीकरण, शहरीकरण, आत्महत्या, ऋणजाल, सिंचाई व्यवस्था, बीज एवं खाद का खोटापन, बढ़ती लागत, घटती उपज, बाजार की अव्यवस्था, वातावरण के आकस्मिक परिवर्तन, बाढ़, सूखा आदि अनेकानेक कष्टों का यथातथ रूप प्रस्तुत किया। आधुनिक युग के अनेक कवि किसानों की दुर्दशा एवं किसान आंदोलन आदि विषयों पर कलम चलायी। इन कविताओं के विश्लेषण से प्राप्त मर्म को दृष्टि में रखकर एक ही याचना कर सकते हैं– 'अन्नदाता सुखी भव'।

बीज शब्द : किसान, विस्थापन,प्राकृतिक आपदा, युग परिवर्तन।

मिट्टी से बना अन्न :

भारतीय सभ्यता में कृषक को देश और समाज का रीढ़ मानते हैं। यह धन कमाने वाला रास्ता नहीं बल्कि पेट भरने का काम है जो केवल एक माँ कर सकती है। वेद संस्कृति में किसानों को समाज में उच्च स्थान प्राप्त है। रामायण, महाभारत से लेकर पौराणिक ग्रंथ, उपनिषद, श्रुति एवं स्मृति एवं विदुर नीति चाणक्य सूत्र आदि भारतीय ज्ञानाधार ग्रंथों में किसान का महत्व सराहा गया है, उसे आदर सम्मान देने की सूचना दी गई है। बदलते समय के साथ जनता के विचार, आचार एवं सभ्यता में बदलाव आया। कटते संबंधों के कटघरे में फँसकर भी किसान खुद को मिट्टी के लगाव से कटा नहीं पा रहा है। हिन्दी साहित्य में आदिकाल, भक्तिकाल, रीतिकाल एवं आधुनिक काल के सुप्रसिद्ध कवि एवं लेखक किसान की दुर्दशा, गरीबी, शोषण, पीड़ा, गाँव–घर से विस्थापन, औद्योगीकरण, शहरीकरण, आत्महत्या, ऋणजाल, सिंचाई व्यवस्था, बीज एवं खाद का खोटापन, बढ़ती लागत,

घटती उपज, बाजार की अव्यवस्था, वातावरण के आकस्मिक परिवर्तन, बाढ़, सूखा आदि अनेकानेक कष्टों को सूचित किया। तथाकथित वैज्ञानिक युग में आज अन्य पेशों के समान कृषि को भी एक पेशा बनाया गया है और किसान को मात्र एक पेशेवर, जो बहुत अन्याय है। सत्ता के लिए किसान मात्र एक करदाता रह गया और जनता किसान से दूर भाग कर शहर में रहने लगा। आधुनिक युग के अनेक कवि किसानों की दुर्दशा एवं किसान आंदोलन आदि विषयों पर कलम चलायी जैसे : शरद बिलौरे, केदारनाथ अग्रवाल, नागार्जुन, अंजुम शर्मा, सत्यनारायण लाल, अमर दलपुरा, संदीप तिवारी, शैलेंद्र कुमार सिंह, रमाशंकर सिंह, सौरभ मिश्र, लोकनाथ आदि। कवि सत्यनारायण लाल किसान का परिचय देते हुए कहते हैं– 'चिड़ियों के जागने से पहले ही वह खेत पर काम करने बैलों को खिला–खिला कर चला है। गर्म लू चलने पर भी, धरती के सनसन जलने पर भी वह आराम किए बिना खेत पर काम करता है। जाड़े में भी वह खेती की रखवाली करने बिना कांपे, बिना शिकायत किए निकल पड़ता है। विश्राम या आराम लेने वाला किसान को कभी कवि ने देखा ही नहीं। निरंतर गमन शीलता किसान का धर्म है। वह कर्मण्य है, फल पर ध्यान न देते हुए केवल कर्म में मगन रहता है। उसे देखकर आधुनिक तथाकथित युवा को प्रेरणा लेनी चाहिए।

प्राकृतिक आपदाओं का चित्रीकरण करते समय कवि नागार्जुन ने जो चित्र खींचा है.. वास्तविकता को प्रतिबिंबित करता है :–

- कई दिनों तक चूल्हा रोया – चक्की रही उदास।
- कई दिनों तक कानी कुत्तिया सोई उनके पास।
- कई दिनों तक चूहा के भी हालत रहे शिकस्त।
- कई दिनों तक लगी भीत पर छिपकलियों की गश्त।

अकाल पड़ने पर चक्की चूल्हा बेकार बैठते हैं अर्थात् न पीसने का काम है न रोटी सेंकने का। बिना धान के चूहा छिपकली जैसे क्षुद्र प्राणियों को भी कुछ खाने को न मिला। पालतू जानवरों के भी पेट–पीठ एक हो जाते हैं। वैसे ही बाढ़ में किसान का उगा हुआ फसल पानी में डूब जाता है। खेती में रेत जम जाता है। कुछ वैज्ञानिक किटाणु एवं टिड्डियों के आक्रमण को भी प्राकृतिक आपदा मानते हैं। रसायनों के इच्छानुसार विनिमय से भूमि की उर्वर शक्ति घटता जाता है।

केदारनाथ अग्रवाल किसान को रवि के रथ का घोड़ा मानते हैं। वह तूफानों से लड़कर खड़ा हुआ है, जीवन की आग जलाकर हमारे पेट का आग बुझाता है।

मैं गाँव गया था कविता में बीस गुना पैदा करने की कोशिश करने वाले के रूप में शरद बिलौरे किसान का चित्रण करते हैं, समाज के प्रति अपनी जिम्मेदारी पूर्ण करने की इच्छा एवं कर्म के प्रति किसान की निष्ठा को साबित करना कवि का उद्देश्य है जो हर मानव केलिए प्रेरणा दायक है। किसान तो अपनी ही दुनिया में रमता है जहाँ बैल, गाय, हल, नल, मिट्टी, बीज उनके साथी रहते हैं।

नयी खेती कविता में कवि का नायक आम किसानों की तरह गेहूँ, धानादि उगाना नहीं चाहता है बल्कि सुंदर विचार, नए चिंतन, विद्रोह एवं प्रगति को बोना चाहता है।

''मैं किसान हूँ
आसमान में धान बो रहा हूँ।''

फलतः अन्याय, शोषण एवं पीड़ा से मुक्त होकर मानव स्वतंत्रता से विचरित हो सकता है। अपने संघर्षों और भावनाओं को बोकर समाज को सुधारने की चेष्टा करता है। वह आशा करता है कि फसल के रूप में प्राप्त परिवर्तन से सामाजिक अंधकार और शोषण मिट सकते हैं। किसानों को स्वाभिमानी, स्वतंत्र और साधिकार होने की सूचना की है।

21वीं सदी में भी किसान के शोषण का अंत नहीं है। अंजुम शर्मा का कहना है– 'सर पर गेहूँ की बोरी लाद कर गाँव का आदमी शहर में उतरता है और शहर गेहूँ की बोरी उसके सर से उतरता है, फिर उसे चक्की से पिसता है और निगल लेता है या खा जाता है। शहर को गाँव या किसान का कोई कदर नहीं है बस अपने पेट से, स्वार्थ से ही मतलब।

हिन्दवी में प्रकाशित अमर दलपुरा की कविता पटवारी में सरकारी नौकरों के द्वारा किसानों पर किए गए शोषण का मार्मिक चित्रण किया गया है। गाँव की भूमि को पटवारी अपना हस्तगत करने की धमकी देकर गरीब से गरीब किसानों से भी पैसे वसूलता है, अपना जेब भरता है। एक स्वाभिमानी किसान पुश्तैनी लाज रखने, जमीन को बचाने अपना सर्वस्व समर्पित करता है, खुद आँसू पीकर रह जाता है।

'इस बचाने के चक्कर में,
खो दिया हमने सब कुछ
बचने के नाम पर बचे रह गए हैं सिर्फ आँसू
जिनसे भीगती रहती है।

हमारी आत्मा का जमीन :

किसान पिता आक्रोश भरे स्वर में अपने पुत्र को पटवारी बनने की सूचना देता है कि खुद का जमीन बचा सके और दूसरों को भी अपना हक अदा करा सके।

संदीप तिवारी द्वारा लिखित मकड़ जाल कविता में अकाल के घेरने पर किसान परिवार की व्यथा का मर्म स्पर्शी चित्रण मिलता है। नाम तो धानेपुर जहाँ एक भी दाना नहीं था। घर के हर व्यक्ति कृषि के काम में जुट जाते हैं, पसीने से लथपत हो जाते हैं, थक जाते हैं फिर भी कल की आशा में खेती में जाने के लिए हर किसी को चुनने लगते हैं। साल भर खटने पर भी उनकी स्थिति कुछ नहीं बदली। किसान के घर में दाना पानी तक नहीं था, दवा दारू, फीस किताब तो दूर की बात है। किसान के बदन में निरंतर चिंता का ही वास होता है। किसानों की व्यथा को दूर से देखकर कथा–कहानी लिखने वाले नाम कमा रहे हैं लेकिन किसान जैसे के तैसा रह गया। वह तो अब भी चाँदनी की रात को दिन समझ कर अपने हल में जुट गया। 'ऐसी खेती में लगे आग' कहकर वह खुद को ही नहीं बल्कि पूरे कृषि प्रबंधन एवं खेती–बाड़ी व्यवस्था पर आरोप लगाता है। जनता के पेट न भर पाने की विवशता एवं आघात से वह सदा चिंतित था। उसे अपने कर्म से बलपूर्वक वंचित होना पड़ रहा है जो उसके लिए नितांत असहनीय है।

फसल कविता में जो अन्न हम खाते हैं, उसको उगाने किसानों के द्वारा किए गए प्रयासों का शब्दगत शब्द वर्णन किया गया है।

''होरी' ने लँगोटी बाँधकर
पैरों से धरती को गोड़ा है

घुटने–घुटने कीचड़ में धँसकर
दिन–दिन भर झुककर
धान के अंकुर ये रोपे हैं।'

खुद मिट्टी में घोले हुए किसान खेत जोतता है, सींचता है, धान रोपता है, जब बालियान फूट कर धान भर आते हैं तब दुरात्मा ऋणदाता की तरह हवा और बाढ़ दोनों प्रवेश कर उस फसल को उठालेना चाहते हैं। अतः किसानों पर सहानुभूति रखनेवाला कवि उनसे हाथ जोड़कर विनती करता है– हे हवा तुम धीरे–धीरे चलना। बादल को गर्जन–तर्जन करते हुए यहाँ खेती पर व्यर्थ घिरकर खलिहानों पर उपल वृष्टि करने से मना करता है कवि। वरना किसान का किया श्रम मिट्टी में मिल जाएगा। पके हुए धान मेहनत का सगुन है जो किसान को ही मिले कहावत से भी यह बात सिद्ध है 'जो करे सेवा से पावे मेवा'। उन्हें श्रम का फल फसल के रूप में स्वीकारने का हक मिलना ही चाहिए इसलिए कवि बादल राजा एवं हवा राजा से प्रार्थना करते हैं।

आधुनिक युग की यथार्थता का प्रत्यक्ष प्रमाण है अष्टभुजा शुक्ल की हाथा मारना लंबी कविता। इस कविता के माध्यम से कवि ने किसान से संबंधित हर मुद्दे को उठाने का प्रयास किया। किसान हाथा से अचढ़ जमीन पर पानी भरने की चेष्टा करता है। आजकल तो नहरें आकाशगंगा बन गई हैं जो कभी दिखाई नहीं देतीं। पंपिंगसेट हाथी के सूंड हैं जो देखने में पुष्ट हैं पर सदा खाली ही रहती हैं। अब नदियाँ प्लास्टिक की साड़ियाँ बन गई हैं जहाँ रंग बिरंगी थैलियों के सिवा पानी की बूंद कहीं नहीं हैं।

किसान क्रेडिट कार्ड, फसल बीमा योजना, कृषि अनुसंधान केंद्र आदि से असली किसान को कोई लाभ नहीं मिल रहा है। वे केवल गिनती में, आँकड़ों में सूचित चीजें बन गई हैं। कवि सहयोग को सहायता, समझौते को सह–अस्तित्व नहीं स्वीकारता है। जिस गाँव में बिजली नहीं है, ट्रांसफार्मर काम नहीं करता, फोन नेटवर्क नहीं है वहाँ सरकार द्वारा चलाए जानेवाली 'नाम के वास्ते' योजनाओं से आम किसान क्या फायदा होगा? कवि का आरोप है कि प्रकृति भी सिर्फ कैमरा का साथ दे रहा है किसानों के लिए नहीं। झरने हो या तालाब पानी से भरकर किसानों की आवश्यकता पूर्ण नहीं कर रहीं हैं।

किसान यूनियन में हरी टोपियाँ हाल चल कर रही हैं जिनके नीचे किसान विकास को प्रमुखता देनेवाले विचार दब गए। किसान मेले में उन पर हेलीकॉप्टर से शहदवर्षा किया जा रहा है जिसके पीछे सड़े हुए तरकारी छिप रहे हैं। अर्थात ठंड गोदामों की कमी से पीड़ित किसान शहद की छिड़काव से तृप्त कैसे हो सकता है? उसे अपने फसल को सुरक्षित रखने का धुन है, न किसी औपचारिकता का। आत्महत्या करने वाले किसानों के लाशों से निकलती बदबू को उच्च वर्ग के लोग इत्र के आस्वादन में पहचान नहीं पा रहे हैं। सब को मिट्टी से बना अन्न चाहिए, अन्न बनाने वाला किसान नहीं।

कवि का मानना है कि पृथ्वी को भी दिल का दौरा पड़ता है तो वह अपनी उर्वरा शक्ति खो देती है, जो समाज केलिए विशेषकर किसान केलिए हानिकारक है। आनेवाली पीढ़ी की स्थिति की कल्पना में कवि हमेशा दुःखी रहता है। क्योंकि अब हरियाली मात्र कांच के जारों में सजा कर रखी गई है भविष्य के लोग खाएंगे कया, टैबलेट?

खेतों में काम आने वाले औजारों की प्रदर्शनी में लोग हँसते–बोलते जाते हैं, फोटो खिंचवाते हैं, बस यहीं से उनकी जिम्मेदारी खत्म हो जाती है। इतनी भीड़–भाड़ में किसान कहीं अंगूठा छाप बनकर खड़ा है, इस झूठी

या कृत्रिम हँसी–खुशी में कहीं खो गया है। उसको पहचानने वाला कोई नहीं है क्योंकि वह कोई 'फोटोग्राफिक फिगर' थोड़े ही है!

कवि चीत्कार करते हुए कहते हैं कि मजहब को लेकर उतावले होने वाले लोगों को किसान की दुनिया नजर नहीं आती। चाहे राष्ट्र अध्यक्ष हो, चाहे पर्यावरण मंत्री किसान को आश्वासन जमाते हैं, सिद्धांतों का ब्यौरा सुनाते हैं लेकिन हितकारी कार्य करने आगे नहीं आते। किसान प्राणों की अगरबत्ती जलाकर भगवान की पूजा करता है, पर दैव भी इससे दूर ही रहता है। देश के नसीब में कृषि उद्धार का संयोग दूर–दूर तक नहीं दिखने के कारण भविष्यवाणियों के बाजार में भी किसान का उद्धार सूचित नहीं है।

अपने व्यंग्य भरी लंबी कविता में कवि हाथा लेकर निकल पड़ा है–– प्रकृति को, मनुष्यों को, अधिकारियों को, वैज्ञानिकों को सुधारने, ठीक करने कि –– सब मिलकर किसान की दशा सुधार सके। अन्य देश हमें तोड़–मरोड़ कर सहानुभूति जताना चाहते हैं, उनके बेकाम, सार हीन धान–फसल को हम पर लाद कर लाभ उठाना चाहते हैं। इस प्रकार के विदेशी आक्रमणों से हमें सदा चौकन्ना रहना होगा। भारत कहीं फिर से किसी के गुलाम न बने। इस कूट नीति से बचने के लिए हमें स्वयं समृद्ध होना चाहिए, जिसके लिए आवश्यक बीज, खाद, सिंचाई, स्वच्छ जल और अप्रदूषित मिट्टी की आवश्यकता है जो किसान के रक्त एवं स्वेद से सींचा जाता है। तभी किसानों का विकास संभव है अन्य शब्दों में भारत का।

इस प्रकार इक्कीसवीं सदी के अनेक कवियों ने किसान की दुर्दशा, पीड़ा एवं शोषण का वास्तविक चित्रण समाज के सामने रखने का प्रयास किया। किसानों की कर्मण्यता को पहचानना, उसकी आवश्यकताओं के प्रति ध्यान देना न केवल सरकार की बल्कि समाज की भी जिम्मेदारी है। अन्न खाने वाला हर व्यक्ति अन्नदाता के ऋणी है। कलापक्ष, भाव पक्ष, शब्द व्यंजना, छंद विधान, रस योजना आदि से धनी हैं ये कविताएं। इन कविताओं के विश्लेषण से प्राप्त मर्म को दृष्टि में रखकर एक ही याचना कर सकते हैं– अन्नदाता सुखी भवः।

संदर्भ :

1. किसान – सत्यनारायण लाल– हिन्दी सारंगी : एनसीईआरटी – 2022
2. अकाल और उसके बाद– नागार्जुन रचना संचयन – साहित्य अकादमी– 2017
3. जो जीवन की धूल चाट कर बाद हुआ है– केदारनाथ अग्रवाल–शब्द व्यंजन सं– बृजेश नीरज– 2014
4. मैं गाँव गया था – शरद बिलौरे – परिमल प्रकाशन – 1982
5. नयी खेती – रामशंकर यादव विद्रोही – सांस प्रकाशन – 2011
6. शहर – अंजुम शर्मा – सदानीरा वेब पत्रिका से।
7. पटवारी – अमर दलपुरा – हिन्दवी में प्रकाशित।
8. मकड़ जाल – संदीप तिवारी – हिन्दवी में प्रकाशित।
9. फसल – आ. रा. देशपांडे अनिल– प्रतिनिधि संकलन कविता– भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन –1965
10. हाथा मारना – अष्टभुजा शुक्ल – हिन्दवी में प्रकाशित।

arunakumari.tata@gmail.com, Mobile 9440973384

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Sept. 2025 Page No. : 290-293

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

हसीनाबाद उपन्यास में नारी विमर्श

डॉ. अर्चना शर्मा

रिसर्च ऐसोसिएट, हिन्दी एवं आधुनिक भारतीय भाषाएं, वनस्थली विद्यापीठ (राज.)

नारी विमर्श एक विचारधारा है, जो महिलाओं के अधिकारों, समानता एवं सशक्तिकरण पर केन्द्रित है। यह महिलाओं के खिलाफ होने वाले सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक एवं सांस्कृतिक भेदभाव को चुनौती देता है और महिलाओं के लिए समान अवसर एवं न्याय की वकालत करता है। व्यापक रूप में हम समझे तो नारी विमर्श, महिलाओं से संबंधित मुद्दों पर विचार–विमर्श और उनके समाधान खोजने की एक प्रक्रिया है।

हिन्दी साहित्य में स्त्री विमर्श की शुरूआत छायावाद काल से मानी जाती है। महादेवी वर्मा की कविताओं में वेदना का विभिन्न रूप देखने को मिलता है। उनकी शृंखला की कड़ियाँ स्त्री सशक्तिकरण का सुन्दर उदारण है। ऐसा साहित्य है जिसमें स्त्री जीवन की अनेक समस्याओं और समाधान का चित्रण हो, स्त्री विमर्श कहलाता है।

समाज के दो पहलू स्त्री–पुरूष एक दूसरे के पूरक है। किसी एक के अभाव में दूसरे का अस्तित्व नहीं है। उसके बाद भी स्त्री–पुरूष समाज में समानता का अभाव है। समाज की पक्षपातपूर्ण दृष्टि ही नारी आंदोलनों का कारक है, जो आज ज्वलतं मुद्दा नारी विमर्श के रूप में दृष्टिगोचर है।

आदिकाल से ही नारियों की दशा दयनीय एवं सोचनीय थी। जहां एक ओर वैदिक काल में देश ''यत्र नार्यस्तु पूज्यतें, तत्र रमन्ते देवता'' कहा जाता था। आज वहीं अनेक रूपों में नारी का अनेक युगों से शोषण होता आ रहा है।

स्त्री की दशा में सुधार के लिए अनेक सामाजिक सुधार आंदोलन हुये। सामाजिक सुधार आंदोलन का नेतृत्व राजाराम मोहन राय, ईश्वर चंद विद्यासागर, स्वामी विवेकानन्द देश के विभिन्न भागों में अन्यान्य पुरूषों के हाथ में रहा। इन महान समाज सुधारकों ने महिलाओं की सामाजिक असर्मथताओं तथा उनके जीवन की कठिन दशाओं पर ध्यान केन्द्रित करने में निर्णायक भूमिका अदा की।

महान समाज सुधारकों के विचारों व कार्यो के परिणामस्वरूप ही स्त्री जीवन में परिवर्तन के रूप में सकारात्मक परिणाम सामने आए। इन्हीं परिणामों के फलस्वरूप 21वीं सदी में स्त्री की स्थिति में परिर्वतन आया। फलस्वरूप स्त्रियों के स्वावलम्बन की दिशा में तीव्र प्रयास सामने आये। भूमण्डलीकरण के इस युग में जीवन परिदृश्य तेजी से बदल रहा है। नारी शिक्षित हुई। उसने अपने कामकाज को अर्थ उपलब्धियों से जोड़ उसका सर्व क्षेत्रीय मूल्य निर्धारित किया है। नवीन परिस्थितियों से नारी का व्यक्तित्व प्रमाणित हुआ है, जिसमें उसने प्राचीन मूल्यों एवं मान्यताओं का विरोध किया है। नारी के रूपों में उसके तनाव, द्वंद्व, कुंठा विद्रोह, स्वछन्दता,

स्व की पहचान का कारण सामाजिक न होकर वैयक्तिक है।[1]

समकालीन रचनाकारों ने नारी जीवन के विविध पहलुओं और उनकी समस्याओं को बहुत संवेदनशील और प्रमाणिकता के साथ चित्रित किया है। गीताश्री ने उपन्यास 'हसीनाबाद' में स्त्री जीवन की समस्याएं और स्त्री के सपनों के प्रति विचार को एक नये ढंग से प्रस्तुत किये है। गीताश्री का यह उपन्यास एक गांव की स्त्री के सतह से ऊपर उठने का स्वप्न है। एक स्त्री के द्वारा देखे गये स्वप्न को आदर्श और यथार्थ के सन्तुलन के साथ मंजिल तक पहुंचाने का विचार 'हसीनाबाद' को एक अलग ही रूप में प्रस्तुत करता है। अनेक संघर्षो से जुझता स्त्री का जीवन कैसे सपनों को पूरा करने के लिए साहस का परिचय देता है; इसका उदारण उपन्यास में सुन्दरी, गोलमी के चरित्रों से चरितार्थ होता है। 'हसीनाबाद' एक गुमनाम बस्ती जहां ठाकुरों की रक्षिताओं से बस्ती आबाद थी, किन्तु उन रक्षिताओं का और उनकी संतानों का भविष्य विवशता से भरे जीवन से आगे कुछ नहीं था। जाने कितनी ही स्त्रियों का जीवन इतिहास के हर एक युग में हर एक सामाजिक व्यवस्थाओं में शोषित होता बीत गया, चाहे सांमतवाद, राजतंत्र, लोकतंत्र। नारी के घुटते हुए मन को स्वतंत्र करते हुऐ गीता श्री उपन्यास में स्त्री के साहस व दृढता के गुणों को पात्रों में प्रस्तुत करती है।

ठाकुर सजावल सिंह की रक्षिता सुंदरी अपनी बेटी के स्वर्णिम भविष्य के लिए अपने ऐशो आराम की कुर्बानी देती हुई भजन मंडली के साथ आए सगुन महतो के साथ जाने का निर्णय करती है। ''उसकी आत्मा ने दहे के अंधेरे में ऐलान कर दिया था। अपने हाथों में लिखेगी आगे की कहानी'' वह निर्णय की रात थी।[2]

सुन्दरी ने साहस दृढ़ता से परिपूर्ण गोलमी भी अपने लिए अपने जीवन का अलग ही मार्ग चुनती है। गोलमी की नैसर्गिकता ही उसका जीवन बनता है। मनुष्य की स्वभाविकता ही उसका सबसे बड़ा सुख है; एक नारी जो कि युगों से युगों तक अपनी स्वभाविकता में अपना जीवन नहीं जी पाती है। गोलमी के रूप में नारी का एक अलग ही रूप दृष्टिगोचर है। गोलमी का तकिया कलाम ''गोलमी सपने नहीं देखती, सपने बुनती है।''[3]

अपने इन्हीं सपनों के साथ गोलमी जीवन में आगे बढती है। गोलमी का उद्देश्य केवल मां से छुपकर स्कूल के कार्यक्रमों में नृत्य करना नहीं है अपितु वह लोकगीतों को अपनी आन–बान के साथ स्थापित करना चाहती है। समाज उसे नाचने वाली ही क्यों ना कहे, वह अपने उद्देश्य के प्रति समर्पित है। एक स्त्री की नैसर्गिकता व दृढ़ता समाज के प्रबुद्व वर्ग को नतमस्तक होने को मजबूत करता है। ''अपने लक्ष्य से प्रेम और अपने कार्य के प्रति जुनून से नेताओं की फौज भी सोशल इंजीनियरिंग के जमाने में गोलमी के सामने नतमस्तक हो गये।''[4]

महादेवी वर्मा संर्कीणता से ऊपर विस्तृत स्वाधीनता को समाज के हर एक अंग जिसमें स्त्री भी शामिल है, के लिए अनिवार्य मानती है। अपने गुरूतम उत्तरदायित्व के अनुरूप मानसिक तथा शारीरिक विकास के लिए विस्तृत स्वाधीनता चाहिए। संर्कीणता में जीवन का सर्वतोन्मुखी विकास सम्भव ही नहीं है।''[5]

एक स्त्री के विचार समाज के उत्थान और पतन दोनों के कारण बनते है। सुंदरी द्वारा दिखाए गये साहस के द्वारा वह अपनी बेटी को एक नया जीवन दे पाती है किन्तु अपने अतीत को लेकर हमेशा भयभीत रहती है। उपन्यास में सुंदरी के भय का जिस दिन गोलमी के सामने खुलासा होता है तो गोलमी के अपनी मां के लिए व्यक्त विचार ''तुम मेरे लिए मां हो, औरत हो.....दुख बस इस बात का है तुम अपराध बोध से जीवन क्यों जीती रही हो।''[6]

गोलमी के भावों की दृढता स्त्री का एक नैसर्गिक, साहसी रूप सामने लाता है। युगों से पुरूष समाज द्वारा स्त्री पर आरोप लगाये जाते रहे। उपन्यास में अपनी मां के ऊपर लगाए गये आरोपों का खंडन करते हुए गोलमी ठाकुर सजावल सिंह को उत्तर देती हुई कहती है ''आपको मेरी मां से माफी मांगनी चाहिए। स्त्री को अपने मन का साथी चुनने का हक है।'' गोलमी के भविष्य के प्रगतिशील विचार दिखाई देते है। ''हालात नहीं बदलेंगे सोच नहीं बदलेंगे तो हर एक स्त्री एक दिन बेवफा नजर आयेगी।''[7]

गोलमी के हृदय के उद्‌गार नारी सशक्तिकरण के प्रमाण है। अपने द्वंद्व से बाहर निकलकर अपने वास्तविक स्वरूप को पहचानता हुआ मानव वास्तविक अर्थ में सार्मथ्यवान होता है। स्व की पहचान ही जीवन का अर्थ है और उस स्व से जीवन की संतुष्टि प्राप्त करते हुए समाज का हित ही जीवन की सार्थकता है। राजनीति में जीवन का अर्थ, संतुष्टि को ना पाकर गोलमी प्रधानमंत्री के समक्ष पद से इस्तीफा देती है और साहस के साथ अपने विचारों को रखती हुई राजनीति के खोखले जीवन पर व्यंग्य करती है, ''राजनीति में दया, ममता नहीं है। भावुकता कहां होगी? प्रधानमंत्री के लोककला के प्रति उपेक्षणीय भावों को जान अपने जीवन प्रेम लोककला का पक्ष रखती है। ''लोक मर नहीं सकता, भविष्य में यहीं कला आपकी पहचान बचायेगी, याद रखिएगा कि किसी नचनियां ने ऐसा कहा था।[8]

''सोन चिरइयां और आम्रपाली बैण्ड'' निर्माण के द्वारा सुन्दरी देवी गोलमी के जीवन के उद्‌देश्य को पूरा करती है और नारी समाज के लिए जीवन का नया उद्‌देश्य रखती है।'' यह बैण्ड हर घर से औरतों को बाहर निकालेगा, साहस देगा, घर–समाज से कुछ अलग करने की प्रेरणा देगा, पैसा कमाने का साधन देगा।''[9]

महादेवी जी पंक्तियॉ ''अवसर मिलने पर गृह के होने की दुर्बल बन्दिनी स्वछन्द वातावरण में वातावरण में बल प्राप्त पुरूष से शक्ति में कम नहीं है। अपने कर्तव्य की गुरूता भली–भांति हृदयगम कर यदि हम अपना लक्ष्य स्थिर कर सके तो हमारी लौह–शृंखलाएं हमारी गरिमा से गलकर मोम बन सकती है। इसमें सन्देह नहीं।''[10]

शृंखला की कड़िया की पंक्तियां गोलमी व सुन्दरी के चरित्र को स्पष्ट करती है। उपन्यास में चर्चित पात्र वैशाली की आम्रपाली जिसको गीताश्री ने निर्भय पात्र के रूप में वर्णित किया है, को गोलमी अपने जीवन का प्रेरणादायी मानती है। आम्रपाली के मगध नरेश के प्रलोभन भरे प्रस्ताव को निर्भयता के साथ ठुकरा दिया था। आम्रपाली की नैसर्गिकता, अपनी प्रजा के प्रति प्रेम, लक्ष्य की स्पष्टता ही उसको निर्भय बनाते है, गोलमी भी आम्रपाली की निर्भयता को अपनाते हुए अपने स्व की नैसर्गिकता को पहचानते हुए अपना जीवन मार्ग स्वंय बनाती है। 'सौन चिरइयां आम्रपाली बैण्ड' के निर्माण द्वारा गोलमी और सुंदरी अपने अस्तित्व को वापस जन्म देती है।

कुल मिलाकर 'हसीनाबाद' में स्त्री के संघर्षो के साथ उसके सपनों की उड़ान, अदम्य इच्छाशक्ति, कला के प्रति समर्पण का मान है। गोलमी का वाक्य ''गोलमी सपने देखती नही, बुनती है।'' नारी के प्रति लेखिका का नारी सशक्तिकरण दृष्टिकोण का परिचायक है।

सन्दर्भ सूची :–

1. डॉ. शहेनाज जाफर बासमहे : कृष्णा सोबती का कथा साहित्य एवं नारी समस्याएं, अभय प्रकाशन, संस्करण 2018, दिल्ली।

2. गीता श्री : हसीनाबाद, वाणी प्रकाशन, संस्करण 2017, दिल्ली।
3. गीता श्री : हसीनाबाद, वाणी प्रकाशन, संस्करण 2017, दिल्ली।
4. गीता श्री : हसीनाबाद, वाणी प्रकाशन, संस्करण 2017, दिल्ली।
5. महादेवी वर्मा : शृंखला की कड़ियाँ, लोकभारती प्रकाशन, संस्करण 2008, प्रयागराज।
6. गीता श्री : हसीनाबाद, वाणी प्रकाशन, संस्करण 2017, दिल्ली।
7. गीता श्री : हसीनाबाद, वाणी प्रकाशन, संस्करण 2017, दिल्ली।
8. गीता श्री : हसीनाबाद, वाणी प्रकाशन, संस्करण 2017, दिल्ली।
9. गीता श्री : हसीनाबाद, वाणी प्रकाशन, संस्करण 2017, दिल्ली।
10. महादेवी वर्मा : शृंखला की कड़ियाँ, लोकभारती प्रकाशन, संस्करण 2008, प्रयागराज।

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Sept. 2025 Page No. : 294-300

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

भारतीय महिलाओं को सशक्त बनाने में कानूनी अधिकारों की भूमिका

विवेचना पाण्डेय, शोधार्थी
डॉ. सरिता भवानी मालवीय, शोध निर्देशक, असिस्टेंट प्रोफेसर
आर. के. डी. एफ. यूनिवर्सिटी, भोपाल (म.प्र.)

भूमिका :–

नारी (स्त्री) की व्युत्पत्ति मनुस्मृति के अनुसार ब्रहमा जी ने सृष्टि के विस्तार के लिये अपने शरीर के दो भाग किये जिनमें बायें भाग में स्त्री और दाहिने भाग से पुरूष इन्ही का जोड़ा स्वायम्भुव मनु–शतरूपा के रूप में प्रकट होकर स्त्री–पुरूष के संभोग में सृष्टि का विस्तार किया। इस दृष्टि से स्त्री–पुरूष में समता एवं सामंजस्य का भी स्थापित हुआ और स्त्री को समाज में आदर एवं सम्मान का भाव प्राप्त हुआ। मनीषियों ने इसी भाव को **''यत्र नार्यस्तु पुज्यते रमन्ते तत्र देवता''** के रूप में स्थापित किया हैं। समय–समय पर बदलते परिवेश में स्त्री के संरक्षण और उसकी सामाजिक–मनोवैज्ञानिक स्थिति को सृदृढ़ करने के लिये माता–पिता समाज परिवार के संरक्षण में उसकी समुचित शिक्षा–विवाह एवं धार्मिक रीति–रिवाजों तथा उसके कर्तव्यों के प्रति आध्यात्मिक एवं नैतिक कर्तव्यों के पालन के साथ समाज को उन्नतिशील बनाने के लिये नारी की अद्वितीय भुमिका रही। वर्तमान कानून में नारी को पुरूषों के समान अधिकार प्राप्त हैं।

विवाह :

वस्तुतः वैदिक रीति से सम्पादित हिन्दु विवाह पति–पत्नी को एक होने के रूप में मान्यता प्रदान करता हैं पत्नी को न केवल धर्मपत्नी माना जाता हैं। अपितु उसे अर्धांगनी के रूप में भी जाना जाता हैं। विवाह को धार्मिक कर्तव्य के संदर्भ से जोड़ा गया हैं। लड़की का विवाह करना माता–पिता अथवा संरक्षक का नैतिक कर्तव्य माना गया हैं।

स्त्रीधन :

पुत्री ने विवाह के समय उसके पिता से जो संपत्ति प्राप्त की हो, वह संपत्ति उसके स्त्रीधन के रूप में समझी जायेगी। माता–पिता से प्राप्त धन को व्यय न करने का महिला को असीमित अधिकार हैं। महिला के पास स्त्रीधन के रूप में जो संपत्ति होती हैं। उसकी वह पूर्ण स्वामिनी होती हैं।

भरण पोषण –

यदि विवाह विधि मान्य हैं तो स्त्री अपने पति से भरण पोषण प्राप्त करनें की अधिकारिणी हैं। भरण पोषण

की राशि का अवधारणा संपदा के मूल्य को दृष्टिगत रखते हुये किया जाना चाहिये। भरण पोषण की राशि की अवधारणा करने में परिवार के ऋण को विचार में रखना चाहिये इसके अलावा परिवार की स्थिति भरण पोषण करने वाले परिवार की आवश्यकतायें, संबंधित परिस्थितियों को, जीवन स्तर, आदतें, पक्षकारों की जीवन वर्ग को सम्यक महत्व देना चाहिये।

हिन्दू विवाह अधिनियम 1995 के संक्षिप्त प्रावधान :

हिन्दु विवाह के लिये शर्ते –

1. विवाह के समय दोनों पक्षकारों में से न तो वर की कोई जीवित पत्नी हो और न वधू का कोई जीवित पति हो।
2. विवाह के समय दोनों पक्षकारों में से कोई पक्षकार :
   - क) चित्तविकृति के परिणाम स्वरूप विधिमान्य सम्मति देने में असमर्थ न हो या,
   - ख) विधिमान्य सम्मति देने में समर्थ होने पर भी इस प्रकार के या इस हद तक मानसिक विकार से पीड़ित न रहा हो कि वह विवाह या संन्तानोत्पत्ति के लिए आयोग्य हो या,
   - ग) उसे उन्मत्ता या बार–बार मिर्गी का दौरा न पड़ता हो।
3. विवाह के समय वर में इक्कीस वर्ष की और वधू की अठारह वर्ष की आयु पूरी कर ली हो।
4. जब तक कि दोनों पक्षकारो में से हर एक को शासित अनुसात न हो, वे एक दूसरे से सपिण्ड न हों।

उपरोक्त अवधारणा में हिन्दू विवाह अधिनियम की धारा 5 के प्रावधान आकर्षित होते हें। यदि धारा 5 की शर्तो का उल्लंघन होता है तब ऐसी स्थिति में निष्पादित विवाह शून्य व शून्य करणीय माना जावेगा और शर्तो का उल्लंघन करने वाले व्यक्ति के विरूद्ध अपराधिक प्रकरण पंजीबद्ध किये जाने योग्य होगा। दाम्पत्य अधिकारों का प्रव्यास्थापन और न्यायिक पृथक्कर (Restitution of conjugal Rights and judicial sepration) जबकि पति या पत्नी ने अपने को दूसरे के साहचर्य से किसी युक्तियुक्त कारण के बिना पृथक कर लिया हो तब व्यक्ति पक्षकार दाम्पत्य अधिकारों के प्रत्यास्थापन के लिये जिला न्यायालय में अर्जी द्वारा आवेदक कर सकेगा और जिला न्यायालय ऐसी अर्जी में किये गये कथनो की सत्यता का परीक्षण कर दाम्पत्य अधिकारों का प्रत्यास्थापना डिक्री पारित कर सकेगा।

हिन्दू विवाह अधिनियम की धारा 9 दाम्पत्य अधिकारों का प्रत्यास्थापन और न्यायिक प्रथक्करण के सम्बन्ध में प्रावधान करती हैं कि कतिपय कारणों से पति–पत्नी सामंजस्यपूर्ण जीवन से पृथक हो गये हैं और पुनः दोनों का वैवाहिक सामंज्स्यपूर्ण जीवन में वापिस होने की संभावनाये बनती हैं तो दोनों में से किसी पक्षकार के आवेदन करने पर जिला न्यायालय ऐसी डिक्री पारित करेगा जिसके पति–पत्नी पुनः दाम्पत्य जीवन की वापसी कर सके।

पति–पत्नी में से किसी के द्वारा भी यदि क्रूरता किये जाने के दुर्व्यवहार को पूर्णतया प्रमाणित किया गया हो तो ऐसी दशा में धारा 9 हिन्दू विवाह अधिनियम के अन्तर्गत बिक्री पारित नहीं की जावेगी और दोनों में से किसी ने यदि दूसरा विवाह कर लिया हैं और 10 वर्षो से अधिक समय से पृथक रहने के बाद यदि आवेदन पत्र प्रस्तुत किया जाता हैं तब ऐसी स्थिति में भी आवेदन नामंजूर किया जा सकता हैं। साथ ही साथ ही धारा 9 एवं धारा 13 का आशुतोष साथ–साथ प्रदान नहीं किया जा सकता हैं। साथ ही धारा 9 के विचारण में यदि पति या पत्नी में से किसी का भी आचरण ठीक नहीं पाया गया और आचरण ठीक नहीं पाये जाने का तथ्य प्रमाणित

किया गया हो तब भी न्यायिक रूप से दाम्पत्य अधिकार के पुनस्थापित की डिक्री नहीं पारित की जावेगी। भारतीय संविधान को अनुच्छेद 21 के अधीन अधिनियम की धारा 9 में वर्णित दाम्पत्य अधिकारों के प्रत्यास्थापन का असंतोष स्वीकृत किये जाने का प्रावधान हैं।

न्यायिक पृथक्करण –

हिन्दू विवाह अधिनियम की धारा 10 न्यायिक पृथक्करण (Judicial Separation) का प्रावधान करती हैं। विवाह का कोई पक्षकार चाहे वह विवाह इस अधिनियमों प्रारंभ के पूर्व या पश्चात् अनुष्ठापित हुआ हो किसी भी उन आधारों पर जब विवाह–विच्छेद की अर्जी पेश की जा सकती थी न्यायिक पृथक्करण की डिक्री के लिये प्रार्थना करते हुये अर्जी पेश कर सकेगा और युक्तियुक्त कारणों से समाधान हो जाने पर न्यायालय न्यायिक पृथक्करण की डिक्री पारित कर सकेगा किन्तु दोनो पक्षकारों में से किसी के भी अर्जी द्वारा आवेदन करने पर तथा ऐसी अर्जी में किये गये कथनों की सत्यता के बारे में अपना समाधान हो जाने पर न्यायालय यदि व ऐसा करना न्यायसंगत और युक्तियुक्त समझे तो डिक्री को विखंडित कर सकेगा। न्यायिक पृथक्करण के लिये यदि पति, पत्नी में से कोई भी पक्षकार क्रूरता किये जाने के तथ्य को उसमें हिंसा भी यदि गंभीर प्रकृति के तथ्य को प्रमाणित किया जाता हैं। तब न्यायिक पृथक्करण की डिक्री प्रदान की जायेगी।

द्वितीय विवाह किये जाने एवं जारता के एक मां कृत्य के आधार पर न्यायिक पृथक्करण की डिक्री पारित की जा सकेगी।

कदाचित् विवाह शून्य व शून्य करणीय हो तो ऐसी दशा में किया गया विवाह विधि की दृष्टि में अस्तित्व में होने का प्रभाव नहीं रखता और व्यक्ति व्यक्ति पक्ष धारा 11 के अधीन घोषणा प्राप्त करने का अधिकार होगा। शून्य करणीय विवाह – (Voidable Marriages) कोई भी विवाह इस अधिनियम के प्रारंभ के चाहे पूर्व या पश्चात् अनुष्ठापति हुआ हो निम्नलिखित आधारों पर भी शून्य करणीय (Voidable) होगा और अकृतता की डिक्री द्वारा हासिल किया जा सकेगा :–

1. प्रत्यर्थो की शारीरिक अक्षमता के कारण विवाहोत्तर सम्बन्ध स्थापित न हो सकें।
2. कि विवाह धारा 5 के खण्ड में विनिर्दिष्टि शर्तो का उल्लंघन करता हो।
3. कि अर्जोदार की सम्मति, ऐसे संरक्षक की सम्मति बल प्रयोग द्वारा या कर्मकाण्ड की पद्धति का सम्यम अनुसरण न किया गया हो। इनमें से किन्ही भी विधिक प्रावधानों का यदि अनुसरण न किया गया हो तो ऐसा विवाह शून्यकरणीय घोषित होगा।

तलाक (Divorce) –

पति या पत्नी में किसी भी यदि दूसरे पक्ष पर क्रूरता, जारता या मानसिक क्रूरता या चिकित्सीय परीक्षण के लिये अनुचित रूप से बाहय किया जाना, अस्तित्व का दोषारोपण या विवाह को अकृत घोषित कराये जाने का अनुचित दबाव जैसे अनुचित कार्य किये जा रहे हो तो कोई भी पक्षकार हिन्दू विवाह अधिनियम की धारा 13 के अन्तर्गत विवाह विच्छेद की डिक्री प्राप्त करने के लिये जिला न्यायालय या परिवार न्यायालय में आवेदन कर सकेगा ओर जिला न्यायालय प्रकरण का सम्यक विचारण करने के बाद आवेदन में वर्णित तथ्य और साक्ष्य तथा परिस्थिति अन्य विवेक का प्रयोग करते हुये ऐसा निर्गण्य पारित करेगा जो विधि सम्मत होगा। भारतीय महिलाओं को उनके कार्यस्थल पर भी कई प्रकार से विधिक एवं संवैधानिक अधिकार प्रदान किए गए हैं जिससे उन स्त्रियों

को जो कार्यस्थल पर दिन/रात अकेले काम करती हैं और अपना और अपने परिवार का भरण–पोषण का कार्य करती हैं। उनको उसमें किसी भी प्रकार की समस्याओं का सामना न करना पड़े और वह निडर और निर्भीक होकर कार्य कर सकें। भारत देश की स्त्रियों को कार्यस्थल पर चाहे वह शासकीय या गैर–शासकीय कार्य स्थल हो उनकी सुरक्षा के लिए विभिन्न प्रकार के कानूनी नियम बनाये गये हैं। इनमें कार्यस्थल पर यौन उत्पीडन से सुरक्षा, समान कार्य के लिए समान वेतन, और मातृत्व अवकाश जैसे अधिकार शामिल हैं।

विविक अधिकारों मे महिलाओं के अधिकार :–

कार्य–स्थल पर यौन उत्पीड़न से संरक्षण (रोकथाम, निषेध और निवारण) अधिनियम, 2013 बनाया गया हैं जिससे किसी भी जाति, धर्म की स्त्री को कार्यस्थल पर यौन उत्पीड़न से सुरक्षा प्रदान की जा सके। कार्य–स्थल पर महिलाओ को समान परिश्रामिक अधिनियम 1976 बनाया गया, जिससे किसी भी कामकाजी स्त्री को भी पुरूषों के समान वेतन पाने का अधिकार प्रदान करता हैं। भारतीय स्त्री को जो विवाहित हैं और जो कार्य स्थल पर कार्य करते हुए गर्भाधारण करती हैं। उनके जन्मे शिशु और माँ की संरक्षण के लिए ''प्रसूति प्रसुविधा अधिनियम–1961 बनाया गया हैं जिससे कार्यस्थल पर काम करने वाली महिलाओं को मातृत्व अवकाश और प्रसुति के दौरान आवश्यक चिकित्सा सुविधा प्राप्त करने का अधिकार प्रदान करता हैं।

भारतीय काननू देश की महिलाओं पर होने वाले विभिन्न प्राकर की घरेलू हिंसा से संरक्षण प्रदान करने के लिए ''घरेलू हिंसा से महिलाओं का संरक्षण अधिनियम, 2005 बनया गया जो कि महिलाओं को घरेलू हिंसा से सुरक्षा प्रदान करता हैं।

भारतीय महिलाओं को वर्तमान समय में पिता की सम्पत्ति में भी उतना ही अधिकार प्रदान किया जाने लगा हैं। जितना पुत्र को प्रदान किया जाता हैं उसके लिए महिलाओं को पिता की सम्पत्ति पर उत्तराधिकार के समान अधिकार प्राप्त किया गया हैं। महिलाओं को कानूनी सेवा प्राधिकरण के तहत महिलाओं को मुफ्त कानूनी सहायता प्राप्त करने का भी अधिकार प्रदान किया गया हैं। इसी प्रकार से कई ऐसे अधिकार महिलाओं की सुरक्षा के लिए बनाए गए हैं। जैसे भेदभाव से मुक्ति का अधिकार भारतीय महिला को किसी भी प्रकार से लिंग, जाति, धर्म, या अन्य किसी भी आधार पर होने वाले भेदभाव से संरक्षण का अधिकार प्रदान किया गया हैं।

स्वतंत्र रूप से जीवन जीने का अधिकार :–

महिलाओं को मान सम्मान गरिमा और प्रतिष्ठा से पूर्णरूपेण स्वतंत्रता के साथ जीवन जीने का अधिकार प्रदान करती हैं।

शिक्षा और स्वास्थ्य का अधिकार :–

महिलाओं को भारत में ही नहीं बल्कि भारत से बाहर जा कर शिक्षित होने और अपना इलाज करवाने का पूर्ण रूपेण स्वतंत्रता पूर्वक अधिकार और संरक्षण प्रदान किया गया हैं। महिलाओं को यह अधिकार दिया गया हैं कि वह अपने स्वास्थ्य और शिक्षा का विशेष ध्यान रखे, जिससे उन्हें समाज में जीवन निर्वाह करने में किसी भी प्रकार से कोई समस्या का सामना न करना पड़े।

महिलाओं के खिलाफ होने वाले अपराध बढ़ते जा रहे हैं। भारत में उसके रोकथाम के लिए कई प्रकार के विधिक और संवैधानिक अधिकार भी महिलाओं के संरक्षण के लिए बनाए गए हैं। यहाँ पर महिलाओं को सशक्त बनाने की शिक्षित बनाने की अत्यधिक आवश्यकता हैं जिससे महिलाएँ एवं संरक्षण के लिए हर उचित कदम उठ

सके जो उनके हित के लिए आवश्यक हो–नारी के सशक्तिकरण से तात्पर्य किसी भी महिला की उस योग्यता से होता हैं। जिसमें वे अपने जीवन से जुड़े हुए सभी निर्णय वह स्वयं ले सके, लेकिन विडम्बना यह हैं कि नारी में इतनी शक्ति होने के बावजूद भी उसके सशक्तिकरण की अत्यंत आवश्यकता महसूस हो रही हैं। महिलाओं के आर्थिक सशक्तिरण का अर्थ उनके आर्थिक फैसले, आय संम्पत्ति और दूसरे वस्तुओ की उपलब्धता से होता हैं। इन सभी सुविधाओं को पाकर के ही वह अपने सामाजिक स्तर को ऊँचा कर सकती हैं। राष्ट्र के विकास में महिलाओं का महत्व और अधिकार के बारे में समाज को जागरूक बनाने के लिए मात्र दिवस अन्तराष्ट्रीय महिला दिवस आदि जैसे कई सारे कार्यक्रम को कई क्षेत्र में विकास की आवश्यकता हैं।

भारत में महिलाओं को सशक्त बनाने के लिए सबसे पहले समाज में उनके अधिकारों और मूल्यों को समाप्त करने वाली उन सभी राक्षसी सोच को मारना अत्यन्त आवश्यक हैं, जैसे–दहेज प्रथा, अशिक्षा, यौन हिंसा, असमानता भ्रूण हत्या, महिलाओं के प्रति घरेलू हिंसा, वैश्यावृत्ति, मानव तस्करी और ऐसे ही विभिन प्रकार के कई अपराध, अपने भारत देश में उच्च स्तर पर लैंगिक असमानताएँ रही हैं। और यह असमानताएँ न सिर्फ अशिक्षित वर्ग बल्कि शिक्षित समाज भी करता आ रहा हैं। जहाँ महिलाएँ अपने परिवार के साथ ही बाहरी समाज के भी बुरे बर्ताव से पीड़ित हैं। भारत में अशिक्षित वर्ग की संस्था में महिलाएं सर्वाधिक हैं। नारी सशक्तिकरण का असली अर्थ तब समझ में आएगा जब भारत में उन्हे अच्छी शिक्षा, परवरिश और संस्कार प्रदान किए जाएगे। और इस काबिल बनाया जाएगा कि वह हर क्षेत्र में स्वतंत्र होकर फैसले ले सकें।

भारत में महिलाओं के सशक्त होने के विभिन्न कारण और आवश्यकता हैं। प्राचीन काल के अपेक्षा वर्तमान समय में अपराधों की संख्या में काफी इजाफा हुआ हैं जिससे मुक्ति का सिर्फ एक ही रास्ता हैं और वह हैं नारी का स्वयं में सशक्त होना और यह सशक्तिकरण ही संरक्षण प्रदान करेगी, आधुनिक युग में कई महिलाएँ कई सारे महत्वपूर्ण राजनैतिक तथा प्रशासनिक पदों पर पदस्थ हैं, फिर भी सामान्य ग्रामीण महिलाएँ आज भी अपने घरों में रहने के लिए बाध्य हैं और उन्हे सामान्य स्वास्थ्य सुविधा और शिक्षा जैसी सुविधाएँ भी उपलब्ध नहीं रहती हैं। शिक्षा के मामले में भी भारत में महिलाएँ पुरूषों की अपेक्षा काफी पीछे हैं। भारत में पुरूषों की शिक्षा दर 81.3 प्रतिशत हैं, जबकि महिलाओं की शिक्षा दर मात्र 60.60 प्रतिशत ही हैं। भारत के शहरी क्षेत्रों की महिलाएँ ग्रामीण क्षेत्रों की महिलाओं की अपेक्षा अधिक रोजगारशील हैं। आकड़ों के अनुसार भारत के शहरों में साफ्टवेयर इंडस्ट्री में लगभग 90 प्रतिशत महिलाएँ मुख्यता कृषि और इससे जुड़े क्षेत्रों में दैनिक मजदूरी करती हैं।

भारत में नारी सशक्तिकरण का एक और मुख्य कारण भुगतान में असमानता भी हैं। एक अध्ययन में सामने आया हैं कि समान अनुभव और योग्यता होने के बाद भी भारत में महिलाओं को पुरूषों की अपेक्षा 20 प्रतिशत कम भुगतान प्रदान किया जाता हें। हमारा देश काफी तेजी से आगे बढ़ रहा हैं लेकिन इसे हम तभी बरकरार रख सकते हैं जब हम लैगिंक असमानता को दूर कर पाए और महिलाओं के लिए भी पुरूषों की तरह समान शिक्षा, तरक्की और भुगतान सुनिश्चित कर सकें।

भारत की लगभग 50 प्रतिशत आबादी महिलाओं की हैं अर्थात् पूरे देश के विकास के लिए इस आधी आबादी की जरूरत हैं, जो की अभी भी सशक्त नहीं हैं और कई प्रकार के सामाजिक प्रतिबंधो से बधी हुई हैं। ऐसी स्थिति में हम यह कदापि नहीं कह सकते हैं कि भविष्य में बिना हमारी आधी आबादी को मजबूत किए हमारा भारत देश एक विकसित भारत बन पाएगा।

महिला सशक्तिकरण की जरूरत इसलिए पड़ी क्योंकि प्राचीन समय में पुरूष प्रधानता का नियम बना दिया गया था जो महिलाओं के प्रगति में बाधक थी, महिलाओं को उनके और अपने परिवार और समाज द्वारा कई कारणों से दबाया गया तथा उनके साथ कई प्रकार की हिंसा की गई और परिवार और समाज में कई तरीकें से भेदभाव भी किया गया, ऐसा केवल भारत में ही नहीं बल्कि दूसरे देशों में भी दिखाई पड़ता हैं। भारतीय समाज में महिलाओं को सम्मान देने के लिए माँ, बहन, पुत्री, पत्नी के रूप में महिला देवियों को पूजने की परंपरा हैं लेकिन आज केवल यह एक ढोंग मात्र बन कर रह गया हैं। पिछले कुछ वर्षो से महिलाओं के खिलाफ होने वाले लैंगिक असमानता और बुरी प्रथाओं को हटाने के लिए सरकार द्वारा कई सारे समय में लागू कर दिया गया हैं।

हालांकि ऐसे बड़े विषय को सुलझाने के लिए महिलाओं के साथ पुरूषों का भी जागरूक होना अत्यन्त आवश्यक हैं, आधुनिक समाज महिलाओं के अधिकारों को लेकर ज्यादा जागरूक हैं जिसका परिणाम हुआ हैं। कि कई सारे स्वयं सेवी समूह और एनजीओ आदि महिलाओं पुरूषों की अपेक्षा ज्यादा खुले दिमाग की होती हैं और सभी आयामों में अपने अधिकारों को पाने के लिए सामाजिक बंधनो को तोड़ रही हैं। हालांकि अपराध भी इनके साथ–साथ चल रहा हैं। परन्तु भारत सरकार द्वारा महिला सशक्तिकरण के लिए कई सारी योजनाएँ चलाई जाने लगी हैं इनमें कई सारी योजनाएँ रोजगार, कृषि और स्वास्थ्य जैसी चीजो से संबंधित होती हैं। इन योजनाओं का गठन भारतीय मलिलाओं के परिस्थिति को देखते हुए किया गया हैं ताकि समाज में उनकी भागीदारी को बढ़ाया जा सके, इनमें से कुछ मुख्य योजनाएँ मनरेगा, सर्व शिक्षा अभियान जननी सुरक्षा (मात्र मृत्यु दर को कम करने को चलाई गई योजना) आदि हैं। महिला एवं बाल विकास कल्याण मंत्रालय और भारत सरकार द्वारा भारतीय महिलाओं के सशक्तिकरण के लिए कई अन्य योजनाएँ जैसे 'बेटी बचाओ बेटी पढ़ाओं योजना', 'महिला हेल्पलाईन योजना', 'उज्जवला योजना', 'सपोर्ट टू ट्रेनिंग एंड एम्प्लायमंटे प्रोग्राम फॉंट वूमेन (स्टेप) योजना महिला शक्ति केन्द्र, तथा पंचायती राज योजनाओं में महिलाओं के लिए आरक्षण, संसद द्वारा महिलाओं को सशक्त बनाने के लिए कई प्रकार के अधिनियम पास किए हैं।

इनमें से कुछ महत्वपूर्ण अधिनियम :–

1. अनैतिक व्यापार (रोकथाम) अधिनियम 1956
2. दहेज रोक अधिनियम 1961
3. एक बराबर परिश्रमिक एक्ट 1976
4. मैडिकल ट्रम्नेशन ऑफ प्रेग्नेंसी एक्ट 1987
5. लिंग परीक्षण तकनीक एक्ट 1994
6. बाल विवाह रोकथाम एक्ट 2006

कार्यस्थल पर महिलाओं का यौन शोषण एक्ट 2013 :

महिलाओं के लिए बनाये गए निम्न कानून और उनको सशक्त बनाने के लिए भारत सरकार द्वारा उठाए गए विभिन्न कदम आज भारतीय महिलाओं को मजबूति प्रदान करती हैं जो उन्हे उनके हक के लिए लड़ने में अत्यधिक लाभकारी सिद्ध हो रही हैं। हम सभी को महिलाओ का सम्मान करना चाहिए, उन्हे आगे बढ़ने का मौका देना चाहिए। इक्कीसवी सदी की नारी जीवन में सुखद संभ्भावनाओं की सदी हैं। महिआएँ अब हर क्षेत्र में आगे आने लगी हैं। आज हर नारी अब जागरूक और सक्रिय होती जा रही हैं।

स्वामी विवेकान्द जी ने बहुत अच्छी बात कही हैं :–

''नारी जब अपने ऊपर थोपी हुई बेड़ियों एवं कडियों को तोड़ने लगेगी, तो विश्व की कोई शक्ति उसे नहीं रोक पाएगी।''

वर्तमान में नारी के लिए बने नियम और सुरक्षा के लिए विभिन्न कानून सुखद संकेत हैं कि लोगो की सोच बदल रही हैं, फिर भी इस दिशा में औंर भी प्रयास करने की आवश्यकता हैं।

निष्कर्ष :–

भारतीय संविधान एवं कानून में हर जाति धर्म व मजहब में स्त्री के संरक्षण के लिये वो सभी अधिकार दिये गये हैं। जो पुरूषों को प्राप्त हैं। भारतीय संविधान में मूल अधिकार जो पुरूषों को प्राप्त हैं। वही अधिकार स्त्रियों को भी सुगमता से प्राप्त हैं, शिक्षा चिकित्सा, व्यवसाय, नौकरी धार्मिक रीति रिवाजों का पालन एवं अनुसरण में कही कोई भेदभाव भारतीय संविधान नारी के प्रति नहीं करता हैं। संविधान एवं कानून में इनकी सामाजिक, मानसिक, आर्थिक स्थिति को निरंतर सुधारने के लिये समय–समय पर कानून बनाये गये हैं। जरूरी होने पर समीक्षा एवं संसोधन किये गये हैं। लोकसभा अध्यक्ष प्रधानमंत्री से लेकर राश्ट्रपति के पद को महिला के रूप से सुशोभित किया गया हैं।

जयशंकर प्रसाद जी ने अपनी रचना में लिखा हैं कि,

नारी तुम केवल श्रद्धा हो।
विश्वास रजत पग नभ तल में।
पियूष श्रोत सी बहा करो।
जीवन के सुंदर समतल में।।

ग्रंथ सूची :–

1. डॉ जय नारायण पाण्डेय – भारत का संविधान।
2. के.डी. गौड। भारतीय न्याय संहिता 2023
3. इंटरनेट संचार माध्यम।
4. स्वयं के विचार।

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Sept. 2025 Page No. : 301-310

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

Therigatha : Legacy and Relevance in 21st Century Indian Literature

Indresh Prasad Purohit
Research Scholar, Ch Charan Singh University, Meerut.

Abstract :

The *Therīgāthā*, an early anthology of Buddhist nuns' verses, functions as a formative intertext for 21st-century Indian literature, shaping poetics, ethics, and models of female subjectivity across languages and genres. Tracing its transmission from oral vernaculars to Pali canon and modern translations, the essay maps shift from philology to feminist reclamation and creative adaptation. It highlights vernacular circulations in Hindi, Bengali, Tamil, Malayalam, Marathi, and Kannada, and their classroom, devotional, and activist uses. Read alongside Bhakti women, the text grounds indigenous, intersectional feminisms attentive to caste and gender. The conclusion offers pedagogical frameworks and future research pathways for multilingual curricula and translation.

Keywords :

Therīgāthā, Feminist reception, Dalit-Bahujan poetics, Vernacular translations, Indigenous feminism, Intertextuality, Translation ethics

Introduction :

The Therīgāthā stands as a rare and invaluable artifact in world literary history—an anthology composed entirely by women (Buddhist nuns called as therīs), who lived around 6th to 3rd centuries BCE. Constituting part of the Pali Canon, its seventy-three individual poems showcase a remarkable diversity of experiences, backgrounds, and emotional truths,

establishing the Therīgāthā as both a historical and literary milestone. These verses, marked by intense personal reflection and spiritual discovery, challenge the notion that literary production in early India was exclusively male and establish women as authoritative voices in matters of faith, suffering, and liberation.

This textual collection has experienced renewed scholarly and literary attention in 21st-century Indian literature, especially from feminist and postcolonial perspectives. Its themes of female agency, personal struggle, and the transcendence of societal constraints resonate meaningfully with contemporary readers and writers. The nuns speak candidly of grief, attachment, bodily decay, family bonds, and the search for freedom, resisting both the silence and marginalization imposed by dominant patriarchal narratives. Academics and writers highlight the text as a rare archival space where women articulate their experiences, desires, suffering, and liberation—often in their own voices. This focus challenges dominant patriarchal narratives and affirms the continuity of women's literary and spiritual agency, at least in India.[1]

The Therīgāthā's influence in 21st-century Indian literature, can be discerned through acts of translation, adaptation, and allusion—demonstrating its continued relevance as a template of liberation and dissent. These poems thereby function as early examples of self-authorship and women's testimony, and have increasingly been reclaimed within modern feminist, Dalit, and subaltern discourses. Contemporary authors, translators, and scholars revisit its urgent voice, drawn to its convergence of poetic innovation, spiritual empowerment, and radical social critique. Thus, the Therīgāthā not only illuminates the contours of Buddhist history, but also actively informs and inspires ongoing literary and political transformations throughout South Asia.

Origins and Literary Legacy of the Therīgāthā :

Emerging from the earliest centuries of Buddhism, the Therīgāthā comprises 73 poems attributed to 73 enlightened women, the therīs. Originally preserved orally in Prakrit vernaculars and later compiled in Pali by the 1st century BCE, the anthology reflects a remarkable continuity in women's voices across India's ancient linguistic

landscape. These verses are often meditations on suffering, spiritual triumph, and the pursuit of nibbāna (liberation), drawing from lived experience rather than abstract doctrine.

Recognized as one of the world's oldest extant collections of women's writing, the Therīgāthā shatters the silence historically imposed on female voices in the region. A feat that both records and validates the intellectual and spiritual agency of Indian women over two millennia ago Its authors ranged from queens to commoners and from mothers to childless women, each engaging with themes of loss, desire, and autonomy. These autobiographical elements not only enrich Indian literary tradition but also serve as compelling counter-narratives to Brahmanical texts, which often denied spiritual authority to women.

Translation, Transmission, and Reclamation :

The *Therīgāthā* has witnessed a layered and evolving history of translation that reflects shifting scholarly, devotional, and literary priorities across more than a century. The earliest major English rendering, C. A. F. Rhys Davids's *Psalms of the Sisters* (1909), published within *Psalms of the Early Buddhists* by the Pali Text Society, offered one of the first complete verse translations and brought these poems to a broad Anglophone readership, positioning them within comparative religion and orientalist scholarship of the early twentieth century. A decisive philological turn came with K. R. Norman's *The Elders' Verses II: Therīgāthā* (1971), which provided a meticulous, literal prose translation with extensive notes, setting the standard for academic engagement with the text among Pali scholars. A complementary development was William Pruitt's 1998 translation of Dhammapāla's commentary (*Paramatthadīpanī VI*), which, while not a direct translation of the verses themselves, remains essential for understanding the commentarial exegesis, traditional glosses, and the Theravāda reception of the poems.

The twenty-first century has witnessed a flourishing of approaches that balance accessibility with scholarship. Ṭhānissaro Bhikkhu's *Poems of the Elders* (2015) presented a selective anthology of *Theragāthā* and *Therīgāthā* in lucid, practitioner-friendly prose, accompanied by notes that make the verses more approachable for modern Buddhist

audiences. In the same year, Charles Hallisey's *Therīgāthā: Poems of the First Buddhist Women* (2015), published in the Murty Classical Library of India, offered a bilingual Pali–English edition that combined literary elegance with critical annotation, and has since become a landmark scholarly translation used in both academic and literary contexts. Parallel to these print contributions, Jessica Walton and Bhikkhu Sujato's collaborative *Verses of the Senior Nuns* (2015, revised by Sujato in 2019), hosted by SuttaCentral, brought an open-access, freely available translation into circulation, notable for its clarity, modern idiom, and integration with digital Pali corpora.

Beyond Anglophone scholarship, the text has been increasingly translated into world languages. Examples include Jesús Aguado's *Therigatha: Poemas budistas de mujeres sabias* (2018) in Spanish, Italian renderings by D. Rossella (2019), and Bhikkhu Mahinda's bilingual Pali–English editions, with a revised edition in 2022, which testify to the *Therīgāthā*'s global literary and spiritual resonance. More recently, creative reimaginings such as Francis Booth's selections and Matty Weingast's *The First Free Women* (2020) have sought to recast the verses in contemporary poetic idiom. While such adaptations have sparked scholarly debate for their liberties in interpretation and ideological reframing, they nevertheless highlight the enduring appeal and contested relevance of these early women's voices in today's religious and literary landscapes.

Over the past century, the *Therīgāthā* has been translated into English and many Indian languages, but every translation does more than carry words across; it interprets, reshapes, and reimagines. In recent decades, feminist voices have turned to these verses not just to render them into new tongues but to reclaim them, to draw out the buried emotions and sharpen their social force. In today's Indian writing, translation is no longer just about access; it is a creative act. Poets weave Pāli lines into their own verse, novelists echo the images as epigraphs or plot motifs, and the ancient cadences pulse through modern idioms. Yet this raises unsettled questions: whose meaning is preserved, whose is lost, and what happens when the language of today bends the feeling of the past? The

Therīgāthā, in its many retellings, lives again not as a fossil of Buddhist history but as a dynamic conversation between fidelity and invention, tradition and reinvention.

21st Century Indian Literary Resonance :

Present-day Indian writers and translators revisit the Therīgāthā to reclaim women's voices and complicate the narrative of spiritual liberation. The poetry's frankness, its engagement with topics such as old age, grief, friendship, and bodily decay; finds a contemporary echo in Indian literature's ongoing negotiation with gender, social exclusion, and existential meaning.

The *Therīgāthā* continues to enjoy wide resonance in present-day India through a vibrant tradition of vernacular translations that attest both to its religious significance and to its cultural adaptability. Modern Indian languages have provided fertile ground for the text's circulation, making it accessible beyond the circles of Pali scholarship. In **Hindi**, the tradition of translation is particularly strong: from N. K. Bhagwat's early rendering in 1956 to bilingual Sanskrit–Hindi editions by Swami Dwarikadas Shastri (Bauddha Bharati, Varanasi) and Bharat Singh Upadhyaya (Gautam Book Center, Delhi), alongside later publications by Motilal Banarsidass, Hindi readers continue to encounter the voices of Buddhist nuns in both scholarly and popular contexts (Digital Library of India; Exotic India Art). **Bengali translations**, pioneered by Bhikshu Shilbhadra and preserved in the Digital Library of India and West Bengal archives, have likewise sustained an enduring readership, complemented by recent retail editions confirming their continued relevance. In **Tamil**, A. Mangai's *Tēri kātai – Pauttap Pikkunikaliṉ Pāṭa* (Sandhya Publications, 2007) represents a landmark effort, with both print and performance-based adaptations emphasizing the feminist potential of these early Buddhist voices (Tamil Wikipedia; YouTube records). **Malayalam translations**, such as Mini Muthulakshmi's *Therigatha* listed by Indulekha, and manuscript projects shared through academic networks, further extend the text's reach in South India, while **Marathi translations** including a 1993 published edition and a 174-page academic manuscript; demonstrate how the *Therīgāthā* is integrated into the Pali–Marathi scholarly ecosystem of institutions like the University of

Mumbai. In **Kannada**, adaptations such as *Therigatha Kanisida Hennu (Boudha Dharmadalli Mahile)* underscore the reception of the text within the context of women's voices in Buddhism and Kannada religious literature.

Taken together, these translations show that the *Therīgāthā* is not confined to the scholarly elite or English-language readerships; rather, it lives on as a dynamic part of India's cultural and religious fabric, circulating in classrooms, devotional settings, and literary spaces alike. Its availability in major vernaculars—Hindi, Bengali, Tamil, Malayalam, Marathi, and Kannada—illustrates both its popularity as a devotional and cultural resource and its relevance to contemporary discourses on women's agency in Indian religious traditions.

Contemporary Literature :

Indian feminist critics read the *Therīgāthā* as a counter-tradition, placing Buddhist women's voices beside Dalit-Bahujan thought to expose how caste and patriarchy intertwine. These readings see the nuns' poems as proof of women's agency under constraint and as an archive that later texts tried to silence. In doing so, they reclaim the verses as both spiritual testimony and a sharp tool for challenging androcentric canons. For example, Anamika's Hindi collection "Tokri Mein Digant: Theri Gatha" (Sahitya Akademi Award, 2020) engages the Therīgāthā. Kedarnath Singh complemented in the preface on this volume:

> Perhaps this is a new poetic genre that will attract the attention of poetry lovers. As a reader of contemporary poetry, I felt that this work is an introduction to a new poetic language, one that opens many closed doors of consonance, and all this happens around a local center. This is an intervention of subaltern sensibility into the familiar world of poetry, one that will not go unnoticed. (Anāmikā 2020)

In post-1956 Maharashtra, Dalit-Bahujan poets in Marathi and Hindi began drawing directly on early Buddhist women's voices, sometimes even citing Pali sources, with little magazines and anthologies serving as powerful records of this engagement. Across Indian languages—Hindi, Marathi, Bengali, Tamil—translations of the *Therīgāthā* slip into

circulation, their lines resurfacing as epigraphs in new poetry. Meanwhile, English versions like Charles Hallisey's *Poems of the First Buddhist Women* lean toward transcreation rather than strict fidelity, preserving the vitality of the voices while allowing fresh resonances. Together, these practices make the nuns' speech central yet pliable, inviting feminist readings that honor the complexity of their words instead of flattening them into slogans.

A leading contemporary poet who adapts Therīgāthā verses in English is Matty Weingast, whose collection "*The First Free Women: Poems of the Early Buddhist Nuns*" revoices the nuns' songs as contemporary free-verse monologues rather than line-by-line translations. Reviews explicitly describe the work as a "contemporary version" of the early Buddhist nuns' voices, highlighting its adaptive rather than strictly philological approach.

Influence on Contemporary Feminist Theory in India :

The *Therīgāthā* and later Bhakti poetry have become vital anchors for Indian feminist thinkers who want to shape an indigenous feminism rather than rely on Western models. Critics like Jasbir Jain argue that Eurocentric frameworks cannot capture the layered realities of Indian society and instead urge a turn to local traditions of women's voices. Reading the *Therīgāthā* alongside Bhakti songs allows feminist theory to weave caste, religion, and gender into a plural and intersectional approach—what Jain calls "a newer definition for an Indian style feminism." This rooted perspective highlights women's spiritual autonomy and resistance across history, while also speaking to present struggles. Contemporary writers and scholars carry this legacy forward, finding in these older voices not just echoes of faith, but blueprints for agency, resilience, and social justice.

Jasbir Jain critiques Eurocentric feminist models for failing to grasp India's layered realities of caste, religion, and sexuality. She calls instead for "an Indian style feminism" grounded in indigenous texts and lived experiences (Jain, *Feminism in India*). The *Therīgāthā* becomes central to this project: its verses of women's autonomy and defiance

show that feminist consciousness has long existed within Indian tradition, countering the claim that feminism is a Western import. By reclaiming these voices, Indian feminists construct an intersectional framework that weaves caste, religion, and gender into their critique of patriarchy. The *Therīgāthā* also bridges past and present, linking ancient spiritual expression with modern feminist struggles. This has inspired scholarship and creative writing that is both deeply Indian in orientation and globally resonant, offering fresh strategies of resistance and empowerment rooted in history.

Conclusion: Enduring Relevance :

The *Therīgāthā* endures in the 21st century not as a relic of the past but as a living archive that continues to shape literary and feminist discourse. Its concentrated poetics, frank female voices, and ethical urgency resonate with modern Indian literature's concerns—voice, vulnerability, critique of power, and renunciation as social commentary. Its journey from oral vernacular traditions into Pali, and later through translations ranging from C. A. F. Rhys Davids and K. R. Norman to Charles Hallisey and Bhikkhu Sujato, reveals a shift from philological focus to feminist reclamation. Vernacular adaptations in Hindi, Bengali, Tamil, Malayalam, Marathi, and Kannada highlight devotional and activist receptions, while also enabling caste-conscious pedagogy. The text stands as both ancestor and interlocutor: it provides ethical and formal resources that contemporary writers appropriate, contest, and transform. In dialogue with Bhakti women poets and Indian feminist theory, the *Therīgāthā* anchors indigenous feminisms, while creative reinterpretations foreground both the promise and the risks of transcreation. Read as a living archive, it complicates dominant narratives of voice and authority and offers models of resistance rooted in embodied experience and spiritual reflection.

Acknowledgements and Methodology :

Note - This essay draws on a broad familiarity with Pāli canonical materials and modern Indian literary trends; it does not attempt an exhaustive philological reading of specific verses. Rather, it proposes thematic frameworks for understanding the Therīgāthā's continuing resonance. Scholars and practitioners engaged in translation,

performance, and curriculum development will need to attend to the text's philological complexities and editorial histories in close reading projects.

Final Remarks :

The Therīgāthā's compact, impassioned verses continue to speak across centuries. In 21st-century Indian literature, they function as both resource and provocation—inviting writers and readers to listen anew to voices that negotiated suffering, gendered constraints, and spiritual possibility long before modernity's upheavals. Engaging with the Therīgāthā critically and creatively can deepen contemporary literature's interrogation of self, society, and the transcendent, ensuring that these early women's testimonies remain potent interlocutors for a plural, contested, and imaginative literary present.

References :

- Aguado, Jesús, trans. *Therigatha: Poemas budistas de mujeres sabias*. Madrid: Editorial Kairós, 2018.
- Anāmikā. *Tokri Mein Digant: Theri Gatha* (in Hindi). New Delhi: Rājakamala Prakāśana, 2020. Print.
- Bhagwat, N. K. *Therigatha*. Hindi trans., 1956. Digital Library of India.
- Dickenson, George-Thérèse, review of "The First Buddhist Women: Translations and Commentary on the Therigatha" (Susan Murcott, Parallax Press, 1991)
- Hallisey, Charles, trans. *Therīgāthā: Poems of the First Buddhist Women*. Murty Classical Library of India. Cambridge, MA: Harvard University Press, 2015.
- Jain, Jasbir, and Avadhesh Kumar Singh, editors. *Indian Feminisms*. Creative New Literatures Series, vol. 51. New Delhi: Creative Books, 2001. Print.
- Mahinda, Bhikkhu, trans. *Therigatha: Verses of the Elder Nuns*. 2nd ed., Singapore: Independent, 2022.

- Mangai, A. *Tēri kātai – Pauttap Pikkunikaliṉ Pāṭa* (in Tamil). Sandhya Publications, 2007.
- Muthulakshmi, Mini. *Therigatha*. Malayalam trans. Indulekha, Kerala.
- Norman, K. R. *The Elders' Verses II: Therīgāthā*. London: Pali Text Society, 1971.
- Pruitt, William, trans. *The Commentary on the Verses of the Therīs (Paramatthadīpanī VI)* by Dhammapāla. London: Pali Text Society, 1998.
- Rhys Davids, C. A. F. *Psalms of the Sisters*. In *Psalms of the Early Buddhists*. London: Pali Text Society, 1909.
- Shastri, Swami Dwarikadas. *Theragathapali, Therigathapali*. Bauddha Bharati, Varanasi.
- Shilbhadra, Bhikshu. *Therigatha* (Bengali trans.). Digital Library of India / West Bengal Public Library.
- Ṭhānissaro Bhikkhu (Geoffrey DeGraff). *Poems of the Elders: An Anthology from the Theragāthā and Therīgāthā*. Valley Center, CA: Metta Forest Monastery, 2015.
- *Therigatha – Marathi Translation*. Academia manuscript.
- *Therigatha Kanisida Hennu (Boudha Dharmadalli Mahile)*. Kannada ed. Beetle Bookshop.
- *Therigatha*. Hindi ed. Motilal Banarsidass.
- *Therigatha*. Marathi ed., 1993. Archive.org.
- Upadhyaya, Bharat Singh. *Therigatha*. Gautam Book Center, Delhi.
- Walton, Jessica, and Bhikkhu Sujato, trans. *Verses of the Senior Nuns (Therīgāthā)*. SuttaCentral, 2019, suttacentral.net/thig.
- Weingast, Matty. *The First Free Women: Poems of the Early Buddhist Nuns*. Boulder: Shambhala Publications, 2020.

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Sept. 2025 Page No. : 311-315

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट की कविताओं में यथार्थ विमर्श

डॉ. लता एस. पाटिल

राजीव गांधी बी. एड. कॉलेज, धारवाड़, कर्नाटक।

प्रस्तावना :

डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट (भिवानी, हरियाणा) आधुनिक हिंदी कविता के उन रचनाकारों में हैं जिनकी कविताएँ जीवन–संघर्ष, आत्मबल, सत्य, नैतिकता, और समाज की सच्ची तस्वीर का जीवंत चित्र प्रस्तुत करती हैं। वे अपने काव्य के माध्यम से न केवल यथार्थ को उद्घाटित करते हैं, बल्कि पाठक को आत्मावलोकन और आत्मसंघर्ष के लिए प्रेरित करते हैं। उनकी कविताओं में व्यक्ति की अंतःचेतना, संघर्षशील मनोवृत्ति, नैतिक आग्रह और सामाजिक यथार्थ का गहरा चित्रण देखने को मिलता है।

1. आत्मबल और आत्मनिर्भरता की चेतना :

कविता '"तपकर खुद की आग में, सोना बने हैं हम"' डॉ. सिहाग के काव्य–स्वर की मूल पहचान है। इसमें व्यक्ति के आत्मबल, आत्मसंघर्ष और स्वनिर्माण की प्रेरणा मुखर है –

"हर चोट ने गढ़ा हमें,
हर दर्द ने सिखाया,
जीवन की भट्टी ने,
नया रूप दिखाया।"

यहाँ कवि बाहरी सहयोग या भाग्य पर नहीं, बल्कि अपनी आंतरिक शक्ति पर विश्वास करता है। यह कविता आधुनिक मानव के आत्म–प्रत्यय की उद्घोषणा है। कवि का मानना है कि व्यक्ति अपनी मेहनत और कर्म की रोशनी से स्वयं अपने मार्ग को प्रकाशित करता है –

"खुद के दम पर खड़े हैं,
खुद से ही जले हैं,

अपने कर्मों के दीप से,

रोशनी बने हैं।''

यहाँ "आग", "दीप" और "सोना" जैसे प्रतीक आत्मसंघर्ष से उत्पन्न प्रकाश और पवित्रता का प्रतीक हैं।

2. कर्म, परिश्रम और जीवन-संवेदना :

कविता '"नहीं था पता कौन माली इस बगिया का"' में कवि ने परिश्रम और निष्ठा की महत्ता को रूपकात्मक ढंग से प्रस्तुत किया है। "माली" यहाँ उस कर्मयोगी का प्रतीक है जो बिना किसी प्रतिफल की अपेक्षा किए अपने कार्य में समर्पित रहता है –

''हाथ छिले, दर्द सहे,

पर रूकना न आया,

बगिया को अपने

खून-पसीने से खिलाया।''

कवि का दृष्टिकोण स्पष्ट है कि सच्ची सृजनशीलता और सौंदर्य कर्मठता से उपजते हैं। "कांटों में आसमान देखना" जीवन की प्रतिकूल परिस्थितियों में भी सकारात्मक दृष्टिकोण का प्रतीक है।

3. आशा और पुनर्जीवन का भाव :

कविता '"अरमानों की महफिल में ख्वाब सजे ऐसे"' में आशा, सृजन और जीवन की पुर्नस्थापना का भाव है। कवि निराशा के वातावरण में भी उम्मीद की मशाल जलाए रखता है –

''सूखी थी डाली,

मगर उम्मीद थी बाकी,

खिल उठे फूल,

बिखरी रंगत निराली।''

यह कविता "आशा की कविता" कही जा सकती है जिसमें कवि पतझड़ को बसंत में बदल देने की मानसिकता प्रकट करता है। यह मनुष्य के भीतर की जीवन–ऊर्जा और उसकी पुनरुत्थान क्षमता का प्रतीक है।

4. जीवन और समय का यथार्थ :

कविता '"जिंदगी के खेल में वक्त है खिलाड़ी"' में कवि ने जीवन और समय के जटिल संबंधों को प्रतीकात्मक रूप में प्रस्तुत किया है। जीवन को "रंगमंच" और "खेल" कहना कवि की यथार्थदृष्टि का परिचायक है –

''हम तो बस हैं

कठपुतली इस रंगमंच पर,

किरदार निभाते,

कभी हंसते, कभी हारे।''

यहाँ समय को सर्वोच्च नियंता के रूप में देखा गया है जो जीवन के हर दृश्य का निर्देशक है। कवि का निष्कर्ष गहरे दार्शनिक अर्थ में जीवन का सार देता है –

''किरदार महान वो,

जो हर हाल में रच दे।''

5. सामाजिक यथार्थ और नैतिक पतन :

कविता '"आज की हकीकत"' वर्तमान समाज की नैतिक दुर्दशा को रेखांकित करती है। कवि को पीड़ा है कि आज की दुनिया में "शराफत" और "सादगी" जैसे मूल्य पहचान से बाहर हो गए हैं –

''सच की आवाज कहीं दब-सी गई,

झूठ के साए में दुनिया सजी।''

यह कविता एक चेतावनी है कि जब समाज में सत्य, सादगी और मानवता का स्थान स्वार्थ, छल और दिखावे ने ले लिया है, तब जीवन में स्थिरता नहीं रह सकती।

6. बाह्य दिखावे और अंतःसौंदर्य का द्वंद्व :

कविता '"इंसान का दिल अच्छा होना चाहिए"' तथा उसकी अगली कड़ी में कवि ने मानवीय मूल्य और नैतिकता के पक्ष में तीखा व्यंग्यात्मक स्वर अपनाया है।

''चेहरा चमके, दिल धूल खाए,

ऐसे लोगों की भरमार है।''

''सूरत से ज्यादा दिल का नूर होना चाहिए।''

यहाँ कवि बाहरी आडंबर के विरुद्ध और अंतःशुचिता के पक्ष में खड़ा है। "गुजरात की सूरत" का उल्लेख प्रतीकात्मक है – यह केवल भौगोलिक नहीं बल्कि दिखावे के सांस्कृतिक रूप का व्यंग्यात्मक संकेत है।

7. बदलती नियत और रिश्तों की अस्थिरता :

कविता '"दुनिया में कुछ भी इतना जल्दी नहीं बदलता"' आधुनिक जीवन की सबसे बड़ी विडंबना को उजागर करती है – इंसान का अस्थिर मन और बदलती नीयत।

''कल जो थे अपने,

आज बेगाने हो गए,

नियत बदलते ही

रिश्ते अनजाने हो गए।''

यह कविता भावनात्मक स्तर पर सामाजिक संबंधों की नाजुकता और मानव स्वभाव की विडंबना पर गहरी टिप्पणी करती है।

8. नाम और प्रतिष्ठा का द्वंद्व :

कविता '"नाम देता इंसान को"' में कवि ने समाज में 'नाम' और 'कर्म' के संबंध की पड़ताल की है –

"नाम से बनती पहचान,
नाम से मिलता मान,
सच्चे कर्मों से जोड़े,
तो बढ़े इसका स्थान।"

यह कविता व्यक्ति की सामाजिक पहचान को उसके आचरण से जोड़ती है और बताती है कि प्रसिद्धि तभी सार्थक है जब वह नैतिकता से पोषित हो।

9. एकांत और आत्मबोध की व्यथा :

कविता '"हंसकर भी देख लिया, रोकर भी देख लिया"' में कवि का स्वर आत्मपरक और दार्शनिक हो जाता है। जीवन के उतार–चढ़ावों के बाद वह इस निष्कर्ष पर पहुँचता है –

"जिसने अकेले जीना सीखा,
वही जीना आया।"

यहाँ कवि एकांत को दुर्बलता नहीं, बल्कि आत्मसाक्षात्कार का साधन मानता है।

10. विश्वास, प्रेम और मानवीय उलझनें :

कविता '"भरोसा सांसों का भी नहीं है"' आधुनिक व्यक्ति की आंतरिक असुरक्षा और प्रेम की जटिलता को अभिव्यक्त करती है –

"हर पल डरते हैं खो जाने का,
फिर भी प्यार से जुड़ बैठते हैं।"

यह कविता भावनात्मक द्वंद्व की उत्कृष्ट अभिव्यक्ति है जिसमें कवि ने मानवीय संबंधों की गहराई और नाजुकता को साथ–साथ रखा है।

11. पारिवारिक मूल्यों की पुर्नस्थापना :

कविता '"जिस घर में माँ–बाप हंसते हैं"' पारिवारिक संवेदनाओं की सजीव पुर्नस्थापना है। कवि मानता है कि माता–पिता के स्नेह में ही वास्तविक सुख है –

"जिस घर में माँ-बाप हंसते हैं,
उस घर में भगवान बसते हैं।"

यह कविता भारतीय पारिवारिक संस्कृति के मूल मूल्य 'श्रद्धा' और 'संस्कार' को फिर से जीवित करती है।

12. चाटुकारिता बनाम निष्ठा :

कविता '"चमचे कभी वफादार नहीं होते"' में कवि ने तीखा व्यंग्य प्रस्तुत किया है। यहाँ 'चमचा' प्रतीक है उन लोगों का जो स्वार्थवश निष्ठा का दिखावा करते हैं।

"वफादार का जीवन कुछ और ही होता,
दिल में सच्चाई का दीपक जलता।"

यह कविता न केवल सामाजिक आलोचना है बल्कि नैतिक शिक्षण का भी माध्यम है।

निष्कर्ष :

डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट की उपर्युक्त कविताएँ जीवन के बहुआयामी अनुभवों की गहरी पड़ताल करती हैं। इनमें आत्मबल, कर्मशीलता, नैतिकता, यथार्थ, प्रेम, विश्वास, परिवार, और मानवीय मूल्य के विविध रूपों का संगम है। उनका काव्य सरल, लोकबोधपूर्ण और विचारोत्तेजक है। प्रतीक और रूपक के माध्यम से वे सामान्य पाठक तक गहरी दार्शनिक बात सहजता से पहुँचा देते हैं।

सिहाग की कविताएँ केवल साहित्यिक नहीं, बल्कि सामाजिक चेतना की दस्तावेज हैं – जो बताती हैं कि सच्चा कवि वही है जो समय की धड़कनों को अपनी पंक्तियों में दर्ज कर सके।

संदर्भ सूची :

1. सिहाग, नरेश (डॉ.) – फेसबुक पेज "Naresh Sihag Bohal" पर प्रकाशित कविताएँ (2024–2025)।
2. चौहान, मंजू. समकालीन हिंदी कविता में सामाजिक यथार्थ, दिल्ली विश्वविद्यालय, 2020।
3. शर्मा, प्रवीण. आधुनिक हिंदी काव्य के स्वर, नई दिल्ली : भावना प्रकाशन, 2022।
4. त्रिपाठी, राजेश. काव्य में मनुष्य और समाज, वाणी प्रकाशन, 2018।

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Sept. 2025 Page No. : 316-328

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

Entrepreneurial Self-Efficacy and Entrepreneurial Intentions of Tribal Women: A case Study of Chhattisgarh, India.

Dimpal Agrawal

Assistant Professor commerce,

Naveen Govt College Chaple, District Raigarh Chhattisgarh-496001, India.

Abstract :

The aim of the present study was to examine the influence of Entrepreneurial Self-Efficacy and Entrepreneurial Intentions of Tribal Women of Raigarh Chhattisgarh. A sample of 250 tribal women from Raigarh district were selected and interviewed through a pre-tested self structured questionnaire. The collected data was analysed through SPSS software. The collected data revealed diverse age groups, educational backgrounds, marital statuses, and income of the sampled tribal women, reflecting the heterogeneity within the tribal women entrepreneur population. The mean score values of all items regarding entrepreneurial self-efficacy were consistently above 3.5 on a 5-point Likert scale, indicating a generally high perceived capability among tribal women in Raigarh Chhattisgarh. Results indicate that the tribal women of Chhattisgarh bear strong entrepreneurship intention. The data analysis confirms that the demographic characters have a significant influence on the entrepreneurial self-efficacy and entrepreneurship intention of tribal women in Chhattisgarh. Pearson's coefficient of correlation (r) reveals a significant positive correlation between entrepreneurial self-efficacy and entrepreneurship intention, suggesting that higher levels of self-efficacy among these women are associated with stronger entrepreneurial intentions. The findings underscore the necessity of targeted interventions designed to enhance the entrepreneurial self-efficacy of tribal women, which in turn could significantly boost their entrepreneurial intentions and ultimately foster economic development within their communities. Future investigations could expand upon these findings by employing longitudinal designs to observe the evolution of entrepreneurial self-efficacy and intentions over time, thus capturing dynamic changes and the long-term impact of interventions

Keywords : Entrepreneurial Self-Efficacy, Entrepreneurial Intention, Tribal Women, Chhattisgarh.

Introduction :

Empowering women through entrepreneurship, particularly within tribal contexts, serves as a crucial strategy for fostering economic and social viability (Naveen et al., 2023). This approach is increasingly recognized by governments as a key pathway to address the economic disadvantages faced by indigenous populations (Chaudhuri & Roy, 2017). This is particularly salient in regions like Manipur, Sikkim, Assam, Nagaland, Chhattisgarh, Orissa, Jharkhand etc. where significant gender disparities in entrepreneurial engagement persist despite legal frameworks, largely due to entrenched societal norms and insufficient support structures (Aier, 2020). Indigenous entrepreneurship, as defined by the International Labour Organization, encompasses ventures initiated by tribal peoples who retain distinct social, cultural, and economic conditions, often governed by their own customs or traditions, contributing to the self-determination and preservation of their heritage. This form of entrepreneurship extends beyond mere economic profit, aiming to generate multifaceted social and economic advantages for entire communities. However, despite policy incentives and microcredit programs aimed at stimulating entrepreneurship, tribal regions often exhibit persistent lags in entrepreneurial development (Thakur & Ray, 2020; Sahu et al., 2021). This discrepancy highlights the need to investigate the underlying psychological constructs that influence entrepreneurial engagement among tribal women, specifically entrepreneurial self-efficacy, which plays a pivotal role in shaping entrepreneurial intentions (Agnihotri & Bhattacharya, 2020).

Entrepreneurial self-efficacy refers to an individual's belief in their capabilities to successfully perform the roles and tasks associated with entrepreneurship. This belief is a critical psychological factor influencing an individual's decision to pursue entrepreneurial activities, especially for women navigating the complexities of balancing business with family responsibilities (Chakraborty et al., 2018). For tribal women, this construct is particularly salient as it directly impacts their willingness to initiate and sustain ventures amidst cultural expectations and often limited access to resources (Mazonde, 2021). It is within this intricate landscape that understanding the specific drivers of entrepreneurial self-efficacy among tribal women becomes paramount for designing effective interventions and policies. This study aims to investigate the factors influencing entrepreneurial self-efficacy among tribal women and its subsequent impact on their entrepreneurial intentions, thereby contributing to a nuanced understanding of indigenous entrepreneurship in Chhattisgarh (a region where women's participation in entrepreneurial activities is notably low despite significant policy emphasis on women's empowerment initiatives).

Research Questions :

This research seeks to address following research questions;

- What is the impact of demographic characteristics of tribal women entrepreneurs on the entrepreneurial self-efficacy?
- What role does entrepreneurial self-efficacy play in mediating the relationship between individual and environmental factors and entrepreneurial intentions among tribal women?

Objectives of study :

The main objectives of present study are as following;

- To investigate the impact of various socio-cultural and economic factors on entrepreneurial self-efficacy among tribal women in Chhattisgarh.
- To analyze the mediating role of entrepreneurial self-efficacy in the relationship between these factors and entrepreneurial intentions.
- To provide fruitful recommendations and targeted intervention strategies aimed at fostering entrepreneurial intentions among tribal women, thereby contributing to their economic empowerment and regional development.

Hypothesis of Study :

H01 : There is no significant impact of demographic factors on the entrepreneurial self-efficacy of tribal women in Chhattisgarh.

H02 : There is no significant impact of demographic factors on the entrepreneurial intentions of tribal women in Chhattisgarh.

H03 : There is no significant relationship between entrepreneurial and entrepreneurial intentions among tribal women in Chhattisgarh.

Research Methodology :

This section delineates the systematic approach employed to investigate the complex interplay of factors influencing entrepreneurial self-efficacy and intentions among tribal women in Chhattisgarh, focusing on the research design, participant selection, data collection instruments, and analytical techniques. This research was conducted by adopting following research tools and techniques.

5.1. Research Design :

This study adopted a descriptive research design to systematically examine the current state of entrepreneurial self-efficacy and its determinants among the target population.

5.2. Study Area :

The present study was conducted in Raigarh district of Chhattisgarh. This geographical focus was chosen due to the district's significant tribal population and the presence of various initiatives aimed at promoting women's entrepreneurship. The selection of this district of Chhattisgarh was done on the basis of its high concentration of tribal communities and the active presence of

microfinance interventions and self-help groups supporting women's economic empowerment within these communities.

5.3 Population and Sample :

The target population for this study comprised tribal women engaged in or aspiring to engage in entrepreneurial activities within the selected district. A multi-stage sampling technique was employed to select a representative sample, beginning with the random selection of specific blocks and then villages known for their tribal populations and entrepreneurial activities. From these identified villages, individual tribal women were then purposively selected based on their engagement in entrepreneurial ventures or demonstrated interest in starting one, ensuring a rich data set reflecting diverse entrepreneurial experiences. This purposive sampling approach facilitated the inclusion of participants with first-hand entrepreneurial experience or direct involvement with supporting organizations, thereby maximizing the relevance and depth of the collected data. For the quantitative component, a sample size of 250 participants was targeted to ensure statistical power and generalizability of findings across the diverse tribal communities in the region.

5.4. Data Collection :

The study was conducted by utilizing primary data. The primary data was meticulously gathered through a a pretested self structured questionnaire. The structured questionnaires, administered face-to-face to ensure clarity and address potential literacy barriers, included scales measuring entrepreneurial self-efficacy, entrepreneurial intentions, and socio-cultural and economic factors. The questionnaire, often translated into local dialects such as Chharrtisgarhi to ensure accurate comprehension among respondents with varying literacy levels, was carefully designed to capture nuanced perspectives on these critical variables.

5.5. Data Analysis :

The collected data was subjected to Analysis of Variance (ANOVA) for determining the effect of demographic factors on the entrepreneurial self-efficacy and entrepreneurial intention of tribal women of Chhattisgarh. Chi-Square (Goodness for Fit) test was done to determine the distribution of samples observed distribution and theoretical distribution. Pearson's coefficient of correlation was calculated to determine the relation between entrepreneurial self-efficacy and entrepreneurial intention of tribal women of Chhattisgarh. The data analysis was done by using SPSS software.

Results and Analysis :

The collected data revealed diverse age groups, educational backgrounds, and marital statuses among the participants, reflecting the heterogeneity within the tribal women entrepreneur population. Table-1 shows the socio-demographic characteristics of the respondents, indicating a significant

representation of women aged 25-45, suggesting a prime demographic for entrepreneurial engagement. Further analysis indicated that a majority of the respondents possessed primary or secondary levels of education, aligning with findings from similar demographic studies in rural areas. Regarding marital status, a substantial proportion of the women identified as married, often with dependents, underscoring the dual responsibilities they manage alongside entrepreneurial aspirations. Family support and cultural influences play a significant role in mediating their work-life balance and entrepreneurial success. The tribal women entrepreneurs of Raigarh Chhattisgarh have different monthly incomes. The results show that the monthly income of tribal women entrepreneurs ranged from ₹ 1000 to above ₹ 50000.This study reported that 36.80% tribal women entrepreneurs has monthly income of ₹ 1000 to ₹ 10000, 34.40% tribal women entrepreneurs has monthly income of ₹ 10000 to ₹ 20000, 16.80% tribal women entrepreneurs has monthly income of ₹ 20000 to ₹ 30000, 17.20% tribal women entrepreneurs has monthly income of ₹ 30000 to ₹ 40000, and 4.80% tribal women entrepreneurs has monthly income above ₹ 50000. This distribution underscores the varied economic impact of entrepreneurial activities within the tribal community, suggesting diverse scales of operation and market integration among these women. These demographic insights are crucial for understanding the contextual factors that shape entrepreneurial pathways within this specific cohort. Furthermore, different demographic traits of tribal women entrepreneurs can affect their access to financing and can create new market opportunities for businesses. The income disparity observed within this group highlights the varied stages of entrepreneurial development and market penetration, suggesting a need for differentiated support mechanisms.

Table-1 : Socio-demographic Characteristics of Tribal Women Entrepreneurs of Raigarh District of Chhattisgarh. (N=250)

Demographic Characters		**Tribal Women Entrepreneurs**		
		Frequency	**%**	**Mean±SD**
Age	25 to 30 years	30	*12-00%*	**2.70±1.05**
	30 to 35 years	86	*34-40%*	
	35 to 40 years	69	*27-60%*	
	above 40 years	65	*26-00%*	
Qualification	Below High School	136	*54-40%*	**2.27±1.39**
	High School	69	*27-60%*	
	Higher Secondary	24	*09-60%*	
	Graduate	16	*06-40%*	
	Post Graduate	04	*01.60%*	

	Other	01	*00-40%*	
Marital Status	Unmarried	71	*28.40%*	**2.35±0.94**
	Married	157	*62.80%*	
	Widow	9	*03.60%*	
	Divorce	13	*05.20%*	
Monthly Income	?1000 to ?10000	92	*36-80%*	**2.51±1.43**
	?10000 to ?20000	86	*34-40%*	
	?20000 to ?30000	42	*16-80%*	
	?30000 to ?40000	18	*07-20%*	
	Above ?50000	12	*04-80%*	

***Source: Primary Data**

Table-2 shows the entrepreneurial self efficacy and entrepreneurial intention levels among the tribal women, revealing specific patterns that inform the subsequent analysis. The statements 1a to 1e pertain to various aspects of entrepreneurial self-efficacy of tribal women, and statements 2a-2e shows different aspects of entrepreneurial intention of tribal women of Raigarh Chhattisgarh. The mean score values of all items regarding entrepreneurial self-efficacy were consistently above 3.5 on a 5-point Likert scale, indicating a generally high perceived capability among tribal women in Raigarh Chhattisgarh. Specifically, items related to entrepreneurial activity, financial matters, planning, marketing, and risk taking exhibited particularly elevated mean scores, suggesting strong confidence in these areas. All the items of entrepreneurial self efficacy reported a negative skewness. This observation implies a distribution skewed towards higher self-efficacy scores, indicating that most respondents reported strong beliefs in their entrepreneurial capabilities rather than a neutral or negative sentiment. Also the items of entrepreneurial self efficacy of tribal women of Raigarh Chhattisgarh recorded a positive and negative kurtosis, indicating that more than half of the respondents scored above the average on self-efficacy measures. he Chi-Square (goodness for fit) test was conducted to determine the distribution of responses. The values of Chi-Square test indicated that there was a statistically significant variation in responses across all items of entrepreneurial self-efficacy, further reinforcing the reliability of the observed mean differences.

The mean score values for entrepreneurship intention among tribal women of Chhattisgarh are given in Table-2. This table provides a detailed breakdown of the average entrepreneurship intention perceptions across various dimensions, highlighting areas of relative strength and weakness. Five parameters (2a-2e) were recognized for collecting the response of tribal women regarding their entrepreneurship intention. The mean score values for the collected responses was between 3.29 to 3.94, which indicate that the tribal women of Chhattisgarh bear strong entrepreneurship intention. It

was noted that the entrepreneurship of tribal women revolve round the forest and forest based products. This aligns with broader observations that Indigenous communities often leverage their deep connection to natural resources for economic activities, emphasizing forest-based economies as a primary source of livelihood and entrepreneurial ventures. The results reveal that a significant portion of tribal women exhibited high levels of entrepreneurial intention, particularly those engaged in ventures related to traditional crafts and resource management From past few years the Government of Chhattisgarh has launched different schemes for the economic empowerment of tribal women. These schemes has attracted the tribal women for their economic, social and psychological empowerment. Chi-Square (goodness for fit) test was used to determine the distribution of responses regarding entrepreneurship intention among tribal women of Chhattisgarh. The results of Chi-square test reveal that heir is a significant variation among the perception of entrepreneurship intention among the tribal women, indicating a diversity of motivational factors and perceived opportunities. This variation underscores the importance of nuanced approaches to policy development and support mechanisms, recognizing that a one-size-fits-all strategy may not effectively address the diverse entrepreneurial aspirations within this demographics.

Table-2 : Descriptive statistics of the variables considered in the study. (N=250)

Statement	N	Mean	SD	Min	Max	Skewness	Kurtosis	Chi-Square Value
01. Entrepreneurial Self-Efficacy (ESE)								
1a. ESE in entrepreneurial activity	250	3.85	0.83	2.21	4.37	-0.914	1.181	**47.28***
1b. ESE in financial matters	250	3.57	1.53	2.05	4.26	-1.019	-0.971	**29.16***
1c. ESE in marketing	250	3.69	1.56	1.98	4.41	-0.541	0.619	**12.22***
1d. ESE in planning	250	3.58	1.72	2.17	4.61	-0.822	-0.358	**39.42***
1e. ESE in risk taking	250	3.55	1.73	2.00	4.25	-0.898	1.266	**31.05***
02. Entrepreneurial Intention (EI)								
2a. Start a business in future	250	3.94	1.28	2.75	4.56	1.189	1.359	**11.78***
2b. Make every effort to start a business	250	3.67	1.16	2.69	4.33	-1.054	-0.735	**47.16***
2c. Determined to create a firm	250	3.42	1.12	2.81	4.39	2.013	1.131	**21.00***
2d. Can do anything to be an entrepreneur	250	3.29	1.57	2.46	4.68	0.988	0.827	**26.17***
2e. Entrepreneurism is a good career for me	250	3.56	1.32	2.64	4.51	-0.640	-1.334	**22.41***

Chi-Square test = Goodness for Fit* Statistically significant at pd"0.05

The study examined the influence of various demographic attributes on the self-perceived capabilities of tribal women to successfully engage in entrepreneurial activities. Table-3 shows the influence of demographic characteristics on the entrepreneurial self-efficacy of tribal women, offering insights into potential disparities or commonalities within the sample population. The results reveal that the age of the tribal women has a significant effect (F= 2.43, p=0.0483) on their entrepreneurial self-efficacy, with older women often demonstrating higher levels of confidence in their entrepreneurial capabilities. This could be attributed to accumulated life experiences and acquired skills that enhance their belief in their ability to overcome challenges inherent in business ventures. The educational qualification of the respondents also plays a crucial role, as women with higher levels of education exhibit increased entrepreneurial self-efficacy, likely due to enhanced knowledge acquisition and problem-solving skills. The ANOVA results highlight that the level of education of tribal women significantly affect (F= 3.65, p=0.033) their entrepreneurial self-efficacy. Similarly the marital status of the tribal women significantly affect (F= 3.82, p=0.010) their entrepreneurial self-efficacy. The income of the tribal women also emerged as a significant factor (F= 2.81, p=0.010) with those possessing higher incomes often demonstrating greater confidence in their entrepreneurial ventures, possibly reflecting access to resources or prior success. These findings underscore the multifaceted nature of entrepreneurial self-efficacy among tribal women, where socio-demographic factors like age, education, marital status, and income collectively shape their confidence and perceived ability to embark on entrepreneurial journeys. Inlight of above results the null hypothesis (H01: There is no significant impact of demographic factors on the entrepreneurial self-efficacy of tribal women in Chhattisgarh) is rejected and alternate hypothesis (H1: There is a significant impact of demographic factors on the entrepreneurial self-efficacy of tribal women in Chhattisgarh) is accepted. These results confirm that the demographic characters have a significant influence on the entrepreneurial self-efficacy of tribal women in Chhattisgarh.

Table-3 : ANOVA Summary (Demographic Characteristics vs Entrepreneurial Intention)

Demographic Characteristics	**Source of Variation**	**SS**	**df**	**MS**	**F-value**	**p-Value**
Age	Between Variable	214.16	4	53.54	2.43	0.0483*
	Within Variables	5416.25	246	22.02		
	Total	5630.41	250			
Qualification	Between Variable	367.05	5	73.41	3.65	0.033*
	Within Variables	4921.37	245	20.09		
	Total	5288.42	250			

Marital Status	Between Variable	209.63	3	69.88	3.82	0.010*
	Within Variables	4516.28	247	18.28		
	Total	4725.91	250			
Income	Between Variable	227.50	4	56.88	2.81	0.026*
	Within Variables	4970.71	246	20.21		
	Total	5198.21	250			

Note: SS= Sum of Square; MS = Mean Sum of Squares, df= Degree of Freedom; F-value= F calculated*Statistically significant at pd"0.05

The influence of demographic characteristics of tribal women on their entrepreneurial intentions is a critical area of investigation, especially considering the unique socio-economic context of tribal communities. Table-4 shows the ANOVA summary which highlights the influence of demographic characteristics of tribal women on their entrepreneurial. The results illustrate that the age of tribal women has a significant effect (F=2.45, p= 0.0468) on the entrepreneurial intentions, suggesting that entrepreneurial drive may evolve with age and experience within this demographic. The other demographic characteristics of tribal women like level of education (F=3.35; p =0.006), marital status (F= 2.96, p =0.032) and income (F= 3.63, p=0.048) significantly influence the entrepreneurial intention, indicating that these factors play a crucial role in shaping their decisions to pursue entrepreneurial ventures. This interaction of demographic variables underscores the complexity of fostering entrepreneurship within tribal populations, where traditional social structures and access to resources can significantly mediate individual aspirations. Inlight of above results the null hypothesis (H02: There is no significant impact of demographic factors on the entrepreneurial intentions of tribal women in Chhattisgarh)is rejected and alternate hypothesis (H1: There is a significant impact of demographic factors on the entrepreneurial intentions of tribal women in Chhattisgarh) is accepted. These results confirm that the demographic characters have a significant influence on the entrepreneurial intentions of tribal women in Chhattisgarh.

Table-4: ANOVA Summary (Demographic Characteristics vs Entrepreneurial Intention)

Demographic Characteristics	**Source of Variation**	**SS**	**df**	**Ms**	**F-value**	**p-Value**
Age	Between Variable	199.24	4	49.81	2.45	0.0468*
	Within Variables	4992.12	246	20.29		
	Total	5191.36	250			

Qualification	Between Variable	349.39	5	69.88	3.35	0.006*
	Within Variables	5106.91	245	20.84		
	Total	5456.30	250			
Marital Status	Between Variable	194.16	3	64.72	2.96	0.032*
	Within Variables	5408.47	247	21.90		
	Total	5602.63	250			
Income	Between Variable	305.17	4	76.29	3.63	0.068*
	Within Variables	5177.25	246	21.05		
	Total	5482.42	250			

Note : SS= Sum of Square; MS = Mean Sum of Squares, df= Degree of Freedom; F-value= F calculated*Statistically significant at pd”0.05

Table-5 shows the Pearson’s coefficient of correlation (r) between Entrepreneurial Self-Efficacy (ESE) and Entrepreneurial Intention (EI) of tribal women of Chhattisgarh. The results indicate a significant positive correlation, suggesting that higher levels of self-efficacy among these women are associated with stronger entrepreneurial intentions, consistent with prior research on the mediating role of self-efficacy in entrepreneurial pursuits. This finding aligns with previous studies highlighting self-efficacy as a pivotal determinant of entrepreneurial intentions, even within specific cultural contexts such as tribal communities . The higher the entrepreneurial self-efficacy of tribal women of Raigarh Chhattisgarh, then higher their entrepreneurial intentions will be, indicating that perceived capability significantly influences their propensity to engage in entrepreneurial activities. Since this study recorded that the correlation coefficient record a positive relationship underscores the importance of fostering self-efficacy to encourage entrepreneurship among tribal women. Furthermore, this direct relationship suggests that interventions aimed at bolstering confidence and perceived capabilities could effectively translate into a greater willingness to pursue entrepreneurial ventures within these communities. This robust correlation emphasizes that while various factors influence entrepreneurial engagement, the internal conviction of one’s ability, as manifested in entrepreneurial self-efficacy, plays a particularly critical role in shaping the entrepreneurial intentions of tribal women. Inlight of these results the null hypothesis (H03: There is no significant relationship between entrepreneurial self-efficacy and entrepreneurial intention among tribal women of Raigarh Chhattisgarh) is rejected, affirming a statistically significant positive relationship between entrepreneurial self-efficacy and entrepreneurial intention among tribal women.

Table-5. Pearson's coefficient of correlation (r) between Entrepreneurial Self-Efficacy (ESE) and Entrepreneurial Intention (EI) of tribal women of Chhattisgarh.

S.No	Entrepreneurial Intention (EI)	Entrepreneurial Self-Efficacy (ESE) of Tribal Women				
		1a	1b	1c	1d	1e
01.	2a	r = 0.3461 p = 0.021*	r = 0.4105 p =0.0471*	r = 0.5004 p =0.0201*	r = 0.3117 p = 0.0701^{NS}	r = 0.3804 p =0.0370*
02.	2b	r = 0.4310 p = 0.0904^{NS}	r = 0.3704 p =0.0789^{NS}	r = 0.2909 p =0.0060*	r = 0.4133 p = 0.0529^{NS}	r = 0.5106 p =0.1221^{NS}
03.	2c	r = 0.4005 p =0.0573^{NS}	r = 0.3729 p =0.0372*	r = 0.3820 p =0.0302^{NS}	r = 0.4291 p =0.0811^{NS}	r = 0.3407 p =0.0650^{NS}
04.	2d	r = 0.3550 p =0.0619^{NS}	r = 0.4707 p =0.0291*	r = 0.4053 p =0.0304*	r = 0.3801 p =0.0450*	r = 0.2985 p =0.0493*
07.	2e	r = 0.2717 p =0.0597^{NS}	r = 0.3525 p =0.04774*	r = 0.3760 p =0.0373*	r = 0.2863 p =0.0533^{NS}	r = 0.4094 p =0.0210*

Note; r= Pearson's Coefficient of Correlation; p= p-value
* Statistically significant at p=0.05
^{NS} Statistically Not Significant at p=0.05

Implications of the Study :

The findings underscore the necessity of targeted interventions designed to enhance the entrepreneurial self-efficacy of tribal women, which in turn could significantly boost their entrepreneurial intentions and ultimately foster economic development within their communities. Such initiatives should consider the unique cultural context and aspirations of Indigenous populations, aiming to empower them through culturally sensitive entrepreneurial strategies that promote self-determination and community well-being. This aligns with the broader understanding of Indigenous entrepreneurship, which emphasizes the creation and management of ventures by Indigenous people for their collective benefit, extending beyond individual economic gains to encompass social and economic advantages for entire communities. Moreover, the results of this study support the notion that increasing entrepreneurship education and fostering self-efficacy can lead to a greater spirit for entrepreneurial endeavors, as indicated by previous research. This suggests that comprehensive programs focusing on both skill development and confidence-building are crucial for unlocking the entrepreneurial potential within tribal communities.

Suggestions for Future Research :

Future investigations could expand upon these findings by employing longitudinal designs to observe the evolution of entrepreneurial self-efficacy and intentions over time, thus capturing dynamic changes and the long-term impact of interventions. Additionally, future studies could explore the specific cultural factors within tribal communities that either facilitate or impede the development of entrepreneurial self-efficacy, providing a more nuanced understanding of this complex interplay. Further research might also consider conducting comparative studies across different tribal communities or regions to identify variations in entrepreneurial ecosystems and their influence on women's entrepreneurial aspirations. Moreover, examining the role of governmental policies and non-governmental organization initiatives in supporting tribal women entrepreneurs would provide valuable insights into effective support mechanisms. This could involve analyzing the efficacy of existing programs and identifying best practices for promoting entrepreneurial success among tribal women.

Conclusion :

This study substantiates the critical role of entrepreneurial self-efficacy in shaping the entrepreneurial intentions of tribal women, providing a robust empirical foundation for future policy and intervention strategies. The results of this study illustrate that the demographic factors of the tribal women significantly affect their entrepreneurial self-efficacy and entrepreneurial intention. The findings of this also underscore that their is a significant positive correlation between entrepreneurial self-efficacy and entrepreneurial intention, suggesting that fostering self-belief can directly translate into a higher propensity for entrepreneurial engagement among tribal women. These results also reinforce the importance of targeted interventions aimed at bolstering confidence and perceived capabilities, which could effectively translate into a greater willingness to pursue entrepreneurial ventures within these communities. The results can provide a baseline data for the formulation of targeted support programs and educational initiatives designed to empower tribal women in their entrepreneurial pursuits.

Conflict of Interest :

Author don't have any conflict of Interest regarding the publication of this manuscript

Funding :

Authors received no financial support for this research work.

Plagiarism and AI Content :

The author declares that Plagiarism of the manuscript is below 10% similarity level, and 0% AI content detected.

References :

1. Agnihotri, A., & Bhattacharya, S. (2020). Drivers of mompreneurship: evidence from India. *Society and Business Review*, *15*(4), 373. https://doi.org/10.1108/sbr-01-2020-0016
2. Aier, B. (2020). *Entrepreneurship in Nagaland: A Gender Perspective*. https://repository.tribal.gov.in/bitstream/123456789/74718/1/IIPA_2019_Research_0112.pdf
3. Chakraborty, T., Gupta, D., & Chatterjee, B. (2018). "Strong, yet we are vulnerable": role of psychological factors and financial affluence on women's entrepreneurial success. *J for Global Business Advancement*, *11*(6), 726. https://doi.org/10.1504/jgba.2018.097779
4. Chaudhuri, B., & Roy, C. (2017). Regeneration of Forest Resources Based on Tribal Enterprise: An Approach towards an Eco-Friendly Environment. *E-Cadernos CES*, *28*. https://doi.org/10.4000/eces.2735
5. Mazonde, J. M.-G. and N. (2021). Entrepreneurial self efficacy and performance of women-owned SMEs. *African Review of Economics and Finance*. https://african-review.com/view-paper.php?serial=20210608102753-441895
6. Naveen, S., Parida, J. K., & Panda, I. (2023). Tribal women empowerment through entrepreneurship: evidence from Mayurbhanj District, Odisha. *Frontiers in Sociology*, *8*. https://doi.org/10.3389/fsoc.2023.1158770
7. Sahu, T. N., Agarwala, V., & Maity, S. (2021). Effectiveness of microcredit in employment generation and livelihood transformation of tribal women entrepreneurs: evidence from PMMY. *Journal of Small Business & Entrepreneurship*, *36*(1), 53. https://doi.org/10.1080/08276331.2021.1928847
8. Thakur, S. S., & Ray, A. (2020). Dynamism and performance of indigenous entrepreneurs: role of tribal culture and failure of policy incentives in Mizoram (India). *International Journal of Entrepreneurship and Small Business*, *41*(1), 129. https://doi.org/10.1504/ijesb.2020.109435

Author Email: dimpalgarg457@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Sept. 2025 Page No. : 329-334

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

The Anatomy of Indifference : Literature as an Antidote to Modern Insensitivity

Dr. S. Farhana Zabeen
Associate Professor, Department of English
Vels Institute of Science, Technology and Advanced Studies, Pallavaram
Dr. I. Jane Austen
Assistant Professor, Department of English
Vels Institute of Science, Technology and Advanced Studies, Pallavaram

Abstract :

In an era defined by globalization, digital saturation, and systemic crises, a pervasive insensitivity within human interactions has become a defining social malady. This paper argues that this growing emotional detachment—manifested as empathy fatigue, communal disintegration, and the normalization of violence—is not merely a sociological issue but a profound humanistic one. It posits that literature, as a unique repository of human experience and a vehicle for complex narrative, serves as a crucial antidote to this desensitization. Through its core mechanisms of fostering empathy via character immersion, demanding critical reflection through defamiliarization, and preserving nuanced historical and emotional testimony, literature actively re-sensitizes the individual and the collective. By examining theoretical frameworks from philosophers like Martha Nussbaum and Suzanne Keen, and analyzing literary examples from works such as Khaled Hosseini's The Kite Runner, George Orwell's 1984, and poetry by Warsan Shire, this paper demonstrates how the act of reading is an ethical exercise. It concludes that in a world increasingly prone to simplification and indifference, the sustained, deep engagement demanded by literature is not a luxury but a vital necessity for cultivating the moral imagination required to rebuild a more compassionate and connected humanity.

Keywords : Insensitivity, Empathy, Literature, Moral Imagination, Defamiliarization, Narrative, Compassion, Digital Age, Ethics, Reading.

Introduction : The Age of Apathy :

We live in a world of paradoxical connectivity. Technological advancements have collapsed

geographical distances, offering unprecedented access to information and to the lives of others. Yet, alongside this hyper-connection, a palpable and growing insensitivity seems to characterize contemporary human existence. This is not the absence of emotion, but rather its selective dissipation—a numbing of our collective moral and emotional nerve endings. We scroll past images of distant war zones with the same passive detachment with which we view advertisements. Polarized political discourse reduces complex human beings to mere labels. Stories of systemic injustice often fail to galvanize sustained action, lost in the relentless churn of the 24-hour news cycle. This insensitivity is a multifaceted phenomenon, born from empathy fatigue, the commodification of attention, and the dehumanizing structures of modern life.

This paper contends that in the face of this growing insensitivity, literature—in its broadest sense encompassing fiction, non-fiction, poetry, and drama—plays an indispensable and active role in re-sensitizing humanity. It is not merely a mirror reflecting our condition but a laboratory for the human spirit, a space where empathy is exercised, critical thought is honed, and our shared humanity is reaffirmed. By transporting readers into the interior lives of others, challenging simplistic narratives, and serving as a permanent testament to human suffering and joy, literature functions as a vital counterweight to the forces of emotional detachment. It is through the slow, deep, and immersive practice of reading that we can reclaim the sensitivity required to engage with the world in a truly human way.

I. Defining the Insensitivity: From Empathy Fatigue to Communal Erosion :

To understand literature's role as an antidote, one must first diagnose the malady. Modern insensitivity is not monolithic; it manifests in several interconnected ways.

First, there is psychic numbing or empathy fatigue. Psychologist Paul Slovic argues that our capacity for compassion is often overwhelmed by statistics. The scale of large-scale tragedies—a million refugees, a hundred thousand deaths in an earthquake—paradoxically shuts down our empathetic response, as the human brain is not wired to comprehend such vast numbers on an emotional level. This is compounded by the digital deluge. Our devices deliver a continuous stream of global suffering directly into our palms, creating a state of perpetual overwhelm. To protect our mental equilibrium, we build psychological calluses, defaulting to a state of passive witnessing that lacks meaningful emotional or ethical engagement.

Second, insensitivity thrives on abstraction and dehumanization. Political and social rhetoric often replaces complex human beings with reductive categories: "illegal aliens," "terrorists," "the elite," "snowflakes." This language strips individuals of their personal stories, histories, and struggles, rendering them as mere problems or obstacles. As philosopher Simon Baron-Cohen notes,

dehumanization is the primary psychological prerequisite for cruelty. When we no longer see the Other as a feeling, hoping, fearing individual like ourselves, the path to indifference—or worse, violence—is cleared.

Third, the architecture of digital life incentivizes insensitivity. Social media platforms thrive on outrage and simplification. Complex debates are reduced to binary takes limited by character counts. Algorithms create echo chambers that shield us from challenging perspectives, reinforcing our biases and framing those who disagree not merely as mistaken but as morally contemptible. The performative nature of online interaction—"slacktivism," virtue-signaling—can often replace genuine, difficult empathy and action with quick, self-congratulatory gestures.

This pervasive insensitivity erodes the foundations of community, democratic discourse, and ultimately, our shared sense of humanity. It creates a world where suffering is acknowledged but not felt, where injustice is seen but not confronted. It is against this backdrop of emotional impoverishment that the value of literature becomes most starkly apparent.

II. The Empathetic Imagination: Stepping into Another's Skin :

The most profound weapon literature wields against insensitivity is its capacity to foster empathy. Empathy, distinct from sympathy, is the ability to understand and share the feelings of another. It is a cognitive and emotional act of imagination.

Martha Nussbaum, in Cultivating Humanity, argues that narrative imagination is a fundamental skill for citizenship. "The ability to think what it might be like to be in the shoes of a person different from oneself," she writes, "is essential to the cultivation of a world that is respectful and humane" (Nussbaum 87). Literature is a training ground for this ability. A news report might tell us that a young Afghan boy from the Hazara ethnicity faces discrimination. This is a fact. But Khaled Hosseini's The Kite Runner forces us to live that fact through the character of Hassan. We experience his unwavering loyalty, feel the sting of his betrayal, and witness the systemic brutality that shapes his life. We are not told about his pain; we inhabit it. This narrative immersion bypasses the psychic numbing caused by statistics. We are not overwhelmed by a million Hazaras; we are heartbroken by one.

This process is neurological as well as philosophical. Studies in cognitive psychology, such as those discussed by Suzanne Keen in Empathy and the Novel, suggest that when we become engrossed in a story, our brains can mirror the experiences of the characters, activating regions associated with emotion and sensory processing. Reading about a character's fear can trigger a subtle neural response related to fear in the reader. This biological underpinning confirms that reading is not a passive activity but an active simulation of consciousness.

Furthermore, literature specializes in presenting ambiguous and flawed characters, which is

crucial for combating dehumanization. Unlike the one-dimensional villains of propaganda, literary characters are complex. Fyodor Dostoevsky's Raskolnikov in Crime and Punishment is both a murderer and a deeply tormented, intellectually passionate young man. By compelling us to engage with his internal reasoning and anguish, the novel prevents us from writing him off simply as a "monster." It forces a uncomfortable empathy, complicating our moral judgments and challenging our instinct to oversimplify. This practice is essential training for engaging with the complex, flawed reality of the human world outside of books.

III. Defamiliarization : Making the Ordinary Strange and the Strange Familiar :

Beyond fostering empathy for individuals, literature fights insensitivity by challenging our desensitized perceptions of the world itself. This is achieved through a concept Russian Formalist critic Viktor Shklovsky termed ostranenie, or defamiliarization.

The routine of daily life can render us insensitive to the beauty, absurdity, and injustice that surrounds us. We stop seeing the world anew. Literature, and particularly poetry, breaks this automaticity. It forces us to perceive familiar things with fresh eyes. Consider William Wordsworth's definition of poetry as "the spontaneous overflow of powerful feelings... recollected in tranquility." The poet takes a common scene—a field of daffodils—and, through language and reflection, re-sensitizes us to its emotional impact, making us see it as if for the first time.

More powerfully, literature can defamiliarize social and political norms that we have accepted through habit, exposing their inherent absurdity or cruelty. George Orwell's 1984 is a masterwork of defamiliarization. By presenting a terrifyingly logical extreme of totalitarianism, it makes us see the subtle ways language is manipulated ("Newspeak"), history is erased, and surveillance is normalized in our own world. It takes abstract concepts like "propaganda" and makes them visceral and horrifying. Reading it acts as a vaccine, sensitizing us to the early symptoms of ideological disease in our own societies.

Similarly, the poetry of Warsan Shire, specifically works like "Home," defamiliarizes the experience of the refugee. It rejects the cold, political term "migrant" and replaces it with a visceral, terrifying image :

"no one leaves home unless / home is the mouth of a shark... / you have to understand, / that no one puts their children in a boat / unless the water is safer than the land."

This language shatters the insensitivity built by political rhetoric. It forces the reader to reconceive a refugee not as a statistic or a problem, but as a parent acting out of desperate, gut-wrenching love and fear. It makes the strange, distant concept of "fleeing a warzone" familiar in the most human terms possible, thereby demanding an empathetic response that news headlines often fail

to elicit.

IV. Testimony and Memory: Literature as a Bulwark Against Historical Insensitivity :

Insensitivity is often facilitated by forgetfulness and denial. When past atrocities are whitewashed, minimized, or forgotten altogether, the path to repeating them is smoothed. Literature serves as an indelible record, a testimony that refuses to let humanity become insensitive to its own history.

The genre of Holocaust literature, exemplified by Elie Wiesel's Night or Primo Levi's Survival in Auschwitz, exists not just as history but as a sacred, moral imperative. Wiesel stated that he wrote "to prevent the dead from dying again." His sparse, devastating prose is a permanent testament to the depths of human cruelty and the fragility of civilization. To read Night is to be forcibly sensitized to the Holocaust in a way that a textbook chronology can never achieve. It ensures that the phrase "six million Jews" is not just a number we become numb to, but is filled with the memory of individual faces, screams, and silences.

This function extends to all forms of social injustice. Harper Lee's To Kill a Mockingbird sensitized generations of readers to the brutal realities of racial prejudice in the American South. It did so not through a lecture, but through the innocent yet perceptive eyes of a child, Scout Finch, making the injustice both stark and painfully personal. Similarly, contemporary novels like Colson Whitehead's The Nickel Boys, which exposes the horrors of a racist reform school, ensure that this buried history is excavated and felt, not just known.

In this role, literature acts as the conscience of humanity. It is a repository for the truths that power often seeks to erase. By preserving these narratives in their most emotionally potent form, literature fights the insensitivity of historical amnesia and ensures that the lessons of the past, written in blood and suffering, remain vivid and imperative for future generations.

V. The Act of Reading: A Counter-Cultural Practice of Attention :

The very form of deep reading is itself an act of resistance against modern insensitivity. The digital economy is built on the commodification of attention. It rewards speed, distraction, and superficial engagement—the very antithesis of the sensitive, considered response.

Engaging with a serious novel or a book of poetry demands the opposite. It requires sustained, focused attention, patience, and a willingness to sit with complexity and ambiguity. It is a slow, linear process that cannot be rushed or efficiently multitasked. In a world of hot takes and tl;dr (too long; didn't read), choosing to read literature is a counter-cultural practice. It is a training in the kind of deep attention that is necessary for genuine empathy and critical thought.

This practice of "slow reading" mirrors the practice of sensitivity. Just as we must patiently

unravel a complex narrative, we must patiently seek to understand a complex human being. Just as we must sit with the unresolved tension in a novel, we must learn to tolerate ambiguity and nuance in real life. The skills cultivated in the quiet space of reading are directly transferable to the skills needed to engage sensitively with the world.

Conclusion : The Necessary Luxury :

The growing insensitivity in humanity is a crisis of connection, a failure of moral imagination. It is fueled by forces that are endemic to our modern age—information overload, algorithmic isolation, and reductive discourse. In this landscape, literature is not an escapist luxury but a critical tool for survival. It is a machine for generating empathy, allowing us to live a thousand lives and walk in a thousand pairs of shoes. It is a lens of defamiliarization, scrubbing the haze of habit from our eyes and allowing us to see the world—and its injustices—with renewed clarity and outrage. It is a sacred testament, guarding against the insensitivity of forgetfulness and ensuring the voices of the suffering are never silenced.

Ultimately, literature's role is to keep the human heart supple and responsive. In a world that often seems to prize hardness and efficiency above all else, the sensitive, engaged, and morally imaginative individual that literature helps to create is our greatest hope. By reminding us of our shared capacity for love, loss, fear, and joy, literature does not just reflect our humanity; it actively preserves and cultivates it, serving as one of the most vital antidotes to the creeping indifference of our time.

Works Cited :

1. Baron-Cohen, Simon. *The Science of Evil : On Empathy and the Origins of Cruelty*. Basic Books, 2011.
2. Dostoevsky, Fyodor. *Crime and Punishment*. 1866. Translated by Constance Garnett, Penguin Classics, 2002.
3. Keen, Suzanne. *Empathy and the Novel*. Oxford University Press, 2007.
4. Nussbaum, Martha C. *Cultivating Humanity : A Classical Defense of Reform in Liberal Education*. Harvard University Press, 1997.
5. Orwell, George. *1984*. Secker and Warburg, 1949.
6. Shire, Warsan. "Home." *Teaching My Mother How to Give Birth*, flipped eye publishing, 2011.
7. Shklovsky, Viktor. "Art as Technique." *Russian Formalist Criticism: Four Essays*, edited and translated by Lee T. Lemon and Marion J. Reis, University of Nebraska Press, 1965, pp. 3-24.
8. Slovic, Paul. "If I Look at the Mass I Will Never Act: Psychic Numbing and Genocide." *Judgment and Decision Making*, vol. 2, no. 2, 2007, pp. 79-95.
9. Wiesel, Elie. *Night*. Translated by Marion Wiesel, Hill and Wang, 2006.
10. Wordsworth, William. "Preface to Lyrical Ballads." *Lyrical Ballads*, 1802. Edited by R.L. Brett and A.R. Jones, Routledge, 2005.

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Sept. 2025 Page No. : 335-345

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

Quest for Self-Identity and Independence of Women in Preeti Shenoy's The Secret Wishlist

Dr. R. Abeetha, Assistant Professor,
Dr .A. Jayashree Prabhakar, Professor,
Department of English, VISTAS, Pallavaram, Chennai.

Abstract :

Preeti Shenoy 's THE SECRET WISHLIST is an interesting story of a lady who attempts to recover control of her life and battle against the issues that have made her life exhausting and dull. The Secret Wishlist is likewise a grasping story that one see in and around occurring with many wedded ladies in India. This story is a mission of viewing as the 'own identity' and engaging with the outside world. Written in an itemized way and strong portrayal, this novel acquaints readers with characters that are perfectly outlined and accompanied profound qualities. Here in this paper, much spotlight is on the independence of women protagonists as they continued looking for explicit space in existence with character and uniqueness.

Key words : Self-identity, True self, and Suppression.

Introduction :

Shenoy has set all the protagonists with the zeal to assert themselves for self-independence in an orthodox modern society which is still bounded with the traditional surrounding. At the same time, her women characters rebel against deep-rooted family unit values and the organization of the marriage to covet self -autonomy and self-esteem not only outside the home but inside too. Shenoy has basically written about female; their matrimony, life after conjugal bond, their pursuit of individuality, their suffering and predicament if failing to accomplish the aspired outcome in their life. 'Quest for Identity' in the novel of PreetiShenoy"The Secret Wishlist" "Novel present the changing image of women; moving away from traditional portrayals of enduring women, self- sacrificing women towards self-assured, assertive and ambitious women making society aware of their demands and in this way providing a medium of self-expression." The Indian woman is caught in flux of tradition and modernity saddled with burden of the past to cast off her aspirations. In the novels of PreetiShenoy the women go

through transitional phase where they become different from traditional women and want to tread new paths. The modern woman does not find any sense in such self-sacrifice and yearns for self-expression, individuality, and self- identity. A woman is never regarded as an autonomous being since she has always been assigned a subordinate and a relative position.

PreetiShenoy's women characters are passionate about life, determined towardstheir careers, independent, bold and unfettered. They are in the thirst of identity filled with individuality. The reader can easily connect them and sympathize with the protagonist, her sufferings and her quest for happiness. The story portrays the woeful plight of a woman in typical patriarchal society, where her personal interests have no place. They propel out the idea of being a traditional self-sacrificing and self-denying woman. Diksha, the protagonist, like an average Indian woman, accepts whatever forced upon her, first by her parents and then by her husband. But life is not merely accepting what it offers. And it is never late to start when you are poised to turn your dreams into reality.

The story revolves around Diksha, Ankit, Tanu, Sandeep and Abhay. It started off in Chennai, where, as a sixteen-year-old, Diksha was like any other typical teenager.Diksha an intelligent enthusiastic girl in her sixteen excels in her academics which add proud to her parents. Her best friend Tanu spends hours and hours of time studying, discussing their latest crushes and gossiping. The arrival of Ankit, Diksha's elder brother's friend leads the story to a different pace. Both Ankit and Diksha start liking each other and they spent quite a bit of time together without the knowledge of either the parents or her elder brother. When the first opportunity for an overnight travel for a school project is arised, both of them jump at it. A single mistake done in her teens makes her life take a huge turn. Life after that was out of her control and all the other happenings was decided according to her parents wish. She lost the trust and the unconditional love of her parents and was treated like a murderer. Unconcerned with the thoughts of Diksha they made her to act according to their wish. She was transferred to a girl's school and was allowed only to join in the college for women. No other second chance was given to her to rectify her mistake. However, things there take a turn for the worse due to which the lives of Ankit and Diksha are forever changed. Diksha indicates this through her following words,

"This one incident is going to change the course of my entire life. But I have no idea to what extent and, for the moment,all I feel is this huge heaviness in my heart and the horrible feeling that life as I know it is about to change forever" (Pg-61).

Diksha attempts to get back the love and trust of her parents which ends in vain. The cruel attitude of her parents towards her reminded her of her mistake often and she dies with guilt. She yearns to prove her parents of her realization about her mistake and surrenders her wholly to the wish

of her parents. Her thrusts to prove her loyalty ends her life into the loveless life of marriage at the age of nineteen. This compelled sacrifice leaves a void and leads to dissatisfaction in her marriage life which she never expect for.

"If my parents had asked me to walk on coals in order to win back their trust, I would gladly have (Pg-123).

Diksha thought that marriage would bring her an escape from the restricted life of her parents and will be free from her stressful past and gives herself in marriage willingly in order to pacify her parents. But unfortunately her decision seems to be wrong where, she finds her marriage turns more regretful due to her husband's insensitive nature.The story then drifts to the present. In Bangalore, Diksha is married to Sandeep and they have a son Abhay. Diksha's entire day, rather, existence revolves around both of them. Right from making the morning tea, to breakfast, lunch and dinner to catering to every whim and fancy of Sandeep and Abhay, Diksha seemed to not have an individual life at all.Life has changed completely after marriage. Diksha is a timid house wife, a submissive and dependent wife who is scared of her own husband to whom she could not even express her feelings. Diksha was no more the same person who she used to be. Diksha seems to be happy and wanted to prove herself a great woman obeying her husband, and her parents but the fact is that in the process of pleasing her parents and family she has been suppressed of her own desires. Her priorities have suddenly changed. She had to think about others all the time. She can't do what she wanted to do. Sometimes she knew that something is wrong but the people around her made her feel that it was she who is always wrong. If she does her best, nobody was going to appreciate it. Diksha explains her misery as follows,

"The pattern that a couple inadvertently sets in the early years of marriage continues even later, unless a conscious effort is made to change it.That never happened in our case.And so, to this day, he and our nine-year-old son, Abhay, eat together and leave.I always eat later. The praise has stopped though. He does not utter even one word in appreciation these days". (Pg-9) After marriage, she is entrusted with new responsibilities; now she is not alone and have take care of her partner and his needs. She needed to sacrifice her personal agendas and egos for benefits of both. She does not seem to mind her daily mundane life either.

Dikshafeels "How can I tell Vibha all this? How can I admit to her that, yes? I feeltrapped with Sandeep" (Pg-11).

Before marriage Diksha spent a lot of time with her friends and for her personal interests. After marriage she does not have time to even think about these. She had to think only about her husband, keeping her son happy; work at home. She had no time for herself. She felt her life was empty and she was wasting her life. Diksha cries,

"The emptiness of my life has begun to gnaw at me, eating me up from inside" (Pg-12).

Diksha had lived her life for Sandeep, and for her son. Diksha is a timid house wife, a submissive and dependent wife who is scared of her own husband to whom she could not even express her feelingsAfter being a devoted mother and wife, now she finds that she don't know herself. She had forgotten what she felt about things; don't feel respected by her husband. She doesn't know what she liked, and only has a vague sense about what shedoesn't like. She felt lost. Diksha explains her feelings as follows,

"What have I done with my life?

Where am I headed?

I feel miserable and sorry as I sit there and take stock of my life.I have everything, yet I have nothing. And I have no ideawhat I am going to do" (16).

Diksha and Sandeep had been together for almost fifteen years. Lately, she felt as though she was more of a maid or caretaker than his wife. She did the laundry (wash, dry, fold and hang), the dishes, the cooking, ALL of the cleaning, collect the trash, take the trash out, and take care of their son. Diksha says,

"Other than being a wife and a mother, I truly am nothing"[pg.31]

She didn't even wanted to take up a professional career of own and finds to be happy as a housewife. She is contended and accustomed to the life given.

"We all must really live our lives,Diksha. We should do what makes us happy.

I kept pushing myself in career, as I wanted to prove that I was as good as any man" [pg.74]

Diksha as repentance for the act of sin at her early age she fulfills her duty as a wife neglecting all her desires.When she was eighteen she has been married to Sandeep an insensitive husband who never cares for her feelings. Sandeep is totally materialistic where his focus is solely on his job and his earnings rather than his family. Sandeep is so conservative, selfish, cold and insensitive without any emotions. He doesn't even share an emotional with his own mother, wife and son. Diksha expresses her trauma and emptiness as :

"He looks at me as though I have slapped him… He looks at me as though,

I have just confessed my desire to become a strip dancer" (pg. 31).

He has never even asked her to join for a cup of tea together and never uttereda word of appreciation which she longs for.

"I hate my life as I dully hand over the cup of tea to Sandeep who takes it without even an acknowledgement and goes back to reading his newspaper". [Pg.27).

After marriage, the reality of living together striped away all the pretenses and real picture comes out. After marriage, she learned about her husband's habits, preferences and routine which was annoying or disgusting. But, shegot used to them. Even though she really found it hard to adapt, she never made attempts to talk it over and let him know how she felt.She is not happy and content with the loveless life of her marriage. The stressful present takes her to the fanciful past which she cherishes forever. She was hunted between her past and the present which fetches additional difficulties in her married life.

"I used to be a person with hopes, ambitious and a desire to life to the brim" (pg. 9). Vibha explains,

"Fact is, he never promised to make you happy, Diksha.

It was never about you.

It wasalways about him.

You were content then.

You agreed, knowing what you were getting into. You have made your bed, now lie in it" (29).

Diksha compares herself with Vibha thinking,

"She is leading the life she wants.

She has a job she enjoys, has good help at home, is independent and smart, everything I am not"(pg. 11).

She has been suppressed for long and is under psychological torment which expresses the dissatisfaction and vacuum in life.

"I want something more from my life.

I want to do something about it" (Pg- 16).

"But I do my duty as a wife" (Pg-62).

However; a sudden event in her cousin's life seems to jolt her out of her existence. At the behest of the cousin, she decided to try and take some control over her life and makes a wishlist – a list of things which she truly wanted to do. Included in the list are items like snorkeling, getting drunk, wear a bikini and learning salsa. Vibha says,

Is it important to you or not?

Just a moment ago, you were complaining bitterly about having lived your life so far as per your parents' or husband's wishes. So I want you to write down what is it that YOU want on this piece of paper. Put down everything that will make YOU happy, she speaks slowly as though speaking to a child."(76)

"I have completely lost track of what I want.

I have played the role of wife and mother to perfection.

So much so that I have forgotten what I want as an individual. My identity is truly Sandeep's wife or Abhay's mother (Pg-16).

Diksha doesn't aware of how to get back her identity rather spending her life in serving her husband and her son. She feels that she has lost her track with passion and desire and is helpless. Diksha was caught into the traditional customary where she was made to act accordingly.

"You do not realize when or how the easy familiarity gets replaced by a'taken-for-granted' attitude over the years.But the time you do, it isoften too late. Habits have been formed, patterns have been set.

And a comfortzone has been established. A zone that is hard to get out of" (Pg.27).

Sandeep's wish which includes physical outfits too. She was treated almost like a maid servant than as a wife. Sandeep never considers the needs and happiness of others even of his son. Diksha was considered as a mere object where Sandeep claims his ownership over her. Even his love making is seemed to be an act of owenership which would be so mechanical without any love for his wife. He never asks for Diksha's wish and expectations even her longing for a weekend outing seems unfulfilled. She feels that the emptiness of her life keeps haunting and realizes that she not lived her life at all. Diksha dare not to express her desires and feelings over Sandeep. She herself admits that she longs for a better life considering the present one as the worst part of life where her needs, demands, desires, aspirations expectations, love for life and attachment seems to be unnoticed.

"I have no idea what I want anymore.

What have I done with my life? Where am I headed?

I feel miserable and sorry as I sit there and take stock of my life. I have everything, yet I have nothing" (pg.16).

Diksha feels being trapped within the conventional life of Sandeep where she finds no space for her individuality. Diksha longs for a life of her own building up her career and being independent with self-identity. Lack of appreciation and recognition from her husband for her work makes her to feel worthless and she thinks that she has been wasting her life all along. Life is not something to be lived according to the designs of others leaving one's own self-respect rather it is something to be experienced with love, hope and determination. It is not about serving people under compulsion without any acknowledgement but is of identifying and exhibiting one's own affairs of life. Sandeep being so selfish seems to prioritize his happiness than any unconcerned with the innocent desires of his own nine year old son. Diksha was never allowed to voice for her wanting. She was totally detached from

her parents and brother and the treatment of them towards her creates enormous bitterness over them. She was made to live her life as of her parent's wish which she does without any compromise where after marriage it was all about Sandeep. She feels that she has been pushed into things which are against her will. There occurs a battle between her true-self and the transformed self where she is caught under the game of desire and restrictions of tradition as **"I really am a bundle of contradictions" (pg.18).** Sandeep was there for her neither in her happy times nor in her hard times.

Diksha is bored of the marriage life with Sandeep and she feels being trapped in the name of marriage. She has been suppressed all her desires for the sake of her parents and surrenders herself for the life she never wish for. She admits to Vibha that she is not at all happy in her married life. She was unable to live a life of her own.

It is as though I have been living in a dream all these years and,like Rip Van Winkle, have suddenly woken up. What is it that

I want? (Apart from raising my child well and keeping house).

I know I want something more from my life. I want to do something about it.But what? I really don't know (pg. 16).

The above line shows how she longs for her independent life. Her whole life seems to be void and feels that she has not lived her life at all. Her individual self seems to be destroyed and is made to act according every others wish ignoring her own.

"It really feels you are dancing to everyone's tunes but you have forgotten to listen to the music in your own heart" (pg- 104).

Diksha'smother-in-law is veryunderstanding and supportive.

"She is truly modern, my mother-in-law.

She is so practical and correct in her thinking." [Pg- 81]

She set the tone for the dynamic between both from day one, and was a source of comfort and strength as she bumbled around trying to figure out what this whole marriage/motherhood thing was all about. She is adaptable to the changes in the society and has a positive outlook. She is an understandable lady who supports and encourages her daughter-in-law when she wants to learn salsa dance.

"You must take the qualifying exams… No knowledge is ever wasted." [Pg-232]

She accepts that people should change according to the changes in the society, and that it's not wise to stick to conservative thoughts.**"People have to change with changing times." [Pg- 81]**

She has empathy for Diksha and shares her experiences and views on women freedom when Diksha voices out her fees.You know, I felt much the same way.I too got married to Sandeep's father,

way too early.

I have never ever lived my life or done things for myself. But that was okay for women of that generation.

Certainly not of your generation." [P 122]

Right from the beginning she was not allowed to express her own feelings. Diksha and her transformation from innocent dependent dutiful wife to an independent courageous woman help her to take the right path of life of her wish.

Diksha's mother-in-law was unhappy with the narrow mindedness of her son. She also observes detachedly, who is on the wrong side. She feels bad for her son's curt and cold nature, his insensibility and his orthodox thoughts. She says to her grandson —

"I wish your papa had half your sense." [Pg- 232]

She repents for her son's narrow minded and selfcentric nature. **"Sadly, my son is selfish idiot. I erred in raising him." [Pg- 120] "I really think that my son should broaden his view a little… he has dug his own grave."[P 253, 254]**

She is the one who stands by her daughter-in-law when she wants to walk away from her son. This is a peculiar depiction of a new woman who could understand the emotions of her daughter-in-law and supports her in her decision. Her mother-in-law is adaptable to the changes in the society and has a positive outlook. This dimension is new to society and it takes us all by surprise.She accepts that people should change according to the changes in the society, and that it's not wise to stick to conservative thoughts. She is not happy with the narrow mindedness of her son. She also observes detachedly, who is on the wrong side. She feels bad for her son's curt and cold nature, his insensibility and his orthodox thoughts. She is the one who stands by her daughter-in-law when she wants to walk away from her son. This is a peculiar depiction of a woman who could understand the emotions of her daughter-in- law and supports her in her decision. When he comes to know about Diksha's salsa class his act was so violent that he slaps and drags her out of the class in front of everyone of which she was humiliated of her respect. Sandeep, felt shocked and couldn't realize what was happening.He behaved rudely to her dance partner Gaurav. Sandeep punched Gaurav on the face with his right hand. He shouted at Gaurav which made Diksha frightened. He accused Diksha for dancing with other men. For each word hurt Diksha felt like slapping on her face. Diksha claims,

"Which century is Sandeep living in?

I was only dancing, something I love doing, something I am good at.

How can he be so narrow- minded?

How dare he do this?

Treat me like I am his personal slave" (Pg-187).

It is this in human behavior of Sandeep made her to question him expecting the treatment of at least a human being. She was totally broken and feels defeated and vulnerable and was completely trapped in the hands of Sandeep.

"You have always made decisions for me and you have presumed I am happy.

It is you who forget that a mother and a wife is also a woman and a humanbeing, just like everyone else and deserves to be treated right" (Pg-191).

The suppression of all her desires broke out at a point where she decides to live the remaining according to her wish and starts exhibiting her wish list. It was Vibha who kindles the hidden affairs of Diksha and helps her to identify a meaning for her existence. She finds a way to be worth lived and was courageous enough to leave away the conventional life. Diksha was not even allowed to dream of her fancy world and she admits that she never experience fun in life.

By a fortuitous turn of events, Tanu (who has been working at Gurgaon and recently re-located to Bangalore) re-entered her life and told her that Ankithadwanted to get in touch with her since a long time. With this conversation, Diksha's heart and mind were forced to confront whether she would really want to meet him; if yes, what would the future course of action be, etc. How the issue was sorted out forms the climax of the story. Diksha says,

"Ankit truly makes my life worth living.

I know I want him more than anything else.But I lack the courage to say this to Sandeep.

I am terrified of the repercussions and I am terrifiedof facing his wrath"(P212).

Finally, Diksha walks out of her marriage life to pursue her dreams and moved in with Ankit. The innocent crush had swept her life far beyond her reach and imagination. The marriage life has given her nothing rather than the loads of irritation and resentment.She then learned salsa and started her own dance studio. Her family accepted her decisions and choices in life. But, on the other side Diksha's cousin Vibha repents for not having spent enough time with her family. So, she makes amendmends and takes the situation under her control. With this character changes PreetiShenoy clearly states that a woman can build her life and go on, be it professionally or personally. In complete contrast to Diksha, Vibha longs to spend time with her family and hence she quits the job. She finds peace in doing mundane household chores. She starts to take care of her family and enjoys life. Form this characters we can understand that woman has to know what her calling is and has to go in that direction making amendments in life. Diksha felt as a prisoner captivated behind the bars who could never express the feeling and longs to break free from the bars and fly into the world of colors. Diksha finds herself in dilemma, urged by a twist of events, a wish list is born. But a piece of wish list

helps her life back together.

The best part about Preeti's writings was the time and effort spent in etching out each and every character and the interactions between them. Diksha as a bubbly teenager; Diksha as a housewife; Diksha as a housewife wanting to live out her wishlist; Diksha as a housewife imagining what it would be to go back to Ankit – all the various stages had been carved out beautifully. Sandeep's character had been shown to be a typical, male chauvinist who only cared for his well-being without giving a thought to what his wife wanted. He cannot even imagine that she may have any wants. He came across as extremely selfish and a person quite easy to hate.Tanu had been portrayed as Diksha's best friend – someone who had her best interests at heart and who forgave her friend's faults. Ankit is the ideal guy – someone who was compassionate, caring and concerned; who wanted to fulfill each and every wish of Diksha at whatever cost it entails. He lets his heart rule his mind.The significance of the essential life-values and relationships of family and friendshipbased on trust and love is underscored by the novelist as she suggests that these are the veryanchors on which an individual can rely in the times of distress. The story subtly suggests that itis the presence of these values that makes one's life truly fulfilling and satisfying. Therelationships based on these foundations make them typically human and it is on these that thevery powers of the sustenance of life depend.

"The world is indeed a better place where there is love,
friendship, acceptance and hope. Powered by these,
you can indeed overcome anything, including destiny". (Pg- 209)

In today's society, woman play variety of significant roles from their birth till the end of life. The society expects a woman should be independent of thoughts, capable of making decisions, who is willingly able to lead others and above all who designs her life to the best. Finally, according to the society a woman should be successful in her professional life and personal life. But, Woman loves to express their individuality and so they make their own decisions to succeed. Here PreetiShenoy through her portrayal of female characters draws the attention of the readers that in modern India women should have a career and income of their own. She has also analyzed illegitimate affiliation between Ankit and annoys her husband's as an appliance of resistance to conventions and values. She deals with the image of a female character vibha who rejoices her sexuality through her conscious desire to live a life of her own wish. Her sexuality is an arena of contentment in which she is empowered to utilize her body for herself.

Conclusion :

Towards the conclusion of the above, it can be said that women in Shenoy's fiction celebrate their womanhood; they sing women's dream and speak their bodies and passion for life. All the

protagonists in the novels of Shenoy go through a transitional phase where they become unlike conventional women and want to tramp new paths. The modern woman does not find any sense of guilt in such self-sacrifice but longs for articulateness, individualism, and self-identity. Through the creation of her women characters, Shenoy had shaded the notion that a woman is never regarded as an autonomous being since she has always been assigned a subordinate and a relative position. PreetiShenoy's novels reveal the life of women, their struggle for basic rights, the quest for identity and survival. With education, they become conscious of their self-confidence. Towards this novel women's struggle with the established norms of society and the code of conduct it imposes on its counterparts. Their focus is to probe into the inner heart and examine their emotions, passions, and feelings.PreetiShenoy has brought an extraordinary story that tugs at the heartstrings, with insight and wisdom, as she explored the delicate matters of the heart in her novel The Secret Wishlist. The Secret Wish List is full of twist and turns.Preeti's book have this unique characterization, plot development and hidden inspiration with the real sense of Feminism that makes people love it.It's all about family, friendship, love, fears, overcoming fears and passion. It is like a roller coaster ride of feelings and emotions. It's a struggle between your responsibilitiesand your dreams.She also insists on women autonomy. She rightly distinguishes the need for women freedom.

Reference :

1. Shenoy, Preeti. The Secret Wish List. Westland ltd, 2012. Print.
2. Shenoy, Preeti. Rule Brakers.Westland Ltd,2018. Print.
3. http://www.goodreads.com/author/show/ 2872571.Preeti_Shenoy
4. Definition, New Woman-Merriam-Webster Online.http://www.merriam- webster.com/ dictionary/new%2520woman
5. Harper Cooley, Winifred: The New Womanhood (New York, 1904) 31f.
6. Kollontai, Alexandra, 1918, "New Woman" from The New Morality and the Working class https://www.marxists.org/archive/kollonta/1918/new-morality.htm
7. Kollontai, Alexandra, 1918, "New Woman" from The New Morality and the working class.https://www.marxists.org/archive/kollonta/1918/new-morality.htm
8. Role of Women in Modern Society, http://www.directessays.com/viewpaper/2 3563.html
9. Shenoy, Preeti. It Happens for a Reason. Westland ltd, 2014. Print.

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Sept. 2025 Page No. : 346-351

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

Feminine Isolation and Resistance through Nature in Anita Desai's *Fire on the Mountain*

Ms.Greeshma N.P
Research Scholar, Department of English
Dr. I. Jane Austen
Assistant Professor, Department of English
Vels Institute of Science, Technology and Advanced Studies, Pallavaram, Chennai.

Abstract :

There are countless perspectives on nature and the environment in contemporary societies. The notion of ecocriticism offers this method of thinking in this manner. Deep ecology, ecopoetics, and ecofeminism are just a few of the ideas encompassed by ecocriticism. As a social, political, and philosophical movement, ecofeminism views the exploitation of nature and the subjugation of women as being connected. This essay examines how Anita Desai's *Fire on the Mountain* (1977) depicts the isolation and struggle of women through the environment. Ecofeminism promotes our connection to the natural world. Anita Desai excels at portraying women who deeply understand their inner selves and can openly express their deepest emotions.

Key Words : Deep ecology, environment, Ecocriticism, Ecofeminism.

"I am interested in characters who are not average but have retreated or been driven into some extremity or despair and so turned against or made to stand against the general current. It is easy to flow with the current, makes no demands, and costs no effort. But those who cannot follow it, whose heart cries out the great 'no' who fight the current and struggle against it, they know what the demands are, and what it costs to meet them." explains Anita Desai in an interview. In contrast to the majority of other female authors, she is more interested in delving into the minds of her characters, particularly the "thought, emotion, and sensation" that they encounter as they work to find a more realistic way of life than the one that is now available to them.

Feminism is a phrase that describes a developing ideology. The Oxford English Dictionary states that the term "Feminism" originally appeared in the latter part of the nineteenth century and

was defined as possessing characteristics of females. The phrase's definition has evolved, and it now refers to a theory of the political, economic, and social characteristics of the sexes. Feminism, in general, is the philosophy of women's liberation because a woman who identifies as a feminist and is acknowledged as such by others is fundamental to all of its techniques.

In the end, feminism appears as an idea that can include both a philosophy and a movement for sociopolitical change based on a critical examination of male privilege and women's subjugation within any given culture. As a way of thinking, it rejects men's claims that they can decide what is best for women without consulting them, as well as women's subjugation to men in the family and society. This provides a direct challenge to patriarchal ideology, social structure, and systems of power. A clear position and a set of rigorous, exacting attitudes are required since feminism is a worldwide and revolutionary ideology. Because it is concerned with the issue of power, the ideology is political; additionally, it is revolutionary because it challenges the status quo.

How humans connect with their natural environment has long piqued the interest of literary critics. They have researched the ways that literary writers have textualized this vital bond between nature and man. Ecology is the study of how biotic components, or living things, interact with their natural surroundings. Over the past three decades, "ecology" and "ecocriticism" have attracted the most critical attention. In a similar vein, ecocriticism investigates how literary works capture the relationships between living things and their surroundings. Similar to the functional approach to ecocriticism, which highlights the relationship between fiction and ecology and the ecological significance of such writings in the cultural system, this approach emphasizes the connection between fiction and ecology. It acts as a barrier between the natural community's extinction and the ensuing collapse of society. Man's propensity for self-destruction or suicide poses a problem that needs to be addressed as soon as is practical on a worldwide level.

William Rueckert first used the word "Ecocriticism" in his seminal article "Literature and Ecology : An Experiment in Ecocriticism," published in 1978. He expresses an opinion :

The problem…is to find ways of keeping the human community from destroying the natural community, and with it the human community. This is what ecologists like to call the self-destructive or suicidal motive that is inherent in our prevailing and paradoxical attitude toward nature. The conceptual and practical problem is to find the grounds upon which the two communities- the human, and the natural- can coexist, cooperate, and flourish in the biosphere..

Ecocriticism is the result of a rising realization that there won't be anything safe or interesting to discuss shortly unless we take drastic measures. In the early 1990s, when literary criticism first became interested in the environment and green politics, the analytical approach known as

"ecocriticism" was created in the USA. This movement places a lot of emphasis on the relationship between literature and the environment, and eco-critics frequently concur that culture and nature are intertwined. Over the past 20 years, several critics have made an effort to evaluate threats to the environment critically. They underline how important it is to expand the idea of the globe to encompass not just people but also the entire ecosphere.

Environmental movements, anti-nuclear movements, labour movements, movements for animal freedom, and peace movements are only a few of the feminist movements that gave rise to the idea of ecofeminism. The core ideas of ecofeminism, according to Greta Gaard, are founded on ideas about socialism, feminism, and ecology: "is that the ideology which authorizes oppressions such as those based on race, class, gender, sexuality, physical abilities, and species is the same ideology which sanctions the oppression of nature.". The environment that encourages various forms of prejudice, according to ecofeminism, is "an ideology whose fundamental self/other distinction is based on a sense of self that is separate, atomistic.". Ecofeminism is a social, political, and intellectual movement that holds that the exploitation of nature and the enslavement of women are related. The word ecofeminism, often known as ecological feminism, was coined by Françoise d'Eaubonne in 1974. The merger of feminist and ecological principles led to the development of a way of thinking and a movement.

To protect the environment from chaos, several imaginative writers have incorporated nature as a prominent character in their literary works. When these works are analyzed from an eco-critical perspective, the reader learns how all components of the ecosystem, including the social, political, and natural world, are intertwined. To completely understand the literary works' narratives, it is even necessary to know where they are physically located. However, this paper aims to research 'Feminine Isolation and Resistance through Nature in Anita Desai's *Fire on the Mountain'*

Three prominent female characters in Fire on the Mountain play major roles: Nanda Kaul, Raka, and Ila Das. The narrative centers on the relationship between these three women and nature, how it oppresses them, and how they coexist with it. The narrative shows the darker shades of nature, emphasizing how much they match the darker qualities of the females in question. Thus, this story clearly illustrates the connection between ecological concerns, women, and non-human species. Desai created three protagonists for her novel who are trapped in dualistic paradigms in which man is associated with brutality, dominance, fear and loathing, arrogance and power, and in which women and nature are victims in every aspect of existence.

Fire on the Mountain exposes several forms of environmental and gender exploitation. The novel functions as a critique of aggressiveness that focuses on the conditions of the three women

who are either physical or psychological victims of the patriarchal system in terms of women's victimhood. Nanda Kaul, a widowed great-grandmother, suffers because of her roles as a loving wife to an unfaithful husband and a mother to multiple children. Raka, a quiet, withdrawn great-grandchild of hers, has a violent father. Ila Das, a childhood friend of Nanda's, is unmarried and under the control of her reformist brothers. The concept's core element, natural imagery, is heavily emphasized in this work. To communicate the subconscious and underground, Swain recognizes that "there is in her a persistent search for the most appropriate symbols and images in the expression of the subterranean and the subconscious". Anita Desai mostly took inspiration for these pictures and symbols from the natural world.

The *Fire on the Mountain* uses nature to illuminate the pains of women. The tale highlights various parallels between women and natural animals, including birds. The crying of women is perhaps symbolic of the crying of animals :

…her father, home from a party, stumbling and crashing through the curtains of the night, his mouth opening to let out a flood of rotten stench, beating at her mother with hammers and fists of abuse-harsh, filthy abuse that made Raka cower under her bedclothes and wet mattress in fright, feeling the stream of urine warm and weakening between her legs like a stream of blood, and her mother lay down on the floor and shut her eyes and wept. Under her feet, in the dark, Raka felt that flat, wet jelly of her mother's being squelching and quivering so that she didn't know where to put her feet and wept as she tried to get free of it. Ahead of her, no longer on the ground but at some distance now, her mother was crying. Then it was a jackal crying.

The isolation of the Kasauli Hills is comparable to Nanda's existence of aloneness. Raka has the knack of disappearing totally and covertly into the wooded hills. Her abilities are similar to those of insects in the wild. She is a quiet girl who says very little for the whole of the novel. She takes pleasure in her solitude and being in nature. Since Carignano is a desolate and ruined location, Nanda and Raka are both lured there. Anywhere else but here, can she hear the sounds of human dread? Nanda's desire for silence and solitude is skillfully brought forth by the images employed by the novelists. Her longing for complete quiet has been compared to a scorched tree trunk in a forest, a cracked marble pillar in the desert, and a lizard on a stone wall. "A tree trunk could not harbour irritation, nor a pillar annoyance. She would imitate death like a lizard. No one would dare rouse her…"

The Carignano garden reflects Nanda Kaul's desire for seclusion and isolation. She strolls around the grass, breathing in the energizing flower aroma. She enjoys watching the phlox blossom along the border of the lawn. They are tiny, white, and scented, emitting a "fresh and cold" smell. The

garden of Carignano, a bare, empty projection of Nanda Kaul's ego, is also there. Instead of putting a tree in it as any other owner would, she enjoys its bareness. The garden is solitary, just like its owner: "No, she revelled in its bareness, its emptiness. The loose pebbles of the garden pleased her as much as rich turf might another. She cared not to add another tree to the group of apricots by the verandas or the group of tree pines at the gate..

Nature welcomes Raka to Carignano with extravagantly twisted and bent pine trees, the wind, a spider, a lizard, and a white hen. "The child comes in through the gate where the pine trees stood bending and twisting extravagantly in the wind, as though miming a welcome in a modern satiric ballet", the author writes.

She met a spider that groomed its hairs in a corner, saw a lizard's eyes blinking out of a dark groove… a white hen that had insinuated itself into a kitchen unnoticed, saw the flutter of her white dress, squawked out loud and shot past her, making her step aside in surprise.

The moon represents both Raka as a person and the craziness and madness that inspires the impending violence. Nanda initially views cuckoos as domesticated birds, but as they grow older, they are described as "demented birds that raved and beckoned Raka onto a land where there was no sound, only silence, no light, only shade, and skeletons.". As stated by NR Gopal: the only novel … in which nature plays such a vital role on the level of symbolism and imagery, and it has to be accepted that she [Desai] makes effective use of this technique to portray different characters.". Desai's use of imagery and symbolism in her tale is so potent that some critics tend to connect it to current events. With the visual of the bird, "that hunted, fearful bird, distracted and disturbing", she practically joins the outside with the interior in her fight to maintain her distance.

One day, Kasauli is washed out in a dust storm. One of the main issues in the mountainous areas is that it causes forest fires. It leads to the destruction of property, the loss of life, and the degradation of forest resources. However, it's vital to note that the novelist gave her book the title Fire on the Mountain and ended it with this forest fire that Raka started. Let's review the passages: "Look, Nani-look- the forest is on fire… Down in the ravine, the flames spat and crackled around the dry wood and through the dry grass, and black smoke spiraled up over the mountain".

The fire that has been set on the mountain is symbolic of the inner fire that has subtly devoured Nanda Kaul. In Carignano, the burned-black shell of a home that catches Raka's eye symbolizes Nanda Kaul's inner soul, which is consumed by a repressed need for love. Nanda Kaul's unsatisfying marriage with her spouse is the cause of her aversion to involvement. Because of his love connection with Miss David, she avoids getting involved. She is helpless in the face of both her resistance and loneliness. Death breaks the link when she finally succeeds in overcoming her detachment and connecting with

Raka's representation of the outside world. Her complacency is shaken by Ila Das's brutal death. Nanda Kaul's self-collapses when the mask is removed, rudely awakening to the harsh truth of the outside world.

As opposed to Nanda Kaul. Ila Das must deal with life's realities. Hers is not an illusory universe. She does not yearn for or want to isolate herself from the outside world. She is deeply involved both inside and externally. She looks for self-identity and fulfillment while constantly being aware of the joys and difficulties of life. She doesn't get any relief from anything, not even her convictions or her connection with the outside world.

Nanda Kaul is rudely startled out of her fantasy world and attempts to adjust to reality. She admits that, in the end, neither disengagement nor involvement provides a solution to the issues she encountered. Both are uncomfortable, and neither provides any protection. She realizes that the fire Raka started on the mountain is a reflection of her inner fire. "The dark and dismal fictive world is consumed by the ultimate reality that eludes the average human sensibility."

The lives of these women are fascinating because, even though the pursuit of self-identity and individualism finally results in failure, resignation, and death, it is encouraging to see that there has been an underlying awareness of the proper life values and a more fulfilling lifestyle. They have a hard time accepting apathy and a life without love because they are too independent and temperamental to settle for the harsh mechanical existence. Ila Das and Nanda Kaul both reject social standards and cast doubt on the dominating system of values. This awareness, along with persistent doubt and disapproval of how things are now, constitutes a type of protest in and of itself, signifying the growing consciousness: "it is a rebellion right through to the last moment".

In Anita Desai's novels, the natural world and the human world constantly engage in dialogue. In this book, nature serves as a solace as well as a frightening force. While removing the characters from the world of pain and suffering gives them comfort by bringing their attention to the depressing existential facts. The protagonist's inner world and the natural environment are always in dialogue with one another, and during this dialogue, a vivid picture of life's ambivalence is displayed. Nature thus appears in Anita Desai's *Fire on the Mountain* as an ironic force that permeates existence in terms of both its material and spiritual aspects.

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Sept. 2025 Page No. : 352-355

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

बैंकिंग क्षेत्र में कृत्रिम बुद्धिमता के अनुप्रयोग की संभावनाएं और चुनौतियां



शोध निर्देशिका : **डॉ. पूर्णिमा श्रीनिवासन**
सहायक आचार्य एवं विभागाध्यक्ष, हिंदी विभाग
श्री एच पंढरीनाथ, पी.एच.डी. शोधार्थी
Vels Institute of Science Technology and Advanced Studies (VISTAS)
पल्लावरम, चेन्नै, तमिलनाडु।

सारांश :

कृत्रिम बुद्धिमता (एआई) हमारे जीवन का अभिन्न अंग बन गई है, जिसके कारण हमारे दैनिक जीवन में सुख–सुविधा बढ़ गई है। चिकित्सा क्षेत्र से लेकर शिक्षा के क्षेत्र तक एआई की उपादेयता बढ़ती जा रही है। प्रस्तुत आलेख में बैंकिंग क्षेत्र में एआई की संभावनाओं और चुनौतियों पर विस्तार से चर्चा करने का यथासंभव प्रयास किया गया है। सारतः इस आलेख में एआई की उपादेयता के साथ उसके प्रयोग में निहित जोखिमों पर प्रकाश डालने की चेष्टा की गई है।

परिचय :

कृत्रिम बुद्धिमता (एआई) का बीज सर्वप्रथम 1955 में कंप्यूटरों को स्वतः चालित रूप से और मनुष्यों की तरह सोचने की संकल्पना को लेकर बोया गया था। उसे एक बच्चे के सदृश शिक्षित करके अतीत की प्रवृत्तियों के अनुरूप एल्गोरिदम तैयार करते हुए निर्णय लेकर कार्य करने के लिए तैयार किया गया। कृत्रिम बुद्धिमता के दायित्वपूर्ण और नैतिक अंगीकरण/सक्रियण ढांचे संबंधी समिति की रिपोर्ट के अनुसार पिछले दशक के दौरान वित्तीय सेवाओं में एआई की भूमिका में बड़े पैमाने पर वृद्धि हुई है और जेन–एआई का उपयोग उन्नत चैटबॉटों, स्वचालित रिपोर्टिंग प्रक्रिया में किया जा रहा है। यह वित्तीय समावेशन को सुधारने, नवोन्मेष की संभावनाओं को बढ़ाने और वित्तीय प्रणालियों में कार्य–दक्षता को बेहतर बनाने की क्षमता रखती है। प्रस्तुत आलेख में बैंकिंग क्षेत्र में एआई की संभावनाओं के साथ–साथ उसके लाभों व चुनौतियों पर चर्चा की गई है।

परिचालनगत कार्यदक्षता की उन्नति :

वर्ल्ड इकोनॉमिक फॉरम द्वारा जारी किए गए व्हाइट पेपर के अनुसार अन्य क्षेत्रों की तुलना में वित्तीय क्षेत्र में परिचालनगत कार्य–दक्षता को बढ़ाने में जेन–एआई की भूमिका काफी महत्वपूर्ण होने की संभावना है। एआई–साधित प्रणालियों से डेटा प्रविष्टि, लेनदेन संसाधन, और ग्राहक पूछताछ जैसे नियमित कार्य स्वचालित हो जाने के कारण मानवीय हस्तक्षेप को काफी हद तक कम किया जा सकता है। इससे बैंकिंग प्रक्रियाएं त्वरित

रूप से संपन्न की जा सकती है और साथ ही, त्रुटियों में कमी आ सकती है। उदाहरण के लिए, चैटबॉट और आभासी (वर्चुअल) सहायक बड़ी मात्रा में ग्राहक के प्रश्नों को संभाल सकते हैं, त्वरित प्रतिक्रिया प्रदान कर सकते हैं, और बैंक के अधिकारियों को नेमी प्रकार के कामों से मुक्त कराके उन्हें अधिक जटिल मुद्दों पर ध्यान केंद्रित करने का अवसर प्रदान कर सकते हैं।

इसके अलावा, एआई एल्गोरिदम त्वरित रूप से बड़ी मात्रा में डेटा का विश्लेषण कर सकता है, जिससे बैंकों को नपे–तुले तरीके से निर्णय लेने प्रक्रिया में सक्षम बनाया जा सकता है। पूर्वानुमानमूलक विश्लेषण बाजार के रुझान, ग्राहक मनोवृत्ति और वित्तीय क्षेत्र संबंधी संभावित जोखिमों को भांप सकता है, जिससे बैंकों को उक्त विषयों से संबंधित समस्याओं का समाधान करने और अवसरों का समय पर लाभ उठाने में सहायता मिल सकती है। यह स्वचालित आंकड़ा–विश्लेषण पद्धति निर्णयन प्रक्रिया को बेहतर बना सकती है, जिससे बैंकों और ग्राहकों दोनों को लाभ मिल सकता है।

ग्राहकों को बेहतर अनुभव दिलाना :

एआई बैंकिंग क्षेत्र में ग्राहक को बेहतर अनुभव दिला सकता है। व्यक्तिगत जरूरतों के मुताबिक बैंकिंग सुविधाएं प्रदान करना आधुनिक बैंकिंग का एक विशेष पहचान है जिसे एआई अनायास ही साकार कर सकता है। एआई ग्राहकों से संबंधित आंकड़ों, उनकी बैंकिंग प्रवृत्ति का विश्लेषण करके उनके लिए आवश्यकता–आधारित उत्पादों, वित्तीय परामर्श दिला सकता है, और लक्ष्योन्मुख विपणन अभियान चला सकता है। वैयक्तिक जरूरतों को ध्यान में रखते हुए ग्राहकों को सेवाएं और उत्पाद मुहैया कराने से ग्राहकों को यह एहसास दिलाया जा सकता है कि वह मूल्यवान है। फलतः ग्राहक संतुष्टि और ब्रांड के प्रति निष्ठा बढ़ेगी।

इसके अतिरिक्त, एआई–साधित चौटबॉट और आभासी सहायक की ग्राहक सहायता चौबीसों घंटे उपलब्ध रहती है, अतः ग्राहक कभी भी कहीं भी बैंकिंग सहायता प्राप्त कर सकता है। यह एआई आधारित पद्धति ग्राहकों के प्रश्नों को आसानी से हल कर सकती है, यथा– पूर्ववर्ती लेनदेनों की जांच करने के लिए खाते में शेष राशि का पता करना हो अथवा त्वरित व सटीक उत्तर उपलब्ध कराना हो। इस प्रकार लगातार सहायता उपलब्ध रहने के कारण ग्राहक की सुविधा बढ़ेगी। इन कार्यकलापों में समय की बचत होगी, जिससे ग्राहक अत्यंत सुखद अनुभव प्राप्त कर सकते हैं।

सुरक्षा उपायों को मजबूत करना :

बैंकिंग क्षेत्र में एआई के माध्यम से धोखाधड़ी और साइबर खतरों से निपटने के लिए उन्नत समाधान प्राप्त होता है। मशीन लर्निंग मॉडल लगातार नए डेटा से सीखते हैं, जिससे उभरते खतरों की पहचान करने और उन्हें रोकने की उनकी क्षमता में सुधार होता रहता है। सुरक्षा की दृष्टि से देखा जाए तो यह सक्रिय दृष्टिकोण बैंकों को साइबर अपराधियों से आगे रहने और अपने ग्राहकों की संवेदनशील जानकारी की सुरक्षा करने में मदद करता है।

इसके अलावा, एआई/एमएल–साधित बायोमेट्रिक प्रामाणीकरण प्रणाली जैसे चेहरे की पहचान और हस्तरेखा की स्कैनिंग सुरक्षा की एक अतिरिक्त परत प्रदान करने की संभावना है। सुरक्षा उपायों को सुदृढ करने में एआई की भूमिका अमूल्य है। इससे बैंक अपने ग्राहकों के विश्वास और भरोसे को जीत सकते हैं।

बैंकिंग प्रणाली में एआई के प्रयोग की चुनौतियां :

- **आंकड़ों की गोपनीयता और सुरक्षा :**

बैंकिंग क्षेत्र में एआई के प्रयोग से ग्राहक के संवदेनशील डेटा के रखरखाव, साइबर हमले और कानूनी समस्याओं को ध्यान में रखते हुए सतर्कता बरतें ताकि बैंकिंग प्रणाली के प्रति ग्राहकों के विश्वास को बरकरार रखा जा सके और कानूनी समस्याओं से बचाया जा सके।

- **नैतिकता और पूर्वाग्रह :**

एआई प्रणाली को जिन आंकड़ों से प्रशिक्षित किया जाता है उनके गुण–दोषों के आधार पर वह कार्य करती है। अतः ये आंकड़े तटस्थ और विविधतापूर्ण दृष्टिकोण अपनाने से अनुचित व पक्षपातपूर्ण परिणाम से बच सकते हैं, यथा ऋण स्वीकृति प्रक्रिया, क्रेडिट श्रेणी–निर्धारण, और ग्राहक सेवा संबंधी संचार व्यवस्था आदि बाधित न हो।

- **विनियामकीय अनुपालन (Regulatory Compliance) :**

बैंकों के लिए यह जरूरी हो जाता है कि वे एआई प्रणाली को इस प्रकार तैयार करें कि जिससे विनियामकीय अपेक्षाओं का पालन पूर्ण रूप से किया जाता हो और भविष्य में एआई के संबंध में नए सिरे से कोई विनियम लागू किए जाएं तो उनका पालन भी किया जाए। संभव है कि एआई की निर्णयन–प्रक्रिया, दायित्व और लेखापरीक्षाओं के कई नए तत्व जुड़ जाएं। इन विनियामकीय व्यवस्था को सही मायने में लागू करने के लिए बैंकों, विनियामकों और एआई विकास करने वालों के बीच एक साझा व्यवस्था हो।

- **पारंपरिक प्रणालियों के साथ एआई का एकीकरण :**

पुरानी प्रणालियों को नवीनतम एआई प्रणाली के अनुरूप परिवर्तित करने में काफी व्यय और समय हो सकता है। साथ ही, मौजूदा परिचालन तंत्र को रोककर ही एआई को उसके साथ जोड़ा जा सकता है।

- **कौशल की अनुपलब्धता और सक्षम कार्यबल का अभाव :**

बैंकों में एआई को सफलतापूर्वक लागू करने के लिए मौजूदा कार्मिकों को एआई और मशीन लर्निंग की विशेषज्ञता प्रदान की जानी है। इसके लिए आवश्यक प्रशिक्षण की आवश्यकता है ताकि एआई के सफल प्रयोग में उनके कौशल का विकास हो सके। इसमें अक्षम कार्मिकों को संभालने के लिए प्रभावी कार्यनीति स्थापित करनी होगी।

- **ग्राहक विश्वास और स्वीकृति :**

बैंकिंग क्षेत्र में एआई को सफलतापूर्वक लागू करने के लिए ग्राहक का विश्वास और स्वीकृति अनिवार्य है, अतः एआई–साधित प्रक्रिया यूजर–फ्रेंड्ली हो। एआई प्रणाली के परिचालनों में पारदर्शिता हो, इसकी खामियों व खूबियों से ग्राहक परिचित हो।

निष्कर्षतः हम यह कह सकते हैं कि इन चुनौतियों का डटकर सामना करने के लिए एक समग्र दृष्टिकोण को अपनाने की जरूरत है, जिसके अंतर्गत निजता व सुरक्षा, नैतिक पहलुओं पर सम्यक ध्यान देना, विनियामकीय अनुपालन, पारंपरिक प्रणालियों के साथ एकीकरण, कार्यबल की अनुकूलता, ग्राहक विश्वास और ग्राहकों की उन्नत सेवा, आदि शामल हों।

निष्कर्ष :

एआई हमारे दैनिक जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में क्रांति लाने की क्षमता रखती है और उसके कारण अवसरों के साथ–साथ कई चुनौतियां भी उभर रही हैं। भारत के संदर्भ में बैंकिंग क्षेत्र में एआई के उपयोग के संबंध में देश के केंद्रीय बैंक, अर्थात भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा नवाचार को बढ़ावा देने के साथ–साथ जोखिम से निपटने के उपायों के प्रति ध्यान केंद्रित किया जा रहा है। एआई के बढ़ते उपयोग से बैंकों में ग्राहक सेवा का स्तर बढ़ने की अपार संभावनाएं हैं।

शब्दावली :

- **एल्गोरिदम :** एआई एल्गोरिदम वह प्रक्रिया है जिसमें मशीन को कुछ कार्य (टॉस्क) सिखाने के लिए क्रमिक रूप से निर्देश दिए जाते हैं जिससे वह आंकड़ों से स्वयं सीखकर स्वतः निर्णय ले सके।
- **चैटबॉट :** यह एआई साधित वर्चुअल सहायक है जिसे उपयोगकर्ताओं, विशेष रूप से इंटरनेट पर उपयोगकर्ताओं के साथ नैसर्गिक भाषा के माध्यम से इंसान की भांति बातचीत करने के लिए डिजाइन किया जाता है।
- **जोखिम :** बैंकिंग क्षेत्र के संदर्भ में इसका तात्पर्य कतिपय अनिश्चितताओं के कारण होने वाली हानि से है और कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं – जैसे ऋण जोखिम (उधारकर्ताओं द्वारा चूक किया जाना), बाजार जोखिम (बाजार में मूल्य के उतार–चढ़ाव से पैदा होने वाला जोखिम), परिचालनगत जोखिम (प्रक्रिया या प्रणाली में त्रुटियां), चलनिधि जोखिम (अल्पकालिक देयताएं पूरी करने की स्थिति में न रहना) और अनुपालन जोखिम (कानूनी या विनियामकीय उल्लंघन)
- **निर्णयन प्रक्रिया :** इससे अभिप्रेत है बैंकिंग क्षेत्र के परिप्रेक्ष्य में विकल्पों और जोखिमों का आकलन करते हुए वित्तीय लक्ष्यों को हासिल करने के लिए उपयोग किया जाने वाला आंकड़ा विश्लेषण।
- **लक्ष्योन्मुख विपणन अभियान :** इसके अंतर्गत बैंक ग्राहकों की विशेष आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए अनेक आवश्यकता–अनुरूप उत्पादों और सेवाओं की पेशकश करते हैं।

ई–मेल : hpandarinath123@gmail.com
मोबाइल नंबर : 98692 11926

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Sept. 2025 Page No. : 356-360

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

मॉरिशस के समकालीन प्रवासी हिन्दी साहित्यकार अभिमन्यु अनत और रामदेव धुरन्धर के सृजनात्मक विचारों का अध्ययन

वी. अमुधा, सहायक प्राध्यापक,
डॉ. अनुराधा पाकलापाटि, सहायक प्राध्यापक,
हिंदी विभाग, वेल्स इंस्टिट्यूट ऑफ साइंस, टेक्नोलॉजी एंड एडवांस्ड स्टडीज (विस्टास) पल्लावरम, चेन्नई।

सारांश :

इस प्रपत्र में मॉरिशस के समकालीन प्रवासी हिन्दी साहित्यकार अभिमन्यु अनत और रामदेव धुरन्धर के साक्षात्कार के आधार पर उनके सृजनात्मक विचारों का अध्ययन करने का प्रयास किया गया है। दोनों सहित्याकारों के जीवन, उनके कृतियाँ, मॉरिशस समाज के प्रति उनके विचार, धर्म और मॉरिशस के बदलते समाज और संस्कृति के प्रति उनकी दृष्टिकोण आदि विषयों पर इस आलेख में व्यक्त किया गया है।

बीज शब्द : मॉरिशस, प्रवासी हिन्दी साहित्य, साक्षात्कार, संस्कृति, लगाव, यातना, त्रासदी।

प्रस्तावना :

मॉरिशस का प्रवासी हिन्दी साहित्य समृद्ध है। कविता, कहानी, उपन्यास, निबन्ध और अन्य विधाओं में महत्वपूर्ण रचनाएँ हैं, जिनमें अभिमन्यु अनत, रामदेव धुरंधर, कृष्ण लाल बिहारी, और ईश्वरचन्द्र गंगाराम जैसे लेखक शामिल हैं। यह साहित्य भारत में प्रकाशित होने वाले हिन्दी साहित्य से जुड़ा हुआ है और मॉरीशस की हिन्दी भाषा और संस्कृति को दर्शाता है, जहाँ आज भी हिन्दी का प्रचार–प्रसार किया जाता है। मॉरिशस की स्वतंत्रता के उपरांत हिंदी भाषा और विकास के लिए संगठित प्रचार ही नहीं हुए, बल्कि अनेक रचनाकारों का भी जन्म हुआ। मॉरिशस की स्वंतत्रता से लेकर आज तक के इतिहास में हिंदी साहित्य नई ऊन्चाइयों को छुआ है, लेकिन उसके अस्तित्व के लिए संकटों तथा चुनौतियों की मात्रा और संख्या भी निरंतर बढ़ती गई है।

साहित्यकारों का जीवन परिचय :

मॉरिशस के प्रख्यात समकालीन साहित्यकार अभिमन्यु अनत और रामदेव धुरंधर का जीवन परिचय नीचे दिया गया है।

अभिमन्यु अनत :

इनका जन्म 9 अगस्त 1937 वर्ष को मॉरिशस के उत्तर प्रान्त के थ्रिओले नामक गाँव में हुआ था। इनके पिता का नाम पतिसिंह व माता का नाम सुभागो देवी था। इनके पिता जी अत्यंत उदार प्रवृत्ति के व्यक्ति के थे।

साथ ही वे कुशल सामाजिक कार्यकर्ता भी थे। अभिमन्य अनत मॉरिशस के प्रवासी हिन्दी साहित्य के प्रमुख लेखकों में से एक हैं। अभिमन्यु अनत की विशेषता यह है कि वे मॉरिशस द्वीप की पहचान और प्रसिद्धि के समान प्रतीक बन गए, जैसे वहाँ के प्रथम प्रधानमंत्री डॉक्टर शिवसागर रामगुलाम अपने कृतित्व से मॉरिशस को विश्व में प्रख्यात बना दिया।

अनत बहुमुखी रचनाकार हैं। वे उपन्यासकार, कहानीकार, कवि, नाटककार, जीवनीकार, आत्मकथाकार, संस्मरणकार, यात्रा–वृत्तांतकार, लघुकथाकार, व्याख्यानकर्ता, संपादक इत्यादि अनेक रूपों में प्रसिद्द थे। उनके रचनाओं के माध्यम से हिन्दी पाठक मॉरिशस के प्रवासी भारतीयों के संघर्ष की कहानी को निकटता के साथ अनुभव करते हैं तथा भारत–मॉरिशस के संबंधों में और भी स्थायित्व, मधुरता और विश्वसनीयता लाने में सहयोगी बन सकेंगे। डॉ श्रीचित्रा वी. एम. अभिमन्यु अनत के बारे में लिखती है– "अभिमन्यु अनत का उपन्यास साहित्य चिंतन–प्रधान तथा बौद्धिकता को ढोने वाली है। उनके उपन्यासों में बदली हुई सामाजिक रूढियों की जटिलता, लाचारी तथा मुक्ति की कामनाओं का संकेत मिलता है।"[1] अभिमन्यु अनत के साहित्यिक कृतित्व ने केवल मॉरिशस ही नहीं, भारत और हिन्दी को भी सम्मानित किया है। उनकी रचनाओं में भारत से मॉरिशस में आए भारतीय गिरमिटिया मजदूरों का संपूर्ण विवरण है। हनुमान चालीसा, रामचरितमानस आदि ग्रंथों के सहारे गिरमिटिया मजदूर हिन्दू–धर्म, संस्कृति, अस्मिता तथा हिन्दी–भाषा की रक्षा की। अभिमन्यु के घर में भी हनुमान जी का छोटा–सा मंदिर है और वे प्रत्येक वर्ष दुर्गा–पूजा का आयोजन करते थे।

रामदेव धुरंधर :

मॉरिशस के पूर्वी प्रान्त के कारोलीन नामक साधारण ग्रामांचल में 11 जून 1946 को रामदेव धुरंधर जी का जन्म हुआ। धुरंधर जी के पिता का नाम श्री श्यामलाल धुरंधर था और माता का नाम श्रीमती कौशल्या धुरंधर है। इनके परिवार में चार भाई व एक बहन थी। धुरंधर जी की पढ़ाई अंग्रेजी और फ्रेंच भांषा के साथ–साथ हिन्दी में भी हुई। उस समय सरकारी नौकरी मिलना आसान न था। हिन्दी अध्यापन के लिए भेजे गए आवेदन पत्र के आधार पर 1970 में धुरंधर जी को अध्यापक पद पर नियुक्त कर लिया गया।

धुरंधर जी का सम्पूर्ण साहित्य युगीन परिस्थितियों और परिवेश की उपज है। जीवन की प्रत्येक अनुकूल और प्रतिकूल परिस्थितियों में भी इन्होंने अपनी लेखनी को विराम नहीं दिया। वे आज भी समाज के विसंगतियों को अपने कृतियों में उजागर कर रहे हैं। धुरंधर जी अपनी प्रतिभा के बल पर अध्यापन के तहत सरकारी नौकरी करने लगे किन्तु धुरंधर जी का हृदय में हमेशा लेखक बनने की चाह थी। उनका प्रारम्भिक जीवन कष्टों, अभावों और संघर्षों का जीता–जागता प्रमाण है। माता–पिता की अशक्तता, पढ़ाई का छूट जाना, घर की जिम्मेदारी तथा फ्रांसीसीयों की प्रताड़ना जैसी दुर्गम कठिनाईयों ने उनके धैर्य व विश्वास को न हिला सके।

मॉरिशस के साथ जुडाव :

अभिमन्यु के दादाजी गिरमिटिया मजदूर के रूप में लाया गया था। जिन परिस्थितियों में भारतीय मजदूरों को जीना पड़ा वह हृदयविदारक हैं। अनत जी मॉरिशस के प्रवासी मजदूरों की जीवन को साहित्यिक रूप में प्रस्तुत करना चाहते थे। प्रवासी लोगों पर चाबूकों और बाँसों की बौछार होती थी। सप्ताहभर के काम से प्राप्त कमाई बारह आने और दो डिबिया चावल–दाल मिलते थे। 'रामायण' ग्रंथ पढ़ना और हिन्दी भाषा सीखना मना था। एक बहुत ही लंबी अवधि के बाद गिरिमिटिया भारतीय अपने सिर उठाने में सफल हुए थे। मॉरिशस में उनके

परिवार के साथ वही गुजरा जो हजारों मजदूरों के साथ हुआ। चोरी–चुपके से पढ़ते–पढ़ते अपनी संस्कृति को जीवित रखे आ रहे थे। उन ऐतिहासिक यातनाओं की प्रतिक्रिया स्वरूप अनत जी को लेखक बनाया।

मॉरिशस के कारोलीन गाँव से रामदेव धुरंधर विशेष लगाव है। यहीं पले, बढ़े और इसी गाँव में अपनी सफलता भी देखी और असफलता भी। इस गाँव से उनका इतना जुड़ाव है कि वे विश्व भर के देशों में घूम फिर कर बार–बार यहीं लौट आते थे। इसी गाँव के लोगों से उनका जान पहचान है जहाँ से उनको एक सफल लेखक बनाया। उन्होंने अपने गाँव के साथ लगाव को कुछ ऐसा व्यक्त करते हैं– "मैं अपने जन्म गाव में रह कर उनकी अपेक्षा ठीक ही जीवन व्यतीत कर रहा हूँ। बस मैं उन्हें भूल नहीं पाता और यह मेरे लिए अनमोल है"[2]

मॉरिशस और भारत के संबंध में साहित्य की भूमिका :

अभिमनयु अनत का मानना है कि भारतीय परंपरा से जुडे मॉरिशस के प्रवासी भारतीयों में हिन्दी साहित्य की भूमिका बहुत बड़ी है। अनत जी का कहना है, "भारतीय सरकार से बस इतनी ही अपेक्षा है कि भारत यह न भूले कि मॉरिशस के साथ उसका रिश्ता मात्र राजनीतिक और व्यापारिक नहीं है, बल्कि 150 वर्ष पुराना सांस्कृतिक संबंध है।"[3] अनत जी का मानना है कि दोनों देशों के कलाकारों, लेखकों, बुद्धिजीवियों और पत्रकारों का आदान–प्रदान करने से ही साहित्य के माध्यम से मॉरिशस और भारत का संबंध मजबूत होगा।

रामदेव धुरंधर से मॉरिशस और भारत के संबंध के बारे में दीपक कुमार पांडे द्वारा लिए गए साक्षात्कार में सवाल किया गया, तो उनका कहना है कि भारत और मॉरिशस का सबंध अब ज्यादातर राजनीतिक हो गया है। पर राजनीति में समाज और संस्कृति को बराबर ध्यान में रखा जाता है। साहित्य से भी यह पहचान बनी है। हिंदी के साहित्यकार भारत में अधिकाधिक हैं और उन्हें सांस्कृतिक दूत के रूप में परखा जाता है। साहित्य के माध्यम से भारत और मॉरिशस को जोड़ने में हिन्दी लेखक के रूप में धुरंधर जी का बहुत बडा भूमिका रहा है।

मॉरिशस में हिन्दी की वर्तमान स्थिति :

अनत जी मॉरिशस के हिन्दी पठन–पाठन को लेकर बहुत चिंतित थे। उनका मानना है कि "हिन्दी के शिक्षण–स्तर के विकास तथा हिन्दी साहित्य की प्रतिष्ठा के लिए आवश्यक है कि हम इतना जान ले कि अतीत में यह भाषा मात्र हमारी अभिव्यक्ति का संबंध नहीं थी, बल्कि वह हमें अन्दरूनी ढंग से जोडे हुई थी। हमारी अस्मिता को बरकरार रखे हुए थे।"[4] मॉरिशस में प्रकाशन की सुविधा की कमी के कारण सृजनात्मक साहित्य का प्रकाशन निराशजनक है। जिस हिन्दी की प्रचार के लिए आंदोलन हुआ करता था, आज उनके दायित्व की स्थिति विकलांग है। वे हिन्दी भाषा को मॉरिशस के राजकीय स्तर पर मान्यता की अधिकार दिलाना चाहते थे। हिन्दी की प्रचार–प्रसार के लिए वे साप्ताहिक और दैनिक प्रत्रिकाओं की आवशयकता को मानते थे। हिन्दी, जो मॉरिशस के प्रवासी भारतीयों के संघर्ष का भाषा रहा है, उसे उचित स्थान दिलाना चाहते थे।

रामदेव धुरंधर का मानना है कि मॉरिशस में हिन्दी न ही राष्ट्रभाषा है और न ही राजकीय भाषा है। क्रियोल ही मॉरिशस की प्रचलित भाषा है। धुरंधर जी के अनुसार "यहाँ हिन्दी के तीन सूत्र हैं, वे हैं भारतीयता में विश्वास, हिन्दी के प्रति सरकार की नीति और हिन्दी के माध्यम से रोटी का सवाल।"[5] भारतीय वंशज होने के नाते प्रवासी भारतीय लोग हिन्दी से प्रेम करते हैं। हिन्दी की मान्यता देखें तो इसे पढने से रोजीरोटी की संभावनाएँ बहुत ही कम है। मॉरिशस में हिन्दी लेखन में मंदता की स्थिति व्याप्त है।

मॉरिशस की बदलती समाज-संस्कृति :

मॉरिशस में रहने वाले प्रवासी भारतीय के दूसरी पीढी होने के बावजूद वे अपने को हमेशा एक भारतीय ही समझते थे। वे हमेशा कहते थे कि "मॉरिशस मेरी जन्म भूमि है और भारत मेरी सांस्कृतिक भूमि है।"[6] अनत जी को पता है कि गाँधी के आह्वान से प्रवासी भारतीयों ने राजनीति में सक्रिय भागीदारी किया जिससे उनके जीवन में एक नई जागरूकता, नई चेतना और संघर्ष की नई शक्ति उत्पन्न हुई। मॉरिशस में विदेशी शासन समाप्त होने के बाद भी शासन–तंत्र की गतिविधि आसानी से समाप्त नहीं हुई। मॉरिशस के संस्कृति को लेकर उनका विचार है कि "विदेशी शासन के अत्याचारों को झेलकर अपनी संस्कृति की रक्षा कठिन तो होती है लेकिन असंभव नहीं. भारते में भी वैसा हुआ और मॉरिशस में भी, लेकिन अपने लोगों के दोगलेपन के बीच अपनी संस्कृति को बचा पाना असंभाव प्रतीत होता है।"[7]

मॉरिशस के प्रवासी भारतीय की तीसरी पीढी होने पर भी रामदेव धुरंधर हमेशा भारतीय तत्वों से ही जी रहे हैं। मॉरिशस के प्रवासी भारतीयों में द्वयं संस्कृति का प्रचलन चल रहा है। एक पाश्चात्य संस्कृति है और दूसरा भारतीय संस्कृति। वे इस बात से सेहमत हैं कि "एक तरह से दोनों कंधों से कंधा मिला कर ही चल रही हैं, लेकिन छाप प्रबलता से पाश्चात्य की ही है।"[8] उन्हें इस बात की दुख है कि मॉरिशस के प्रवासी भारतीयों में भारतीयता विलुप्त हो रहा है। पर उन्हें दृढ विश्वास है कि भविष्य में भी भारतीय संस्कार मॉरिशस में रहेगा।

महा उपन्यासों का उद्देश्य :-

साक्षात्कार के दौरान अनत द्वारा कृत महा उपन्यास 'लाल पसीना' के बारे में कुछ महत्त्वपूर्ण बातों को सांझा करते हैं। 'लाल पसीना' 1850 से 1900 तक होनेवाली कहानी है। इस उपन्यास में पात्रों से संबंधित घटनाओं को बडी ईमानदारी से प्रस्तुत किया है। भारत से आए मजदूरों की त्रासदपूर्ण कहानी को ऐतिहासिक और औपन्यासिकता के साथ दर्शाया है। इस उपन्यास के संबंध में अभिमन्यु का कथन है– "दस साल से अधिक समय तक 'लाल पसीना' को मैं अपने जेहन में जीता रहा। पास–पडोस के सबसे वृद्ध लोगों से मिलकर उनसे बातें करता रहा।"[9] 'लाल पसीना' उपन्यास के तीन भाग हैं– पहले भाग जहाँ मजदूरों को अपनी भारतभूमि छोडकर काम करने पर विवश हुए। 1901 को गाँधी जी का आगमन मॉरिशस में हुआ, उपन्यास की दूसरी कडी गाँधी से प्राप्त मनोबल के आधार पर है। तीसरी भाग में मॉरिशस के आजादी के बाद से राजनीतिक छलावे तक की गाथा है।

रामदेव धुरंधर का 'पथरीला सोना' छः खंडीय उपन्यास है जिसके रचना भूमि काल 1834 से 2000 तक का है। 125 वर्षों की कहानी है यह उपन्यास। भारतीय मजदूर जो मॉरिशस के पत्थर के नीचे सोना लेने के सपने में आए थे, असलियत में वह एक छल है। इस उपन्यास के तीन खंडों में मॉरिशस में भारतीय मजदूरों के आगमन सन 1834 से लेकन सन 1912 तक की सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि पर कहानी को पिरोया है। अगले तीन खंडों में 1912 से 2009 तक की समयावधि की कथा है। पूर्वजों के यातनाओं को रामदेव उनके जुबान से सुनाया करते थे। यह उपन्यास पच्चीस साल की खोज है। इस इतिहास को लिखने का मकसद रामदेव जी ने पूर्वजो की श्रद्धांजलि के रूप में माना जाता है।

निष्कर्षतः मॉरिशस में जन्मे दोनों समकालीन साहित्यकार अंग्रेजी प्रलोबन को त्याग कर जन पथ पर चलने का निर्णय लिया। जीवन पर्यंत मॉरिश्स में ही हिन्दी साहित्य के लिए काम करते रहे। यह दोनों हिन्दी

लेखकों का नाम, विश्व के विशाल साहित्य परिवार में एक अग्रगन्य स्थान प्राप्त किए हैं। जिनकी शाखाएँ विश्व भर में फैली हुई है। इन साहित्यकारों के रचनाओं के कारण भारत और मॉरिशस के बीच का संबंध और मजबूत हुआ है।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची :-

1. डॉ श्रीचित्रा वी एम, उपन्यासकार अभिमन्यु अनत, पृ. 150
2. दीपक कुमार पाण्डेय, मारेशस लेखक : रामदेव धुरंधर्न साक्षात्कार के आईने में, स्वराज प्रकाशन, पृ. 24
3. कमल किशोर गोयनका, अभिमन्यु अनत की साहित्य–यात्रा, गाँधी बोले थे, राजकमल प्रकाशन, पृ. 9
4. कमल किशोर गोयनका, अभिमन्यु अनत की साहित्य–यात्रा, गाँधी बोले थे, राजकमल प्रकाशन, पृ. 80
5. दीपक कुमार पाण्डेय, मारेशस लेखक : रामदेव धुरंधर्न साक्षात्कार के आईने में, स्वराज प्रकाशन, पृ. 128
6. कमल किशोर गोयनका, अभिमन्यु अनत की साहित्य–यात्रा, गाँधी बोले थे, राजकमल प्रकाशन, पृ. 77
7. कमल किशोर गोयनका, अभिमन्यु अनत की साहित्य–यात्रा, गाँधी बोले थे, राजकमल प्रकाशन, पृ. 21
8. दीपक कुमार पाण्डेय, मारेशस लेखक : रामदेव धुरंधर्न साक्षात्कार के आईने में, स्वराज प्रकाशन, पृ. 98
9. कमल किशोर गोयनका, अभिमन्यु अनत की साहित्य–यात्रा, गाँधी बोले थे, राजकमल प्रकाशन, पृ. 197

E mail: amudhav.hindi@vistas.ac.in

Mobile : 9840824531

Mobile: 7299012063

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Sept. 2025 Page No. : 361-365

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

डॉ. विद्या बिंदु सिंह के कथा–साहित्य में बदलते सामाजिक सरोकार

जे. अशोक कुमार जैन, शोधार्थी
डॉ. अनुराधा पाकलपाटि, शोध निर्देशिका एवं असिस्टेंट प्रोफेसर,
हिंदी विभाग, वेल्स इंस्टिट्यूट ऑफ सॉइंस टेक्नोलॉजी एंड एडवांस स्टडीज (विस्टास), चेन्नई।

शोध सार :

हर व्यक्ति का जीवन जीने का ढंग अलग–अलग होता है। प्रत्येक व्यक्ति अपने दृष्टिकोण और मानदंडों के अनुसार जीवन जीता है। दृष्टि तो सभी के पास होती है, किंतु सही दृष्टि बहुत कम लोगों में देखने को मिलती है। दूरदर्शी व्यक्तियों में गहन विचारों का प्रवाह मिलता है। इसी तर्ज पर, आदरणीया डॉ. विद्या बिंदु सिंह ने अपनी लेखनी के माध्यम से सामाजिक जिम्मेदारियों को साहित्य का मुख्य विषय बनाया और समाज को सामाजिक चेतना से परिपूर्ण श्रेष्ठ साहित्य प्रस्तुत किया।

डॉ. सिंह ने कहानीकार, उपन्यासकार, कवयित्री एवं लोक–साहित्य की मर्मज्ञ के रूप में बहुमुखी पहचान बनाई। 'आदर्श स्त्री', 'भारतीय नारी' और 'ममतामयी माँ' जैसे विभिन्न रूपों में उनका सशक्त चित्र सामने आता है। साहित्य के किसी भी रूप में उन्होंने स्पष्ट दृष्टि और जिम्मेदार सामाजिक सरोकारों को प्रमुखता से व्यक्त किया। उनकी रचनाएँ पीड़ा, यातना और व्यक्तिपरक संघर्षों का सजीव चित्रण हैं, जिनमें भाषा और भावनाओं की अभिव्यक्ति स्वाभाविक और प्रभावशाली है।

मूल शब्द : साहित्य, जीवन, समाज, लोक–साहित्य, सामाजिक सरोकार, भारतीयता, सामाजिक चेतना, सामाजिक सामंजस्य, लोक–संस्कृति।

डॉ. विद्या बिंदु सिंह की प्रमुख कहानियाँ जैसे बनदेई, बकरी के लोग, अपनी जमीन, वे डोलत रस आपने, काशीवास आदि न केवल समाज के प्रति उनकी गहन चिंता को दर्शाती हैं, बल्कि सामाजिक बदलावों के संवाद को भी उजागर करती हैं। उपन्यास–संग्रह हिरण्यगर्भ में पाँच नारी–केंद्रित उपन्यास सम्मिलित हैं, जो नारी–विमर्श के विविध आयामों को केन्द्र बिंदु बनाकर लेखनी की गई हैं। यह साहित्य सामाजिक समस्याओं की पहचान के साथ समाधान की जटिलताओं को भी संवेदनशीलता से दर्शाता है।

सामाजिक सरोकारों का स्वरूप :

डॉ. विद्या बिंदु सिंह के कथा–साहित्य में गाँव की संस्कृति, लोक परंपराएँ और भारतीयता के साथ शहरीकरण, परिवार की टूटन और पीढ़ीगत संवाद का सूक्ष्म चित्रण मिलता है। वे अपने पात्रों के माध्यम से समाज में आपसी संवाद, सहृदयता, सामंजस्य और संवेदना की प्रेरणा प्रदान करती हैं। इससे बदलते हुए सामाजिक

परिवेश का जीवंत और व्यापक चित्र उभरकर सामने आता है।

नारी चेतना और संघर्ष :

डॉ. सिंह की कहानियाँ नारी को करुणा, शक्ति और ममता की जीवंत प्रतिमूर्ति के रूप में प्रस्तुत करती हैं। उनकी नायिकाएँ सिर्फ सहारा पाने वाली नहीं, बल्कि सोच, निर्णय और नेतृत्व प्रदान करने वाली पात्र होती हैं, जो परिवार, समाज और व्यक्तित्व के बीच सामंजस्य स्थापित करने का प्रयास करती हैं। उनकी रचनाएँ नारी के संघर्ष, स्वावलंबन और सामाजिक भूमिका पर एक नई दृष्टि प्रस्तुत करती हैं।

आपने एड़ियही काकी कहानी के माध्यम से समाज में बहिष्कृत लोगों को ध्यान देकर आपने जब अस्पर्शीय विषय को भी अपनी कलम का विषय बनाया, जिसे पढ़कर सभी को शांति मिली। वास्तव में "हमें मरीज लोगों से घृणा नहीं" अपितु प्यार करना चाहिए।" इस कहानी के माध्यम से लेखिका समाज को यह संदेश पहुँचना चाहते हैं कि सामाजिक चेतना और सामाजिक समरसता से परिपूर्ण रहती है।

"हम तुम्हें गले से भी नहीं लगा सकतेद्य हमारी बहू हमारी सेवा करती है, रात दिन हमारे साथ रहती है लेकिन हमें तो यह बीमारी नहीं लगी। बेटी! भगवान ने हमारा बेटा छीन लिया। तुम हमारे लिए दुआ करना कि हमारी बहू स्वस्थ हो जाए, उनके बच्चों को यह बीमारी न लगे। बिटिया! क्या सचमुच छूने से यह बीमारी लग जाती है?"[1]

इस कहानी में आपने एड़स पीड़ित परिवार को सरल शब्दों में दर्शाया है, जिसे समाज बहिष्कृत कर देता है। इस कहानी के माध्यम से लेखिका जी बताना चाहते है कि छूने से एड़स नहीं होता।

काशीवास कहानी संग्रह में वरिष्ठ नागरिकों के प्रति संवेदना एवं नारी संवेदना का मर्म दर्शाया गया है। इन कहानी संग्रह में स्त्री विमर्श अपने अलग ढंग का है। वह नारी मुक्ति के लिए नहीं अपितु वह नारी शक्ति का बोध समाज को स्पष्ट रूप से दर्शाया गया है। इन कहानियों में नारी की अदम्य साहस और सहनशीलता का उल्लेख देखने को मिलता है। वह विषम परिस्थियों में भी टूटती, बिखरती नहीं बल्कि दुःख को अपनी शक्ति बनाकर स्वयं खड़ी रहती है और दूसरों का भी सहारा बनती है। वह पुरुष की प्रतिद्वंद्वी नहीं पूरक हैं। वह सबसे पहले माँ है, फिर कुछ और।

इन कहानियों में गाँव से शहर आए व्यक्ति का अन्दर्द है शहर में बहुत नहीं कर पाते हैं वापिस चले आते हैं। आज भी कुछेक गाँवों की कहानियाँ बहुत संवेदना पूर्वक हैं। जहाँ मोह, ममता और आत्मीयता आज भी कायम है। डॉ. विद्या विंदु सिंह की कहानियाँ भारतीय परंपरा और विरासत के पुनरावलोकन की आवश्यकता पर बल देती है और लोगों को जाग्रत भी करती है।

लेखिका ने प्रस्तुत कहानियों के माध्यम से सामाजिक सभी समस्याओं को संवेदनात्मक ढंग से प्रस्तुत किया है। ये कहानियाँ वास्तव में व्यक्ति को सोचने के लिए विवश करती है।

प्रताप सिंह के तब तक कोई नहीं संतान नहीं थी। उनकी पत्नी की आँखों में ममता की झलक देखकर मंगलू उनके पैरों पर झुक गया। "पाँव लागूँ मालकिन।" पति पत्नि दोनों के सुख से एक साथ निकला, "मालकिन नहीं, माँ कहो मंगलू।"[2]

बारी–बारी–विद्या विंदु सिंह की 21 कहानियों में एक है, यह कहानी वास्तव में यथार्थता पूर्ण कहानी है। सच्ची घटित घटना जैसे हमें अनुभूती होती है पढ़ते वक्त। आज मध्यम वर्गीय तथा कथित अभिजात वर्ग की

कहानी है यह। इसी बात की पुष्टिकरण करते हुए सभ्य समाज कहे जाने वाले लोगों का आपने अच्छा ही चित्रण किया है। बिटिया किन्नी की मनोदशा को यथार्थवत चित्रण किया गया है। कहानी में छपी फोटो को देखने से लगता है कि जैसे आपने भोगा है आपने ही जिया या देखा है। इस जिन्दगी को जितनी सराहना की जाये उतना ही कम है।

"आपकी बहू के साथ वह भी किटी पार्टी में गयी हैं। अभी घर के काम से उन्हें फुरसत नहीं मिली। काम खतम करके नहा धोकर पूजा पाठ करती है। तब पानी पीती है बड़ी धर्मात्मा है। पर बाबूजी अच्छे लोगों को ही दुःख क्यों उठाना पड़ता है।"[3]

बनदेई कहानी संग्रह में उनके सुख–दुख की कथा है जो समाज में कोई विशिष्ट स्थान या नाम नहीं रखते। जन्म लेते हैं कर्मभूमि में भूमिका निभाते हैं और चुपचाप संसारा छोड़ देते हैं। न उनकी यशगाथा लिखी जाती है, न अभिनंदन होता है। पर साधारण में भी असाधारण और उदात्त चरित्र के हैं भटके हुए राह पाकर हताश के अंधेरों में प्रकाश के किरण बन चुके हैं।

बनदेई की माँ दुःखी होकर जिंदगी की ठिकाने के बारे में बताते हुए कहती है कि हम दोनों के बाद तुम इसके सहारे रहेगी। यह तो सोच। बनदेई माँ को प्यार से समझाते हुए कहती है कि :

"देखो माई! तुम नानी का सहारा थी और नानी तुम्हारा। अब मैं तुम दोनों का सहारा हूँ। जब तक तुम दोनों हो, तुम्हारा मुझे भी है। आगे भगवान तो सबका सहारा है। क्या उस समय भगवान ने सहारा नहीं दिया था, जब मुझे जंगल में मरने को फेंक दिया गया था?"[4]

इस लघु कथा के माध्यम से बनदेई की आशा सार्थक बहुत स्पष्ट उल्लेख के रूप में बताया गया है जिसका उदाहरण हम भी देख चुके हैं।

बनदेई– मुख्य संदेश : समाज और परिवार की परंपराओं का सम्मान करते हुए उन्हें समझदारी और सहिष्णुता से बदलना आवश्यक है ताकि सामाजिक सामंजस्य और मानवता बनी रहे।

विद्या बिंदु सिंह की नवीनतम कृति सड़क पर उगते बच्चे इस लघु कथा में लेखिका जी ने लोक साहित्य एवं लोक संस्कृति के साथ–साथ सामाजिक सरोकार विषय को छूते हुए बड़े सरल एवं सुबोध शैली में अपने विषय की स्पष्टीकरण की है। आजकल लोगों को लंबी कविताएं एवं उपन्यास को पढ़ने के लिए समय बहुत कम है। अतः लोगों को ध्यान में रखते हुए शनि का हो इकू त्रिशूल एवं कैप्सूल कविताएं बहुत प्रभावित होने लगा है। इस लघु कथा में कभी–कभी पूरे जीवन का सत्य उजागर किया गया है इसमें जो मुसीबत के समय को पार करने की शक्ति एवं क्षमता दी गई है तथा प्रतिकूल परिस्थितियों को अनुकूल करने का हौसला भी बढ़ाया गया है जैसे जीवन की छोटी–छोटी घटनाएं जीवन की दिशा को परिवर्तित कर देती है। इस तरह सहेज संवेदना से भरपूर खांसी हुई है यह लघु कथाएं हैं लेखिका जी ने इसमें प्रस्तुत की है कि जीवन की यथार्थ से रूबरू होती है। जीवन के मुख्य पहलुओं को स्पर्श करते हुए सक्षम के लिए अनेक बिंदुओं को अपनी कहानी का विषय वस्तु बनाया है। सेवानिवृत्ति लघु कथा के माध्यम से जीवन की आशा सार्थ बहुत स्पष्ट उल्लेख के रूप में बताया गया है जिसका उदाहरण हम नीचे भी देख सकते हैं :–

"कल से जो शून्य जीवन में आने वाला है उसे मैं भयभीत हूं रात दिन परिवार की खिचखिच में रहना ना गाड़ी ना बांग्ला ना चपरासी ना ड्राइवर ना माली इन दिनों से इतनी सुविधाओं का आदि हो गया हो कि इन

सबके बिना जीना पड़ेगा सोचकर भी डर लग रहा है अब मैं ज्यादा दिन नहीं जी पाऊंगा।"[4]

यह उपर्युक्त कथन सड़क पर बच्चे सेवानिवृत्ति कहानी से लिया गया है।

मुख्य संदेश : ससुराल में बहू का आत्मसम्मान और स्वतंत्रता भी उतनी ही आवश्यक है जितनी घर की शांति और एकता। संबंधों में संवाद, पारदर्शिता और स्त्री–सशक्तिकरण की जरूरत को लेखिका मार्मिक ढंग से उजागर करती हैं।

पारिवारिक और सामाजिक रिश्ते उनके साहित्य में परिवार की विडंबनाएँ, वृद्धजनों की उपेक्षा और पीढ़ियों के बीच मनोवैज्ञानिक द्वंद्व का सूक्ष्म चित्र मिलता है। ये सभी तत्व बदलते समाज के दर्द और आवश्यकता की बारीक समझ की अभिव्यक्ति हैं। आधुनिक जीवन में उपभोक्तावाद, रिश्तों की दरार और ग्रामीण–शहरी जीवन के संघर्ष उनके साहित्य के प्रमुख सामाजिक सरोकार हैं।

1. "जीवन की कठिनाइयां यदि मन की शक्ति और प्रेम से जीती जाएं, तो वही व्यक्ति समाज के लिए सच्ची प्रेरणा बन जाता है।"[5] कहानी यह सिखाती है कि शारीरिक या सामाजिक बाधाएं इंसान की क्षमता को रोक नहीं सकतीं, बल्कि प्रेम, धैर्य और संकल्प से वह अपने और दूसरों के जीवन में सकारात्मक बदलाव ला सकता है।–सुगनी कहानी का मुख्य उद्देश्य है।

युद्ध विराम – मुख्य संदेश : विवाद और संघर्ष के बाद शांति, सहिष्णुता और मानवता की स्थापना आवश्यक है, जो समाज और जीवन को स्थिर बनाती है।

पुजारिन अइया–मुख्य संदेश : सामाजिक और पारिवारिक जीवन में भावनात्मक जुड़ाव, सहिष्णुता और समझदारी से ही सच्ची सामंजस्य और शांति स्थापित हो सकती है।

कुआँ–मुख्य संदेश : सामाजिक और पारिवारिक जीवन में सम्मान, समझदारी और सहिष्णुता बनाए रखना आवश्यक है ताकि रिश्तों में स्थिरता और मानवता बनी रहे।

बाघ बाबा का चौराह–मुख्य संदेश : सहिष्णुता, सम्मान और समझदारी से समाज और परिवार के रिश्तों को मजबूत बनाकर स्थिरता एवं शांति को स्थापित करना आवश्यक है।

सेवानिवृत्ति–मुख्य संदेश : जीवन के सेवानिवृत्ति के चरण में आत्मावलोकन, सामाजिक और पारिवारिक संबंधों का पुनर्मूल्यांकन, समझदारी और सहनशीलता से जीवन को संतुलित एवं सार्थक बनाना आवश्यक होता है।

लोक–संस्कृति और समयानुकूलता :

डॉ. सिंह ने लोकगीत, अवधी भाषा और स्थानीय संस्कारों के माध्यम से समाज को उसकी जड़ों से जोड़ने का प्रयास किया है, साथ ही वर्तमान समय की सामाजिक चुनौतियों और बदलावों को भी अपनी रचनाओं में समेटा है। उनका साहित्य नारी सशक्तिकरण, ग्राम–नगर संबंध और मानवता की मूलधार की कालानुकूल व्याख्या प्रस्तुत करता है।

यहाँ डॉ. विद्या बिंदु सिंह के कथा–साहित्य में बदलते सामाजिक सरोकार के लिए सबसे महत्वपूर्ण 5 संकेत बिंदु प्रस्तुत हैं : डॉ. विद्या बिंदु सिंह ने अपनी लेखनी से सामाजिक जिम्मेदारियों और यथार्थों को साहित्य का मुख्य विषय बनाया।

1. उनका साहित्य नारी चेतना, ग्रामीण संस्कृति, परिवार के बदलते संबंध और सामाजिक संवाद पर केंद्रित

है।

2. उनकी कहानियों और उपन्यासों में नारी को संघर्षशील, सशक्त और निर्णयकर्ता के रूप में प्रस्तुत किया गया है।
3. परिवार में पीढ़ीगत द्वंद्व, वृद्धजनों की उपेक्षा और आधुनिकता के प्रभाव उनके साहित्य के प्रमुख सामाजिक विषय हैं।
4. लोक संस्कृति और समयानुकूलता के समन्वय से उनका साहित्य समाज के जीवंत और बदलते परिवेश को दर्शाता है।

डॉ. विद्या बिंदु सिंह के कथा साहित्य में सामाजिक सरोकार नारी चेतना, ग्रामीण संस्कृति, परिवार के बदलते संबंध, और सामाजिक संवाद जैसे महत्वपूर्ण विषयों पर व्यापक रूप से केंद्रित हैं। उनकी लेखनी न केवल सामाजिक यथार्थ की स्पष्ट अभिव्यक्ति करती है, बल्कि समाज परिवर्तन और संवेदनशीलता की प्रेरणा भी देती है। यही कारण है कि उनका साहित्य आज भी अपनी प्रासंगिकता और प्रभावशीलता बनाए हुए है। आधुनिक हिंदी साहित्य में गद्य एवं पद्य के क्षेत्र में विद्या बिंदु सिंह के रूप में एक अमूल्य रतन की प्राप्ति हुई है।

हिंदी साहित्य में इनका योगदान सराहनीय है। इसी तरह गद्य एवं पद्य की रचना के रूप में नई दिशा में आने वाले युवकों के लिए यह प्रेरणा देते रहेंगे। समाज को नई दिशा निर्देशित करते रहेंगे। उपर्युक्त कथन से हमें अवगत होता है कि जिस प्रकार डॉक्टर विद्या बिंदु सिंह सामाजिक पहलुओं को लेकर चिंतन मनन किया है। समाज के लिए एक प्रेरणा स्रोत बनी है। इस तरह हमें भी अपने कर्तव्यों को समझ कर समाज के लिए भरपूर तन मन से सेवा करनी चाहिए। यही हमारे जीवन का सबसे बड़ा धर्म है और हमें इन साहित्याओं को अपनाकर जीवन को सफल एवं सक्षम बनाना चाहिए।

संदर्भ सूची :

1. विद्या विंदु सिंह, एड़ियही काकी, विद्या विंदु सिंह की 21 कहानियाँ, कल्पना प्रकाशन (2022), पृ.–40
2. विद्या विंदु सिंह, मंगलू, काशीवास प्रथम संस्करण (2012), ग्रंथ अकादमी, पृ.–97
3. विद्या विंदु सिंह, बारी–बारी, विद्या विंदु सिंह की 21 कहानियाँ, (2022), पृ–96
4. विद्या विंदु सिंह, बनदेई, प्रतिभा प्रतिष्ठान (2007), पृ.सं–40
5. विद्या विंदु सिंह, सेवानिवृत्ति, सड़क पर उगते बच्चे, दिव्यं प्रकाशन (2014), पृ. 149.

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Sept. 2025 Page No. : 366-369

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

मंजरी : किन्नर विमर्श

डी श्रीदेवी, शोधार्थी,
डॉ. पूर्णिमा श्रीनिवासन, शोध निर्देशिका,
वेल्स इंस्टीट्यूट ऑफ साइंस टेक्नोलॉजी एंड एडवांस स्टडीज, पल्लावरम, चेन्नई।

साहित्य लोगों की नागरिकता की अभिव्यक्ति है। साहित्यिकारों ने अपनी रचनाओं के माध्यम से लोगों को समाज में घटित हो रही सभी समस्याओं से अवगत कराया है तथा उनके समाधान का मार्ग प्रशस्त किया है। इक्कीसवीं सदी में अनेक साहित्यिकार नारी, वृद्ध, पर्यावरण, किन्नर, किसान आदि विमर्श पर लिख रहे हैं। पहले जमाने में स्त्री और पुरुष के बीच लैंगिक असमानता अधिक रही। इसे तोड़कर स्त्रियों ने अपनी पहचान के लिए आगे आकर सफलता हासिल की। समाज में उचित मान–सम्मान और बराबरी का दर्जा सभी को मिलना चाहिए। फिर भी यह समाज किन्नर को नीच दृष्टि से ही देखता हैं। प्राचीन काल में रामायण, महाभारत, मनुस्मृति जैसे पवित्र ग्रंथों में तो तृतीय लिंग और उनके समुदाय की सकारात्मक भूमिका मिलती है। मुगल शासन में किन्नर को पहरेदार जैसी सुरक्षा से जुड़े कार्यों से लेकर महल की शाही औरतों पर निगरानी के काम में रखा गया था।

डॉ. अभिषेक सिंह के अनुसार, "मुगल शासन में अकबर से लेकर औरंगजेब के काल में सैन्य एवं जिसूस (Eunuch) अधिकारियों ने महत्वपूर्ण भूमिकाएं निभाई।"[1] स्वतंत्रता के पहले ब्रिटिश सरकार ने उनकी प्रत्येक स्वच्छंद गतिविधियों पर लगाम लगाने के लिए कठोर नियम बनाया। वे तृतीय लिंग को निम्न जाति के लोगों के साथ रखते थे अपराधी मानते थे। आज भी समाज में किन्नरों की स्थिति अच्छी नहीं है। उच्च परिवार के लोग समाज में अपनी प्रतिष्ठा की रक्षा के लिए तृतीय लिंग बच्चे को मार डालने के लिए भी तैयार हो जाते हैं। इस वैज्ञानिक युग में भी कुछ लोग तृतीय लिंग की उपेक्षित करते हैं। उन्हें अपशकुन मानते हैं। यहां लेखिका मंजरी उपन्यास द्वारा लिंग भेद भाव को समाप्त करके उनको समाज में समान अधिकार देने का संदेश देती है।

सारांश :

रजीता लखनऊ में गोमती नगर के एक वरिष्ठ परिवार की बहू है। रजीता और हेमंत दोनों कॉलेज में साथ पढ़ते थे।दोनों में प्यार होता है और वो शादी करते हैं। हेमंत अपने परिवार का पारंपरिक कपड़े का व्यवसाय करता है और शो रूम की देखभाल करता है साथ ही कलेक्टरी पढ़ाई करता है। रजीता एक तृतीय लिंग बच्ची को जन्म देती हैं। रजीता अपनी बेटी की मंजरी के लिए समाज से संघर्ष करती है। मंजरी अपनी मां की प्रेरणा से पढ़ाई पूरी करती है। वह यूपीएससी चयन में तृतीय लिंग होने के कारण हो रहे अन्याय को न्यायालय तक ले जाती है और अपने समुदाय की पहचान साबित करती है।

परिवार वालों द्वारा अवहेलना :

जोशी अपने परिवार की गरिमा और सम्मान को सर्वोपरि मानते हैं। अस्पताल में तृतीय लिंग बच्ची को जन्म दिए रजीता को ऐसे ही छोड़कर जोशी परिवारवाले वहां से चले गए। उनको अपनी बहू से ज़्यादा अपनी प्रतिष्ठा महत्वपूर्ण हैं। रजीता की साथ और अन्य परिवार वाले तथा पति भी किन्नर बच्चे की खबर सुनकर वहां से चले जाते हैं। "कल्याणी सभी को नर्सिंग होम से खींचकर घर ले गई। बल्कि हेमंत रुऑसा हो गया, राजी की सास भी अड़ गई, पर कल्याणी नहीं मानी तो नहीं मानी।..... कल्याणी ने फतवा दे दिया और सभी लोग राजी को नर्सिंग होम में अकेली छोड़कर रघुराज भवन वापस आ गए।"[2] इतनी शिक्षित होने के बावजूद हेमंत अपने परिवार के साथ मिलकर अपने तृतीय लिंग बच्चे को परिवार से अलग करने के लिए सहमत हो जाता है। जब रजीता ने फोन किया तो वह अपने ही बच्चे को एक अजीब जानवर समझकर उसके बारे में पूछता है। वह कहता है "अपनी बेटी के बारे में? बेटी कैसी बेटी इस ब्रीड के लोग मेल और फीमेल भी होते हैं क्या।"[3] परिवार में बूढ़े से लेकर बड़ों तक अपने परिवार की लाडली बच्ची से ज्यादा अपनी प्रतिष्ठा को मुख्य मानते हैं। वे तृतीय लिंग बच्चे को कलंक मानते हैं। समाज और परिवार उनकी परेशानियों को नहीं समझते। डॉ. भारती अग्रवाल इस समस्या के बारे में लिखती हैं कि, "समाज और परिवार समझ नहीं पाता है कि जो ट्रांसजेंडर वह ट्रांसजेंडर है। उसे उसके रूप में अपनाने में कोई परेशानी नहीं होना चाहिए।.....ट्रांसजेंडर एक तो खुद ही मानसिक तनाव में गुजर रहे होते हैं, दूसरा घर परिवार का दबाव उनकी जिंदगी को दुश्वार कर देता है।"[4] जोशी परिवार वाले रजीता से बच्चे को अनाथालय में छोड़कर आने के लिए जबरदस्ती करते हैं। वे सभी इस समाज में अपने परिवार के सामाजिक स्तर को कायम रखना चाहते हैं। "उन्होने शर्त रखी है बल्कि सभी ने, हेमंत ने भी, कि रजिता या तो बच्ची को अनाथालय में दे दें, और हमारे साथ रहन आ जाए, इस घर की बहू है वह दिल से स्वागत है उसका और नहीं तो डाइवोर्स ले ले म्यूचअल कंसेंट पर।"[5] उच्च वर्गीय शिक्षित परिवार भी किन्नर बच्चे को नहीं अपनाना चाहता। इस प्रकार, एक किन्नर बच्चे का जीवन जन्म से ही कष्टदायक बन जाता है।

मां का संकल्प :

किन्नर लोगों की छोटी सी कमी के कारण उनकी पूरा जिंदगी बर्बाद करना अन्याय है। सच में उनका मस्तिष्क दूसरों की तुलना में बहुत अधिक विकसित है। वे भी आम आदमी की तरह डॉक्टर, पायलट, वैज्ञानिक, इंजनीयर सब कुछ बन सकते हैं। लेकिन समाज की उपेक्षा के कारण किन्नर बिरादरी ने स्वयं को एक अंधेरी कोठरी में कैद कर लिया है। रजीता अपनी किन्नर बेटी को इस समाज का सफल उदाहरण बनाना चाहती है। इसका एक मात्र रास्ता पढ़ाई है। "रजीता का दृढ विश्वास है कि एक दिन ऐसा अवश्य आएगा, जब मंजरी... ..बहिष्कृत होने योग्य मानकर निश्चिन्त बैठ गए हैं।"[6] अपनी बेटी की परवरिश के लिए रजीता अपने पति को त्यागकर दूसरी शादी करके नरेंद्र को अपने पति बनाती है। वह अपनी बेटी का सामान्य बच्चों की तरह पालन–पोषण करती है। मंजरी अपनी मां की प्रेरणा से अपनी पढ़ाई से लेकर सभी विषयों में अव्वल आती है। लॉ की पढ़ाई के साथ ही साथ यू. पी. एस. सी. परीक्षा की तैयारी भी करती है। रजीता सोचती है "बस एक बार उसका सेलक्शन हो जाए फिर वह अपनी बिरादरी के लोगों की किस्मत पलट देगी। उनकी सोच को बदलने में जी जान लगा देगी मंजरी। किसी को भी ताली बजा बजाकर बाजार में ट्रेन में या किसी भी सार्वजनिक जगह पर पैसा नहीं मांगने देगी वह।"[7] मां से प्रेरित होकर शिक्षा के माध्यम से मंजरी अपनी बिरादरी लोगों की दुःख

भरी जिंदगी को बदलना चाहती है।

सहेलियों द्वारा परेशान :

मंजरी को सरकार से यूपीएससी इंटरव्यू के लिए चयन की खबर मिलती है। रजीता और पूरा परिवार बहुत खुश हो जाता है। मंजरी के मां–बाप उसे कोचिंग के लिए दिल्ली लेकर जाते हैं। वहाँ वे एक अच्छे कोचिंग सेंटर में आईएएस अभ्यर्थियों से बातचीत करते हैं और मंजरी का दाखिला भी करवा देते हैं। नरेंद्र के एक दोस्त की मदद से मंजरी के रहने की व्यवस्था भी करता है। मंजरी के साथ उनकी रूम मेट गार्गी और रेवथी भी परीक्षा की तैयारी कर रही हैं। लेकिन रचना, गार्गी और रेवथी – ये तीनों मंजरी को कुछ अजीब नजरों से देखती हैं। गार्गी अक्सर मंजरी को परेशान करती रहती है। वह पढ़ाई के दौरान बार–बार कमरे में आकर टहलती है, और खोजी नजरों से उसकी किताबें, मैगजीन या उसका कमरा घूरती रहती है। जब भी गार्गी कमरे में आती है, तो कोई न कोई ऐसी हरकत करती है जिससे मंजरी परेशान हो जाती है। एक बार मंजरी ने गुस्से में आकर उसका हाथ पकड़कर उसे कमरे से बाहर निकाल दिया। "देखो, गार्गी मेरा तो यह पहला साल है, मैं एक बार को नहीं भी सेलेक्ट हुई तो चलेगा वैसे भी पहली बार में ही इंटरव्यू कॉल आ गई है..... तुम्हारे अगले दो चार साल भी बर्बाद ही समझो..।"[8] किन्नरों की शारीरिक बनावट के रूप को देखकर उन्हें हमेशा ही मजाक किया जाता है। इससे व्यक्त होता है कि पुरुष ही नहीं स्त्रियों भी उनपर मजाक उड़ाते हैं और जिंदगी में आगे बढ़ने के लिए बाधा उत्पन्न करते हैं।

मंजरी का आत्मविश्वास :

सामान्यतः किन्नर लोग अपने छोटे से लेकर बड़े विषयों पर बात करने के लिए झिझकते है। किन्नरों अपने आप को हेय दृष्टि से देखने वाले लोगों से बहुत दूर रहते हैं। मंजरी की आवाज न मर्दनी या जनानी, वह न पूरी तरह लड़का न पूरी तरह लड़की इन सभी विसंगतियों की वजह से स्कूल, कॉलेज में अपवाद बन जाती है। लेकिन वह बहुत बहादुरी और आत्म विश्वास के साथ इन सभी का सामना करती है। "उसके पास उसकी मां का दिया हुआ आत्मविश्वास की अथाह सम्पदा है कि लाख बेइज्जती, व्यंग्य, भद्दे मजाक सुनते झेलते रहने के बावजूद भी उसने अपना भेद किसी के सामने नहीं खोला और न विचलित हुई।"[9] जब यूपीएससी चयन समिति ने मंजरी को नियुक्ति से पहले उसके लिंग की पुष्टि के लिए मेडिकल बोर्ड से सर्टिफिकेट लाने को कहा, तो मंजरी ने इस मामले को अदालत में ले जाने का निर्णय लिया। उसने न्यायालय में अपने संघर्षमय जीवन की कहानी और न्याय की मांग को रखा। "लोगों की विद्रूप हॅसी जलालत भरे शब्द, हयूमिलैशन, समाज की मुख्य धारा से अलग कटकर अपनी एक अलग दुनिया बसाकर रहना.....बाप रे बाप!"[10] मंजरी किन्नरों की अपमान भरी कष्टमय जीवन को अदालत के सामने रखती है।

अदालत का फैसला :

मंजरी ने अपने समुदाय की इस दयनीय स्थिति को बदलने के लिए आगे कदम बढ़ाया। वह अपने लोगों के लिए प्रेरणा स्रोत बनना चाहती हैं। वह उन्हें आत्मनिर्भर बनने के लिए प्रेरित कर रही हैं और बदलाव की दिशा में हर संभव प्रयास कर रही हैं। "इस पर विचार करते हुए मिस मंजरी को उस भूल के लिए कोर्ट उन्हें क्षमा करता है साथ ही उन्हें निर्देश देता है कि जब तक सरकार 'अन्य' केटगरी के बारे सोच विचार करके कोई निर्णय नहीं ले लेती, तब तक मिस मंजरी को 'अन्य' की केटगरी में ही अपनी सर्विस ज्वाइन करनी होगी।"[11] मंजरी

का उद्देश्य है कि उसका समुदाय सम्मान और समान अवसरों के साथ आगे बढ़े। किन्नरों के प्रति सहानुभूति रखते हुए, उनका पूरी तरह से सम्मान करना चाहिए। उन्हें दूसरों से अलग नहीं समझना चाहिए। समाज में कई बदलाव आने के बाद भी किन्नरों के बारे में गलत सोच को मन से हटाना बहुत मुश्किल होता है। कानूनी और सरकारी प्रयासों के बावजूद समाज में किन्नरों के प्रति ग्रणित भाव को हटाना कठिन है। किन्तु मंजरी जैसे दृढ़ निश्चय वाले लोगों के प्रयासों से ही समाज में परिवर्तन आ सकता है।

निष्कर्ष :

लेखिका मंजरी उपन्यास के माध्यम से यह कहते हैं कि मंजरी न केवल उनके अधिकारों की वकालत करती हैं, बल्कि समाज में उनकी स्वीकार्यता और समानता सुनिश्चित करने की दिशा में भी एक सशक्त संदेश देती हैं। यह उपन्यास तृतीय लिंग समुदाय के संघर्ष, संवेदना और संभावनाओं को उजागर करते हुए समाज को सोचने पर मजबूर करता है। तभी सभी किन्नरों के जीवन में सकारात्मक परिवर्तन आ सकता है।

संदर्भ :

1. डॉ. अभिषेक सिंह, हिंदी कथा साहित्य में ट्रांसजेंडर, पृष्ठ सं. 66
2. मालती मिश्रा, मंजरी, रश्मि प्रकाशन, लखनऊ, प्र.सं 2022, पृष्ठ सं. 8
3. वही, पृष्ठ सं. 36
4. डॉ. विनय कुमार पाठक, किन्नर दशा और दिशा, पृष्ठ सं. 115
5. मालती मिश्रा, मंजरी, रश्मि प्रकाशन, लखनऊ, प्र.सं 2022, पृ. सं. 41
6. वही, पृष्ठ सं. 58
7. वही, पृष्ठ सं. 68
8. मालती मिश्रा, मंजरी, रश्मि प्रकाशन, लखनऊ, प्र.सं 2022, पृष्ठ सं. 93
9. वही, पृष्ठ सं. 57
10. वही, पृष्ठ सं. 121
11. वही, पृष्ठ सं. 129

sridevipalani21@gmail.com

9952951435

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Sept. 2025 Page No. : 370-375

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

सामाजिक माध्यम और इंटरनेट पर रचनात्मकता : नए माध्यम एवं नई भाषा (बाल साहित्य के संदर्भ में)

गुरू गोविंद विश्वत, शोधार्थी
अनुराधा पाकलपाटि, शोध निर्देशिका
सहायक प्राध्यापक हिंदी विभाग, वेल्स इंस्टीट्यूट ऑफ साइंस, टेक्नोलॉजी एंड एडवांस्ड स्टडीज (विस्टस)

सार :

वर्तमान युग सूचना–प्रौद्योगिकी और सोशल मीडिया का युग है, जिसने साहित्य की भाषा, शैली और अभिव्यक्ति को नए रूप में प्रस्तुत किया है। फेसबुक और इंटरनेट जैसे डिजिटल मंचों ने बाल साहित्य को पारंपरिक पुस्तकों और पत्रिकाओं से आगे बढ़ाकर त्वरित, बहुआयामी और सहभागी मंच उपलब्ध कराया है। बच्चों की रचनात्मकता अब केवल लिखित शब्दों तक सीमित न रहकर ऑडियो, वीडियो, चित्र और इमोजी जैसी मल्टीमॉडल विधाओं में प्रकट हो रही है।

इन माध्यमों से बच्चों को अभिव्यक्ति के नए अवसर मिले हैं, किंतु इसके साथ कुछ चुनौतियाँ भी हैं। भाषाई शुद्धता का संकट, अशुद्ध या निम्नस्तरीय सामग्री की उपलब्धता, इंटरनेट की लत, आलोचनात्मक सोच का ह्रास और पारंपरिक साहित्य से दूरी। इसके बावजूद यदि गुणवत्ता नियंत्रण, स्क्रीन–समय संतुलन और डिजिटल साक्षरता पर ध्यान दिया जाए, तो ये मंच हिंदी बाल साहित्य को और समृद्ध कर सकते हैं।

फेसबुक और इंटरनेट ने बच्चों को केवल उपभोक्ता नहीं, बल्कि सृजनकर्ता बनने का अवसर दिया है। नई भाषा, नए माध्यम और रचनात्मक प्रयोग हिंदी बाल साहित्य को आधुनिक समय के अनुरूप अधिक जीवंत और प्रासंगिक बना रहे हैं। अतः यह कहा जा सकता है कि यदि इनका सही दिशा में उपयोग हो, तो हिंदी बाल साहित्य का भविष्य निश्चय ही उज्ज्वल है।

मूल शब्द : फेसबुक, इंटरनेट, रचनात्मकता, नई भाषा, बाल साहित्य, सोशल मीडिया, डिजिटल माध्यम।

प्रस्तावना :

वर्तमान युग सूचना–प्रौद्योगिकी और इंटरनेट का युग है। आज मानव जीवन का हर पहलू सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म जैसे फेसबुक, इंस्टाग्राम, यूट्यूब आदि से प्रभावित है। विशेषकर फेस्बूक ने केवल संवाद का माध्यम भर नहीं बनाया, बल्कि विचारों, अनुभवों और रचनात्मकता को साझा करने का एक सशक्त मंच भी प्रदान किया है। इंटरनेट के इन नए माध्यमों ने साहित्य की अभिव्यक्ति की भाषा, शैली और स्वरूप में भी परिवर्तन किया है। बाल साहित्य, जो परंपरागत रूप से पत्र–पत्रिकाओं, पुस्तकों और मौखिक परंपरा के माध्यम से बच्चों तक पहुँचता था, अब डिजिटल प्लेटफॉर्म पर नए रूप में उभर रहा है। फेसबुक और अन्य इंटरनेट मंचों पर बाल साहित्यकार

अपनी रचनाओं को साझा कर बच्चों, शिक्षकों और अभिभावकों तक तुरंत पहुँचा सकते हैं। इस प्रक्रिया में भाषा अधिक संवादपरक, सरल और चित्रात्मक होती जा रही है, जिससे बाल साहित्य की पहुँच और प्रभाव दोनों ही व्यापक हुए हैं।

इंटरनेट और सोशल मीडिया ने बाल साहित्य को केवल पाठक–कलेवर से आगे बढ़ाकर रचनात्मक सहभागिता का मंच बना दिया है। हाल के अध्ययनों से पता चलता है कि सोशल मीडिया बच्चों की लिखित भाषा और विषय चयन दोनों को प्रभावित कर रहा है – छोटे लेखन में सोशल–मीडिया प्रवृत्तियाँ, कोड–स्विचिंग और नए विषय दिखाई दे रहे हैं।[1]

संशोधित भूमिका का अंश :

संचार माध्यम विशेषज्ञ मार्शल मैकलुहान का कथन है – The medium is the message अर्थात् माध्यम स्वयं संदेश को आकार देता है। इस दृष्टि से देखा जाए तो फेसबुक और इंटरनेट जैसे माध्यमों ने न केवल साहित्य की प्रस्तुति बदली है, बल्कि उसकी भाषा और अभिव्यक्ति को भी नया स्वरूप प्रदान किया है। इसी संदर्भ में यह लेख फेसबुक और इंटरनेट पर रचनात्मकता के विभिन्न आयामों की चर्चा करेगा तथा बाल साहित्य में नए माध्यमों और नई भाषा की प्रासंगिकता को रेखांकित करेगा।

इंटरनेट और फेसबुक : नया माध्यम :

इंटरनेट ने बच्चों के सामने ज्ञान और सूचना का असीम सागर खोल दिया है। पहले बच्चों तक साहित्य मुख्यतः बाल पत्रिकाओं (जैसे चंपक, नंदन, बालहंस, पराग आदि) या विद्यालयी पुस्तकों के माध्यम से पहुँचता था। आज वही साहित्य डिजिटल रूप में वेबसाइट्स, ई–बुक्स और सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म्स पर उपलब्ध है। फेसबुक जैसे प्लेटफॉर्म बच्चों के लिए प्रत्यक्ष नहीं बनाए गए थे, परंतु बच्चों से संबंधित साहित्य, कहानियाँ, कविताएँ, चित्रकथाएँ और गतिविधियाँ यहाँ लेखकों, शिक्षकों और अभिभावकों के माध्यम से साझा की जाती हैं। अब कई लेखक और साहित्यकार अपनी कहानियाँ और कविताएँ फेसबुक समूहों और पेजों के माध्यम से बच्चों तक पहुँचा रहे हैं। बाल साहित्य के लिए समर्पित कई फेसबुक ग्रुप्स हैं, जहाँ बच्चों की कहानियाँ, कविताएँ, पहेलियाँ और चित्रकथाएँ डाली जाती हैं। इन समूहों में शिक्षक और अभिभावक बच्चों की रचनात्मकता को प्रोत्साहित करते हैं। इस प्रकार फेसबुक न केवल वयस्कों का माध्यम है, बल्कि अप्रत्यक्ष रूप से बच्चों के साहित्य को भी एक बड़ा मंच प्रदान कर रहा है। इसी तरह, यूट्यूब चौनल्स, ब्लॉग्स और इंस्टाग्राम पेज भी बच्चों के लिए रचनात्मक सामग्री प्रस्तुत कर रहे हैं। उदाहरण के लिए, बाल कविताएँ वीडियो रूप में लोकप्रिय हो रही हैं, जिन्हें बच्चे सुनते और गुनगुनाते हैं। ऑडियो स्टोरीज बच्चों को सुनने और कल्पना करने के लिए प्रेरित करती हैं। इस तरह इंटरनेट और सोशल मीडिया, पारंपरिक साहित्य को नए रूप में ढालकर बच्चों तक पहुँचा रहे हैं।

फेसबुक पर विशेष समूह, पेज और लाइव–बैठकें बाल–लेखकों, शिक्षकों और बच्चों को जोड़ती हैं। ये प्लेटफॉर्म पाठकों–लेखकों के बीच सीधा संवाद, प्रतियोगिताएँ, ऑनलाइन पाठ–कार्यशालाएँ और डिजिटल पुस्तक–प्रदर्शन संभव करते हैं – जिससे पारंपरिक प्रकाशन चक्र छोटा होता है और पढ़ी जाने वाली सामग्री की पहुँच बढ़ती है। उदाहरण के लिए स्थानीय–स्तरीय बाल साहित्य महोत्सव और फेसबुक–लाइव से जुड़ी गतिविधियाँ अब नियमित रूप से हो रही हैं।[2]

रचनात्मकता और नई भाषा की संभावनाएँ :

रचनात्मकता का अर्थ केवल कविता या कहानी लिखना नहीं है, बल्कि भाषा के साथ खेलने की क्षमता, नए विचार उत्पन्न करना और उन्हें अभिव्यक्त करना है। इंटरनेट और फेसबुक ने बच्चों में इस रचनात्मकता को जगाने के लिए अनगिनत साधन दिए हैं। आज बच्चे ऑनलाइन कहानी प्रतियोगिताओं में भाग ले रहे हैं। फेसबुक या गूगल मीट पर कहानी सुनाने की प्रतियोगिताएँ हो रही हैं। बच्चे वीडियो बनाकर अपनी कविताएँ और नाटक प्रस्तुत कर रहे हैं। यह सब डिजिटल रचनात्मकता का हिस्सा है। परंतु इसके साथ एक नई भाषा भी सामने आई है। उदाहरण के लिए : हिंग्लिश : बच्चे 'Good Morning दोस्तों' जैसे वाक्य प्रयोग करते हैं।

इमोजी भाषा : कई बार शब्दों की जगह Imozi जैसे इमोजी प्रयोग होते हैं।

संक्षिप्त रूप (Short forms) : 'न' (you), 'हत8' (Great), 'इजू' (by the way) आदि।

नेट संस्कृति के शब्द : जैसे 'लाइक', 'शेयर', 'फॉलो', 'कमेंट'।

यह नई भाषा बच्चों के लिए आकर्षक है, क्योंकि यह तेज, रोचक और आधुनिक प्रतीत होती है। परंतु यह शुद्ध हिंदी के लिए चुनौती है। फिर भी यदि इस नई भाषा का सही उपयोग हो, तो यह बच्चों की कल्पनाशक्ति और रचनात्मक अभिव्यक्ति को और समृद्ध कर सकती है। उदाहरण के लिए, बच्चे इमोजी का उपयोग करके छोटी–छोटी कहानियाँ बना सकते हैं।

बालकों की रचनात्मक भागीदारी – कैसे बदल रही है गतिविधि :

इंटरनेट बच्चों को केवल उपभोक्ता नहीं, बल्कि निर्माता भी बना देता है। बच्चे खुद कविताएँ पोस्ट करते हैं, छोटी कहानियाँ अपलोड करते हैं, चित्र/कॉमिक्स बनाकर साझा करते हैं और वीडियो–कहानी बनाते हैं। इस सहभागिता से रचनात्मकता का अभ्यास बढ़ता है –वे फीडबैक पाते हैं, सहपाठी–समर्थन मिलता है और छोटे–छोटे प्रयोग आजमाते हैं (जैसे हाइब्रिड शैलियाँ, मल्टीमॉडल टेक्स्ट)। शोध बताते हैं कि डिजिटल/सोशल प्लेटफॉर्म पर हुई भागीदारी बच्चों की लेखन शैली और शब्द चयन में परिवर्तन लाती है।[3]

चुनौतियाँ :

हालाँकि इंटरनेट और फेसबुक ने नए अवसर दिए हैं, लेकिन इसके साथ कई चुनौतियाँ भी हैं।

भाषाई शुद्धता का संकट :

बच्चे बहुत जल्दी हिंग्लिश (हिन्दी – अंग्रेजी मिश्रण), ट्रांसलिटरेशन (रोमन में हिंदी लिखना) और चैट – शॉर्टकट्स के आदतन प्रयोग के आदी हो जाते हैं। ऐसे में औपचारिक और शुद्ध हिंदी लिखने – बोलने की प्रवृत्ति कमजोर होती है।

कारण :

मोबाइल–किवर्ड, त्वरित मैसेजिंग की प्रवृत्ति, ऑनलाइन मित्रों में अंग्रेजी शब्दों का सामान्य प्रयोग, और शिक्षक/परिवार द्वारा स्पष्ट अलगाव न बनाना। सोशल प्लेटफॉर्म पर अनौपचारिक भाषा की स्वीकार्यता भी इसका कारण है।

प्रभाव :

वाक्य–रचना, व्याकरण और शब्द–सभीता (Vocabulary) पर असर, औपचारिक लेखन व परिक्षाओं में गलतियाँ, साहित्यिक अभिव्यक्ति की गहराई में कमी।

गुणवत्ता का अभाव :

इंटरनेट पर हर प्रकार की सामग्री उपलब्ध है पर हर सामग्री साहित्यिक या शैक्षिक मानकों पर खरी नहीं उतरती, बच्चे अशुद्ध, भ्रामक या निम्नस्तरीय लेखन तक पहुँच लेते हैं। डिजिटल सामग्री में गुणवत्ता का भेद कठिन हो सकता है। बच्चों के लिए उपयुक्त, नैतिक और संवेदनशील सामग्री की मॉडरेशन जरुरी है।

कारण :

बिना संपादन व मॉडरेशन के मुफ्त सामग्री का बाढ़–सा आना, एल्गोरिद्म जो केवल व्यूज/एंगेजमेंट को बढ़ाते हैं, माता–पिता/शिक्षक द्वारा सामग्री–निर्देशन का अभाव।

प्रभाव :

बच्चों का साहित्य का मानक गिर सकता है। गलत भाषा–उपयोग फैल सकता है। गलत जानकारी का अनुकरण।

लत का खतरा (स्क्रीन टाइम/ध्यान विकर्षण) :

फेसबुक, गेम्स और मनोरंजनात्मक कंटेंट बच्चों को लंबे समय तक व्यस्त रख सकते हैं। साहित्यिक ६ शैक्षिक पढ़ाई की जगह मनोरंजन ले लेता है। विश्व स्वास्थ्य संगठन और स्वास्थ्य संस्थाएँ स्क्रीन–टाइम पर सतर्क रहने की सलाह देती हैं – छोटे बच्चों के लिए सीमाएँ और सक्रिय, संवादात्मक पढ़ाई को प्राथमिकता देना जरूरी है।[4]

कारण :

अल्गोरिथ्मिक डिजाइन, गेम–लूप, तात्कालिक पुरस्कार (लाइक्स, कमेंट्स), और मॉनिटरिंग का अभाव।

प्रभाव :

पढ़ने–लिखने के लिए समय की कमी, ध्यान और गहन पठन–क्षमता (Deep Reading) का क्षरण, नींद पर बुरा प्रभाव।

आलोचनात्मक सोच का ह्रास :

बच्चे तुरंत गूगल/इंटरनेट से उत्तर ढूँढ लेते हैं पर इसका मतलब यह भी है कि वे खोजी, तुलना–आधारित और स्वयं–अभिव्यक्तिक (Original) सोच का अभ्यास कम करते हैं।

कारण :

सहज उपलब्धता (Quick Answers), असाइनमेंट/होमवर्क में रटने या कॉपी–पेस्ट की प्रवृत्ति, और शिक्षण–पद्धति का प्रक्रिया पर कम ध्यान।

प्रभाव :

मौलिकता में कमी, विचार–विस्तार की क्षमता घटना, समस्या–समाधान कुशलता में कमी।

पारंपरिक साहित्य से दूरी :

आकर्षक डिजिटल कंटेंट के कारण बच्चे किताबों, पत्रिकाओं और लंबी कथाओं से कम जुड़ते हैं, पारंपरिक पठन–आनंद घटता है।

कारण :

त्वरित, दृश्यमान और इंटरैक्टिव कंटेंट का लोभ, स्कूल पाठ्यक्रम में पाठन–समय का कम होना,

पारिवारिक पठन–संस्कृति का अभाव।

प्रभाव :

गहरी पाठन–क्षमता, कल्पना की गंभीरता, कथात्मक समझ और साहित्यिक अनुशासन का घटना।

आज हम एक ऐसे समय में जी रहे हैं जहाँ भाषा और साहित्य का स्वरूप निरंतर बदल रहा है। फेसबुक और इंटरनेट जैसे माध्यमों ने हिंदी बाल साहित्य को नई दिशा दी है। बच्चों तक साहित्य अब केवल पुस्तकों के माध्यम से नहीं, बल्कि वीडियो, ऑडियो, इमोजी और डिजिटल कहानियों के रूप में पहुँच रहा है। निस्संदेह, इससे बच्चों की रचनात्मकता के नए आयाम खुल रहे हैं। लेकिन साथ ही भाषा की शुद्धता और साहित्य की गुणवत्ता बनाए रखना हमारी जिम्मेदारी है। हमें बच्चों को यह सिखाना होगा कि इंटरनेट केवल मनोरंजन का साधन नहीं, बल्कि सीखने और रचनात्मक बनने का अवसर भी है। हिंदी दिवस के अवसर पर यह कहना उचित होगा कि यदि हम इंटरनेट और सोशल मीडिया की शक्ति को सही दिशा में प्रयोग करें, तो हिंदी बाल साहित्य का भविष्य उज्ज्वल है। नई भाषा और नए माध्यम बच्चों के लिए हिंदी को और भी रोचक, जीवंत और आधुनिक बना सकते हैं।

भाषा में आए बदलाव – नया लहजा, शैलियाँ और उपकरण :

इंटरनेट–युग की भाषा के कुछ नामी–दर्जे के लक्षण हैं संक्षेप (Abbrev.), इमोजी का समावेश, कोड–स्विचिंग (हिंदी–अंग्रेजी का मिश्रण), प्रतिक्रियात्मक वाक्यांश और संवादात्मक टोन। बच्चों की कहानियों में ये तत्व नयी कथन–शैली बनाते हैं – सरल, त्वरित और मीडिया–अनुकूल। साथ ही, सोशल मीडिया के कारण विषयगत बदलाव भी दिखता है (गेमिंग, डिजिटल मित्रता, एनवायरनमेंटल–थीम्स, आत्म–कथनात्मक लेखन)। सोशल–मीडिया भाषा के व्यापक प्रभावों पर अनुसंधान उपलब्ध है।[5]

मल्टीमॉडल रचनात्मकता – टेक्स्ट से परे :

इंटरनेट पर बाल साहित्य अब केवल शब्द नहीं यह चित्र, ध्वनि, वीडियो और इंटरएक्टिव एलिमेंट्स का मिश्रण है। एनिमेटेड कहानियाँ, ऑडियो–स्टोरी, चित्र–कथाएँ और इन्फोग्राफिक आधारित कथन पढ़ने–लिखने के नए कौशल (Multiliteracies) सिखाते हैं। शोध दर्शाते हैं कि विजुअल और ऑडियो–नरेटिव का प्रयोग भाषा–विकास और समझ–वृद्धि में सहायक है।[6]

अवसर :

- **पहुँच और समावेशन :** डिजिटल प्लेटफॉर्म दूरदराज के बच्चों को भी साहित्य के साथ जोड़ते हैं। डिजिटल लर्निंग समानता और पहुँच बढ़ा सकती है।[7]
- **रचनात्मक अभ्यास :** बचपन से लिखने–बोलने का मंच मिलने से अभ्यास की मात्रा बढ़ती है, फीडबैक तेज मिलता है।[8]
- **नए स्वर और प्रयोग :** बच्चे नये फॉर्म (माइक्रो–कविता, सोशल–कॉमिक, वीडियो–कहानी) आजमा रहे हैं, जिससे साहित्यिक प्रयोगों का रंग बढ़ रहा है।[9]

निष्कर्ष :

फेसबुक और इंटरनेट बाल साहित्य के लिए समृद्ध अवसर और नए भाषाई आयाम लेकर आए हैं। ये माध्यम बच्चों को निर्माता बनाने में सहायक हैं, परन्तु गुणवत्ता–नियंत्रण, स्क्रीन–समय संतुलन और ऑनलाइन

सुरक्षा को प्राथमिकता देना अनिवार्य है। शिक्षकों, माता–पिता और प्रकाशकों के संयुक्त प्रयास से डिजिटल प्लेटफॉर्म पर सुरक्षित, रचनात्मक और शैक्षिक रूप से समृद्ध बाल साहित्य का निर्माण सम्भव है।[10]

संदर्भ (प्रमुख स्रोत) :

1. Social media drives language change in children's writing — Oxford University Press, 7 March 2025. (Oxford University Press)
2. The effect of storytelling on the development of language and social … — NCBI / PMC article. (PMC)
3. UNESCO — Digital learning and equity / Stories of Change for Children. (UNESCO)
4. WHO — To grow up healthy, children need to sit less and play more (screen time guidance). (World Health Organization)
5. American Academy of Pediatrics — Screen time / media use guidance. (American Academy of Pediatrics)
6. UNICEF — Keeping children safe online / Online privacy checklist for parents. (UNICEF)
7. उदाहरण : फेसबुक ग्रुप "बाल–साहित्य" और चंडीगढ़ बाल साहित्य महोत्सव के ऑनलाइन पोस्ट / पेज। (Facebook)
8. OECD — Digital equity and inclusion in education (डिजिटल विभाजन पर नीतिगत दृष्टि). (ONE MP)

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Sept. 2025 Page No. : 376-381

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

वृद्धों के प्रति संवेदनहीन होती मनुष्यता

बी. कमला, पी.एच.डी (शोधार्थी),
डॉ. अनुराधा पाकलपाटि, असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग,
वेल्स इंस्टीट्यूट ऑफ साइंस, टेक्नोलॉजी एण्ड एडवांस स्टडीज, विस्टास, पल्लावरम, चेन्नई।

सार :

वृद्धावस्था जीवन की अंतिम और सबसे संवेदनशील अवस्था होती है, जिसमें व्यक्ति शारीरिक और मानसिक रूप से कमजोर हो जाता है। इस अवस्था में वह दूसरों पर निर्भर हो जाता है और परिवार में असंवेदनशीलता का शिकार बनता है। वृद्धावस्था में मिलने वाले अपमान, उपेक्षा और परिवार के अहंकारी व्यवहार को झेलते हैं। यह आलेख आधुनिक समाज में बढ़ती संवेदनहीनता की समस्या पर केंद्रित है, विशेष तौर पर पारिवारिक, आर्थिक और मानसिक स्तर पर। मैं काशीनाथ सिंह के श्रेहन पर रग्घू', चित्रा मुद्गल के 'गिलिगडु' और हृदयेश के 'चार दरवेश' आदि उपन्यासों में वृद्धों के प्रति परिवार में बढ़ती असंवेदनशीलता को प्रस्तुत करने की प्रयास कर रही हूँ।

बीज शब्द : वृद्ध–जीवन, संवेदनहीन, जरूरत, आत्मसम्मान, अकेलापन, उपेक्षा, सहानुभूति, अपमान, अस्तित्व, निर्भर।

प्रस्तावना :

मनुष्यता का असली रूप तब सामने आता है, जब हम समाज के सबसे निर्बल वर्ग, वृद्धों के प्रति अपना अच्छा व्यवहार को कह सकते है। वृद्धजन, जिन्होंने अपना जीवन में परिवार और समाज के लिए समर्पित किया, जब स्वयं निर्बल हो जाते हैं, तब वे सम्मान और स्नेह के नहीं, बल्कि उपेक्षा, उपहास और तिरस्कार के पात्र बनते हैं। जिस अवस्था में वृद्धों को सबसे अधिक सहारा, समझ और स्नेह की आवश्यकता होती है, पर उसी अवस्था में उन्हें अकेलापन, अपमान और असुरक्षा का सामना करना पड़ता है। इन सभी भावों से वृद्ध संवेदनहीन में फँस जाता है। अब हम संवेदनहीन की अर्थ देखेंगे।

संवेदनहीन का अर्थ :

संवेदनहीन का अर्थ, किसी ऐसे कार्य या व्यक्ति से है जिसमें समझ, उद्देश्य या भावना की कमी हो, या जो बिना कारण के किया गया हो। इसे हम दूसरे शब्दों में 'क्रूर' या 'निर्मम होना' कह सकते है।

हिन्दी साहित्य कोश (भाग–1) के अनुसार, 'संवेदना का अर्थ– संवेदना शब्द का प्रयोग सहानुभूति के अर्थ में होने लगा है। मूलतः वेदना'।[1]

संवेदनहीनता :

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है, जो सहजीवन, संवेदनशीलता और सहानुभूति के मूल्यों पर आधारित समाज में जीता है। वर्तमान युग में भागदौड़ से भरा जीवन में, इन मानवीय गुणों का अभाव होता जा रहा है। दूसरों के दुःख–दर्द को समझने और महसूस करने की क्षमता धीरे–धीरे समाप्त होती जा रही है। यह स्थिति 'संवेदनहीनता' के बढ़ते प्रभाव की ओर संकेत करती है।

पारिवारिक संवेदहीनता :

वृद्धों को परिवार में बोझ समझा जाता है। उनकी जरूरतें, भावनाएँ और अनुभवों की उपेक्षा होती है, जिससे वे अकेलापन और तिरस्कार ग्रस्त हो जाते हैं, इन सभी विषयों को पारिवारिक संवेदनहीनता में दर्शाने का प्रयास किया है।

हृदयेश कृत 'चार दरवेश' उपन्यास में रामप्रसाद का जीवन एकाकीपन से घिरा है। पत्नी के मृत्यु के बाद वह अपनी बेटी के साथ रहता है। एक दिन उनकी कमरे में लगी बल्ब फ्यूज हो जाता है। इस बात को रामप्रसाद ने अपनी बेटी को बताया। बेटी अपनी पति से यह बात बताती है। रामप्रसाद को दामाद इस बात पर तुरंत गुस्सा होकर कहता है कि–

'तेरा बाप हरदम ततैया मिर्च बना रहता है। शिकवा-गिला के अलावा कुछ जानता नहीं। वह भी तो घर से बाहर निकलता है। साँझ के जब बैठकबाजी से लौटता है तब किसी बिजली वाली दुकान से क्यों नहीं बल्ब ले लेता है? सो क्यों? अपने टेंट से दस-बारह रूपए जो ढीले करना पड़ेंगे। बुड्ढा चालाक कौवा है।'[2]

यह प्रसंग वृद्ध की उस स्थिति को उजागर करता है, जब वह अपने ही घर में पराया, अनचाहा और अर्थहीन महसूस करने लगते हैं।

काशीनाथ सिंह कृत 'रेहन पर रग्घू' उपन्यास में रघूनाथ अपनी बेटी सरला की शादी के लिए दो वर देखकर रकता है। पर बेटी सरला दोनों को पसंद नहीं करती। पिता से बेटी अपनी इच्छा को प्रकट करते हुए कहती है कि वह मिर्जापुर में रेहने वाले लड़का से प्रेम करती है और शादी भी उसी से करना चाहती है। यह बात सुनकर रघूनाथ क्रोधित होकर कहता है –

'बकवास बंद करो, साफ-साफ बताओ तुम्हें शादी करनी है या नहीं?
जब करनी होगी तो कर लूँगी, आप क्यों परेशान हैं?
इसलिए कि हम जिंदा हैं, मर नहीं गए!
आप नहीं कर पाएँगे पापा! हम जानते हैं आपको, इसलिए छोड़िए!....'[3]

विवेचित प्रसंग पारिवारिक संवेदनहीन रिश्तों में बदलते मूल्यों और वृद्धों के प्रति घटती संवेदनशीलता को उजागर करता है। बेटी का व्यवहार यह दर्शाता है कि आधुनिक परिवारों में वृद्धों की भूमिका को महत्व नहीं दिया जाता, बल्कि उनके अनुभव और अधिकार को चुनौती दी जाती है। यह स्थिति वृद्धों की आत्महीनता और अकेलापन को और बढ़ा देती है।

सुदेश भारती, मिर्जापुर में रहता है, एस.डी.एम में काम करता है, एम.ए में साथ पढ़ा था। रघुनाथ गुस्से को संभाल नहीं पाया और कहने लगा कि :

'अब जाओ यहाँ से, कोई जरूरत नहीं है तुम्हारी, माँ–बाप मर गए हैं।'[4] गुस्से में इन कटु शब्दों से डाँटने लगे।

उपर्युक्त प्रसंग में रघुनाथ की प्रतिक्रिया, क्रोध से अधिक असहायता और टूटे हुए आत्मसम्मान की अभिव्यक्ति है। वह एक पिता के रूप में, अपने अधिकार, अनुभव और भावना की उपेक्षा से आहत होकर संवेदनहीनता की आघात में आ जाता है। यह स्थिति पारिवारिक संवेदनहीन रिश्तों में भावनात्मक जुड़ाव की जगह उदासीन रहने की भावना और आत्मकेंद्रित सोच पर आधारित है। इस प्रसंग से हमें यह ज्ञात होता है कि वृद्ध केवल जीवित रहते हैं, पर उनके होने का कोई मूल्य नहीं रहता।

चित्रा मुद्गल कृत 'गिलिगडु' उपन्यास में चित्रित एक वृद्ध पात्र जसवंत सिंह को बेटे–बहू की और से न तो पर्याप्त समय मिलता है, न ही आवश्यक संवेदनशीलता। इस संदर्भ में देखा जाए तो नरेन्द्र की अम्मा पहले जसवंत सिंह की जूते को साफ करके रखती है जैसे कि अबी शोरूम से खरीदकर लाया हो। साधारण आवश्यकता जूता पर फटे जूतों का बदलाव उनकी उपेक्षा के प्रतीक बन जाती है।

'जूते दिलाने की सुध नहीं आई उसे? आती तो क्या वे पाँव की बढ़ी हड्डी की टीस ओढ़े बैठे रहते!'[5]

इन संवादों से पारिवारिक संवेदनहीनता केवल बड़े–बड़े फैसले या झगड़ों में नहीं, बल्कि इन छोटी–छोटी अनदेखी चीजों में छिपी होती है, जो वृद्ध व्यक्ति के आत्मसम्मान को धीरे–धीरे समाप्त कर देती है।

वृद्धों के प्रति संवेदनहीनता परिवार के सदस्य जब अपने अनुभवी और त्यागी सदस्यों को ही अनदेखा कर देते है, तो वह अपनी जड़ों से कटने लगता है। इसलिए परिवारजनों की कर्तव्य है कि वृद्धों को सम्मान, सहारा और स्नेह देकर उन्हें जीवन के अंतिम पड़ाव पर गरिमा प्रदान करे।

आर्थिक संवेदनहीनता :

जब वृद्ध आर्थिक रूप से दूसरों पर निर्भर होते हैं, तो उन्हें बीमारियों का इलाज तक नहीं मिल पाता, और उन्हें अनावश्यक खर्च मानकर उनके हितों की अनदेखी की जाती है।

'चार दरवेश' उपन्यास में रामप्रसाद की बेटी और दामाद की बातचीत यह उजागर करती है कि जब वृद्ध आर्थिक रूप से दूसरों पर निर्भर होते हैं तो उनकी स्थिति कितनी दयनीय हो जाती है। रामप्रसाद को कुत्ता काटने पर भी उन्हें इंजेक्शन नहीं लगाये, क्योंकि उस पर लगभग दो हजार रुपये का खर्च होता है। उचित इलाज न मिलने के कारण उनकी मृत्यु हो जाती है। बेटी और जमाई इंजेक्शन को लेकर बातें करते हैं–

'बेटी, 'न जाने कैसा कुत्ता था? काटा और भाग गया। बाबूजी ने ठीक से कुत्ते को देखा भी नहीं। जरूरी हो तो इंजेक्शन लग जाए।'

जमाई बाबू, 'मेरे एक जानने वाले के बेटे को कुत्ते ने काटा था। पूरे पाँच इंजेक्शनों का कोर्स है। करीब दो हजार रुपए खर्चे में आ गए।'

बेटी, 'बाप रे। इतने महँगे? सरकारी अस्पताल में होंगे?'[6]

उपर्युक्त प्रसंग वृद्धों की आर्थिक असुरक्षा और परिवार की उदासीनता का यथार्थ चित्रण है। जब वृद्ध व्यक्ति आर्थिक रूप से अपने परिवारजन पर निर्भर हो जाता है, तो उसका स्वाभिमान, निर्णय का अधिकार और जीवन भी, दूसरों के अधीन हो जाता है। रामप्रसाद की मृत्यु यह संकेत करता है कि वृद्धों के लिए खर्च करना

जरूरत नहीं, बल्कि बोझ माना जाता है।

'गिलीगडु' उपन्यास में शालिनी जसवंत सिंह की बेटी है। उसके ब्याह के समय पहने हुए गहनों को लॉकर में रखने के लिए अपने भाई नरेंद्र से कहती है। तब नरेंद्र को उस लॉकर का खर्च फिजूलखर्ची समझता है। इस विषय पर जसवंत जी को ऐसा लगा कि गहनों के लिए करने वाले खर्च को ही ऐसा सोचता है नरेंद्र, तो उनके लिए की जाने वाले खर्च को कैसा सोचेगा। इस संदर्भ में –

'साढ़े छह सौ रुपए किराया मामूली रकम नहीं बढ़ती महंगाई के दिनों में। फिजूलखर्ची से बचना चाहिए बाबूजी।'

बाबू जसवंत सिंह ने चिकनी चुपड़ी से किनारा किया।

लॉकर का किराया नरेंद्र को फिजुलखर्ची लग रहा, टेलीफोन कस्टडी में रखा हुआ है, बंगले को हाउस टैक्स भरना पड़ा पड़ रहा है, मोहल्ले के चौकीदार की तनख्वाह का हिस्सा देना पड़ रहा है। यह सब फिजूलखर्ची नहीं?'[7]

प्रस्तुत प्रसंग वृद्ध की अर्थिक निर्भरता के कारण घटते सम्मान और संवेदनाहीन को दर्शाता है। जसवंत सिंह के लिए लॉकर का किराया सिर्फ एक धनराशि नहीं, बल्कि स्वाभिमान की रक्षा का प्रतीक है। जब परिवार के सदस्य उनके खर्च को शफिजूलखर्चीश कहकर नकार देते हैं। जसवंत सिंह स्वयं को बोझ, व्यर्थ और उपेक्षित महसूस करने लगते हैं। यह दृश्य हमें यह सोचने पर मजबूर करता है कि आर्थिक संवेदनहीनता केवल धन की बात नहीं, बल्कि रिश्तों की गरिमा और वृद्धों के आत्मसम्मान से जुड़ा हुआ एक प्रश्न है।

मानसिक रूप से संवेदनहीनता :

अपनों के व्यवहार से वृद्ध मानसिक रूप से टूट जाते हैं। उनके आत्मसम्मान और भावनात्मक जरूरतों को नकारा जाता है, जिससे वे जीते जी मरने जैसी स्थिति में आ जाते हैं, मानसिक रूप से संवेदनहीनता इन विषयों पर दर्शाने का प्रयास किया है।

'रेहन पर रग्घू' उपन्यास में रघुनाथ की बेटी सरला, अपने घर से बाहर निकल कर मिर्जापुर में रहने वाले चमार जाति के आदमी सुरेश भारती के साथ शादी कर लेती है। यह रघुनाथ के मन को चोट पहुँचाती है। लेखक रघुनाथ की मनःस्थिति को इस तरह दशाते हुए–

'सरला चली तो गई, लेकिन सुकून और चौन लिए गई। रघुनाथ कई रातों तक सो नहीं सके। उन्हें नींद ही नहीं आ रही थी। जाने किन जन्मों का पाप था, जो इस जन्म में भोग रहे थे। बच्चों को ऐसे संस्कार कहाँ से मिले–यह उनकी समझ से बाहर था। संजय को कोई नहीं– न ठाकुर, न बामन, न भूमिहारय मिली तो लाला की लड़की! फिर भी वे इस लायक थे कि मुँह दिखा सकें! लेकिन यह सरला? वे किस मुँह दिखाएँगे? कहाँ मुँह दिखाएँगे?'[8]

उपर्युक्त प्रसंग वृद्धावस्था में झेली जा रही मानसिक संवेदनहीनता का दुखद चित्रण है। अपने संतान द्वारा पिता की भावनाओं और मानसिक पीड़ा की पूर्ण उपेक्षा इस बात की पुष्टि करती है कि आधुनिक परिवारों में वृद्धों की भावनाओं का कोई मूल्य नहीं मिलता। रघुनाथ की नींद न आने का मतलब यह है कि उनका आंतरिक–मन संवेदनहीनता से भरा हुआ है।

'गिलिगडु' उपन्यास में जब जसवंत सिंह और कर्नल स्वामी के बीच वार्तालाप के समय जसवंत सिंह ने कर्नल स्वामी से ऐसे सवाल पूछे की मृत्यु के बारे में उनका क्या अभिप्राय है। इस संदर्भ में :–

'उनकी अस्थिर मनःस्थिति से उन्हें खींच निकालने के अभिप्राय से कर्नल स्वामी ने सहसा उन्मुक्त ठहाका–भर मखौल उड़ाने वाले अंदाज में जवाब दिया–अव्वल तो वे मौत के बारे में सोचते ही नहीं है। उस पर सोचना उन्हें जरूरी भी नहीं लगता। मौत जब आएगी, आ जाएगी। किसी भी शक्ल में आ जाए। रगड़ेगी हफ्ता, महीना, साल या अचानक झपाटे से उठा लेगी। उठा ले। मगर उन कुछेक कष्टकर दिनों की कल्पना में रात–दिन अधमरे होकर जीना जिंदगी का मजाक उड़ाना नहीं! 'सर, लिव लाइक शेर... अपनी तरह से। अपनी शर्तों पर!'[9]

उपर्युक्त प्रसंग के दौरान मृत्यु के विषय पर कर्नल स्वामी का अभिप्राय यह है कि मृत्यु के डर में जीना व्यर्थ है। जीवन को निडर होकर, पूरे आत्मविश्वास के साथ, नियमानुसार अपने तरीके से जीना चाहिए– जैसे एक शेर जीता है। कर्नल स्वामी अपने मित्र जसवंत सिंह की अवसाद से उन्हें बाहर निकालने की कोशिश कर रहे हैं।

'चार दरवेश' उपन्यास में रामप्रसाद को कुत्ता काटने से रेबीज (कुत्ता काटने से होती बीमारी) हो जाता है। पर उनके जीवन में इस घटना से पहले ही बेटी–दामाद के कठोर व्यवहार से पैदा हुआ रेबीज हो गया है। रिश्तों से हुई रेबीज की पीड़ा अधिक कष्टदायक है और उसी क्षण में ही वे मानसिक रूप से मर चुके थे और वास्तव में शारीरिक रूप से अभी गुजरे। इस संदर्भ में :–

'कुत्ता काटने से पैदा रेबीज से पहले ही उनको अपने बेटी–दामाद के काटे से पैदा रेबीज हो चुका था। अपनों के काटे से पैदा रेबीज की पीड़ा ज्यादा तकलीफदेह होती है, असह्य बनती किस्म की, और व्यक्ति अपनी मृत्यु की कामना करने लगता है। रामप्रसाद मानसिक रूप से काफी पहले ही मृत हो चुके थे, शारीरिक रूप से बाद में हुए।'[10]

विवेचित प्रसंग हमें बताता है कि वृद्धों के प्रति संवेदनहीनता न केवल उनकी शारीरिक में ही नहीं बल्कि मानसिक और भावनात्मक मृत्यु का कारण बन सकती है।

निष्कर्ष :

काशीनाथ सिंह कृत 'रेहन पर रग्घू' उपन्यास वृद्धावस्था के जीवन यात्रा में अकेलेपन के साथ गुजरने की कथा है। चित्रा मुद्गल कृत 'गिलिगडु' उपन्यास वृद्धावस्था की साथीपन और गहन सच्चाइयों को उजागर करता है। हृदयेश कृत 'चार दरवेश' उपन्यास वृद्धावस्था समाज में हो रही व्याप्त विसंगतियों की तस्वीर को उकेरा है। प्रस्तुत उपन्यासों में वृद्धों की विडंबनाओं, बाजारवाद, भूमंडलीकरण आदि से रिश्तेदारों एवं संबंधों की दूरियाँ, कटुता, क्रुरता, दूसरों के दुख को न समझने की स्थिति को मार्मिक रूप से दर्शाती हैं। इन सभी विषयों के कारण वृद्ध–जीवन की यात्रा कठिन हो जाती है। प्रस्तुत आलेख द्वारा प्रदर्शित की गई संवादों एवं घटनाओं से यह स्पष्ट है कि संवेदनहीनता केवल सामाजिक विकृति नहीं, बल्कि एक गहरी मानवीय दुखद प्रवृत्ति बन चुकी हैं। बुढ़ापा–जीवन की अंतिम अवस्था है। आज के नई पीढ़ी, कल के वृद्ध होंगे। इसलिए हमारा व्यवहार ऐसा होना चाहिए कि हम वृद्धों को सम्मान एवं अपनात्व देना चाहिए। वृद्धों के संवेदनहीन से संवेदनशुन्य होने की प्रयत्न करें।

संदर्भ :

1. धीरेन्द्र वर्मा (सं), हिन्दी साहित्य कोश भाग–1 (पारिभाषित शब्दावली), ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी, सं–2020, पृ.सं–863
2. हृदयेश, चार दरवेश, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, सं. 2013, पृ.सं–16
3. काशीनाथ सिंह, रेहन पर रग्घू, राजकमल पेपरबैक्स, नई दिल्ली, सं. 2010, पृ.सं–52
4. काशीनाथ सिंह, रेहन पर रग्घू, राजकमल पेपरबैक्स, नई दिल्ली, सं. 2010, पृ.सं–53
5. चित्रा मुद्गल, गिलिगडु, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, सं. 2002, पृ.सं–19
6. हृदयेश, चार दरवेश, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, सं. 2013, पृ.सं–140
7. चित्रा मुद्गल, गिलिगडु, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, सं. 2002, पृ.सं–95
8. काशीनाथ सिंह, रेहन पर रग्घू, राजकमल पेपरबैक्स, नई दिल्ली, सं. 2010, पृ.सं–54
9. चित्रा मुद्गल, गिलिगडु, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, सं. 2002, पृ.सं–63
10. हृदयेश, चार दरवेश, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, सं. 2013, पृ.सं–143

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Sept. 2025 Page No. : 382-386

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

इक्कीसवीं सदी की हिंदी कथा साहित्य में बदलता हुआ सामाजिक यथार्थ

डॉ. अनुराधा पी.
सहायक प्राध्यापक, हिन्दी विभाग,
विस्टास, पल्लावरम, चेन्नई–600117

सार :

इक्कीसवीं सदी का हिन्दी कथा साहित्य समाज के बदलते हुए स्वरूप का सजीव दस्तावेज है। इस युग की कहानियाँ और उपन्यास आधुनिक जीवन कि जटिलताओं, संघर्षों और मूल्य–परिवर्तनों को गहराई से चित्रित करते हैं। वैश्वीकरण, उपभोक्तावाद, शहरीकरण और राजनीतिक परिवर्तनों से गुजर रहाई। इन सब में व्यक्ति के जीवन और संबंधों को प्रभावित किया है। कथाकारों ने बदलते परिवार, स्त्री की अस्मिता, दलित जीवन, गाँव से महानगर तक फैले जीवन द्वन्द्व, पर्यावरण संकट, राजनीत और संपरदायिक संकट जैसे विषयों को यथार्थ रूप से प्रस्तुत किया है। प्रस्तुत आलेख के माध्यम से काशीनाथ सिंह, मृदुल गर्ग, राजेन्द्र यादव, ममता कालिया, मालती जोशी, अलका सरावगी जैसे लेखकों की रचनाएँ आधुनिक समाज के अंतविरोधों को उजागर करती हैं।

बीज शब्द : साहित्य, सामाजिक यथार्थ, वैश्वीकरण, उपभोक्तावाद, स्त्री विमर्श, निम्न–वर्ग, वृद्ध और अकेलापन, पर्यावरण, संस्कृति, राजनीति।

प्रस्तावना :

साहित्य समय और समाज का दर्पण मानी जाती है। बीसवीं सदी के उत्तरार्ध में जहाँ हिंदी साहित्य ग्रामीण जीवन, स्वतंत्रता आंदोलन, सामाजिक विसंगतियों तथा स्त्री–पुरुष असमानताओं पर केंद्रित थीं, वहीं इक्कीसवीं सदी में इनका फलक और भी व्यापक हो गया है। बदलते सामाजिक परिदृश्य, वैश्वीकरण, सूचना–प्रौद्योगिकी, शहरीकरण, उपभोक्तावाद और स्त्री–विमर्श जैसे मुद्दों ने हिंदी साहित्य को नई संवेदनशीलता और दृष्टि प्रदान की है। इक्कीसवीं सदी की कथा साहित्य केवल घटनाओं का बयान नहीं करतीं, बल्कि सामाजिक यथार्थ को उसकी जटिलताओं, द्वंद्वों और संभावनाओं सहित प्रस्तुत करती हैं।

बदलते हुए सामाजिक यथार्थ का स्वरूप :

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। समाज मनुष्य का व्यक्तित्व निर्माण में अहम् भूमिका निभाती है और साहित्य समाज का दर्पण है। 'समाज में घटित घटनाओं को यथार्थ से चित्रण करना ही सामाजिक यथार्थ अर्थात सोशल रियालिटी है।' समय के साथ सामाजिक यथार्थ का स्वरूप बदलाव अनिवार्य है। यह एक ऐसा मौलिक सिद्धांत है जिसे इतिहास, समाजशास्त्र और दर्शन के अध्ययन से समझ जा सकता है। बदलाव ही एकमात्र

स्थिरांक है, और सामाजिक यथार्थ इसका अपवाद नहीं है।

इक्कीसवीं सदी का समाज अनेक स्तरों पर परिवर्तन का साक्षी है। एक ओर गाँवों का क्षरण और शहरों का विस्तार हो रहा है, वहीं दूसरी ओर परिवार और रिश्तों की परिभाषा बदल रही है। तकनीकी विकास ने मनुष्य को सुविधा तो दी है, परंतु मानसिक दूरी भी बढ़ाई है। शिक्षा, राजनीति, आर्थिक असमानता, जातिगत भेदभाव, सांप्रदायिक तनाव और पर्यावरण संकट जैसे विषय अब साहित्यकारों के लिए अनिवार्य विमर्श बन चुके हैं। हिंदी रचनाकारों ने इन परिवर्तनों को गहराई से महसूस कर अपने कथानक और पात्रों में उकेरा है।

वैश्वीकरण और उपभोक्तावाद :

इक्कीसवीं सदी की कहानियों में वैश्वीकरण और उपभोक्तावाद की छाप स्पष्ट मित्रता और पारिवारिक रिश्तों पर भी उपभोग की प्रवृत्ति हावी होती जा रही है। कहानीकारों ने दिखाया है कि कैसे युवा पीढ़ी आधुनिक जीवनशैली की चकाचौंध में उलझकर अपने सांस्कृतिक मूल्यों से दूर होती जा रही है। इसी सन्दर्भ में काशीनाथ सिंह के उपन्यास 'रेहन पर रग्घू' द्वारा संस्कृति की विस्थापना को बहुत बारीकी से दिखाते हैं। इस उपन्यास का मुख्य पात्र 'रघुनाथ' संस्कृति एवं परंपरा की विस्थापन के विरोध करते है। रघुनाथ अपनी पुश्तैनी जमीन को बेजने के लिए तैयार नहीं हैं, लेकिन उनका संतान जो वर्तमान की चकाचौंध से प्रभावित हैं और आधुनिकता की जीवन शैली को श्रेष्ठ मानते हैं, उनके लिए जमीन एक मात्र टुकड़ा है। उपभोक्तावादी मानसिकता के कारण उनका बेटा कहता है– 'जमीन के लिए क्यों मरे जा रहे हैं? छोड़िए उसे।' इस पर रघुनाथ पलटवार करते हैं– 'जाने कहाँ से इतने नालायक और निकम्मा लड़के पैदा हो गए–सेल। पिछले जन्म के पाप। इस जमीन ने तुम्हारे आजा को खिलाया। तुम्हारे दादा–परदादा को खिलाया। यही नहीं तुम्हारे बेटों और नाती–पोतों को भी खिलाएगी। तुम खरोड़ों कमाओगे लेकिन रुपया–डॉलर नहीं खाओगे। भगवान ना करे वह दिन आए जब बैंक चावल, दाल के लिए लोन बांटे। साले तुम लोग बड़े हुए हो अपनी मां का दूध पीकर और तुम्हारी मां की महतारी है यह जमीन और बोलते हो..छोड़िए उसे।"[1]

स्त्री–विमर्श और लैंगिक असमानता :

इक्कीसवीं सदी की हिंदी कहानियों में स्त्री की स्थिति और संघर्ष एक केंद्रीय विषय है। अब स्त्री केवल करुणा और त्याग की प्रतीक न होकर अपनी अस्मिता, अधिकार और स्वतंत्रता की लड़ाई लड़ती नजर आती है। विवाह संस्था, घरेलू हिंसा, कार्यक्षेत्र में शोषण, देहदृविपणन और पितृसत्तात्मक मानसिकता के खिलाफ आवाज उठाती स्त्री पात्र कहानियों में प्रमुख हैं। 'यह मैं हूँ' की सरल कालरा', 'दो एक फूल' की 'शांतम्मा' अपने पति की आर्थिक सहायता के लिए सरल रेडियो स्टेशन तथा मालती के घर काम करती है फिर भी न तो उन्हें पति का प्यार मिलता है और न ही सहयोग। ऐसे में उनका जीवन और भी कष्टकर बन जाता है।"[2] महिला कहानीकार मृदुला गर्ग ने स्त्री जीवन की जटिलताओं और चुनौतियों को यथार्थवादी दृष्टि से प्रस्तुत किया है।

गाँव से महानगर तक का संक्रमण :

इक्कीसवीं सदी में हिंदी उपन्यासकारों ने गाँव और शहर के बीच की खाई को भी अपनी कथाओं में गहराई से दिखाया है। गाँव से शहर की ओर पलायन, बेरोजगारी, मजदूर जीवन, झुग्गी–झोपड़ी का अस्तित्व और शहरी जीवन की विडंबनाएँ नई कहानियों में प्रमुख हो गई हैं। जहाँ पहले गाँव की कथाएं सामूहिकता और संस्कृति के प्रतीक थीं, वहीं आज वे विस्थापन, निर्धनता और उपेक्षा की त्रासदी को उभारती हैं। दूसरी ओर,

महानगर की कहानियाँ अकेलेपन, प्रतिस्पर्धा और भागदौड़ से उपजे तनाव को सामने लाती हैं। 'उसके हिस्से की धूप' उपन्यास में 'जितेन तथा मनीषा बंगलूर शहर में रहते हैं। सभी प्रकार से सुविधा सम्पन्न, शहरीय जीवन की सुगमता उनकी जीवन शैली से स्पष्ट रूप से झलकती है। शहरीय जीवन सम्बन्धी अलग–अलग विचारी दृष्टिगोचर होते हैं। मधुकर कहता है– 'बम्बई भी रहने लायक अच्छी जगह है', उसने फौरनं कहां।

'नहीं, बिल्कुल बेकार।'

'फिर भी दिल्ली से अच्छी रहती है।'

बंगलूर के सुखद वातावरण का जिक्र करते हुए मधुकर कहता है –

'मैं सही मौसम में बंगलूर आया हूँ। जहाँ देखों फूल–ही–फूल हैं।' 'यही तो बात है। बंगलूर के लिए सभी मौसम सही मौसम है।'

जहाँ एक ओर शहरीय जीवन के सुखद वातावरण का उल्लेख है वहीं शहर की भीड़–भाड़ तथा अति व्यस्त परिवेश का। यथा– 'उसने पाया, वहाँ न समुद्र का अछोर तट है, न वन की बल खाती पगडण्डी। वह बंगलूर के सर्वाधिक रेलपेल वाले व्यस्त महात्मा गाँधी मार्ग पर खड़े हैं...।'[3]

आधुनिकता का प्रभाव और बदलते रिश्ते :

आधुनिकता व पश्चमीकरण के प्रभाव से समाज में मानवीय संबंधों में खटास और खोखलापन बड़ने लगी, लोगों में विवाह की जगह सह–जीवन का विकास होने लगा। जिसमें स्त्री–पुरुष बिना विवाह बंधन के एक साथ रहने लगे, यह विधि महानगरों में पिछले कुछ दशकों से दिन–ब–दिन बढ़ती जा रही है। जिसका कारण समाज में बदलते सामाजिक विचार, रहन–सहन, आर्थिक स्वतंत्रता आदि को माने जा सकते हैं। यह संस्कृति महानगरों में तेजी से बढ़ती जा रही है। लेकिन इस नई संस्कृति को पुरानी पीढ़ी स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं हैं। विवेचित विषय पर प्रसिद्ध लेखिका ममता कालिया द्वारा कृत 'दौड़' उपन्यास में सह–जीवन पर दो पीढ़ियों के द्वन्द्व को दर्शाते हुए लिखती है– "मैंने तो ऐसी कोई लड़की नहीं देखि जो शादी से पहले ही पट्टी के घर में रहने लगे। तुमने देखा क्या है माँ? इलाहाबाद से निकलोगी तो देखोगी न। यहाँ गुजरात, सौराष्ट्र में शादी होने के पहले ऐसी महिना भर ससुराल में रहती है लड़का–लड़की एक दूसरे के तौर तरीके समझने के बाद ही शादी करते हैं।"[4]

दलित और हाशिए का साहित्य :

इक्कीसवीं सदी में दलित और हाशिए पर खड़े समुदायों की आवाज हिंदी उपन्यासों में और सशक्त हुई है। जातिगत भेदभाव, सामाजिक अन्याय और आर्थिक शोषण की कहानियाँ समाज के उस यथार्थ को सामने लाती हैं जिसे लंबे समय तक दबा दिया गया था। ओमप्रकाश वाल्मीकि, शरणकुमार लिंबाले, मोहनदास नैमिशराय जैसे लेखकों की परंपरा को आगे बढ़ाते हुए नए कहानीकारों ने दलित–विमर्श को समकालीन संदर्भों में प्रस्तुत किया है।

निम्न–वर्ग के हितों को पूँजीपति रूपी दानव हड़पने के लिए तत्पर रहते हैं। कम से कम वेतन में उनसे अधिक से अधिक काम लेते हैं। अगर कोई इसके विरुद्ध आवाज उठाता है तो उसे या तो मिल से निकाल दिया जाता है या अगर वह मजदूरों को संगठित करता है तो उसे ठिकाने लगवा देते हैं। इसी संदर्भ में 'उखड़े हुए लोग' उपन्यास में एक मजदूर पत्र के माध्यम से लेखक व्याख्या करते हैं– "हमारी किस्मत में यही बदा है यही

लिखा है। जिंदा रहोगे तो तुम्हारा खून मिलों में निचोड़ा जायेगा तुम बायलरों में जल–जल कर मरोगे, और वैसे मरने से इन्कार कर दोगे तो नतीजा सामने है।"[5]

वृद्ध और अकेलापन :

आज के परिवारों में युवा पीढ़ी की व्यस्तता और भौतिक सुख–सुविधाओं कि दौड़ में वृद्धों को समय न दे पान, उन्हें अकेलापन महसूस कराता है। व्यक्ति स्वतंत्रता परिवार में बढ़ती उदासीपन, परायापन और भावनात्मक दूरी वृद्धों को अकेलेपन और उपेक्षित महसूस कराती है। वृद्धावस्था में शारीरिक दुरभलता, रोगों और दूसरों पर निर्भरता के कारण वृद्ध अक्सर दूसरों पर बोझ का अहसास करती है, जिसके कारण उनका अकेलापन और बढ़ता है। मालती जोशी अपनी कहानी 'वो तेरा घर ये मेरा घर' के माध्यम से यह दर्शाती है कि– "लड़कियों को एक दिन सुसुराल जाना है। लड़कों को रोजगार के लिए बाहर निकलना है। और एक बार उड़ना सीख जाते हैं तो पखेरू घोंसले में कहाँ लौटते हैं। अब मुझे अम्मा–बाबूजी की पीड़ा समझ में आ रही है।'

'कैसी पीड़ा?'

'पाँच–पाँच बेटों के होते हुए अंत में अकेले ही रह गए थे दोनों।"[6]

पर्यावरण और पारिस्थितिक संकट :

मनुष्य का प्रकृति से संबंधन जन्मजात है। उसका जीवन और अस्तित्व पुर्णतः प्रकृति पर निर्भर करता है तथा वाही उसे बनाये रख सकता है। इसलिए, प्रकृति के स्वाभाविक स्वरुप में परिवर्तन या हस्तक्षेप करने से पहले उसके दीर्घकालिक प्रभावों पर अवश्य विचार करना चाहिए मनुष्य का प्रकृति से संबंधन जन्मजात है। उसका जीवन और अस्तित्व पुर्णतः प्रकृति पर निर्भर करता है तथा वाही उसे बनाये रख सकता है।

इक्कीसवीं सदी की उपन्यासों में केवल मानवीय रिश्तों तक सीमित नहीं हैं, बल्कि वे पर्यावरणीय संकट की ओर भी ध्यान खींचती हैं। जंगलों की कटाई, प्रदूषण, जल संकट और औद्योगीकरण से उपजे संकटों ने मानव जीवन को असुरक्षित बना दिया है। उपन्यासकार अब इन मुद्दों पर भी समाज को चेतावनी देते हैं। इस सन्दर्भ में अलका सरावगी ने 'एक ब्रेक के बाद, उपन्यास में सतत विकास एवं नवीकरणीय उर्जा का उपयोग कर पृथ्वी की रक्षा के लिए किये जा रहे मानवीय प्रयासों के सन्दर्भ मरीं यह रचना नवउपनिवेशवादी शक्तियों द्वारा अपने साम्राज्य को बनाये रखने की चालों को बहुत ही स्पष्ट और निष्पक्ष रूप से उजागर करती है– 'भाई, आप फैक्टरियां बंद मत कीजिए, बेशक हवा में कार्बन छोड़ते रहिये। बस, जैसे आप स्टील फैक्ट्री के लिए लोहा खरीदते रहते हैं, वैसे ही कार्बन क्रेडिट खरीद लिजिए। पूरी धरती का असमान तो एक ही है, आप कहीं हवा–पानी बिगाडिए, पर कहीं और कि हवा–पानी सुधार दीजिए। दिक्कत क्या है?'[7]

सांप्रदायिकता और राजनीतिक यथार्थ :

आज का समाज सांप्रदायिक तनाव और राजनीतिक विद्रूपताओं से अछूता नहीं है। हिंदी कहानियों ने इस कटु यथार्थ को भी प्रतिबिंबित किया है। विभाजन, दंगों और धार्मिक उन्माद से पीड़ित व्यक्ति और समाज को मार्मिक ढंग से प्रस्तुत करती हैं। अखिलेश, नया ज्ञानोदय में राज्य–सत्ता की आलोचना करते हुए कहते हैं– 'मेरी टूटी हुई हड्डियाँ देखिये। ये मेरी हड्डियाँ नहीं टूटी हैं, इस देश के लोकतंत्र को फ्रेक्चर हो गया है। मेरा अपाहिजपन दरअसल इस देश के शक्तिपीठों की क्रूरता और न्याय प्रणाली की विकलांगता को दर्शाता है। इस कहानी का अंत एक कल्पना से होता है जिसमें यह दिखाया जाता है कि देश में लोग सरकार, धनिकों और

धर्माधीशों के खिलाफ सड़क पर उतर आये हैं और सचमुच में क्रान्ति होने वाली है।'[8] लेखक अजय तिवारी इसकी आलोचना करते हैं 'कभी समाजवाद के सपने के साथ नए इन्सान की ऐसी सांस्कृतिक कल्पना पेश की गई थी। आख्यान के रूप में उसी सपने को इक्कीसवीं सदी के अनुरूप ढलकर अखिलेश हिंदी के समकालीन रचनाकारों के आगे एक विकल्प प्रस्तावित करते हैं।'[9]

निष्कर्ष :

इक्कीसवीं सदी की हिंदी कथा–साहित्य बदलते हुए सामाजिक यथार्थ की अतः कह सकते हैं कि इक्कीसवीं सदी का कथा साहित्य बदलते सामाजिक यथार्थ, संवेदनशील अभिव्यक्ति एवं जीवंत दर्पण है, जो समय कि सच्चाईयों को सामने लाकर समाज को आत्मचिंतन और परिवर्थन की दिशा में प्रेरित करता है। इनमें व्यक्ति और समाज के अंतर्विरोध, तकनीकी बदलाव, वैश्वीकरण, स्त्री–विमर्श, दलित चेतना, पर्यावरण संकट और राजनीतिक विद्रूपताओं का यथार्थवादी चित्रण मिलता है। आज का साहित्य केवल मनोरंजन का साधन नहीं, बल्कि सामाजिक परिवर्तन और चेतना की वाहक हैं। वे पाठकों को सोचने, सवाल उठाने और समाज के प्रति जिम्मेदार बनने की प्रेरणा देती हैं।

संदर्भ सूची :

1. काशीनाथ सिंह, रहन पर रग्घू, दिल्ली, राजकमल प्रकाशन, पृ. सं. 85.
2. मृदुला गर्ग, संगति –विसंगति, दुनिया का कायदा, पृ सं. 74
3. मृदुला गर्ग, उसके हिस्से की धूप, राजकमल पेपर बैक्स, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1987, छठी आवृत्ति, 2011, पृ. सं. 78, 77, 79
4. ममता कालिया, दौड़, पृ. सं. 64
5. राजेन्द्र यादव, उखड़े हुए लोग, पृ. सं. 296)
6. मालती जोशी, वो तेरा घर ये मेरा घर, सांझा की बेला पंछी अकेला, पृ. सं. 21–22
7. अलका सरावगी, एक ब्रेक के बाद, पृ. 151
8. श्रृंखला–अखिलेश, नया ज्ञानोदय, मई 2011, पृ. सं–30
9. सत्ता की क्रूर कथा–अजय तिवारी, नया ज्ञानोदय, मई 2011, पृ. सं.–38

Email: anuradha.hindi@vistas.ac.in

Mobile : 7299012063

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Sept. 2025 Page No. : 387-392

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

कृष्नचंदर कृत 'जामुन का पेड़' कहानी में प्रशासनिक विमर्श

डॉ. पूर्णिमा श्रीनिवासन

सहा. प्राध्यापक–विभागाध्यक्ष, हिंदी विभाग, विआइएसटीएएस, चेन्नै।

बीज-शब्द :

कृष्नचंदर, प्रशासनिक विमर्श, लालफीताशाही, जवाबदेही, सुशासन, नौकरशाही, संवेदनहीनता, नैतिकता, कार्यकुशलता, विभागीय समन्वय, मानवीयता, औपचारिकता, सुधार।

शोध का सार :

किसी भी राष्ट्र के सुचारु संचालन के लिए लोक प्रशासन का मूल उद्देश्य नागरिकों के अधिकारों और जीवन की रक्षा करना तथा जनकल्याण सुनिश्चित करना है। हालाँकि, कृष्नचंदर की कालजयी कथा 'जामुन का पेड़' सरकारी तंत्र की कार्यप्रणाली में व्याप्त विकृतियों को उजागर करती है। कहानी के माध्यम से लेखक यह संदेश देते हैं कि जब शासन का उद्देश्य जनसेवा की बजाय नियम पालन बन जाए, तो प्रशासन अपनी आत्मा खो देता है। यह आलेख कहानी के प्रशासनिक विमर्श पर केंद्रित है। इस आलेख का उद्देश्य यह विश्लेषण करना है कि कैसे नियमों का कठोर पालन और प्रक्रियाओं की जटिलता एक व्यक्ति के जीवन से भी बड़ी हो जाती है।

परिचय :

कृष्नचंदर (1914–1977) हिंदी और उर्दू साहित्य के प्रसिद्ध कथाकार थे। उन्होंने मुख्यतः उर्दू में लिखा, लेकिन भारत की स्वतंत्रता के बाद हिंदी में भी लेखन शुरू किया। कृष्नचंदर ने अपनी रचनाओं में सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक विसंगतियों पर तीखा व्यंग्यात्मक प्रहार किया। उनकी कहानियाँ अक्सर मुहावरेदार, सजीव होती थीं, जिनमें व्यंग्य, विनोद और विचारों का समावेश होता था। उन्हें साहित्य एवं शिक्षा क्षेत्र में भारत सरकार द्वारा सन 1961 में पद्म भूषण से सम्मानित किया गया था।

कहानी का सार : उनकी कालजयी हास्य–व्यंग्य कथा 'जामुन का पेड़' भारतीय नौकरशाही की जड़ता, लालफीताशाही, और मानवीय संवेदनहीनता का प्रतीक है। कहानी में उन्होंने समाज में व्याप्त प्रशासनिक, राजनीतिक और मानवीय विसंगतियों पर तीखा व्यंग्य किया।

सचिवालय के लॉन में गिरा जामुन का पेड़ एक कवि के ऊपर गिर जाता है। उसे बचाने के बजाय सरकारी विभाग फाइलों और आदेशों की उलझनों में फँस जाते हैं। हर विभाग जिम्मेदारी टालता है और नियमों का हवाला देता है। तीन दिन बाद जब अनुमति मिलती है, तब तक कवि मर चुका होता है।

प्रस्तावना :

'प्रशासनिक विमर्श' का अर्थ है शासन की संरचना, उसकी नीतियों, मूल्यों, और नागरिकों के साथ उसके व्यवहार की समीक्षा व विश्लेषण। यह आलेख इस बात पर केंद्रित होता है कि प्रशासनिक तंत्र समाज में सेवा, समानता, और नैतिकता कैसे सुनिश्चित करता है।

'सुशासन' का अर्थ है – ऐसा शासन जो पारदर्शी, जवाबदेह, त्वरित, नैतिक और जनहितकारी हो।

प्रतिक्रियाशीलता, जवाबदेही, नैतिकता एवं लोकाचार, साम्यता, कार्यकुशलता इसके मुख्य सिद्धांत हैं। उक्त सुशासन के सिद्धांतों से विचलित समाज कैसे होगा? प्रस्तुत कहानी में कहानीकार इसे अत्यंत मार्मिक ढंग से अभिव्यक्त करता है।

1. प्रतिक्रियाशीलता का अभाव :

'प्रतिक्रियाशीलता' का तात्पर्य है – नागरिकों की आवश्यकताओं, समस्याओं या संकटों पर त्वरित, प्रभावी और मानवीय प्रतिक्रिया देना। एक प्रतिक्रियाशील प्रशासन नागरिकों के प्रति संवेदनशील होता है। वह समस्या का समाधान समय रहते करता है, न कि कागजी औपचारिकताओं में उलझता है। प्रतिक्रियाशीलता, प्रशासनिक कार्यकुशलता और विश्वसनीयता की कसौटी है। यदि शासन संकट की घड़ी में तुरंत प्रतिक्रिया नहीं दे सकता, तो जनता का विश्वास कम हो जाता है। सुशासन तभी संभव है जब अधिकारी परिस्थिति के अनुसार तत्काल निर्णय लेने की क्षमता रखें। यह कहानी लगभग 50 वर्ष पुरानी होने के बावजूद, यह अत्यंत खेद का विषय है कि आज भी सरकारी तंत्र की प्रणाली में कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ है।

'जामुन का पेड़' कहानी में प्रतिक्रियाशीलता का पूर्ण अभाव दिखाई देता है। एक कवि जामुन के पेड़ के नीचे दबा हुआ है, पर अधिकारी 'ऊपर की अनुमति' की प्रतीक्षा में समय नष्ट करते रहते हैं। यथा :

"सुपरिंटेंडेंट अंडर–सेक्रेटरी के पास गया, अंडर–सेक्रेटरी डिप्टी सेक्रेटरी के पास गया... फाइल चलती रही, इसी में आधा दिन बीत गया।"

तीन दिन तक केवल फाइलें चलती रहीं, पर कोई वास्तविक कार्रवाई नहीं हुई। यह विलंब प्रशासन के नियम–पालन में सक्रिय है, पर मानवीय संकट में निष्क्रिय दर्शाता है। अंततः प्रतिक्रियाशीलता के अभाव से कवि की जान चली जाती है। यह प्रशासनिक कार्यकुशलता की असफलता का प्रतीक है।

2. 'उत्तरदायित्व' का अभाव :

'उत्तरदायित्व' अथवा 'जवाबदेही' का अर्थ है प्रत्येक अधिकारी या विभाग अपने कार्यों, निर्णयों और परिणामों के लिए उत्तरदायी हो। यह सिद्धांत शासन में पारदर्शिता और विश्वास का आधार है। प्रशासन के सन्दर्भ में 'उत्तरदायित्व' का अर्थ है कि कोई भी पदाधिकारी अपने कर्तव्यों से पलायन न करे। जहाँ जवाबदेही नहीं होती, वहाँ भ्रष्टाचार, लापरवाही और अनुत्तरदायित्व बढ़ता है। उत्तरदायी अधिकारी ही सुशासन की रीढ़ की हड्डी हैं। जवाबदेही तय करने से ही प्रशासन जनोन्मुख बनता है।

उक्त कहानी में कोई भी अधिकारी जिम्मेदारी लेने को तैयार नहीं है। हर विभाग फाइल को दूसरे पर डाल देता है। प्रणाली में कोई यह नहीं कहता, "मैं इस व्यक्ति को बचाऊँगा।" सभी नियमों और अधिकार क्षेत्र का बहाना बनाकर जिम्मेदारी से बचते हैं। आखिरकार उत्तरदायित्व के अभाव ने एक सरल मानवीय कार्य को 'अंतर–विभागीय विवाद' में बदल दिया। यथा – "हम वाणिज्य विभाग के हैं, पेड़ कृषि विभाग के अधीन है।"

"कृषि विभाग कहता है– यह हॉर्टिकल्चर विभाग का मामला है।"

इस तरह फाइल एक विभाग से दूसरे विभाग तक घूमती रहती है। किसी को कवि अर्थात आम आदमी के जीवन की चिंता नहीं होती। यह स्थिति भारत के वास्तविक प्रशासनिक ढांचे में भी दिखाई देती है – जहाँ "फाइलें चलती हैं, पर कार्य नहीं होता।"

3. नैतिकता एवं लोकाचार का अभाव :

'नैतिकता' का आशय है – प्रशासनिक कार्यों में ईमानदारी, सत्यनिष्ठा और न्यायपूर्ण व्यवहार।

'लोकाचार' का अर्थ है – जनता की सेवा करने की भावना, नागरिकों के प्रति दया, सहानुभूति और संवेदना रखना। शासन केवल नियमों पर नहीं, बल्कि नैतिक मूल्यों पर भी टिका होता है। एक नैतिक और सेवा–भावी अधिकारी नागरिकों के हित को सर्वोपरि रखता है। जहां नैतिकता और लोकाचार का अभाव होता है, वहां शासन अमानवीय बन जाता है।

कहानी में अधिकारी संवेदनशील या नैतिक नहीं हैं। वे एक जीवित व्यक्ति की तुलना में पेड़ और नियमों की चिंता अधिक करते हैं – "बेचारा जामुन का पेड़, कितना फलदार था।"

"क्या हम इनकी मित्रता की खातिर एक आदमी के जीवन का बलिदान नहीं कर सकते।"

एक अन्य सन्दर्भ में उक्त संवादों से यह स्पष्ट होता है कि प्रशासनिक तंत्र में न तो नैतिक जिम्मेदारी बची है, न सेवा–भाव। यथा : साहित्य अकादमी का सचिव तो जीवित कवि से कहता है :–

"अगर तुम मर जाओ, तो तुम्हारी बीवी को वजीफा मिल जाएगा।"

यह नैतिक पतन प्रशासन को अमानवीय बना देता है। यहाँ सेवा नहीं, केवल औपचारिकता बचती है।

4. साम्यता का अभाव :

'साम्यता' से यह तात्पर्य है – समाज के सभी नागरिकों के साथ समान व्यवहार करना, विशेषकर संकटग्रस्त और कमजोर वर्गों के प्रति सहानुभूति रखना। यह न्याय और समान अवसर के सिद्धांत पर आधारित है। साम्यता शासन का नैतिक दायित्व है। यह सुनिश्चित करती है कि कोई भी व्यक्ति उपेक्षित न हो। जहाँ समानता और सहानुभूति होती है, वहीं सच्चा सुशासन संभव है।

प्रस्तुत कहानी में दबे हुए व्यक्ति की स्थिति समाज के उपेक्षित वर्गों का प्रतीक है। अधिकारियों ने उसकी पीड़ा की अनदेखी की। जब दबा हुआ व्यक्ति को देखने के लिए भीड़ लग जाती है, सभी यही सोचते हैं कि दबा आदमी मर चुका है। तब दीन स्वर में दबा हुआ व्यक्ति कहता है – "मैं अभी जिंदा हूँ, मुझे जिंदा रखो।"

यह विनती सत्ता–व्यवस्था की असंवेदनशीलता को उजागर करती है। अधिकारियों ने एक सामान्य नागरिक को "केस" या "फाइल" के रूप में देखा, न कि इंसान के रूप में। साम्यता के अभाव ने मानवीय मूल्य को औपचारिकता के नीचे दबा दिया।

5. कार्यकुशलता का अभाव :

'कार्यकुशलता' का अर्थ है – उपलब्ध संसाधनों और समय का सर्वोत्तम उपयोग कर परिणाम प्राप्त करना।

एक कार्यकुशल प्रशासन वह है जो शीघ्र, सटीक और प्रभावी ढंग से निर्णय ले। कार्यकुशलता शासन की सफलता का पैमाना है। अकुशलता से समय, धन और जन–जीवन तीनों का नुकसान होता है।

एक कार्यकुशल प्रणाली ही विकास और विश्वास दोनों सुनिश्चित करती है। कहानी में कार्यकुशलता का पूर्ण अभाव दिखाई देता है।

"फाइल तीन दिन तक विभागों में घूमती रही।"

यह अधिकारी कार्य करने से अधिक फाइल को सुरक्षित रखने में व्यस्त रहने की स्थिति को दर्शाती हैं।

अधिकारी निर्णय की बजाय नियमों की चर्चा करते रहते हैं। परिणामतः, कवि की मृत्यु हो जाती है और कार्य केवल कागजों पर "पूरा" होता है न कि वास्तविक जीवन में।

कार्यकुशलता के अभाव ने सुशासन को मजाक बना दिया – प्रशासन का उद्देश्य परिणाम नहीं, प्रक्रिया बन गया।

"सुनते हो, आज तुम्हारी फाइल मुकम्मल हो गई।"

संक्षेप में यह कह सकते हैं कहानी 'जामुन का पेड़' इन पाँचों सिद्धांतों की विफलता को उजागर करती है।

जहाँ प्रतिक्रियाशीलता नहीं है, जवाबदेही से बचा जा रहा है, नैतिकता और लोकाचार खो गए हैं, साम्यता का ह्रास हुआ है और कार्यकुशलता का अभाव है – वहाँ सुशासन संभव नहीं।

कृष्नचंदर ने व्यंग्य के माध्यम से चेतावनी दी है कि जब तक प्रशासन संवेदनशील और जनोन्मुख नहीं बनेगा, तब तक शासन केवल "फाइलों का प्रबंधन" रहेगा, "मानवता का संरक्षण" नहीं। कहानी में प्रशासनिक तंत्र का असंवेदनशील, औपचारिक और जिम्मेदारी–रहित चेहरा उजागर होता है। कवि की जान बचाने के बजाय फाइलों की औपचारिकता निभाई जाती है – यही प्रशासनिक विमर्श का केंद्र बिंदु है। 'जामुन का पेड़' कहानी इस विमर्श को साहित्यिक रूप में प्रस्तुत करती है।

6. नौकरशाही की कठोरता और लालफीताशाही :

'नौकरशाही', शासन की वह प्रणाली है जिसमें प्रशासनिक निर्णय पदानुक्रम और नियमों के अनुसार लिए जाते हैं। 'लालफीताशाही' का अर्थ है – अत्यधिक औपचारिकता और नियमों के पालन में विलंब, जिससे कार्यकुशलता प्रभावित होती है। कहानी में सुपरिंटेंडेंट तत्काल निर्णय लेने से बचता है और कहता है :–

"ठहरो, मैं अंडर–सेक्रेटरी से पूछ लूँ।"

यह वाक्य पदानुक्रम की कठोरता और लालफीताशाही को दर्शाता है। अतः एक दबे हुए व्यक्ति की जान बचाने जैसा सरल कार्य भी ठहर जाता है। कवि की मृत्यु यह दिखाती है कि नौकरशाही में नियम मानवता से ऊपर हो गए हैं।

7. मानवीय संवेदनहीनता और मूर्खतापूर्ण सुझाव :

'संवेदनहीनता' का अर्थ है – दूसरों के दुःख या कष्ट के प्रति उदासीन रहना। प्रशासनिक दृष्टि से यह तब होता है जब अधिकारी नियमों को मानवीय करुणा से ऊपर रखते हैं। कहानी में यह असंवेदनशीलता चरम पर पहुँच जाती है।

"अगर पेड़ काटा नहीं जा सकता, तो आदमी ही को काटकर निकाल लिया जाए।"

"बेचारा जामुन का पेड़, कितना फलदार था!"

ये संवाद दिखाते हैं कि सरकारी कर्मचारी पेड़ और नियमों के प्रति अधिक संवेदनशील हैं, जबकि एक

जीवित व्यक्ति उनके लिए केवल 'मामला' बन जाता है। यह स्थिति मानवीय मूल्य प्रणाली के क्षरण का प्रतीक है।

8. आम आदमी की भूमिका :

'आम आदमी की भूमिका' का तात्पर्य नागरिकों की सामाजिक–जवाबदेही से है – वे व्यवस्था के प्रति कितने सक्रिय और सजग हैं। कहानी में आम कर्मचारी वर्ग संवेदनहीन तमाशबीन बन गया है।

"बेचारा जामुन का पेड़... इसकी जामुनें कितनी रसीली थीं!"

जब माली पेड़ हटाने की बात करता है, तो वे सहमत होते हैं, पर जैसे ही अधिकारी रोकता है, सब शांत हो जाते हैं। यह बताता है कि नागरिक स्वयं भी व्यवस्था की जड़ता का हिस्सा बन चुके हैं। यह अत्यंत सोचनीय है।

9. प्रशासनिक सुधार की दिशा में समाधान :

'प्रशासनिक सुधार' का आशय है – शासन–प्रणाली में ऐसी संरचनात्मक व नीतिगत परिवर्तन जो इसे उत्तरदायी, संवेदनशील और प्रभावी बनाएँ। कृष्नचंदर की प्रस्तुत कहानी में केवल आलोचना नहीं, बल्कि सुधार का संकेत भी देखने को मिलता है। सशक्त और प्रगतिशील समाज अथवा देश के लिए सुशासन प्रणाली नितांत आवश्यक है। वर्तमान भारत में सुशासन प्रणाली के लिए निम्न सुधार आवश्यक हैं :

1. **निर्णय प्रक्रिया का विकेंद्रीकरण :** निचले अधिकारियों को निर्णय का अधिकार मिले।
2. **उत्तरदायित्व :** प्रत्येक स्तर पर जवाबदेही तय की जाए।
3. **नैतिकता एवं लोकाचार :** अधिकारी मानवीय मूल्य अपनाएँ। प्रशासनिक तंत्र में ईमानदारी, सहानुभूति और सेवा भाव का समावेश किया जाए।
4. **विभागीय समन्वय :** सभी मंत्रालयों और विभागों के बीच संवाद की प्रणाली बने और सहयोग को मजबूत।
5. **प्रतिक्रियाशीलता :** मानवीय मामलों में शीघ्र निर्णय और कार्रवाई को प्राथमिकता दी जाए। इससे सम्बंधित त्वरित निर्णय के लिए प्रक्रियाएँ सरल हों।

निष्कर्ष :

जामुन का पेड़' भारतीय नौकरशाही की असंवेदनशीलता और औपचारिकता की कहानी है।

तीन दिन तक फाइल घूमती रही और जब प्रधानमंत्री ने अनुमति दी, तब तक कवि मर चुका था।

"सुनते हो, आज तुम्हारी फाइल मुकम्मल हो गई।"

यह वाक्य भारतीय शासन की वास्तविकता को उजागर करता है – जहाँ कागज पर कार्य पूरे हो जाते हैं, लेकिन वास्तविक जीवन की त्रासदियाँ अनदेखी रह जाती हैं।

कहानी हमें यह सिखाती है कि प्रशासन केवल नियमों का पालन नहीं, बल्कि मानवता की रक्षा का माध्यम है। जब तक शासन में नैतिकता, उत्तरदायित्व और संवेदनशीलता का समावेश नहीं होगा, तब तक सुशासन एक स्वप्न ही रहेगा। जब शासन औपचारिकता में उलझ जाता है, तो मानवता समाप्त हो जाती है।

कहानी का संदेश यह है –"प्रशासन का सर्वोच्च धर्म नियम नहीं, मानवता है।" जब तक शासन संवेदनशील, जवाबदेह और मानवीय नहीं होगा, तब तक सुशासन केवल एक कल्पना बना रहेगा।

सन्दर्भ :

1. https://jeejeejojo.com/%E0%A4%9C%E0%A4%BE%E0%A4%AE%E0%A5%81%E0%A4%A8-%E0%A4%95%E0%A4%BE-%E0%A4%AA%E0%A5%87%E0%A4%A1%E0%A4%BC-jamun-ka-ped-%E0%A4%95%E0%A5%83%E0%A4%B7%E0%A5%8D%E0%A4%A3-%E0%A4%9A%E0%A4%82%E0%A4%A6/
2. https://www.rekhta.org/stories/jaamun-ka-ped-krishn-chander-stories?lang=hi
3. https://hindi.thebetterindia.com/hindi-literature/jamun-ka-ped-hindi-story-by-krishna-chander/
4. https://archive.org/details/jamunkaped
5. https://www.femina.in/hindi/sahitya/kahani/krishna-chandars-story-jamun-ka-ped-3736.html
6. https://www.evidyarthi.in/wp-content/uploads/2022/06/chhattisgarh-board-class-9- hindi-chapter-3.3.pdf

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Sept. 2025 Page No. : 393-397

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

21वीं सदी के नारी विमर्श–रेत समाधि

पूर्णिमा. जे, शोधार्थी
डॉ. पूर्णिमा श्रीनिवासन, शोध निर्देशिका
वेल्स इंस्टीट्यूट ऑफ साइंस, टेक्नोलॉजी एंड एडवांस्ड स्टडीज (VISTAS) पल्लावरम, चेन्नई, इंडिया।

'नारी तुम केवल श्रद्धा हो, विश्वास रजत नग पग तल में,
पियुष–स्त्रोत सी बहा करो, जीवन के सुंदर स्वर–ताल में।' **–जयशंकर प्रसाद**
'एक पुरुष को शिक्षित करो, एक व्यक्ति शिक्षित होता है।
एक नारी को शिक्षित करो, एक पूरा समाज शिक्षित होता है।' **–महात्मा गांधी**

प्रस्तावना :

हिंदी साहित्य में प्राचीन काल, भक्ति काल रीतिकाल और आधुनिक युग तक नारी की महत्वता पर प्रमुखता दिया गया है।

21वीं सदी के हिंदी साहित्य में नारी की छवि ने एक नए आयाम को छुआ है। यह वह समय है जब नारी अपनी पहचान के लिए केवल पुरुष के माध्यम या पारंपरिक भूमिकाओं पर निर्भर नहीं है, बल्कि वह स्वयं लेखन के केंद्र में है – एक विचार, एक चेतना, और एक सक्रिय सृजनशीलता के रूप में। समकालीन हिंदी साहित्य में नारी का चित्रण केवल संवेदनशीलता और भावुकता तक सीमित नहीं, बल्कि वह एक जागरूक, प्रश्न करने वाली, और अन्याय के खिलाफ खड़ी होने वाली स्त्री बनकर सामने आती है। लेखकों ने नारी की जिंदगी के उन पहलुओं को उजागर किया है जो लंबे समय तक साहित्य में उपेक्षित रहे – जैसे यौन हिंसा, घरेलू उत्पीड़न, कार्यस्थल पर भेदभाव, मानसिक स्वास्थ्य, मातृत्व का बोझ, और आर्थिक आत्मनिर्भरता की लड़ाई।

इस दौर में महिला लेखिकाएँ न केवल साहित्य लिख रही हैं, बल्कि साहित्यिक विमर्श और आलोचना की दिशा भी तय कर रही हैं। गीतांजलि श्री का 'रेत समाधि', जो अंतरराष्ट्रीय स्तर पर चर्चा में रहा, एक वृद्ध स्त्री की पहचान, प्रेम, और स्वतंत्रता की यात्रा है। अनामिका की कविताओं में स्त्री केवल प्रेमिका या माँ नहीं, बल्कि विचारशील, विद्रोही और आत्मनिर्भर भी है। चित्रा मुद्गल और मन्नू भंडारी जैसी लेखिकाओं ने पहले से चली आ रही स्त्रीवादी दृष्टिकोण को और गहरा किया है, जिससे आज की नारी न केवल समाज से, बल्कि स्वयं से भी सवाल करती है।

इसके साथ–साथ पुरुष लेखकों ने भी नारी पात्रों को अधिक मानवीय और यथार्थपूर्ण रूप में चित्रित करना शुरू किया है। अब नारी पात्र 'आदर्श नायिका' या 'त्यागमयी देवी' के रूप में नहीं, बल्कि अपनी कमजोरियों, इच्छाओं, विरोधाभासों के साथ प्रस्तुत की जाती है – जिससे उसका चरित्र और भी अधिक प्रामाणिक

और प्रभावशाली बनता है।

इसके अलावा, समुदाय की महिलाओं की कहानियाँ भी हिंदी साहित्य में स्थान पाने लगी हैं, जो नारी विमर्श को और भी व्यापक बनाती हैं। डिजिटल माध्यमों और ब्लॉग्स के माध्यम से भी नई पीढ़ी की महिलाएं अपने अनुभवों और संघर्षों को स्वर दे रही हैं।

21वीं सदी का हिंदी साहित्य नारी को अब केवल सहानुभूति की पात्र नहीं, बल्कि स्वतंत्र, मुखर, रचनात्मक और सामाजिक परिवर्तन की वाहक के रूप में प्रस्तुत करता है। यह साहित्य नारी की आत्मा की आवाज है – जो अब चुप नहीं है, बल्कि अपने शब्दों से समाज को बदलने का माद्दा रखती है।

21वीं सदी के हिंदी साहित्य में नारी की छवि पहले की अपेक्षा कहीं अधिक सशक्त, स्वतंत्र और चेतनशील रूप में उभरी है। अब वह केवल प्रेम, सौंदर्य या त्याग की मूर्ति नहीं रही, बल्कि समाज की विषमताओं के विरुद्ध संघर्ष करने वाली आत्मनिर्भर व्यक्तित्व के रूप में सामने आई है। समकालीन लेखन में नारी अपने अस्तित्व, अधिकार और पहचान को लेकर सजग है। हिंदी साहित्य में इस दौर की महिला लेखिकाओं – जैसे मन्नू भंडारी, कृष्णा सोबती, अनामिका, गीतांजलि श्री, चित्रा मुद्गल, कविता आदि ने नारी के मनोविज्ञान, सामाजिक दबावों और आत्मसंघर्ष को केंद्र में रखकर गहन साहित्य रचा है।

अब नारी केवल पात्र नहीं रही, वह स्वयं लेखक, आलोचक और विमर्श की धुरी बन गई है। स्त्री–विमर्श पर आधारित रचनाओं में लैंगिक भेदभाव, घरेलू हिंसा, यौन शोषण, मातृत्व, कामकाजी महिलाओं की चुनौतियाँ, अधिकार आदि विषय प्रमुखता से उठाए जा रहे हैं। 21वीं सदी की हिंदी कविता और उपन्यासों में नारी की आवाज मुखर है – वह चुप नहीं रहती, सवाल करती है, टकराती है और खुद को परिभाषित करती है। इस युग का साहित्य नारी को एक सशक्त विचार और क्रांतिकारी चेतना के रूप में प्रस्तुत करता है।

इस प्रकार, 21वीं सदी का हिंदी साहित्य नारी के पक्ष को केवल सहानुभूति नहीं, बल्कि सम्मान, स्वर और सशक्त अभिव्यक्ति के रूप में देखता है।

'रेत समाधि और नारी विमर्श' विषय पर गहन साहित्यिक विश्लेषण प्रस्तुत है। इसमें उपन्यास की मुख्य स्त्री पात्रों और उनके माध्यम से 21वीं सदी के स्त्री विमर्श के विविध पक्षों पर प्रकाश डाला गया है।

परिचय : रेत–समाधि और इसका नारी दृष्टिकोण :

'रेत–समाधि' (2018) प्रख्यात लेखिका गीतांजलि श्री द्वारा रचित एक महत्वपूर्ण हिंदी उपन्यास है, जो नारी चेतना, अस्मिता और आत्म–खोज का बहुआयामी चित्र प्रस्तुत करता है। इस कृति ने साहित्यिक जगत में तब और अधिक पहचान पाई जब इसका अंग्रेजी अनुवाद "Tomb of Sand" 2022 में International Booker Prize से सम्मानित हुआ – पहली बार किसी हिंदी रचना को यह उपलब्धि प्राप्त हुई।

उपन्यास की कथा केंद्र में है – एक वृद्ध स्त्री (अम्मा), जो अपने पति की मृत्यु के बाद गहरे अवसाद में चली जाती है, लेकिन वही स्त्री धीरे–धीरे जीवन की पुनर्खोज करती है और अंततः अपने अस्तित्व, इच्छा और स्वतंत्रता की पुनर्परिभाषा करती है। यह उपन्यास पितृसत्तात्मक समाज की उस छवि को तोड़ता है, जिसमें स्त्री का जीवन केवल मातृत्व, त्याग और चुप्पी तक सीमित माना गया है।

नारी दृष्टिकोण की बात करें, तो 'रेत–समाधि' में स्त्री को एक निष्क्रिय प्राणी नहीं, बल्कि एक सक्रिय विचारक, यात्री, चयनकर्ता और विद्रोही के रूप में चित्रित किया गया है। यह कृति आधुनिक स्त्री विमर्श को एक

नया स्वर देती है, जिसमें आयु, लिंग, राष्ट्र, देह और समाज की सभी सीमाएं टूटती नजर आती हैं।

'रेत–समाधि' में नारी केवल अपने लिए नहीं, बल्कि समाज, संस्कृति और इतिहास के लिए भी एक संवाद स्थापित करती है। वह अतीत से जुड़ती है, वर्तमान से जूझती है और भविष्य की संभावनाओं को आत्मसात करती है। यही कारण है कि यह उपन्यास 21वीं सदी में नारी विमर्श की एक सशक्त और अनोखी प्रतिनिधि रचना के रूप में स्थापित होता है।

रेत-समाधि' में स्त्री विमर्श की विस्तारित विशेषताएँ

क्र.	पहलू	विश्लेषण
1.	आत्म अन्वेषण	अम्मा अपनी गृहिणी, मां, पत्नी जैसी पारंपरिक भूमिकाओं से परे जाकर खुद को एक व्यक्ति के रूप में पहचानने की कोशिश करती हैं। यह स्त्री की आत्म–अस्मिता की खोज है।
2.	लैंगिक पहचान की तरलता	रोजी जैसे थर्ड जेंडर पात्र के माध्यम से उपन्यास यह स्थापित करता है कि स्त्रीत्व/पुरुषत्व कोई निश्चित ढांचा नहीं, बल्कि एक लचीली सामाजिक संरचना है।
3.	बुजुर्ग स्त्री की आवाज	आमतौर पर साहित्य में बुजुर्ग स्त्रियों को 'पृष्ठभूमि' में दिखाया जाता है, लेकिन यहाँ अम्मा 'मुख्य नायिका' हैं, जो अपनी इच्छा, स्वतंत्रता और विचारों को जीती हैं।
4.	भाषा की स्त्री चेतना	उपन्यास की भाषा कठोर नहीं, बल्कि भावनात्मक, प्रतीकात्मक, लयात्मक है – जैसे स्त्री के अंतर्मन की तरलता और संवेदनशीलता को दर्शाती हो।
5.	सांस्कृतिक और राष्ट्रीय सीमाओं का अतिक्रमण	अम्मा भारत से पाकिस्तान जाती हैं, जो विभाजन की रेखा के पार स्त्री की यात्रा और क्षमा की शक्ति को दर्शाता है। यह स्त्री की सीमाहीन दृष्टि का प्रतीक है।
6.	विरोध और असहमति का साहस	'नहीं' कहना केवल व्यक्तिगत असहमति नहीं, बल्कि यह उस पितृसत्तात्मक तंत्र के खिलाफ विद्रोह है, जिसने सदियों तक स्त्रियों को मौन रहने पर बाध्य किया।
7.	सह–अस्तित्व और समावेशन	रोजी के साथ अम्मा की मित्रता यह दर्शाती है कि आधुनिक स्त्री विमर्श लैंगिक और यौनिक विविधताओं को स्वीकारता है। यह फेमिनिज्म को एक मानवीय विमर्श में बदलता है।
8.	स्मृति और स्त्री इतिहास	अम्मा की यादें, विभाजन के समय के अनुभव, और व्यक्तिगत पीड़ा – ये सभी स्त्री इतिहास के मौन पन्नों को उजागर करते हैं, जो अब तक अनदेखे रह गए थे।
9.	स्त्री की यात्रा : भीतरी और बाहरी	अम्मा की पाकिस्तान यात्रा प्रतीकात्मक रूप से स्त्री की आंतरिक मुक्ति और सामाजिक दायरे से बाहर निकलने की प्रक्रिया है। यह

		आधुनिक विमर्श में 'यात्रा' को नया अर्थ देती है।
10.	मातृत्व और बेटी का रिश्ता	बेटी और अम्मा का रिश्ता पारंपरिक नहीं है – उसमें खींचतान, उलझन, प्रेम और संघर्ष का एक स्त्रीवादी अंर्तद्वंद्व है, जो पीढ़ियों के बीच संवाद की आवश्यकता बताता है।

21वीं सदी के नारी विमर्श से 'रेत-समाधि' का संबंध : विस्तृत विश्लेषण :

21वीं सदी का स्त्री विमर्श एक नई चेतना, विविधता और संवेदनशीलता के साथ विकसित हो रहा है। अब यह विमर्श केवल पितृसत्ता के विरोध या अधिकारों की माँग तक सीमित नहीं है, बल्कि यह स्त्री के निजी, सामाजिक, लैंगिक और मानसिक स्तरों पर आत्म–निर्णय की स्वतंत्रता को केंद्र में लाता है। इस संदर्भ में गीतांजलि श्री का उपन्यास 'रेत–समाधि' एक मील का पत्थर है, जो आधुनिक स्त्री विमर्श को एक नया आयाम प्रदान करता है।

1. स्वतंत्र पहचान और चयन की शक्ति :

'रेत–समाधि' की नायिका 'अम्मा' एक पारंपरिक भूमिका निभाने वाली स्त्री है : माँ, पत्नी, और बुजुर्ग। लेकिन जैसे–जैसे कथा आगे बढ़ती है, वह अपने जीवन के चयन करने लगती है 'वह चुप्पी तोड़ती है, अपनी सीमाओं से बाहर निकलती है, और सबसे बढ़कर, 'नहीं' कहना सीखती है। यह प्रक्रिया आधुनिक स्त्री विमर्श का मूल स्वर है : जहाँ स्त्री स्वयं अपनी राह चुनती है।

2. लैंगिक पहचान की तरलता :

रेत–समाधि 21वीं सदी के स्त्री विमर्श को सिर्फ जैविक स्त्री तक सीमित नहीं रखता। 'रोजी' जैसे थर्ड जेंडर पात्र के जरिए लेखिका यह दिखाती हैं कि स्त्रीत्व एक जीवित, बहुआयामी अनुभव है, जो लिंग निर्धारण से परे है।

यह दृष्टिकोण समकालीन स्त्रीवाद की 'इनक्लूसिव फेमिनिज्म' (Inclusive Feminism) की अवधारणा को समर्थन देता है।

3. सीमाओं का अतिक्रमण : राष्ट्र, जाति, उम्र :

अम्मा की पाकिस्तान यात्रा सिर्फ भौगोलिक यात्रा नहीं, बल्कि सांस्कृतिक, मानसिक और लैंगिक सीमाओं को लांघने की प्रक्रिया है। यह उपन्यास दिखाता है कि स्त्री केवल अपने परिवार या देश की सीमा में कैद नहीं रहती – वह हर बंधन को पार कर सकती है, चाहे वह उम्र का हो, धर्म का हो, या राजनीति का।

यह 21वीं सदी के नारी विमर्श के ग्लोबल, सेक्युलर और मानवतावादी चरित्र की ओर संकेत करता है।

4. स्त्री और स्मृति : इतिहास का पुनर्लेखन :

अम्मा के जरिए विभाजन, मातृत्व, और बुजुर्ग स्त्रियों की चुप्पी को भी कथा में पिरोया गया है। यह प्रयास 21वीं सदी की स्त्रियों द्वारा इतिहास को स्त्री दृष्टि से पुनः पढ़ने का एक उदाहरण है।

यह विमर्श कहता है कि 'इतिहास केवल विजेताओं की कहानी नहीं, बल्कि उन चुप आवाजों की भी गाथा है जिन्हें कभी लिखा ही नहीं गया।'

5. भाषा की स्त्री चेतना :

'रेत–समाधि' की भाषा भी स्त्री विमर्श का हिस्सा बन जाती है – वह कठोर नहीं, बल्कि तरल, बहती हुई,

संवेदनशील और लयात्मक है। उपन्यास की शैली पाठक को स्त्री मानसिकता के साथ जोड़ती है, न कि उसके ऊपर हावी होती है।

यह भाषा 21वीं सदी के 'सृजनशील स्त्री लेखन' की पहचान बन जाती है।

6. अन्याय के खिलाफ संवाद, संघर्ष नहीं :

यह उपन्यास बताता है कि आज की स्त्री विमर्श में प्रतिरोध हिंसक नहीं, संवादात्मक है। अम्मा और रोजी के संबंध, बेटी के साथ अम्मा का जटिल रिश्ता – ये सब इस बात को दर्शाते हैं कि संघर्ष अब लड़ाई नहीं, समझ की प्रक्रिया है।

'रेत–समाधि' 21वीं सदी के स्त्री विमर्श को एक नया मानवीय और बहुसांस्कृतिक रूप देती है। यह उपन्यास स्त्री को केवल 'पितृसत्ता की पीड़िता' के रूप में नहीं, बल्कि एक संवेदनशील, सोचने–वाली, निर्णय लेने–वाली और सीमाओं को तोड़ने वाली सृजनशील शक्ति के रूप में प्रस्तुत करता है। यह उस स्त्री की कथा है जो अब केवल जीवन नहीं काटती – वह अपना जीवन चुनती है, उसे रचती है।

निष्कर्ष :

रेत–समाधि' केवल एक स्त्री की कहानी नहीं है, बल्कि यह स्त्रीत्व की एक गहन और बहुआयामी तलाश है। यह उपन्यास 21वीं सदी की स्त्री के आत्म–खोज, स्वतंत्रता, और सशक्तिकरण की भावना को उद्घाटित करता है। आज की स्त्री केवल समाज की सुनने वाली या उसकी बंदिशों में बंद नहीं रहती, बल्कि वह अपनी आवाज उठाती है, अपने अनुभवों की यात्रा करती है, नए विचारों का सामना करती है और अपने निर्णय स्वयं लेती है। इस उपन्यास में 'नहीं' कहना केवल एक शब्द नहीं, बल्कि एक अधिकार और विद्रोह है, जो स्त्री के आत्मसम्मान और स्वतंत्रता की पहचान बन चुका है। यही आधुनिक स्त्री विमर्श की आत्मा है – जहाँ स्त्री अपनी सीमाओं को पार कर स्वयं को पुनः परिभाषित करती है।

Reference :

1. नारी विमर्श और हिंदी साहित्य, डॉ. रमेश गौतम, नारी विमर्श की अवधारणा, इतिहास और साहित्य में प्रस्तुति।
2. स्त्री लेखन : विमर्श के विविध परिप्रेक्ष्य, डॉ. सूर्यनाथ सिंह, समकालीन स्त्री लेखन पर केंद्रित।
3. हिंदी साहित्य में नारी का स्वरूप, डॉ. रचना सक्सेना, 21वीं सदी में बदलती स्त्री छवि।
4. चितकोबरा (उपन्यास), मृदुला गर्ग, आत्मनिर्भर स्त्री की यौनिकता और सोच।
5. गीतांजलि श्री, रेत–समाधि, राजकमल प्रकाशन, 2018
6. नीलम वाधवानी, 'रेत–समाधि में समकालीन विमर्श', सेतु पत्रिका, 2023
7. गूगल खोज (Google search)

ईमेल : poornihindi@gmail.com

ईमेल : hodhindi@velsuniv.ac.in

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Sept. 2025 Page No. : 398-403

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

'बुद्धिमानों की मूर्खता' : सुरेंद्र शर्मा के व्यंग्य निबंधों में राजनीतिक विमर्श

प्रिया. एस, पी. एच. डी. शोधार्थी

डॉ. पूर्णिमा श्रीनिवासन, शोध निर्देशिका, सहायक आचार्या एवं हिंदी विभागाध्यक्ष

वेल्स इंस्टिट्यूट ऑफ साइंस, टेक्नोलॉजी एवं एडवांस स्टडीज, (VISTAS) चेन्नई, तमिलनाडु।

प्रस्तावना :

हिंदी साहित्य में व्यंग्य एक ऐसी विधा है जो समाज और राजनीति के अंतर्विरोधों को हँसी और कटाक्ष के सहारे सामने लाती है। व्यंग्य केवल हास्य का साधन नहीं है, बल्कि यह विचार और विमर्श का भी माध्यम है। आधुनिक हिंदी व्यंग्यकारों में सुरेंद्र शर्मा का नाम अत्यंत सम्मान के साथ लिया जाता है। वे कविता, गद्य और मंचीय हास्यकृसभी रूपों में राजनीति और समाज की विसंगतियों को सहज भाषा में प्रस्तुत करने में माहिर हैं। उन्होंने हास्य और व्यंग्य को केवल मनोरंजन का साधन न बनाकर उसे सामाजिक–राजनीतिक चेतना का माध्यम बनाया। उनके व्यंग्य में समाज के भीतर छिपे हुए विरोधाभास, विडंबनाएँ और पाखंड उजागर होते हैं। 'बुद्धिमानों की मूर्खता' निबंध में उनका ऐसा व्यंग्यात्मक दृष्टिकोण है जो केवल व्यक्ति की बौद्धिक विफलताओं की आलोचना नहीं करता, बल्कि सत्ता, राजनीति और समाज में सक्रिय उन प्रवृत्तियों को भी सामने लाता है जिनसे आम जनता का जीवन प्रभावित होता है। इस निबंध संग्रह में इस तथ्य को सामने लाया गया है कि राजनीति में तथाकथित 'बुद्धिमान' नेता और नीति–निर्माता अकसर ऐसे निर्णय ले लेते हैं जो आम जन के लिए हास्यास्पद या विनाशकारी सिद्ध होते हैं। सुरेंद्र शर्मा ने अपने व्यंग्य के माध्यम से "नए विमर्श" – विशेषकर वंचित वर्गों की आवाज, दलित विमर्श, स्त्री विमर्श और श्रमिक संघर्ष कृ के संदर्भ में बुद्धिजीवियों की विडंबनापूर्ण भूमिका को उजागर किया है। इसे व्यक्त करने का अल्प प्रयास इस शोध आलेख में किया गया है।

सारांश (Abstract) :

हिंदी व्यंग्य साहित्य ने हमेशा समाज की गहराइयों में छिपी विसंगतियों और राजनीतिक दुरावों को सामने लाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। लेखक 'सुरेश कांत' कृत – के अनुसार "हिंदी व्यंग्य लेखन हथियार और जादू की छड़ी के रूप में एक साथ विकसित हुआ है।"[1] सुरेंद्र शर्मा की कृति 'बुद्धिमानों की मूर्खता' इस दृष्टि से उल्लेखनीय है। इसमें वे उन तथाकथित बुद्धिजीवियों और नेताओं को केंद्र में रखते हैं, जिनकी प्रवृत्तियाँ समाज की प्रगति को बाधित करती हैं। यह आलेख इस बात की विवेचना करता है कि किस प्रकार शर्मा जी

1. हिंदी गद्य लेखन में व्यंग्य और विचार – सुरेश कान्त – पृ. सं.– 383

का व्यंग्य "नए विमर्श" –विशेषतः दलित, स्त्री और श्रमिक विमर्श को आवाज देता है और समाज के हाशिए पर खड़े वर्गों की वास्तविक समस्याओं को उजागर करता है। इसके साथ ही यह भी प्रतिपादित होता है कि व्यंग्य मात्र मनोरंजन नहीं, बल्कि सामाजिक चेतना और राजनीतिक हस्तक्षेप का प्रभावी साधन है।

Keywords :

सुरेंद्र शर्मा, बुद्धिमानों की मूर्खता, व्यंग्य साहित्य, राजनीतिक व्यंग्य, नया विमर्श, दलित विमर्श, स्त्री विमर्श, श्रमिक विमर्श, हास्य–व्यंग्य, सामाजिक चेतना।

राजनीतिक विमर्श की अवधारणा :

राजनीति का सामान्य अर्थ है – राज्य और शासन से संबंधित कार्य, जिनमें सत्ता प्राप्त करना, उसका संचालन करना और समाज के लिए नीतियाँ बनाना शामिल है। महान भारतीय दार्शनिक कौटिल्य के अनुसार, राजनीति राज + नीति से बना है, जिसका अर्थ है एक विशेष नीति के द्वारा शासन करना और जनता के सामाजिक और आर्थिक स्तर को ऊँचा उठाना।

राजनीतिक विमर्श वह प्रक्रिया है जिसमें सत्ता, जनता और नीति–निर्माण से जुड़ी चर्चाएँ होती हैं। यह समाज में सत्ता, शासन, नीति, लोकतंत्र, अधिकार और दायित्व जैसे विषयों से संबंधित होता है। इसमें राजनीतिक विचारधाराएँ (जैसे लोकतंत्र, समाजवाद, पूँजीवाद आदि) होती हैं। यह समाज के महत्वपूर्ण बिंदुओं जैसे – गरीबी, शिक्षा, स्वास्थ्य, समानता, न्याय आदि विषयों पर अपना विचार प्रकट करता है। राजनीतिक विमर्श एक मात्र उद्देश्य आम जनता में राजनीतिक चेतना का विकास करना है।

राजनीति केवल शासन और सत्ता का नाम नहीं है। राजनीति का वास्तविक उद्देश्य समाज के प्रत्येक व्यक्ति को न्याय, अवसर और सुरक्षा प्रदान करना है। परंतु समय के साथ राजनीति अक्सर केवल सत्ता–प्राप्ति का साधन बन जाती है।

सुरेंद्र शर्मा की व्यंग्य दृष्टि :

हिंदी साहित्य में व्यंग्य मात्र हास्य उत्पन्न करने का साधन नहीं रहा, बल्कि यह राजनीति और समाज पर गहरी टिप्पणी करने का माध्यम रहा है। भारतीय लोकतंत्र में नेताओं, बुद्धिजीवियों और विचारकों के बीच अक्सर दूरी देखने को मिलती है जो उनके कथन और आचरण में झलकती है। इस विडंबना को शर्मा जी प्रभावी ढंग से प्रस्तुत करते हैं। "समस्या का समाधान इसलिए नहीं किया जाता कि एक तरफ नेता बाढ़ से कमाता है, दूसरी तरफ सूखे से। जनता चाहे सूखाग्रस्त इलाके में हो या बाढ़ग्रस्त इलाके में, उसे तो पानी–पानी कहकर ही दम तोड़ना है।"[2] देश के गरीब और लाचार लोगों के पेट में लात मारकर नेताएँ अमीर बन गए।

सुरेंद्र शर्मा इस परंपरा में ऐसे व्यंग्यकार हैं जो राजनीति की चालबाजियों, नेताओं के खोखले वादों और बुद्धिजीवियों की आत्ममुग्धता को हास्य के माध्यम से उजागर करने में अत्यंत सफल हैं। वे कठिन विषयों को सरल भाषा और चुटीले अंदाज में कह देते हैं। यही कारण है कि उनके व्यंग्य केवल शिक्षित वर्ग तक सीमित नहीं रहते, बल्कि ग्रामीण और शहरी दोनों स्तरों पर समान रूप से असर डालते हैं। वे मुहावरों, लोकोक्तियों और

2. बुद्धिमानों की मूर्खताएँ–सुरेंद्र शर्मा–सिर्फ सोफा बेच देने से समस्या हल नहीं हो जाती, पृ. सं.–25
3. बुद्धिमानों की मूर्खताएँ–सुरेंद्र शर्मा–कैसे–कैसे कंधे कैसे–कैसे धंधे – पृ. सं.–24

तात्कालिक उदाहरणों का प्रयोग करते हैं। जैसे– "अगर सारे देशवासी कंधे से कंधा मिलाकर चलें तो विकासशील कहलाते हैं और कंधे से कंधा भिड़ाकर चलें तो पिछड़े हो जाते हैं।"[3] इनकी शैली में "हँसी के साथ गंभीरता" का अद्‌भुत संतुलन दिखाई देता है। जैसे – "कभी फ्रांस की महारानी ने अपने देश के भूखे लोगों को देखकर कहा था कि इन्हें ब्रेड नहीं मिलती तो यह केक क्यों नहीं खाते?"[4]

राजनीतिक व्यंग्य की सामाजिक प्रासंगिकता :

सुरेंद्र शर्मा की व्यंग्यात्मक निबंध संग्रह, 'बुद्धिमानों की मूर्खता' राजनीतिक विमर्श को नए परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत करती है।

- यह दिखाती है कि राजनीति जनता की समस्याओं से कितनी दूर जा चुकी है।
- यह हमें सिखाती है कि बुद्धिमानी का अर्थ केवल भाषण और योजनाएँ नहीं, बल्कि कारगर सफलतापूर्वक समाधान है।
- यह व्यंग्य उस कठोर सत्य को उजागर करती है कि कभी–कभी "मूर्ख जनता" नेता को वास्तविकता से अधिक महत्वपूर्ण स्थान देती है।

इस रचना के अनुसार, राजनीति केवल सत्ता संघर्ष का खेल नहीं है, बल्कि यह जनता के सपनों और संघर्षों का आईना भी बनती है।

बुद्धिमानों की मूर्खता : अवधारणा :

'बुद्धिमानों की मूर्खता' एक ऐसी स्थिति है जिसमें विद्वान या बुद्धिजीवी अपनी कथित विद्वता के अहंकार में वास्तविकता से कट जाते हैं। वे समाज और राजनीति की बुनियादी समस्याओं को हल करने के बजाय उन्हें उलझाते हैं।

"यह एक सार्वभौम सत्य है कि संसार में जितनी विनाशलिलाएँ, रक्तपात और मानवताविरोधी क्रूर कृत्य हुए हैं –वे सब बुद्धिमानों की ही देन हैं। मूर्ख तो अपनी मूर्खता से केवल अपना ही अहित कर सकता है।"[5] राजनेता नीतियाँ बनाते हैं परन्तु उनका क्रियान्वयन शून्य रहता है। विश्वविद्यालयों और अकादमिक संस्थानों के विद्वान बहस करते हैं, परन्तु आम जनता की पीड़ा को समझ नहीं पाते। समाज सुधारक और विचारक परिवर्तन की बात करते हैं, परंतु उनकी भाषा और सोच आम जन से दूर रहती है।

नया विमर्श और सुरेंद्र शर्मा :

"नया विमर्श" साहित्यिक आलोचना का वह आयाम है जो समाज के वंचित, दलित, स्त्री और श्रमिक वर्ग की आवाज को साहित्य के केंद्र में लाता है। सुरेंद्र शर्मा के व्यंग्य इस दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं क्योंकि वे बुद्धिमानों की मूर्खताओं के माध्यम से यह दिखाते हैं कि असल में परिवर्तनकारी विमर्श वही है जो आम आदमी के दुख–दर्द को केंद्र में रखे।

- **दलित विमर्श :** सुरेंद्र शर्मा इस बात पर कटाक्ष करते हैं कि बुद्धिजीवी केवल मंचीय भाषणों तक सीमित रहते हैं, जबकि दलित समाज की वास्तविक समस्याएँ अनदेखी की जा रही है। दलितों को वोट के लिए हथियार

---

4. बुद्धिमानों की मूर्खताएँ–सुरेंद्र शर्मा–सिर्फ सोफे बेच देने से समस्या हल नहीं हो जाती– पृ. सं.–26
5. बुद्धिमानों की मूर्खताएँ–सुरेंद्र शर्मा–गद्य में व्यंग्य : नए तेवर के संग–ओमप्रकाश 'आदित्य'–पृ. सं.–12

के रूप में प्रयोग किया जा रहा हैं। उनका मानना है कि "दलितों की इस स्थिति के लिए सबसे बड़े जिम्मेदार हैं –दलित जाति के संपन्न लोग। वे स्वयं या फिर उनके बच्चे उस हरेक नौकरी और सुविधा को हड़प लेते हैं, जिन पर दलित जाति के गरीब लोगों का हक हैं। अगर आरक्षण की सुविधा केवल गरीब दलितों के लिए होती तो उनकी यह दुर्दशा नहीं होती।"[6] इस प्रकार वे यह समाधान प्रस्तुत करते हैं कि व्यक्ति की सबसे बड़ी कमजोरी गरीबी है।

- **श्रमिक विमर्श :** श्रमिकों और किसानों की समस्याओं को हल करने के बजाय 'बुद्धिमान' नीतिगत जाल बुनते हैं, जिनका व्यावहारिक लाभ शून्य होता है। सुरेंद्र शर्मा किसानों की दयनीय दशा को व्यक्त करते हुए कहते है कि– "मुझे किसानों के ऊपर भयंकर खतरा मँडराता नजर आ रहा है, क्योंकि जब नेता किसी के बारे में सोचने लग जाएँ तो सोच लेना चाहिए कि उसकी शोचनीय स्थिति आने ही वाली है। इस देश के नेता वो पारस हैं कि सोने को छू दें, तो वह लोहा हो जाए!"[7] वे किसानों को नेताओं की चाल को समझने का प्रयत्न करने का आग्रह करते हुए कहते है "हे देश के किसान रूपी अभिमन्युओं! इन कौरवों के बीच तुम्हारी क्या स्थिति होगी, मैं कल्पना भी नहीं कर पा रहा हूँ।"[8]

राजनीति में बुद्धिमानों की मूर्खता :

भारतीय राजनीति में बुद्धिमानों की मूर्खता कई रूपों में सामने आती है –

चुनावी वादों में आदर्शवाद और व्यवहारिकता के बीच गहरी खाई है। लेखक के शब्दों में "सौ करोड़ वोटों का नेताओं ने खयाल रखा, पर सौ करोड़ लोगों और इस देश का खयाल नहीं रखा। वोटर और नेता की स्थिति पुजारी और भगवान की–सी हो गई।"[9] लेखक सामयिक राजनीतिक परिस्थिति को व्यक्त करते हुए कहते हैं कि चुनाव के समय नेता भक्त और जनता भगवान बन जाते है। चुनाव में जीतने के पश्चात भगवान रूपी जनता को भूल जाते है।

संसद और विधानसभाओं में गंभीर मुद्दों पर चर्चा की बजाय नारेबाजी और टकराव है। इस संदर्भ में लेखक कहते है कि – "तकलीफ यही है दोस्त, इस देश में हम खेलों को गंभीर समस्या समझते हैं और गंभीर समस्याओं को खेल समझ लेते हैं।"[10]

जनता को 'अनपढ़' और 'भोली' कहकर नकारने वाले तथाकथित बुद्धिजीवी नेता जाने–अनजाने में स्वयं ही सबसे बड़ी राजनीतिक भूलें करते हैं। इस सन्दर्भ में लेखक कहते है कि "मैं प्रधानमंत्री से हाथ जोड़कर कहना चाहता हूँ, कृपया आंतकवादियों को धमकी न दें। आपका कुछ नहीं बिगड़ेगा, हमारे लोग ही मारे जाएँगे। बाल ठाकरे पूरे देश को चुनौती देते हुए कह देते हैं कि मैंने अपना तीसरा नेत्र खोल दिया तो तबाही मच जाएगी।

---

6. बुद्धिमानों की मूर्खताएँ–सुरेंद्र शर्मा–दलितों को हथियार मिलेंगे या वे हथियार बनेंगे– पृ. सं.–179
7. बुद्धिमानों की मूर्खताएँ – सुरेंद्र शर्मा –सावधान किसानों ! सरकार सोच रही है – पृ. सं.– 72
8. बुद्धिमानों की मूर्खताएँ – सुरेंद्र शर्मा –सावधान किसानों ! सरकार सोच रही है – पृ. सं.– 73
9. बुद्धिमानों की मूर्खताएँ – सुरेंद्र शर्मा –राष्ट्रीय पशु तो है पर राष्ट्रीय मनुष्य कहाँ – पृ. सं.–48
10. बुद्धिमानों की मूर्खताएँ – सुरेंद्र शर्मा – हर चीज फिक्स है यहाँ – पृ. सं.–22

सुनते ही सरकार कार्रवाई करने की बजाय आँखें बंद कर लेती है।"[11] सुरेंद्र शर्मा के व्यंग्य इस स्थिति पर हँसाते हुए भी सोचने के लिए विवश करते हैं।

समाज का दर्पण : व्यंग्य का प्रभाव :

व्यंग्य का सबसे बड़ा कार्य समाज को वास्तविकता का आईना दिखाना है। सुरेंद्र शर्मा इस भूमिका को पूरी तरह निभाते हैं। मूर्खता का सबसे बड़ा रूप वह है जब बुद्धिजीवी केवल वाद–विवाद और विचार मंचों तक सीमित रह जाते हैं। इसकी पुष्टि लेखक के उक्त कथन से स्पष्ट होती है "ईश्वर न करे, उसकी दी हुई हर चीज साम्प्रदायिक हो जाए। गंगा सिर्फ हिन्दुओं की ही प्यास बुझाए। चाँद सिर्फ मुसलमानों को चाँदनी दे। नदियाँ, पानी, प्रकृति सब अपने–अपने बॅटवारे कर लें, अपना–अपना धर्म चुन लें और इसकी परिणति यहाँ तक भी हो सकती है कि किसी दिन हमारा दायाँ हाथ बाएँ हाथ को काट दे कि काम तो मैं ज्यादा करता हूँ, तेरी क्या जरुरत है शरीर में?"[12] देश में प्रचलित सच्चाई का यथावत चित्रण लेखक निर्भीक शब्दों में प्रस्तुत किए हैं। इसमें वे पाठक वर्ग को राजनीति की असलियत को पहचानने में प्रेरित करते हैं। वे यह स्पष्ट करते हैं कि वास्तविक बुद्धिमत्ता वही है जो हाशिए के वर्गों की आवाज सुने। उनका व्यंग्य समाज में संवाद के नए आयाम प्रस्तुत करता है।

व्यंग्य का सामाजिक महत्व :

'बुद्धिमानों की मूर्खता' केवल साहित्यिक कल्पना नहीं, बल्कि सामाजिक यथार्थ का सजीव चित्रण है। यह हमें यह सोचने पर विवश करता है कि क्या सचमुच हमारी राजनीति और बुद्धिजीवी समाज को बदल रही है, या केवल सत्ता और प्रतिष्ठा की रक्षा कर रही है। शर्मा जी के शब्दों में "नारों से देश का निर्माण नहीं होता, काम से होता है देश का निर्माण।"[13]

"मैं सरकार से कहता हूँ कि ऊपर मत देखो, ऊँचाई की कोई सीमा नहीं है। नीचे देखो, देश के लाखों, करोड़ो, भूखे बेरोजगार मजदूरों की दशा पर कुछ तो सोचो ! आप कहीं इस देश का आर्थिक विकास उनकी लाशों पर तो निर्मित नहीं कर रहे हैं?"[14]

यह व्यंग्य हमें नई दिशा देता है कि वास्तविक विमर्श वही है जो (Marginalized) हाशिये वर्गों की समस्याओं को केंद्र में लाए।

निष्कर्ष :

सुरेंद्र शर्मा की रचना "बुद्धिमानों की मूर्खता" राजनीति में व्याप्त यथार्थता को उजागर करती है। "व्यंग्य चूँकि एक हथियार है, अतः उसका विवेकसंगत प्रयोग नितांत आवश्यक है।" इस दृष्टि से वे हमें सिखाते है कि समाज और राजनीति को समझने के लिए सिर्फ बुद्धिजीवी शब्दा की नहीं, बल्कि व्यवहारिक कुशलता और

---

11. बुद्धिमानों की मूर्खताएँ– सुरेंद्र शर्मा –सरकार चोर–गुंडों से तो निबट नहीं पाई, आतंकवादियों से क्या खाक निबटेगी – पृ. सं.–45
12. बुद्धिमानों की मूर्खताएँ – सुरेंद्र शर्मा –यह भी तो साम्प्रदायिकता है – पृ. सं.–34
13. बुद्धिमानों की मूर्खताएँ – सुरेंद्र शर्मा – पूरा देश गरीबी–रेखा के नीचे होगा – पृ. सं.–50
14. बुद्धिमानों की मूर्खताएँ – सुरेंद्र शर्मा – हिंदी गद्य लेखन में व्यंग्य और विचार–सुरेश कान्त–पृ. सं.– 382

संवेदनशीलता की नितांत आवश्यकता है। यह व्यंग्य नया परिप्रेक्ष्य इसलिए प्रस्तुत करता है क्योंकि यह राजनीति की विडंबनाओं को आमजन की भाषा में, हँसी और कटाक्ष के सहारे सामने रखता है।

अतः सुरेंद्र शर्मा के व्यंग्य में राजनीति केवल शासक और विपक्ष का खेल नहीं रह जाती, बल्कि यह जनता की समस्याओं और आशाओं का आईना बन जाती है। राजनीति देश के भविष्य की निर्णायक शक्ति है, जिसके सकारात्मक प्रयोग से भारत पुनः 'सोने की चिड़िया' बन सकता है।

संदर्भ सूची :

1. सुरेश कान्त, 'हिंदी गद्य लेखन में व्यंग्य और विचार', राधाकृष्ण प्रकाशन, 2013
2. ओमप्रकाश 'आदित्य', 'गद्य में व्यंग्य नए तेवर के संग', 'बुद्धिमानों की मूर्खताएँ', पूजा प्रकाशन, 2003
3. सुरेंद्र शर्मा, 'बुद्धिमानों की मूर्खताएँ', पूजा प्रकाशन, 2003

Email : ranjbabali@gmail.com

Mobile No. 9840426262

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Sept. 2025 Page No. : 404-411

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

21वीं सदी में तमिलनाडु स्थित बैंकों में राजभाषा कार्यान्वयन एवं हिंदी गृहपत्रिकाओं का प्रकाशन : एक नव विमर्श

श्री एम. संजीवी कनी, पी.एच.डी. शोधार्थी
डॉ. पूर्णिमा श्रीनिवासन, शोध निर्देशिका एवं सहायक आचार्य एवं विभागाध्यक्ष
हिंदी विभाग, Vels Institute of Science Technology and Advanced Studies (VISTAS)
पल्लावरम, चेन्नै, तमिलनाडु।



शोध का सार :

प्रस्तुत शोध पत्र 21वीं सदी में तमिलनाडु राज्य स्थित विभिन्न सार्वजनिक बैंकों का परिचय देते हुए इन बैंकों में हिंदी की भूमिका एवं राजभाषा कार्यान्वयन संबंधी विभिन्न पहलुओं तथा हिंदी गृह–पत्रिकाओं के प्रकाशन आदि का संक्षिप्त विश्लेषण प्रस्तुत करता है। यह अध्ययन तमिलनाडु राज्य स्थित सार्वजनिक बैंकों में भारत के संघ सरकार की राजभाषा नीति का कार्यान्वयन, क्षेत्रीय भाषाई पहचान की चुनौतियां और राजभाषा कार्यान्वयन के क्षेत्र में हिंदी गृहपत्रिकाओं के योगदान पर केंद्रित है। शोध–पत्र के विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि तमिलनाडु राज्य स्थित बैंकों में राजभाषा का प्रयोग केवल संवैधानिक दायित्व नहीं, बल्कि एक जटिल सामाजिक–भाषाई प्रक्रिया भी है। राज्य के स्कूलों एवं महाविद्यालयों में त्रिभाषा सूत्र के अभाव के बावजूद बैंक कर्मचारियों को विभिन्न सरकारी योजनाओं एवं हिंदी सीखने की ऑनलाइन सुविधाओं के अधीन राजभाषा हिंदी का कार्यसाधक ज्ञान दिलाया जाता है। बैंकों में कार्यरत राजभाषा अधिकारियों के अथक प्रयासों एवं कर्मचारियों के सहयोग के परिणामस्वरूप राजभाषा कार्यान्वयन के क्षेत्र में वांछित अपेक्षाएं पूरी की जाती हैं। बैंकों द्वारा प्रकाशित हिंदी गृहपत्रिकाओं के माध्यम से बैंक कर्मचारियों की हिंदी में सृजनशीलता एवं रचनात्मकता को प्रोत्साहन दिया जाता है।

बीज शब्द : राजभाषा कार्यान्वयन, बहुभाषी दृष्टिकोण, संवैधानिक दायित्व, कार्यसाधक ज्ञान, भाषाई प्राथमिकता, सामासिक विकास, गृहपत्रिका, कृत्रिम बुद्धिमत्ता और मशीन अधिगम।

प्रस्तावना :

21वीं सदी के बैंकिंग क्षेत्र में तकनीकी क्रांति के साथ–साथ भाषाई नीतियों का कार्यान्वयन एक महत्वपूर्ण चुनौती बनकर उभरा है। विश्व के वरिष्ठ जीवंत, समृद्ध एवं शास्त्रीय तमिल भाषा के लिए सुप्रसिद्ध तमिलनाडु राज्य में राजभाषा हिंदी के प्रयोग एवं कार्यान्वयन का मुद्दा विशेष रूप से संवेदनशील है। राजभाषा अधिनियम, 1963 और उसके बाद के संशोधनों के अनुसार, सभी केंद्रीय सरकारी कार्यालयों और सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों समेत सभी उपक्रमों में राजभाषा हिंदी का प्रगामी प्रयोग अनिवार्य है, लेकिन इसका व्यावहारिक कार्यान्वयन

तमिलनाडु जैसे राज्यों में कई चुनौतियां प्रस्तुत करता है। राज्य के अधिकांश स्कूलों एवं महाविद्यालयों में अपनाई जाने वाली द्विभाषा नीति के कारण राज्य स्थित बैंकों के अधिकतर कर्मचारीगण हिंदी का कार्यसाधक ज्ञान नहीं रखते हैं। तथापि हिंदी शिक्षण योजना व राष्ट्रीय महत्व प्राप्त संस्था दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा के अधीन संचालित विभिन्न हिंदी पाठ्यक्रमों द्वारा बैंक कर्मचारियों को हिंदी का ज्ञान प्राप्त होता है। हमें यह ध्यान देना अनिवार्य है कि बैंकिंग क्षेत्र में भाषा का प्रश्न केवल प्रशासनिक नहीं है, बल्कि यह ग्राहक सेवा, वित्तीय समावेशन, और सामाजिक न्याय के मुद्दों से भी गहरे रूप से जुड़ा हुआ है। तमिलनाडु में राजभाषा नीति के अनुरूप सार्वजनिक बैंकों में क्षेत्रीय भाषा तमिल, राजभाषा हिंदी और अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के लिए अंग्रेजी का प्रयोग किया जाता है।

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि :

तमिलनाडु में राजभाषा का इतिहास 1960 के दशक के भाषा आंदोलनों से गहरे रूप से जुड़ा है। 14 सितंबर 1949 को भारत के संसद द्वारा हिंदी को राजभाषा के रूप में अंगीकृत करने के साथ–साथ हिंदीतर क्षेत्रों में राजभाषा कार्यान्वयन के लिए 15 वर्षों की अवधि निर्धारित की गई थी। इन 15 वर्षों की अवधि समाप्त होने की स्थितद्दि पर राज्य में हिंदी विरोध आंदोलन तेजी होने लगा। यह माना गया कि राजभाषा के रूप में हिंदी थोपी जाती है, जिसका भीषण विरोध किया गया। राजभाषा अधिनियम, 1963 के तहत संविधान द्वारा प्रदत्त आश्वासन के बाद स्थिति सामान्य हुई। 1965 में हिंदी विरोधी आंदोलन के बाद राज्य में राजभाषा नीति के प्रति एक विशेष दृष्टिकोण विकसित हुआ। बैंकिंग क्षेत्र में वर्ष 1969 में बैंकों के राष्ट्रीयकरण के बाद राजभाषा नीति का कार्यान्वयन अधिक व्यवस्थित और तीव्र हुआ। डॉ. सुभाष कश्यप, भारतीय वित्तीय अर्थशास्त्री, का मानना है कि 'भारतीय वित्तीय क्षेत्र में हिंदी और क्षेत्रीय भाषाओं का उपयोग न केवल संवैधानिक दायित्व है, बल्कि यह वित्तीय समावेशन का एक महत्वपूर्ण साधन भी है।' (कश्यप, 2019)[1]

तमिलनाडु के सार्वजनिक बैंकों में राजभाषा की स्थिति :

तमिलनाडु के सार्वजनिक बैंकों में राजभाषा के कार्यान्वयन की स्थिति मिश्रित है। सभी सार्वजनिक बैंकों में राजभाषा कार्यान्वयन के विशेष उद्देश्य से राजभाषा विभागों / अनुभागों / कक्षों की स्थापना की गई। इन बैंकों में राजभाषा कार्यान्वयन संबंधी वार्षिक कार्यक्रम के अनुरूप उचित कदम उठाए जाते हैं। भारत सरकार की हिंदी शिक्षण योजना के अधीन बैंक के कर्मचारियों को हिंदी का कार्यसाधक ज्ञान दिलाया जाता है। कर्मचारियों को हिंदी में कार्य करने हेतु विभिन्न प्रोत्साहन योजनाएं लागू हैं। इसके तहत विविध हिंदी प्रतियोगिताएं भी आयोजित की जाती हैं। कार्यालय स्तर पर गठित राजभाषा कार्यान्वयन समिति तथा नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति के जरिए सामूहिक प्रयास भी किए जाते हैं। हालांकि, व्यावहारिक स्तर पर अधिकांश कार्य अभी भी अंग्रेजी और तमिल में किया जाता है। तमिलनाडु राज्य में संघ की राजभाषा हिंदी के प्रयोग में मुख्य बाधाएं हैं :

- कर्मचारियों में हिंदी भाषा की दक्षता का अभाव।
- ग्राहकों की हिंदी भाषा में सेवा की मांग कम होना।
- हिंदी तकनीकी शब्दावली में अनुवाद की जटिलता।
- स्थानीय राजनीतिक संवेदनाएं।

प्रोत्साहन योजनाएं :

राजभाषा के प्रयोग को बढ़ावा देने के लिए विभिन्न प्रोत्साहन योजनाएं चलाई जा रही हैं। राजभाषा शील्ड योजना, प्रशंसा–पत्र योजना, नकद पुरस्कार योजना और हिंदी शिक्षण योजना के तहत आयोजित प्रशिक्षण कार्यक्रम यथा प्रबोध, प्रवीण, प्राज्ञ, बैंकिंग प्राज्ञ और पारंगत इनमें प्रमुख हैं। तमिलनाडु में इन योजनाओं का प्रभाव अत्यंत उपयुक्त रहा है। राजभाषा हिंदी में स्टाफ सदस्यों की लेखन कला एवं सृजनात्मकता को बढावा देने के उद्देश्य से सार्वजनिक बैंकों द्वारा हिंदी गृह–पत्रिकाओं का नियमित अंतराल में प्रकाशन किया जाता है। लेखक डॉ. माणिक मृगेश के अनुसार "राजभाषा पत्रिकाएं अपने उद्देश्यों की पूर्ति करते हुए राजभाषा गतिविधियों तथा अप्रकाशित प्रतिभाओं को प्रकाश में लाते हुए राष्ट्र की सेवा में सतत रही हैं। आज राजभाषा पत्रकारिता राजभाषा की एक मुख्य प्रवृत्ति बनकर उभरी है।"[2]

बैंकों द्वारा प्रकाशित हिंदी गृहपत्रिका : बैंकों द्वारा प्रकाशित हिंदी गृह पत्रिकाओं को भारत सरकार के वेबसाइट में ऑनलाइन माध्यम से अपलोड किया जाता है। राजभाषा विभाग, गृह मंत्रालय, भारत सरकार द्वारा उत्तम हिंदी गृह पत्रिकाओं को हिंदी दिवस समारोह के अवसर पर 'राजभाषा कीर्ति पुरस्कार' देते हुए सम्मानित किया जाता है। बैंकों के मुख्यालय स्तर पर भी उत्तम हिंदी गृह पत्रिकाओं को पुरस्कार देते हुए सम्मानित किया जाता है। इन गृह पत्रिकाओं में लेख–आलेख का योगदान करने वाले स्टाफ सदस्यों को उचित मानदेय या पुरस्कार देकर सम्मानित किया जाता है। हिंदी गृहपत्रिका के स्वरूप के बारे में लेखक श्री हरिबाबू कंसल के अनुसार – "किसी विभाग द्वारा हिंदी पत्रिका का प्रकाशन तभी सार्थक है जब उससे वहां के कर्मचारियों को सरकारी कामकाज हिंदी में करने के लिए प्रेरणा भी मिले। यह उद्देश्य, दृष्टि से ओझल नहीं होना चाहिए।"[3]

तमिलनाडु स्थित प्रमुख सार्वजनिक बैंकों एवं उनकी हिंदी गृहपत्रिकाएं :

इंडियन बैंक :

इंडियन बैंक भारतीय बैंकिंग क्षेत्र के सबसे प्राचीन और प्रतिष्ठित सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों में से एक है। बैंक के कॉर्पोरेट कार्यालय द्वारा छमाही हिंदी गृहपत्रिका "इंड छवि" प्रकाशित की जाती है। बैंक के प्रशिक्षण संस्थान 'इमेज' द्वारा भी छमाही हिंदी गृहपत्रिका "इमेज संवाद" प्रकाशित की जा रही है। बैंक के कॉर्पोरेट कार्यालय की छमाही हिंदी गृहपत्रिका "इंड छवि" के दिसंबर 2013 अंक में कर्मचारी श्री अजी. ए. नायर ने "खुशहाल जीवन" लेख में व्यक्ति को अपना जीवन खुशहाल बनाने के लिए अपनी जीवन शैली में किए जाने वाले आवश्यक परिवर्तनों पर रेखांकित करते हुए कहा कि "गैजेट्स और तकनीकी उत्पादों का उपयोग आवश्यकतानुसार ही हो। लोगों से मेलजोल और भाईचारे की भावना बढ़ाते हुए एक दूसरे के सुख व दुख में शामिल हो।"

इसी पत्रिका के अंक–6 (सितंबर 2012) में बैंक की कर्मचारी सुश्री वीणा ने अपनी स्वरचित कविता "पिता" प्रस्तुत की है। इस कविता में उन्होंने पिता के सदगुणों का वर्णन करते हुए उनकी त्याग भावना को उजागर किया है। उनके अनुसार :–

"पिता कष्ट व संघर्ष का दूसरा नाम है
पिता छोटी सी पक्षी का बड़ा आसमान है
पिता का आशीर्वाद जीवन भर साथ है
पिता के बिना बचपन अनर्थ है।"

बैंक के प्रशिक्षण केंद्र इमेज की छमाही हिंदी पत्रिका इमेज संवाद – अंक मार्च 2024 में कर्मचारी सुश्री लक्ष्मी शारदा एस आर ने "तमिल भाषा और साहित्य का विकास" विषय पर अपना निबंध प्रस्तुत किया है। इस निबंध में उन्होंने तमिल भाषा की समृद्धि एवं उसके साहित्य के विकास पर प्रकाश डालते हुए लिखा है कि "तमिल साहित्य परंपरा भारत के शास्त्रीय संस्कृत साहित्यध्कि परंपरा से स्वतंत्र है। यह संस्कृत भाषा के समानांतर ही भाषाई परंपरा का प्रतिनिधित्व करती है।"

इसी पत्रिका के सितंबर 2024 अंक में बैंक की कर्मचारी सुश्री कल्याणी हरि ने "महाकवि सुब्रमण्य भारती" विषय पर आलेख प्रस्तुत किया है। उन्होंने तमिलनाडु के राष्ट्रकवि श्री सुब्रमण्य भारती के जीवन, उनकी कृतियों का उल्लेख करते हुए कहा कि "उनकी रचनाओं में एक ओर जहां गूढ़ धार्मिक बातें होती थी वहीं रूस और फ्रांस की क्रांति की भी जानकारी होती थी। वे समाज के वंचित वर्ग और निर्धन लोगों की बेहतरी के लिए प्रयासरत थे।"

इंडियन ओवरसीज बैंक :

इंडियन ओवरसीज बैंक की स्थापना 1937 में की गई थी और इसका मुख्यालय भी चेन्नई में है। इसकी स्थापना प्रवासी भारतीयों, विशेषकर दक्षिण भारतीयों की बैंकिंग आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए की गई थी। बैंक के केंद्रीय कार्यालय द्वारा तिमाही हिंदी गृहपत्रिका "वाणी" प्रकाशित की जाती है, जिसे राजभाषा विभाग, भारत सरकार द्वारा श्रेष्ठ हिंदी गृहपत्रिका के रूप में पुरस्कत भी किया गया है। तमिलनाडु राज्य भर बैंक के 15 क्षेत्रीय कार्यालय होते हैं जिनके द्वारा अपने–अपने क्षेत्रीय कार्यालय स्तर पर भी तिमाही हिंदी गृहपत्रिकाएं नियमित रूप से प्रकाशित की जाती हैं। चेन्नै क्षेत्रीय कार्यालय द्वारा "उत्कर्ष", वेल्लूर कार्यालय द्वारा "रोशनी", कोयम्बत्तूर कार्यालय द्वारा "कोवै ज्योति", मदुरै कार्यालय द्वारा "मदुरै वाणी", तिरुनेलवेली कार्यालय द्वारा "नेल्लै दर्शन" और नागरकोइल कार्यालय द्वारा "त्रिवेणी दर्शन" आदि तिमाही हिंदी गृहपत्रिकाएं प्रकाशित की जाती हैं।

बैंक के कोयंबत्तूर क्षेत्रीय कार्यालय की तिमाही हिंदी गृहपत्रिका "कोवै ज्योति" के अंक 10 (मार्च 2024) में बैंक की कर्मचारी सुश्री के. यु. षाहिना ने "जी हाँ, मैं भारतीय नारी हूँ..." विषय पर आलेख प्रस्तुत किया है। उन्होंने इस आलेख में भारतीय नारी के श्रेष्ठ गुणों तथा उनके विभिन्न नैतिक एवं मानवीय मूल्यों का भी उल्लेख किया है। इस संदर्भ में उन्होंने लिखा है कि "आज की नारी का सफर चुनौतीभरा जरूर है, पर आज उसमें चुनौतियों से लड़ने का साहस आ गया है। चुनौतियों को हंसकर स्वागत करने वाली महिलाएं आज हर क्षेत्र में अपना लोहा मनवा रही हैं।"

पत्रिका के इसी अंक में बैंक की एक अन्य कर्मचारी सुश्री ग्रेस जेभ रानी ने "जीवन में वर्क लाइफ संतुलन की आवश्यकता" विषय पर अपना लेख प्रस्तुत किया है। आज के युग में बैंकिंग क्षेत्र के प्रत्येक कर्मचारियों को अपने निजी जीवन में वर्क लाइफ संतुलन पर ध्यान देना अत्यावश्यक है। इस संतुलन के बिना बैंक कर्मचारी न अपने कार्य और निजी जीवने में सफल नहीं हो पाते हैं। वर्क लाइफ संतुलन को कायम रखने के लिए उनकी सलाह है कि "समय के उपयोग का विश्लेषण करना और चीजों को प्राथमिकता के आधार पर करना, कार्यस्थल पर काम छोडना तथा काम और घर के बीच एक स्पष्ट सीमा निर्धारित करना जैसी कुछ आदतों का पालन करके वर्क–लाइफ संतुलन सुनिश्चित करना कर्मचारी की जिम्मेदारी है।"

बैंक के केंद्रीय कार्यालय की तिमाही हिंदी गृहपत्रिका "वाणी" के अंक 144 (मार्च 2025) में बैंक के

कार्यपालक श्री एस. राधाकृष्णन ने "आपकी डिजिटल पहचान मायने रखती है : इसे ऑनलाइन सुनिश्चित रखें" विषय पर निबंध प्रस्तुत किया है। इस निबंध में उन्होंने डिजिटल युग में बैंकिंग क्षेत्र के ग्राहकों समेत सभी को अपनी डिजिटल पहचान की सुरक्षा के लिए कुछ तकीनीकी सुझाव प्रस्तुत किए हैं। डिजिटल पहचान की सुरक्षा की आवश्यकता पर बल देते हुए उन्होंने लिखा है कि "साइबर अपराध और पहचान की चोरी के बढ़ते जोखिम के साथ, अपनी ऑनलाइन उपस्थिति का प्रबंधन करना और अपनी व्यक्तिगत जानकारी की सुरक्षा करना महत्वपूर्ण है। आपको अपनी ऑनलाइन गतिविधियों के बारे में चौकन्ने और सतर्क रहना चाहिए।"

भारतीय स्टेट बैंक :

भारत का सबसे बड़ा सार्वजनिक क्षेत्र का बैंक, भारतीय स्टेट बैंक तमिलनाडु में भी अपनी मजबूत उपस्थिति रखता है। तमिलनाडु की राजधानी चेन्नै में भारतीय स्टेट बैंक का स्थानीय प्रधान कार्यालय स्थित है। चेन्नै स्थित बैंक के स्थानीय प्रधान कार्यालय द्वारा पहले "वटवृक्ष" नामक छमाही हिंदी गृहपत्रिका प्रकाशित की जाती थी। वर्तमान में बैंक द्वारा छमाही हिंदी गृहपत्रिका "प्रवाह" प्रकाशित की जाती है।

बैंक की छमाही हिंदी गृहपत्रिका "प्रवाह" के अंक 2 (वर्ष 2023) में बैंक की कर्मचारी सुश्री महिता जी. पी. ने "क्या पाया और क्या खोया" विषय पर अपनी स्वरचित कविता प्रस्तुत की है। उन्होंने अपनी कविता में आम तौर पर बैंक कर्मचारियों द्वारा अपने व्यस्त दैनिक जीवन में किस–किस उपलब्धियों के लिए क्या–क्या खोना पड़ा उसका सजीव चित्रण किया है। उनकी कविता की पंक्तियां इस प्रकार है कि :

"व्यवसाय में तो हम जीत गए, लेकिन जवानी के दिन तो बीत गए।
काम में पदोन्नति तो प्राप्त किया, पर जीवन का मनोरंजन समाप्त हुआ।
खाते में बहुत पैसे जमा किए, लेकिन सच्चे दोस्तों को न कमा पाए।"

पत्रिका के इसी अंक में बैंक की कर्मचारी सुश्री सुभा एम कृष्णन ने "क्या जीवन केवल मेरे लिए ही चुनौतियों से भरा है?" विषय पर आलेख प्रस्तुत किया है। उन्होंने इस आलेख में चुनौतियों का सामना करने के लिए आत्मविश्वास की आवश्यकता पर बल दिया। इसी आशय को एक लघु कहानी के माध्यम से प्रस्तुत करते हुए कहती हैं कि "एक बार जब आप अपने पर विश्वास करना शुरू कर देते हैं तो जादू होना शुरू हो जाता है।" आपत्ति के समय व्यक्ति को स्वयं पर भरोसा करने और आत्मविश्वास बढ़ाने के लिए किए जाने वाले प्रयासों को भी रेखांकित किया।

पत्रिका के इसी अंक में डॉ. राधिका राजगोपाल, बैंक की चिकित्सा अधिकारी ने "बुनियादी जीवन सहायता" विषय पर अपना लेख प्रस्तुत किया है। उन्होंने इस लेख में सड़क दुर्घटना या अत्यधिक तनाव के कारण हार्ट अटैक अथवा बेहोशी होने की स्थिति में सीपीआर (कार्डियो पलमोनरी रीससिटेशन) करने की आवश्यकता एवं उसकी प्रक्रिया समझायी। इस संदर्भ में उन्होंने लिखा कि "जीवन सहायता एक ऐसी प्रक्रिया है जो अस्पताल के बाहर दुर्घटना स्थल पर बिना किसी उपकरण से की जा सकती है। केवल हाथों के प्रयोग द्वारा छाती के बीचों–बीच दबाव डालकर रुके हुए हृदय को जीवित रख सकते हैं।"

पंजाब नेशनल बैंक :

पंजाब नेशनल बैंक, नई दिल्ली में मुख्यालय रखने वाला प्रमुख सार्वजनिक बैंक है जिसका अंचल कार्यालय तमिलनाडु की राजधानी चेन्नै स्थित है जिसके अधीन चेन्नै, कोयंबत्तूर और तिरुच्ची आदि तीन क्षेत्रीय

कार्यालय होते हैं। बैंक के चेन्नै अंचल कार्यालय द्वारा छमाही हिंदी गृहपत्रिका "दक्षिण दर्पण" प्रकाशित की जाती है। गृहपत्रिका के अंक 1 (सितंबर 2024) में बैंक की कर्मचारी सुश्री एल. लावण्या ने "महिला सशक्तीकरण" विषय पर अपना निबंध प्रस्तुत किया है। उन्होंने इस निबंध में महिला सशक्तिकरण की आवश्यकता संबंधी पृष्ठभूमि देती हुई इस क्षेत्र में अब तक प्राप्त उपलब्धियों को भी रेखांकित किया। उनके शब्दों में "महिलाएं ज्यादा खुले दिमाग की होती हैं और सभी आयामों में अपनी अधिकारों को पाने के लिए सामाजिक बंधनों को तोड़ रही हैं।"

बैंक की हिंदी गृहपत्रिका के अंक 2 (मार्च 2025) में कर्मचारी सुश्री अनुपमा टी. के. ने "भारतीय भाषाओं में समृद्ध हो रही हिंदी" विषय पर लेख प्रस्तुत किया है। उन्होंने लेख में राजभाषा हिंदी को समृद्ध करने में अन्य भारतीय भाषाओं के योगदान का वर्णन किया है। उनके अनुसार "हिंदी भारत की आत्मा है और इसकी शक्ति को बढ़ाने से हम भारतवासी देश की संस्कृति और अस्मिता को मजबूत कर सकते हैं।"

यूनियन बैंक ऑफ इंडिया :

यूनियन बैंक ऑफ इंडिया, भारत का प्रमुख सार्वजनिक क्षेत्र का बैंक है। तमिलनाडु राज्य में बैंक के दो अंचल होते हैं यथा चेन्नै और कोयंबत्तूर। चेन्नै अंचल के अधीन 5 क्षेत्रीय कार्यालय होते हैं, वैसे ही कोयंबत्तूर अंचल के अधीन भी 5 क्षेत्रीय कार्यालय होते हैं। बैंक के विभिन्न क्षेत्रीय कार्यालयों द्वारा हिंदी गृहपत्रिकाएं प्रकाशित की जाती हैं। बैंक के चेन्नै उत्तर कार्यालय द्वारा "यूनियन चेन्नै", चेन्नै दक्षिण कार्यालय द्वारा "यूनियन नवरस", कांचीपुरम कार्यालय द्वारा "यूनियन कांची", कोयम्बत्तूर कार्यालय द्वारा "यूनियन नीलगिरि", तिरुप्पूर कार्यालय द्वारा "यूनियन परिधान", तिरुच्ची कार्यालय द्वारा "यूनियन सृष्टि" और सेलम कार्यालय द्वारा "यूनियन येरकाड" नामक हिंदी गृहपत्रिकाएं प्रकाशित की जाती हैं। इसी क्रम में बैंक के मदुरै आंचलिक कार्यालय द्वारा "यूनियन शक्ति" नामक तिमाही हिंदी गृहपत्रिका प्रकाशित की जाती है। इन गृहपत्रिकाओं में लेख–आलेख आदि का योगदान करने वाले बैंक के कर्मचारियों को उचित मानदेय अदा करते हुए सम्मानित किया जाता है।

बैंक के चेन्नै (दक्षिण) क्षेत्रीय कार्यालय की छमाही हिंदी गृहपत्रिका "नवरस" के अंक 1 (सितंबर 2022) में बैंक कर्मचारी श्री एम. एस. श्रीधर ने "तंजौर चित्रकला" विषय पर लेख लिखा है। इस लेख में तमिलनाडु के प्रसिद्ध शहर तंजावूर के विशिष्ट चित्रकला तंजावूर पेइंटिंग की विशेषताओं के बारे में लिखा कि "तंजौर पेइंटिंग अपने जीवंत रंगों और भड़कीले अंलकरणों के लिए जाना जाता है। विशेष रूप से सोने की पन्नी, कीमती पत्थर, कांच के टुकड़ों का उपयोग करते हुए देवी–देवताओं के असाधारण चित्रण अपने आप में विलक्षण लगता है। इसे 2007–08 में भारत सरकार द्वारा भौगोलिक संकेत के रूप में पहचाना गया।"

बैंक के चेन्नै (दक्षिण) क्षेत्रीय कार्यालय की छमाही हिंदी गृहपत्रिका "नवरस" के अंक 2 (मार्च 2023) में बैंक के कर्मचारी श्री आई करुप्पसामी ने "किडनी को कैसे स्वस्थ रखें" विषय पर आलेख का योगदान किया है। इस आलेख में उन्होंने लिखा है कि "किडनी का प्रमुख काम रक्त से पानी और सोडियम को अलग करना है। इसके अलावा किडनी एंजाइम रेनिन बनाता है, जो रक्तचाप को कंट्रोल करने में अहम भूमिका निभाता है।" इस प्रकार उन्होंने प्रत्येक व्यक्ति को अपनी किडनी को स्वस्थ रखने के लिए किए जाने वाले उपाय तथा इस आशय के लिए खाने लायक फल और सब्जी संबंधी विवरण भी प्रस्तुत किया है। पत्रिका के इसी अंक में एक और कर्मचारी सुश्री के राजलक्ष्मी ने तमिलनाडु के घरों में विशेष रूप से बनाए जाने वाले "टमाटर रसम रेसिपी" प्रस्तुत की है। उन्होंने रसम तैयार करने के लिए आवश्यक सामग्री तथा बनाने की विधि आसान शब्दों में वर्णन किया

है जो पाठक वर्ग के लिए उपयोगी भी है।

बैंक ऑफ इंडिया :

बैंक ऑफ इंडिया की स्थापना 7 सितंबर 1906 को मुंबई के प्रख्यात व्यवसायियों के एक समूह द्वारा की गई थी। तलिनाडु राज्य में वर्तमान में बैंक ऑफ इंडिया के तीन अंचल कार्यालय होते हैं यथा चेन्नै अंचल, मदुरै अंचल और कोयंबत्तूर अंचल। चेन्नै अंचल के अधीन 80 से अधिक शाखाएं होती हैं। बैंक के चेन्नै आंचलिक कार्यालय द्वारा तिमाही हिंदी गृहपत्रिका "वणक्कम हिंदी" प्रकाशित की जाती है। बैंक की चेन्नै अंचल की तिमाही हिंदी गृहपत्रिका के अंक 12 (जून 2025) में बैंक के कर्मचारी श्री वम्सी किरण ने "खुशी" विषय पर अपनी कविता प्रस्तुत की है। उन्होंने खुशियों का एहसास करने पर लिखा कि :

"न पैसे की है, न किसी महल की, खुशी है दिल की हलचल की।
कभी बारिश की पहली बूँद में, कभी मिट्टी की उस खुशबू में।
खुशी है सबके मुस्कानों में, बस जीने में हैं, कहने में नहीं।"

केनरा बैंक :

केनरा बैंक की स्थापना एक महान दूरदर्शी और परोपकारी श्री अम्मेम्बाल सुब्बा राव पै ने जुलाई 1906 में मंगलोर में की थी, जो उस समय कर्नाटक का एक छोटा बंदरगाह शहर था। तमिलनाडु राज्य में बैंक के दो अंचल कार्यालय होते हैं यथा चेन्नै अंचल और मदुरै अंचल। चेन्नै अंचल कार्यालय द्वारा छमाही हिंदी गृहपत्रिका "चेन्नै सेय्दगिल" और मदुरै अंचल कार्यालय द्वारा छमाही हिंदी गृहपत्रिका "यवनिका" प्रकाशित की जाती हैं।

बैंक के मदुरै अंचल कार्यालय की छमाही हिंदी गृहपत्रिका "यवनिका" के प्रवेशांक (मार्च 2025) में बैंक की कर्मचारी सुश्री ना. सुजाता ने "एक से भले दो" विषय पर अपनी लघु कहानी प्रस्तुत की है। उन्होंने इस लघु कहानी के जरिए जंगल के दो जानवर चिक्कू नामक खरगोश और बंटी नामक कछुए के बीच की दोस्ती के फायदे का वर्णन किया है। शीत काल में जब बंटी बीमार पड़ती है तो उसे बचाने के लिए चिक्कू जंगल के वैद्य भोलू के कहे अनुसार जड़ीभूति ढूंढकर उसे समय पर ले आकर बंटी को इस प्रकार बचाया हहै कि "भोलू वैद्य ने जैसा पौधा बताया था, चिक्कू ने दूर से ही उसे पहचान लिया। अब पौधा चिक्कू के हाथ में था। वह लौट पड़ा। उसकी तत्परता के कारण बंटी जल्द ही ठीक हो गया।"

पत्रिका के इसी अंक में बैंक की एक अन्य कर्मचारी सुश्री एस. बी. प्रतिभा ने "प्रकृति की ओर" विषय पर अपनी कविता प्रस्तुत की है। उन्होंने अपनी कविता में शहरी जीवन में आदमी जिन–जिन विषयों से वंचित है उनका सजीव वर्णन किया है। शहरी जीवन की विषम परिस्थितियों के बारे में लिखी हैं कि :

"मैं एक इंसान हूँ, मैं शहरों में थक गया हूँ।
मैं प्रकृति की ओर जा रहा हूँ, शांति पाने के लिए। .....
बादल हवा की तरह हल्के थे, और हवा के साथ उड़ रहे थे।
सूरज डूब गया, दिन का अंत हो गया, मेरी क्लांति का भी।।"

निष्कर्ष :

तमिलनाडु स्थित बैंकों में राजभाषा की भूमिका 21वीं सदी में जटिल एवं विकासशील है। भाषाई राजनीति, तकनीकी प्रगति, और ग्राहक की आवश्यकताओं के बीच संतुलन बनाने का चुनौतीपूर्ण कार्य जारी है। अध्ययन

से यह स्पष्ट होता है कि तमिलनाडु में राजभाषा कार्यान्वयन की प्रगति सतत सही दिशा में अग्रसर हो रही है। डिजिटल बैंकिंग के विकास ने भाषाई विविधता के लिए नए अवसर प्रदान किए हैं। भविष्य में कृत्रिम बुद्धिमत्ता और मशीन उद्‌गम के प्रयोग से भाषा की बाधाएं और भी कम होंगी। सफल कार्यान्वयन के लिए संवेदनशील और समावेशी दृष्टिकोण की आवश्यकता है। राजभाषा के साथ–साथ स्थानीय भाषाओं का सम्मान करते हुए बहुभाषी बैंकिंग सेवा का विकास प्रयत्नरत है। भाषाई दूरी को भगाकर न केवल संवैधानिक आवश्यकताओं को पूरा करेगा बल्कि भारत की भाषाई विविधता की भी प्रतिष्ठिा मिलेगी। जैसा कि प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने कहा कि, 'भाषा केवल संवाद का माध्यम नहीं है, यह एक संस्कृति, एक विरासत और एक पहचान है। हमारी वित्तीय प्रणाली में भारतीय भाषाओं का उपयोग हमारी अर्थव्यवस्था को अधिक समावेशी और लचीला बनाएगा।' (मोदी, 2023)[4]

उक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि बैंक कर्मचारियों ने हिंदी में प्रशिक्षण लेने के बाद, अपनी मन की बातें बेझिझक यथोचित रूप से प्रस्तुत कीं। इस उपलब्धि को प्रशिक्षण की सफलता का सबूत माना जाता है। हिंदी गृहपत्रिकाओं का नियमित प्रकाशन और बैंक के अधिकतम सदस्यों द्वारा लेख–आलेख आदि के योगदान के माध्यम से, सचमुच तमिलनाडु स्थित बैंकों में राजभाषा हिंदी के प्रति अनुकूल वातावरण निर्मित होने में सहायक सिद्ध है। कर्मचारी द्वारा हिंदी गृहपत्रिकाओं में योगदान के लिए अपना विचार स्वतंत्र रूप से रखने के अनुभव से अपना दैनिक कार्यालयीन कार्य यथा पत्राचार, टिप्पणी और फाइलों में अपना कार्य हिंदी में आसानी से कर पाते हैं। इसके परिणामस्वरूप बैंकों में हिंदी पत्राचार, टिप्पणी लेखन इत्यादि से संबंधित लक्ष्य प्राप्ति अनायास हो जाती है। विशेष रूप से तमिलनाडु स्थित जैसे हिंदीतर क्षेत्र में हिंदीतर भाषा–भाषियों को राजभाषा हिंदी में कार्य करने के लिए उत्सुकता और आत्म विश्वास बढ़ता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. कश्यप, सुभाष (2019). 'भारतीय वित्तीय क्षेत्र में राजभाषा का महत्व'. वित्तीय समावेशन अध्ययन, 28(2), 78–92.
2. राजभाषा की प्रवृत्तियां : डॉ. माणिक मृगेश : वाणी प्रकाशन, दिल्ली : प्रथम संस्करण 2006
3. राजभाषा नीति कार्यान्वयन : श्री हरिबाबू कंसल : प्रकाशक : सुधांशु बंधु, दिल्ली : चौथा संस्करण–2004
4. मोदी, नरेंद्र (2023). 'भारतीय भाषाओं का महत्व'. राष्ट्रीय शिक्षा नीति संगोष्ठी में दिया गया भाषण, नई दिल्ली, 15 मार्च 2023.

ई–मेल : snjv_kn@yahoo.co.in

मोबाइल नंबर 85499 10688

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Sept. 2025 Page No. : 412-416

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

पर्यावरण विमर्श : साहित्य में पारिस्थितिकी और प्रकृति चिंतन (बाल कहानियों के संदर्भ में)

वेंकट शिल्पा काकि, शोधार्थी
डॉ. पूर्णिमा श्रीनिवासन, शोध निर्देशिका
वेल्स इंस्टीट्यूट ऑफ साइंस, टेक्नोलॉजी एंड एडवांस्ड स्टडीज (VISTAS) पल्लावरम, चेन्नई, इंडिया।

प्रस्तावना :

साहित्य समाज का उतार–चढ़ाव, उत्तान–पतन, सुख–दुख का चिट्ठा है। साहित्य में इस विशाल संसार का हर एक विषय, विचार सभी मौजूद है। साहित्य हमारा इतिहास के अमूल्य पन्नों को दिखाता है। वहीं मानव और समाज के चरित्र में ऐसी मुश्किल पलों को भी दर्शाता है। जिससे हम कुछ सीखें और ऐसी गलतियाँ नहीं करें। साहित्य का प्रेरणा स्त्रोत पर्यावरण है। प्रकृति, पशु–पक्षी, सूरज, चाँद, तारें, ऋतु, झरना, पहाड़, आदि भी साहित्य का विषय है। यह मानव जीवन में आनंद प्रदान करने वाले अभिन्न अंग है। साहित्यकारों ने साहित्य के विभिन्न विधाओं में सूरज, चाँद, तारें, पहाड़ झरना आदि के माध्यम से अपने विचार व्यक्त किया हैं। दिविक रमेश की कविता 'अगर पेड़ भी चलते होते' हमें सोचने के लिए प्रेरित करता है। बाल कहानी साहित्य में पर्यावरण से संबंधित विविध पहलुओं का अध्ययन एवं उपयोग प्रदान करने का लघु प्रयास इस शोध आलेख का उद्देश्य है।

पर्यावरण शब्द की उत्पत्ति और परिभाषा :

पर्यावरण संस्कृत शब्द 'परि' और 'आवरण' शब्दों के मेल से बना है। 'परि' का अर्थ 'चारों ओर' और 'आवरण' का अर्थ 'घेरना' दोनों शब्दों का मेल से पर्यावरण का अर्थ बनता है 'चारों ओर घेरना'। पर्यावरण, जो हमारे चारों ओर फैले हुआ हालत या संस्कृति और समाज के जटिल परिस्थिति जो व्यक्ति को प्रभावित करते हैं।

अंग्रेज में 'Environment' शब्द पर्यावरण के लिए प्रयोग किया जाता है। पर्यावरण जैविक और अजैविक वस्तु जगत जो मानव को घेरा हुआ है।

हजारी प्रसाद द्विवेदी 'कुटज' में पर्यावरण के बारे में व्यक्त किया कि "यह धरती मेरी माता है और मैं इसका पुत्र हूँ इसलिए मैं सदैव इसका सम्मान करता हूँ और मैं धरती माता के प्रति नतमस्तक करता हूँ।"[1] (नारी विमर्श– शा. पी.जी. कॉलेज, गुना–आवाहन गीत–पृष्ठ क्र.143, संपादक डॉ लक्ष्मीनारायण बुनकर)

पर्यावरण संरक्षण का पक्षधर गाँधीजी कहते है– "मैं विज्ञान या तथाकथित मानवता के नाम पर निर्दोष

1. (सं.) डॉ लक्ष्मीनारायण बुनकर, नारी विमर्श– शा. पी.जी. कॉलेज, गुना–आवाहन गीत–पृष्ट, क्र. 143.

जीवों की अक्षम्य हत्या को घृणा की दृष्टि से देखता हूँ।"[2]

उक्त विषय यह स्पष्ट करता है साहित्य, मानव और पर्यावरण में गहन संबंध है। आदिवासी जीवन में प्रकृति और जीव–जन्तु के पूजा और सह जीवन पर बाल दिया है। धीरे–धीरे यह स्थिति बदली है। सहज उपलब्ध पर्यावरण से मानव निर्मित पर्यावरण का जन्म हुआ है। धीरे–धीरे यह हानिकारक रूप भी धारण कर रहा है।

पर्यावरण आवश्यकता एवं महत्व :

मनुष्य सामाजिक प्राणी है। मनुष्य को घेरा हुआ पर्यावरण यथा आस–पास के प्रकृति, पशु–पक्षी, जीव–जन्तु, पेड़–पौधे, भौगोलिक परिस्थितियों के बारे में जानना अनिवार्य है। पर्यावरण या प्रकृति ज्ञान से मानव अपना जीवन सुगम बनाता है। अपने आस–पास के वन्य जीव–जन्तु, पशु–पक्षी की जानकारी से वह जंगली जानवरों से अपने आप को बचाता है। साथ ही पालतू जानवरों की सहायता से सुखद जीवन प्राप्त करता है। अपने आसपास के पेड़ पौधों से फूल, फल और औषधियाँ प्राप्त करके अपनी भूख मिटाता हैय बीमारियों से राहत पता है। ऋतुओं की जानकारी से मानव समय–समय में प्रकृति परिवर्तन का ज्ञान पता है। उसके अनुकूल अपना रहन–सहन, खान–पान में परिवर्तन करता है। पर्यावरण एक अमूल्य राशि है, जिसके बिना मानव जीवन संकट मय हो जता है। मानव उन्नति की हर कदम पर्यावरण की सहायता से हुई है। इस संसार का अस्तित्व ही स्वच्छ वायु के अभाव में प्रश्नार्थक हो जाता है। इस प्रकार मानव जीवन और पर्यावरण में अटूट बंधन है। मानव जीवन के लिए यह महत्वपूर्ण है।

साहित्य और पर्यावरण :

यह सर्वमान्य है कि पर्यावरण के हर एक कण मानव के लिए उपयोगी है। इसलिए पर्यावरण साहित्य का अभिन्न अंग बना है। सदियों से विद्यमान साहित्य में प्रकृति सौंदर्य का वर्णन, जीव जंतुओं के द्वारा सिख प्रदान करना आदि उपलब्ध है। अथर्व वेद में वन, पृथ्वी और पेड़–पौधों की प्रार्थना मिलती है। कालिदास का मेघ संदेश काव्य में मेघ के द्वारा संदेश पहुँचाने का अनुपम प्रयास प्राप्त है। आदिकाल के रासो काव्यों में प्रकृति वर्णन की झलक मिलता है। उदाहरणार्थ पृथ्वी राज रासो में हमें ऋतुओं का वर्णन मिलता है। इस प्रकार वेदों के काल से लेकर वैज्ञानिक यांत्रिक युग में भी पर्यावरण चित्रण साहित्य में विद्यमान है।

आज भी साहित्य की किसी भी विधा में देखे तो सूर्योदय, सूर्यास्त, ऋतु वर्णन, सागर, झरनों का वर्णन आदि देखने को मिलते हैं। मानव अपने अति आग्रह के लिए मनमानी करके नियमित प्रकृति चक्र को बदला है। जिस कारण आज सभी को प्रदूषण से संबंधित विभिन्न समस्याओं से जूझने का नौबत हुआ है। यथा अतिवृष्टि, अनावृष्टि, भूकंप आदि। इस प्रकार मनुष्य खुद का शत्रु बन गया है। इन विकट समस्याओं का समाधान समय की माँग है। जनता में जागरूकता लाना है। पर्यावरण के बारे में समग्र जानकारी बचपन से देना अतिआवश्यक है। इस दृष्टि से घर, परिवार के अतिरिक्त साहित्य का भी अहम कर्तव्य बनता है। बच्चों को उक्त विषयों को परिचय करने के लिए बाल साहित्य एक सक्षम साधन है। बाल कहानी साहित्य जैसी सक्षम विधा बच्चों के इर्द–गिर्द की परिवेश, घटना को मूल विषय बना कर उन्हे समाज के विभिन्न परिवेशों से परिचित करती है।

पेड़–पौधों की आवश्यकता :

21वीं सदी के सुप्रसिद्ध बाल कहानीकार प्रकाश मनु 'पेड़ हमारे यान है' कहानी में पेड़ का महत्व के बारे

2. (प्र.सं.) शंभूनाथ, हिन्दी साहित्य ज्ञानकोश, पृ. सं. 2046

में रोचक ढंग से प्रस्तुत किया है।

रतालू खूब पसंद करने वाले राजा रतालुमल सदा रतालू खाते रहता है। उन्हें एक शानदार आलीशान महल बनाने की आशा थी। इस कारण वे अपने खजाना पूरा खाली करता है। लेकिन महल पूरा नहीं होती है। फलतः राजा बीमार पड़ता है। वैद्य का दावा काम नहीं आने पर जंगल के ज्ञानी साधु को बुलाते हैं। साधु वृक्ष की सहायता से राजमहल पहुँच कर राजा की बीमारी ठीक करते हैं। राजा बदले में साधु को कीमती चीज देकर मर्यादा करना चाहता है। परंतु साधु इनकार करते हुए वृक्ष की महत्ता के बारे में यूँ समझाते हैं –"राजन, मैं पेड़ के नीचे बसेरा करता हूँ। उसी पेड़ के फल खाकर मेरा गुजरा हो जाता है। सर्दी, गरमी, बरसात में वही मेरा घर है। वही मेरा यान भी है, जिसमें बैठकर मैं आपके पास आया हूँ.....। और भला मुझे क्या चाहिए?"[3] इस प्रकार राजा वृक्ष का महत्व समझकर अधूरा महल को जनता के कल्याण के नाम कर देते हैं।

वन और वन्य जीव :

वन कई जंतुओं का घर होता है। शेर, हाथी, से लेकर नन्ही सुंदर खरगोश तक सभी जानवर जंगल में रहते हैं। हम अपने खुशी के लिए उनमें कुछ जन्तु जैसे खरगोश, तोता, मैना, आदि घर में पालते हैं। लेकिन अगर इनकी ख्याल रखने में कुछ गलती हुई तो वे मुश्किल में पड़ जाते हैं। अगर हम जन्तु प्रेमी है तो उनका पूर्ण ख्याल रखे। नहीं तो उन्हे अपना घर जंगल में रहने दें। इसी पर बल देता है प्रकाश मनु की कहानी 'रंग बिरंगी खरगोश'। कहानी का मुख्य पात्र मखना सुंदर छोटा सा लड़का, जो पढ़ाई से ज्यादा पेड़–पौधों से प्यार है। एक दिन मखना अपने दोस्त के घर में सुंदर खरगोश देख कर खुद खरगोश पालने के लिए माँ से जिद करता है। मखना का जिद तोड़ने, माँ घर का पुराना नौकर करमा से खरगोश लाने के लिए कहती है। करमा के द्वारा खरगोश पाकर मखना खुशी से बेहाल होता है।

बिल्ली और कुत्तों से खरगोशों को बचाने उन्हें बाड़ा में रख कर उनका संरक्षण करता है। उनके साथ खूब खेल कर मजा लेते हुए पढ़ाई पर ध्यान देना भूलता है। परीक्षा का समय करीब आते ही मखना परीक्षा में फेल होने के डर से पढ़ाई पर ध्यान देना शुरू करता है। परिणामवश वह खरगोशों से खेलना कम हो जाता है। एक बार मखना जल्दबाजी में बाड़ा का दरवाजा सही तरह बंद नहीं करता है। फलतः कुत्ते खरगोश पर भारी पड़ते हैं। मखना विषय को जानने से पहले कुत्ते एक खरगोश को मार देते हैं। मखना मार हुआ खरगोश को देख कर रोने लगता है। बाकी खरगोशों को पकड़ कर बाड़ा में रख कर सही तरह दरवाजा बंद करता है। मार हुआ खरगोश को दूर जमीन में गढ़ कर वापस आते समय करमा समझता है कि मखना की गलती की वजह से खरगोश मर गया है। ऊपर से कहता है– "ये जंगल में होते तो किसी झाड़ी के पीछे छिपकर अपना बचाव खुद कर लेते। तुम इन्हें पाल रहे हो, तो इनकी संभाल का जिम्मा भी तुम्हारा ही हुआ न! संभाल नहीं सकते तो जाकर जंगल में छोड़ आओ।"[4] मखना करमा की बोध से प्रेरित होकर अपनी भूल को सुधारने बाकी खरगोशों को जंगल में छोड़ देता है। जब भी उन्हे देखने की मन करने पर करमा के साथ जंगल पहुँच कर खरगोशों का इंतजार करता है। इस प्रकार लेखक उपरोक्त कहानी में जानवरों की रक्षा करने के लिए साथ ही वनों की आवश्यकता के बारे में सरल और सुंदर ढंग से समझाया है।

---

3. प्रकाश मनु, पेड़ हमारा यान है, पृ. सं. 57.
4. प्रकाश मनु, रंग बिरंगी खरगोश, पृ. सं. 49.

पवन कुमार वर्मा की कहानी वह 'घर पहुँच गया' भी वन्य जीव और जंगल की पृष्ठभूमि को आधार बनाकर लिखा गया कहानी है। दीपू के मोहल्ले में आया बंदरों का झुंड से एक बंदर अपने साथियों से बिछड़ गया। मोहल्ले की नीम का पेड़ पर रहना शुरू करता है। दीपू बंदर की भूख मिटाने रोटी देता है। गप्पू बंदर को लाठी से डराकर बहादुरी दिखने की चेष्टा करता है। एक बार बंदर डर से उभर कर गप्पू से लड़ने तैयार होता है। गप्पू की चिल्लाने पर मोहल्ले वाले बंदर को भगाने आते हैं और गप्पू बच जाता है। दीपू बंदर के बारे में सोचता रहता है। पिताजी से उस बंदर की अपनी मोहल्ले में रहने के बारे में पूछता है। दीपू के पिता कहते है–"बेटा! इसके रहने की असली जगह तो जंगल में है! वहाँ उसे खाने को पत्तियाँ और फल आसानी से मिल सकते हैं। यहाँ तो यह बहुत दिनों तक जीवित नहीं रह पायेगा। यहाँ उसे उसका खाना आसानी से नहीं मिल सकता।"। एक बार छतों पर दौड़ते हुए बंदर पेड़ तक पहुँचने की जल्दी में तेज बिजली की तारों में उलझ कर करंट लगने के कारण बेहोश होकर गिर जाता है। दीपू बंदर पर पानी डाल कर उसे होश में लता है। मनुष्य समाज में उस अकेला वन्य प्राणी की स्थिति देख कर दीपू उसे जंगल में छोड़ ने का निर्णय लेता है वह अपने पिताजी से बंदर को मोहल्ले जंगल छोड़ने की बात करते हुए कहा "अपने घर! जंगल में।"[5] पिताजी की सहायता से दीपू बंदर को पास जंगल में छोड़ देता है। बंदर अपने झुंड को पाकर खुशी से झुंड वालों से मिलता है। इस संसार में सभी का अपना जगह होता है। उस संतुलन को बिगाड़ना नहीं चाहिए। पवन कुमार वर्मा इस किस्से के माध्यम से वन्य जीवों की रक्षा के लिए वनों की आवश्यकता पर बाल दिए है। साथ ही प्राणियों पर हिंसा नहीं करने की सीख प्रदान किया है।

प्रकृति सौंदर्य :

वन, नदी, झरना, पहाड़, बारिश, पूर्णिमा की रात आदि कई ऐसे प्रकृति के सहज सुंदर दृश्य हमें मोहित करते हैं। प्रकृति के मेघ, बादल, बूंद आदि को सहारा बनाकर कहानीकार मनोरंजक कहानियाँ लिखी हैं। जो बच्चों में प्रकृति की ओर रुचि बढ़ाती है।

खेती करने के लिए कृषक वर्षा की इंतजार करते है। इसी विषय को पीठिका बना कर पवन कुमार वर्मा की कहानी 'घमण्डी बादल' बहुत ही रोचक ढंग से प्रस्तुत किए है।

पर्वत राजा बादलों को आदेश देते है कि बादल जल्दी जाकर धरती पर बरसें। सफेद बादल काले बादलों के झुंड देख कर उनका मजाक उड़ते है। लेकिन सफेद बादलों की सुंदरता से धरती के सभी खुश नहीं होते हैं। तभी काले बादल आते हैं तो सफेद बादल उनका मजाक उड़ाते कहता है–"लो! ये भी आ गये। इन्हीं की कमी रह गयी।"[6] धरती के हर प्राणी घने काले बादल को देख कर बहुत खुश होते हैं। काले बादल खूब बरसते हैं। सफेद बादलों की घमण्ड चूर–चूर होती है। लेखक बादलों के मदद से बच्चों को घमण्ड छोड़ने की शिक्षा प्रदान किया है। मानव जीवन में पर्यावरण की अहमियत को स्पष्ट किया है।

निष्कर्ष :

प्रकृति हमारा जीवन का अभिन्न अंग कहना गलत नहीं है। प्रकृति की आवश्यकता से ज्यादा अपने स्वार्थ के लिए, सुख के लिए उपयोग करना प्रकृति विनाश का कारण बनता है। छोटे–छोटे विषयों पर ध्यान देते हुए

5. पवन कुमार वर्मा, अक्ल बड़ी या भैंस, पृ. सं. 39.
6. पवन कुमार वर्मा, अक्ल बड़ी या भैंस, पृ. सं. 3.

हम बड़ा कार्य को आसानी से निभा सकते हैं। उपवनों को बढ़ावा देना, अपने घर में पौधों को डालना। घर और आस–पास के जगहों को साफ सुतरा रखना आदि हमें पालन करना है और बच्चों को सिखाना है। इससे प्रकृति से बच्चों की दोस्ती हो जाती है। आज के साहित्यकार और पत्र–पत्रिकाओं के प्रयास से बच्चों में पर्यावरण के प्रति जानकारी देते हुए उन्हें जागरूक बना रहे हैं। माता–पिता और पाठशालाओं में भी प्रकृति और पर्यावरण की अवगाहन प्रदान करने से बच्चे पर्यावरण के समस्याओं का समाधान ढूँढ कर विज्ञान की सहायता से पर्यावरण में संतुलन लाने की प्रयास करें। इससे सुंदर भविष्य की कल्पना साकार हो सकता है।

संदर्भ ग्रंथ सूचि :

1. प्रकाश मनु, मेले में ठिनठिनलाल, इंडिया डिजिटल पुब्लिशर्स, 2023, दिल्ली।
2. पवन कुमार वर्मा, अक्ल बड़ी या भैंस, प्रकाशन विभाग, 2022, नई दिल्ली।

वेब ग्रंथ सूचि :

- कांबले डी.एस., पर्यावरण अवनयन : एक अध्ययन, Review of Research, volume-8, issue-9, 2019.
- https://mdu.ac.in/UpFiles/UpPdfFiles/2021/Jun/4_06&14&2021_12&37&49_Environmental%20Science_BA1009&I.pdf

ईमेल : silpa.kv@gmail.com

ईमेल : hodhindi@velsuniv.ac.in

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Sept. 2025 Page No. : 417-422

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

21वीं सदी के आधुनिक हिन्दी उपन्यास बेहया में केंद्रित नारी

अमरजीत

शोधार्थी, कुरुक्षेत्र विश्वविद्याल कुरुक्षेत्र।

सार :

श्विनीता अस्थानाश द्वारा लिखे गये उपन्यास 'बेहया' की बात यहाँ मैं करू तो सन् 2020 ई. में प्रकाशित यह उपन्यास उस समय की एक अनमोल रचना है। 'बेहया' को प्रकाशित करना ठीक वैसे ही है जैसे एक वर्ष की शिक्षा के पश्चात परीक्षा मे उत्तीर्ण होना। परंतु इसके प्रकाशन में दो साल का समय लगा क्योंकि इसके चार भाग है जो एक–एक पेपर का प्रतीक है। जैसे–जैसे ये छपते गए वैसे–वैसे विनीता जी भी वार्षिक विषयों की तरह अपने लक्ष्य में सफल होती गई। यह उपन्यास नये पुरान समय को मिलने की तमाम कोशिश करता नजर आ रहा है। मुझे अनंत विजय जी द्वार लिखित 'प्रेमचंद' जी की एक बात याद आ रही है कि 'कामुकता सुई है, जो सीने का भी काम करती है और चुबने का भी, उपयोगितावाद का कला से वैर प्रसिद्ध है, इसलिए नए कलाकार इस सुई का केवल कलात्मक उपयोग कर रहे हैं," परंतु विनीता जी ने इसका उपयोग सीने और चुभन में तो किया ही है, साथ में कलात्मक ही नहीं रचनात्मक उपयोग भी किया है। हम जब उपन्यास या अन्य कृति पढ़ते है तो अक्सर ऐसा लगता है कि सेक्स प्रसंगों को जबरदस्ती अपनी रचना में ठूँसकर रचना को पूरा किया गया हो। परंतु यह उपन्यास इस तथ्य से हटकर लिखा गया है। इनका यह उपन्यास बहुत शांतिप्रिय तरीके से 'बगेर बोल्ड और 'लाउड' हुए लड़कियों की बदलती हुई मनः स्थिति का सामाजिक विश्लेषण करता दिखाई देता है। इस उपन्यास के अनेक पात्र है जैसे : नाम्या, सिया, मीरा, यश, प्रभात, अभिज्ञान सूर्यवंशी, भास्कर, सायमा, अमन, तृष्णा, सीईओ सत्येन्द्र चुग जैसे और भी अनेक पात्र है जो हमें अनेक हाल की घटनाओं से जोड़ता है जो अति जगचर्चित है। इस उपन्यास में उच्च रहन सहन और दिखावे से लैस कॉरपोरेट वर्ल्ड और उसकी कार्यप्रणाली से जुड़ी बातें दिखाई गई हैं, और शारीरिक संबंधों से दूर एक अफलतूनी स्नेह की सोच भी नजर आती है इतना ही नहीं संदिग्ध मानसिकता के शिकार जन स्त्री को जूठे ताने कस अपने बच्चों का डी एन ए टैस्ट करवाते है ऐसे बहुत से कारणों से आज विश्वास के अभाव में हर दिन अनेक परिवार टूटते नजर आते है। इस उपन्यास में हमें जहाँ जीवन दर्शन से जुड़ी बातें मिलती है वहीं अन्याय से लड़ने, उसके विरुद्ध आवाज उठाने की प्रेरणा भी मिलती है।

शब्दकोश : 'बेहया' का आईनीत रूप, कॉर्पोरेट जगत व कंपनियों मे भूमिका, रिवायती कशमकश, वैवाहित तनाव, अकेलेपन, सामाजिक मनःस्थिति, युवा संवेदना, लक्ष्य संघर्ष, आधुनिक प्रतिबद्धता।

प्रस्तावना :

विनीत जी के उपन्यास बेहया का शीर्षक शब्द विरासत, परिशोधन, तालिम, तनहाई की वास्तविकता, मातृभूमि–विलायती सस्कृतियों, अनुभूति के सामाजिक संघर्ष और वैवाहिक जीवन के विवाद, तनाव व उपादेयताओं के साथ ही अतीत की स्मृतियों, आज की दमित इछाओं व अवशेष हशर्तों तथा भविष्य के सपन का वाहक–वाचक संकेत बनकर तो आया ही है, इन सभी रूपों के साथ एक केन्द्रीभूत पात्र बनकर भी उपस्थित हुआ है। इतना ही नहीं इसके पात्र साक्षात अनुपस्थित होने पर भी उपस्थित नजर आते है। यह उपन्यास अपने स्त्री पत्रों के माध्यम से यह दर्शाता है कि स्त्री का शिक्षित किरदार भले ही उसे उच्च पद पर बैठाता है, परंतु पुरुष उसमें भी कहीं न कहीं सूक्ष्म मानसिकता का लांछन लगा, उसकी सफलता को पैरों के नीचे कुचल देता है। नारी की सफलता से हुई नफरत की आग को बुझाने के लिए, वह उसे अपमानित करने का कोई मोका नहीं चुकता है। यश जैसा पुरुष दूसरे पुरुष की गर्दन पर अपने शब्दों को रखकर एक तीर के कमान की तरह बारी–बारी से छोड़ सिया जैसी स्त्री के वैवाहित जीवन को झझकोर देता है। तब वह नारी संघर्षशील जीवन को ढोते–ढोते उसे छोड़ देने की सोचती है और जब उसे अकेलापन कचोटता है तब उसे अपने हाथों बुने प्रेमविवाह के रिस्ते पर भी अतबार नहीं रहता तब वो रिस्ते सीने का काम न कर चुबने का काम करते है। जितनी बार चुभे उतनी ही बार एक अलग ही टीस सिया के जहन से निकलती है। यश और सिया उपन्यास के दो वैवाहित प्रेमी है, उनके दो बच्चे हैं परंतु यश एक अपने पैसे की धोंस दिखाने वाला, सिया की जासूसी औरतों से करवाने वाला पात्र है। यश सिया के नौकरी करने को एक सफल औरत के नजरिए से न देखकर उस पर अनेक तरह के लांछन, लगाता है, 13 साल से सिया यश के झूठे इल्जामों, बकवासों को सिर्फ अपने बच्चे के लिए सहती आई थी परंतु अब सभी हदे पार हो चुकी थी वह यश से अलग होना चाहती थी वह थक चुकी थी समझा–समझा कर की मैं ऐसी औरत नहीं हूँ मुझे एहसास है मैं शादीशुदा हूँ और नौकरीपेशे वाली औरत हूँ, हर आदमी जिसके साथ मैं बात करती हूँ वह मेरा प्रेमी नहीं होता, और न ही हर आदमी के साथ सोती हूँ जिससे मैं बात करती हूँ या कारोबार के सिलसिले में मिलती हूँ.... इतने पर भी समझ न आने पर उनकी लड़ाई हर रोज बढ़ती जाती है और एक दिन सिया बहुत परेशान होकर कहती है :

"अब तो मुझे बख्श दो यार! तुम हर वख्त एक ही राग कैसे आलाप लेते हो, सिर्फ इसलिए की तुम्हारे मन में कुछ कुंठाएँ हैं।"

कुंठाएँ? मुझमें या तुममें?"

बेशक तुममें यशवर्धन राठौर!"

वाकई सिया! किसे लाइमलाइट में रहना पसंद है? किसको आकर्षण पसंद है?"

इन सभी तथ्यों से सिद्ध होता है की हर रोज अब रिस्ता बोझ की तरह लादा जा रहा है। सिया नौकरी के साथ–साथ उस पारिवारिक चुंबन के साथ भी अपनी ईमानदारी, साहस, प्रतिभा, महेनत तथा कामयाबी की मिशाल के रूप में फिर भी देश–विदेश के लोगों पर छाई हुई है। बहुत सारे इंसान उसकी तरह बनना चाहते है ठीक वैसे ही जैसे हम लोग रतन टाटा की तरह बनना चाहते है। अब सवाल यह है कि मैंने रतन टाटा को ही क्यों लिया, क्योंकि सिया एक प्राइवेट बहुराष्ट्रीय कंपनी में सबसे उच्च पद पर है जो गैरसरकारी संस्थान में उनकी भूमिका दिखाता है।

अगर बात करू मैं स्त्री के दूसरे रूप की तो वहीं पर दो पात्र ओर है जो उपन्यास के माध्यम से बताते है, स्त्री कामुकता में लीन नहीं होती परंतु यह उपन्यास इस तथ्य को भी पूर्णतः सत्य नहीं मानता, इसमें हमने स्त्री की युवा अवस्था में बदलती हुई मनः स्थिति का सामाजिक रूप से विश्लेषण स्पष्ट मिलता है। और वह स्त्री कोई ओर नहीं तृष्णा है जो सिया की ही कंपनी में काम करती है और कुछ समय के लिए कंपनी के कामों की सहायता के लिए आए अभिज्ञान को देख अपना मन बदल बैठती है। परंतु अभिज्ञान उससे उत्साहित न हो सिया को पसंद करता है तृष्णा उसे कई बार अपने जाल में फांसती थी परंतु वो कंपनी की उच्च अधिकारी सिया को सब कुछ सच बता देता है एक बार तो तृष्णा अभिज्ञान को पाने के लिए अपने हाथ को भी काट लेती है परंतु इतना सब होने पर भी अभिज्ञान कभी मन नहीं बदलता और वह तृष्णा को कभी छूना भी नहीं चाहता और सिया कभी पतिव्रता धर्म में छूने नहीं देती तो यहाँ यह सिद्ध होता है कि हर उपन्यास की तरह पुरुष का जबरदस्ती करना न दिखा स्त्री का दिखाया गया है, यही कारण है एक इंसान या एक वस्तु की वजह से सम्पूर्ण जाती पर कालिक की बिंदी लग जाती है तभी सिया जैसी औरत बार–बार सही होते हुए भी तृष्णा जैसी औरत की वजह से अपने पति की नजरों में सक्की काँटा बनकर चुबती है। इन तथ्यों को जहन में उतारने के बाद मुझे भी यह आभास हुआ कि "हर व्यक्ति अपने चरित्र के लिए राम नहीं कहला सकता और हर स्त्री सीता नहीं बन सकती बल्कि आज के समय मेरी निगाहें उसे ही मानव रूप में स्वीकारती है जो अपने जीवन में अथाह संकटों के बाद भी अपने चारित्रिक बिन्दु को न मिटने दे"।

बहुराष्ट्रीय कंपनियों की बात शब्दों के इस जाल को फैलाते हुए मैं एक ऐसे व्यू की रचना करके करना चाहती हूँ जो हमें सिर्फ देश तक ही सीमित ना रख विदेशी स्त्री जीवन की भूमिका के इर्द गिर्द भी घुमाए। मैं स्त्री के साहस, कामयाबी, महेनत, पद प्रतिष्ठा, प्रतिभा, लगन, तथा सभी पहलुओं का इतना ही बारीकी से वर्णन करना चाहती हूँ जैसे प्रत्येक छोटी बूँद से पूरी धरा भीग जाती है। ठीक वैसे ही पाठक या श्रोता का मन पसीजता है जिस तरह। विनीत जी ने सिया नाम की एक पात्र के माध्यम से विदेशी परिवेश को चित्रित करने का अवसर वर्तमान में प्रदान किया है जो सिया को बचपन से उठा 34 से 40 की उम्र के मध्यवर्गीय सफर को एक सर्वश्रेष्ठ बेंचमार्क कंसलटेटस प्राइवेट लिमिटेड बहुराष्ट्रीय कंपनी की 'कंट्री हेड' के रूप में दिखाता है। जो कंटेन्ट और टेक्नोलॉजी के क्षेत्र में कार्यरत होने के साथ साउथ–ईस्ट एशिया के सबसे उच्च पद पर पहुँचना समाज में स्त्री की दशा को कुछ हद तक संघर्ष के साथ सफलता भी दिलाता है। इतना ही नहीं सिया मीडिया और राजनीति से भी जुड़ी हुई है। वह अनुशासन प्रिय महिला है। उसका परिवेश स्वस्थ और सुसंस्कृत है। बचपन से ही वह मुद्राओं को मूल्यवान न समझकर सामने वाले की भावनाओं को अहमियत देना ज्यादा पसंद करती है चाहे फिर वह घर हो या कंपनी ऑफिस सभी जगह उसका व्यवहार सहयोगी मिलनसार, दयाभाव से भरपूर होता है।

सिया ने जब यशवर्धन से शादी की तो वे दोनों समाज के समक्ष एक अच्छे दंपति के रूप में निखरकर आते रहे परंतु जैसे ही सिया की कंपनी की नौकरी नें उसे समाज में प्रतिष्ठा दिलवाई वहीं से कुछ शत्रु तो कुछ मित्र निकालकर सामने आने लगे। जिसका सीधा प्रभाव उनके वैवाहित जीवन पर पड़ने लगा। एक दिन सिया की मित्र निष्ठा का लवर आया और सिया के खिलाफ यश से कानाफूसी करने लगा, जिससे प्यार और विश्वास को सके और यकीन में बदलते देर नहीं लगी। यहाँ पर मुझे यकीन हुआ की कहावत पुराने समय से इसलिए ही बनी हुई है तब भी ऐसे ही किसी ने आग लगाई होगी किसी को नष्ट करने के लिए, परंतु अब आग लगी

न रहकर पूरे जीवन को उथल पुथल कर, रेत बना चुकी थी। एक दिन सिया ट्रेनिंग पर एक नयी परियोजना शुरू करने वाली थी, जैसे ही रिपोर्ट पढ़ने लगी तभी अपने अतीत में डूब गई और ऐसा पहली बार नहीं हुआ था पहले भी वह यश के कहने पर जर्नेलिज्म छोड़ चुकी थी, फिर वह लेखन और कंटेन्ट के काम से जुड़ी ताकि घर से बाहर न जाना पड़े और दोबारा से रिश्तों में वही जान आ जाए परंतु एक बार अगर पत्थर जगह से हिलने लगे तो वह खुद भी गिरता है और दूसरों को भी नुकसान पहुंचता है। ठीक ऐसे ही यश था सिया पर आग बबूला हुआ रहता और बाहर मुहँ मारता और सिया की जासूसी अपनी उसी पैसों में बिकी औरत से करवाता। परंतु सिया की शख्सियत इतनी प्रभावशाली थी, उसे नजरअंदाज करना किसी के लिए भी मुमकिन नहीं था। उसकी व्यवहारिकता और कुशलता युवा उद्यमियों के लिए एक उदाहरण है, अपनी मेहनत और बुद्धि कौशल से उसने नयी बुलंदियों को छुआ और अमेरिका की नामी कंपनियों के साथ एक फ्रीलांस कंटेन्ट डेवलपर के तौर पर काम करने वाली सिया ने पूरे एशिया में उनके बिजनेस को खड़ा कर दिया इतना ही नहीं खुद तो विदेशों से जुड़ी ही साथ में अन्य स्त्रियों के लिए भी आगे आकर रास्ते खोले। यही कारण है कि सिया उपन्यास में कैरियर को लेकर मिल का पत्थर साबित हुई है। लेकिन यश ने इस सफलता पर भी नेगेटिव शब्दपात कर शरीर बेचकर कमी गई सफलता की मोहर लगाई है। वह तो कहता भी है कि :

"पुरुषों के समाज में एक औरत को पहचान और सफलता मिल रही है तो जरूर उसने गलत तरीकों का इस्तेमाल किया होगा जैसे कि विशेष भी कहता है.... यश के हिसाब से पुरुषों का ध्यान भटकने में सिया को आनंद मिलता है ताकि वह उन्हें रिझा सके"।

परंतु मेरा मानना है इंसान की जैसी सोच है उसे बदला नहीं जा सकता तुलसीदास जी की वो लाइन मुझे याद आ रही है। जाकी रही भावना जैसी, प्रभु मूरत देखि तिन तैसी। देखा जाए तो आज भी बहुत सारी ऐसी ही औरतें है जो विदेशों तक अपनी महेनत से पहुंची हुई है। जो अपने साथ–साथ अपने परिवार और देश का मान सम्मान बड़ा रही है हम उन्हें ऐसे कलंकित तो नहीं कर सकते प्रदेश हो या विदेश सभी जगह पर स्त्रियों की महेनत को नजरअंदाज न कर उनके परिवार और नौकरी दोनों के संघर्ष की मिसाल देनी चाहिए न की फटकार।

सदियों से चली आ रही प्रथा, रूढ़ि, संस्कृति जैसे शब्द कभी न खत्म होने वाले गगन की तरह है। कोई भी कवि, लेखक अपनी विधा लिखते हुए इन शब्दों को अपने लेख में घुसा ही देता है। यही काम विनीत जी ने भी किया है। बेहया की स्त्री को एक धागे की तरह बांध दिया है। ऐसा धागा जो बंध जाए वह खुलता नहीं है टूट ही जाता है। कुछ ऐसे ही बंधी हुई है सिया भी सामाजिक परंपराओं से जिससे वह चाहकर भी छुटकारा नहीं पा सकती एक गृहनी की भाँति, कई बार सिया के मन में विचार आता है कि मुझे बाँधा किसने है। मेरे संस्कारों ने, दो बच्चों की जिम्मेदारी ने पीढ़ीगत परंपरा या जीते जागते पति के रिस्ते की डोर या फिर मेरा काम के प्रति दायित्व ने, आज तक वह इसी कशमकश में रही। यही कारण है कि उसकी जिंदगी में अनेक उतार चड़ाव आते रहते है। शादी के कुछ समय बाद से ही सिया की जिंदगी परंपराओं का खिलौना बनकर गीस्ट रही है। कहीं वैवाहित सुनेपन से तो कहीं बलात्कार किये जाने जैसी गिनहोनी बुराई से, परंतु फिर भी अपनी रिवयतों में ही कहीं न कहीं सिकुड़ी हुई नजर आती है। एक बेजान रिस्ते को ढ़ो रही है जो अतीत में ही खोखला हो चुका है। समाज के पुरुषों का सिया की सफलता को गलत तरीके से प्राप्त करने का तथ्य वह भी एक आंतरिक

दुविधा है जो उसे अंदर ही अंदर कचोटता है। बेहया की कथा भले ही आधुनिक है परंतु यह यही दर्शाती है कि अब भी इतनी परंपरागत संकीर्णता विद्यमान है जितनी पहले थी। तभी तो राजेन्द्र यादव जी पाठकों को 'झटका' देते नजर आते है और मोहन राकेश 'जानवर और जानवर' के इरादे से फरक करते नजर आते है। वहीं निर्मल वर्मा भी मुंशी जी को याद करते है क्योंकि विनीत ने इन सभी की बातों को बेहया के माध्यम से उपन्यास में उतारा है।

वैवाहित स्त्री जीवन के तनाव की अगर बात करू तो 'बेहया' मॉडर्न इंडिया के शिक्षित समाज के मुहँ पर जोरदार तमाचा है। जो खुद को खुले में उदार दिखाते है और बंद दरवाजों के पीछे आगे बढ़ रही महिलाओं के लिए खूंखार भेड़िये बन उन्हें नोच नोच कर हजम करने का कोई अवसर नहीं गवाते। ठीक ऐसे ही यश ने भी सिया के साथ किया है वो जैसे ही समाज में निकलती है अपनी नौकरी के काम से तो सबसे पहले उनका पति ही उनकी नौकरी से जलता है और बहुत सारे ताने हर रोज कसता है कि तुम नाजायज संबंद्ध बनाकर अपना नाम कमा रही हो तुम ही नहीं हर औरत अपना जिस्म बेचकर अपनी कंपनियों में उच्च पद तक पहुँचती है। इसलिए मेरा मनना है कि औरतों की प्रगति को उनके चरित्र से आंकना सरासर बेमानी है। आज के समय में हर महिला आगे आकर आत्मनिर्भर बनना चाहती है तो उसे परिवार वाले तो कटगड़े में खड़ा करते ही है साथ ही साथ समाज उसे बेहया जैसे शब्दों से नवजता है। बेहया की मुख्य पात्र सिया के माध्यम से ही वैवाहित जीवन के तनाव को बताया गया है कि किस प्रकार वह पढ़ी लिखी आत्मनिर्भर औरत होते हुए भी अपने पति द्वारा सक के दायरे की गुन्हेगार औरत बन जाती है। कहीं कहीं पर तो सिया अपनी खराब जिंदगी का दोष अपने ऊपर ही लेती नजर आती है और कहती है :–

"मैं बार–बार कहती हूँ कि मैं रामायण की सीता से खुद को काफी रिलेट करती हूँ। सीता ने अपने पति के पास लोटने की बजाए अपने आप को जमीन में सम्म देना उचित समझा। एक औरत अपने चरित्र और वफा को हमेशा साबित करती नहीं रहा सकती। हमेशा उसके ही चरित्र पर सवाल क्यों किये जाते है? क्यों कभी किसी आदमी को उसकी वफा सिद्ध करने और परीक्षा देने की जरुरत नहीं पड़ती? मेरे पैरेंट्स ने मुझे सीता की तरह जन्म दिया। देवी सीता की तरह ही क्या मेरी जिंदगी है? में आज उन्ही की तरह महसूस कर रही हूँ। शादी के कुछ समय बाद ही उन्हें वनवास जाना पड़ा अपने पति के साथ मैं भी आज 14 वर्ष पूरे कर रही हूँ। क्या मेरा भी संदिग्ध वनवास कभी खत्म होगा?"

इतना ही नहीं उस समय सीता को उठाने वाला रावण आज सिया के पति के रूप में हजारों बार सिया का रेप कर चुका था। जिसका वर्णन सिया अपनी डायरी में कांपते हाथों से "आई एम रेप्ड" साफ साफ कर रही थी। अगर वह अपनी काबिलियत के दम पर घर छोड़ना चाहा तो यश डराते हुए कोमल पौधों पर तेजाब डालकर जला देता है और कहता है अगर बाहर निकली तो यही हश्र तुम्हारा होगा। ये बुराई न पहले खत्म हुई और न आज इससे स्त्री आज भी छुटकारा पाने को ऐसे ही जूझ रही है।

स्त्री की बदलती मनः स्थिति की अगर में बात करू तो कार्पोरेट जगत को पृष्टभूमि बनाकर लिखे गए इस उपन्यास में मूलतः कहानी है। बहुराष्ट्रीय कंपनी बेंचमार्क हैड बेहद सफल तरिके से काम करने वाली सिया और तृष्णा की, किस प्रकार मिथ्या लांछन सहने के बाद सिया धीरे–धीरे अपनी डायरी में लिखे उन ग्यारह सालों के भरे पन्नों की तरह एक नयी खाली डायरी ढूंढ ही लेती है और वह है उसका कंपनी में आया महमान कर्मचारी

अभिज्ञान जो सिया की यादों में हर समय खोया रहता है परंतु सिया को अब अविश्वास, मानसिक और शारीरिक यातनों की अपेक्षा विश्वास करने वाला मित्र मिल गया था। जो कंपनी के पहले दिन से ही सिया से प्यार करता था परंतु सिया सूझबूझ वाली सशक्त, शिक्षित और चरित्रवान स्त्री थी। जो सब अच्छे से जानती है कि कैसे तृष्णा ने यश को बड़काया है? कैसे पैसे के लिए यश के साथ अवेध संबंध बनाए है? और अब अभिज्ञान को सिया की सहायता करते देखा उसे भी अपने जाल में फासना चाहती है। तभी तो उसे पाने के लिए अपनी नस तक काट रही है कि सिया से इसे कैसे दूर रखा जा सके यह तृष्णा सिया और अभिज्ञान का मन साफ बदलते हुए दिखाया गया है अभिज्ञान की नजरों में सिया की इज्जत और बढ़ गई है सभी पन्ने पड़कर और वह अब उसे पान नहीं बल्कि उसे दोस्त की तरह हर खुशी देना चाहता है।

इतना ही नहीं विनीत जी ने अंत में स्त्रियों के लिए बेहया के माध्यम कहा है कि "कोई भी तुम्हारी मुस्कान नहीं छिन सकता। कोई तुम्हें छोटा नहीं महसूस करा सकता। अगर तुम अपने लिए आवाज नहीं उठा सकती हो तो तुम किसी और के लिए क्या आवाज उठाओगी। एक औरत के रूप में आप जिंदगी की निर्माता हैं आपके पास वे शक्ति है जिसे आप नये जीवन को जन्म दे सकती हैं तो आखिर कैसे आप अपने सपनों को मरने दे सकती हैं? अपने अंदर की आवाज सुनो। अपने जीवन का लक्ष्य निर्धारित करो। अपनी खुशियों की, अपने सपनों की खुद जिम्मेदारी लो और उन्हे पूरा करो।"

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. बेहया : विनीत अस्थाना, हिन्दी युग्म, नोएडा (सेक्टर 20), दिसंबर 2020.

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Sept. 2025 Page No. : 423-425

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

हिंदी साहित्य में स्त्री विमर्श और कथा साहित्य में स्त्री दृष्टि

Mrs. S. Subha
Assistant Professor in Hindi
PSGRKRISHNAMMAL College for women. Coimbatore _641004.

स्त्री और पुरुष हमारे घर में ही नहीं बल्कि यह समाज के दों आंखें हैं। पुराने जमाने के स्त्रियों से लेकर आज तक के परंपरा तक स्त्रियों बहुत परेशानियां, समस्यायें, घटनाएं का सामना करना पड़ता है। इक्कीसवी शताब्दी के हिंदी कविता स्त्री विमर्श के बारे में कुछ लेखिका ने अच्छी तरह लिखे हैं।

प्यार में डूबी हुई मां – पवन करण

मैं दुनिया की सबसे खुशनसीब लड़की हूं,
वह इसलिए कि मेरी मां इन दिनों,
अपने पुरुष मित्र के प्यार में डूबी हुई है,
और मैं उन्हें आपस में एक दूसरे को,
चुपके चुपके प्रेम करते हुए देखती हूं,
पिता तुम्हारे जाने के बाद कितने बरस,
कितनी अकेली कितनी उदास रही मां,
तुम इस तरह कैसे छोड़ कर चले गए उसे,
क्या तुम्हें मन से अधिक प्यार नहीं था,
क्या इस दुनिया में मेरी मां से खूबसूरत कुछ और भी है।

सविता भार्गव – छूना मत

मैं तुम्हारे मन की
एक तस्वीर हूं
छूना मत।

स्त्री का चेहरा– अनीता वर्मा

इस चेहरे पर जीवन भर की कमाई दिखती है
पहले दुख की एक परत
फिर एक परत प्रसन्नता की

सहनशीलता की एक और परत
एक परत सुंदरता
कितनी किताबें यहां इकठ्ठा है
दुनिया को बेहतर बनाने का इरादा
और खुशी को बचा लेने की जिद।

इक्कीसवीं सदी की सुबह झाड देती स्त्री– प्रेम रंजन अनिमेष

इस दृश्य का एक शीर्षक क्यों
क्या इसमें झाड़ू और स्त्री को
नहीं होना चाहिए
या होना भी था तो नहीं एक साथ
या फिर
झाड़ू हो भी
तो झाड़ू की तरह नहीं
इस सदी में
जैसे गंदगी है
पर गंदगी की तरह नहीं

इच्छा से मुहँ फेरकर – गगन मिल

दोस्ती में प्रेम था
प्रेम में इच्छा
इच्छा से मुहँ फेर कर
वह कहां जाएगी?

अनुवाद अनामिका – इस कविता के लिए कवयित्री को भारत भूषण अग्रवाल पुरस्कार प्राप्त हुआ लोग दूर जा रहे हैं (हर कोई हर किसी से दूर)

लोग दूर जा रहे हैं
और बढ रहा है
मेरे आस–पास का स्पेस
इस स्पेस का अनुवाद
बिस्तर नहीं अंतरिक्ष करूंगी मैं
क्योंकि इसमें मैंने उडनतश्तरी छोड़ रखी है।

श्रृंगार– आलोक धन्वा

तुम भीगी रेट पर
इस तरह चलती हो
अपनी पिंडलियों से ऊपर

साड़ी उठाकर
जैसे पानी में चल रही हो
क्या तुम जान–बूझकर ऐसा
कर रही हो
क्या तुम श्रृंगार को
फिर से बसाना चाहती हो?

घर. ममता बारहहठ

जब भी दूर गई घर से
अजाने ही
कोई साथ चला आया हर बार
उसे लौटाने ही को लौट आती हूं
बार–बार यात्राओं से
घर की ओर
जाने मैं किस ओर निकलीं हूँ
यात्राओं के नाम से
घर से संसार को जाती हूं
संसार से घर को।

औरत का हँसना – चन्द्रकान्त देवताले

औरतों को कैसे याद रह सकता है
कब–कब और कितनी बार
आते–आते आँसुओं को आँखों में
और उसी क्षण होंठों पर हँसी पैदा करने में वे कामयाब हुई
इस कोशिश और करिश्मे के पीछे
कितनीं गलाजत है, कितनी हिंसा, मजबूरी।

निष्कर्ष :

21वीं सदी के प्रमुख महिला लेखकों में अनामिका, गीतांजलि श्री, मैत्रेयी पुष्पा और ममता कालिया जैसी लेखिकाएँ शामिल हैं। इन लेखिकाओं ने अपने लेखन के माध्यम से समाज के विभिन्न पहलुओं को उजागर किया है और साहित्य को समृद्ध किया है। वे समाज में जागरूकता और परिवर्तन लाने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई हैं। उनकी रचनायें समाज के पहलुओं को उजागर करती हैं और एक बेहतर भविष्य की ओर प्रेरित करती हैं। हिन्दी साहित्य में महिला लेखकों का यह योगदान आने वाले समय में भी महत्वपूर्ण रहेगा और साहित्य को नयी दिशा देता रहे।

Mail ID: subhas@psgrkcw.ac.in

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Sept. 2025 Page No. : 426-430

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

भूमिका द्विवेदी कृत 'किराये के मकान' उपन्यास में चित्रित महानगरीय जीवन की समस्याएँ

आर. डी. निर्मला, शोधार्थी
डॉ. अनुराधा पाकलपाटि, शोध निर्देशिका व सहायक प्राध्यापक
हिन्दी विभाग, स्कूल ऑफ लैंग्वेजस,
वेल्स इंस्टीट्यूट ऑफ साइंस, टेक्नोलॉजी – एडवांस्ड स्टडीज वीआईएसटीएएस, चेन्नई।

सार :–

भूमिका द्विवेदी के उपन्यास 'किराया के मकान' में कल्पना एक एकल अभिभावक है, जो अकेले ही अपने बच्चे प्रीत और रवि को संभालती है। उनका पालन पोषण करती है। उनको रहने के लिए एक मकान चाहिए। इस उपन्यास में किराए के मकान में रहने वाले लोग कौन–कौन सी समस्याओं का सामना करते हैं, यही दर्शाया गया है। एक अकेली महिला होने के कारण मकान मालिक के द्वारा पूछे गए संदेह से भरे प्रश्नों का उत्तर देना और शर्तों को मनना पड़ा। अन्य किराएदारों से होने वाली संकटों का सामना कर रही थी। प्रीत और उसके छोटे भाई रवि की पढ़ाई, प्रीत और मकान मालिक कर्नल साहब के तीसरे बेटे समीर के साथ प्रेम विवाह और उन दोनों का जीवन अलग से एक किराये के मकान में शुरू होने से कहानी खत्म होती है।

बीज शब्द : मकान, किराया, मकान मालिक, बेरोजगारी, समस्याएँ, कामकाजी महिला, एकल अभिभावक, किराएदार आदि।

भूमिका :

वर्तमान समय में महानगरों में रहने की आवास की कमी होती जा रही है। अपनी सुविधा के अनुसार घर न मिलने के कारण को समझौता करना पड़ता है। इन नगरों में रहने का स्थान मिलना बहुत कठिन है। खासकर अकेली माँ को कोई भी मकान देने के लिए तैयार नहीं होते हैं। महानगरों रोजगार के अवसर बहुत मिलते हैं लेकिन दूसरी ओर आर्थिक कठिनाइयाँ मानसिक तनाव भी पैदा करता है। 'किराये के मकान' उपन्यास के संदर्भ में लेखिका भूमिका द्विवेदी ने चित्रित किया है कि इस उपन्यास का मुख्य पात्र कल्पना और प्रीत को मकान की समस्या, अन्य किराएदारों से होने वाली की समस्याओं, नौकरी, बच्चों की परवरिश, सामाजिक समस्याएँ आदि से संघर्ष करती है। महानगरों में रहने के लिए एक सुरक्षित घर या मकान एक पहचान का प्रतीक होता है। लेकिन किराएदारी का जीवन इन सब से अलग रहता है। यही है इस उपन्यास का मूल भाव। दो बेरोजगार पात्रों के प्रेम कथा, किरायेदार जीवन की कठिनाइयों से जूझते हैं। हमारे देश के महानगरों में सिर्फ आर्थिक अवसरों का

उपलब्धियाँ नहीं है बल्कि सामाजिक असमानताओं, संघर्षों और विडंबनाएँ भी होते हैं। महानगर में रहने वाले मध्यवर्गीय लोग और सुरक्षा, किराएदारी, बेरोजगारी, लैंगिक असमानता, सांस्कृतिक विडंबना जैसी समस्याओं को सामना करते हैं।

महानगरों में किराए का मकान का संस्कृति :

औद्योगिकरण और शहरीकरण के कारण महानगरों की जनसंख्या तेजी से बढ़ती जा रही है। लाखों लोग काम के लिए महानगरों में आते हैं। लेकिन यहाँ मकान की उपलब्धि उतनी नहीं है जितने लोग आते हैं। इसके परिणाम लोग किराए के मकान में रहने लगे। परिणाम स्वरूप किराए का मकान का संस्कृति विकसित होने लगी है। किराए का मकान स्थाई ठिकाना नहीं होता है। यह महानगरीय जीवन का हिस्सा है। परंतु महानगरों में काम के करण आकर जीने वाले लोगों को अजनबीपन और सुरक्षा की भावना में जीते हैं। एक साधारण मध्यवर्गीय व्यक्ति या परिवार महानगर में मकान पाने और रहने के लिए संघर्ष करते हैं।

'हालाँकि जब किराये का ये कमरा प्रीत ने काफी मशक्कत और सब्र के साथ खोजा था, उसे उम्मीद नहीं थी, इतने बड़े मकान का मालिक किराये पर मकान उठाएगा'।[1]

इन पंक्तियों से पता चलता है कि प्रीत बड़ी मुश्किल से किराए के लिए एक घर को ढूँढ निकाला, लेकिन मकान का मालिक उस छोटे से जगह के लिए ज्यादा पैसा मांग रहे थे।

महानगरों में किराएदार जीवन के प्रमुख समस्याएँ :

महानगरों में किरायेदारों को अधिक समस्याओं का सामना करना पड़ता है जिसमें हम यह देख सकते हैं कि आवास की कमी, मकान मालिक द्वारा होने वाले उत्पीड़न, अत्यधिक किराया, इसके अलावा कई छिपे हुए खर्च और सुरक्षा जमा राशि, मकान मालिक का उत्पीड़न– कुछ मकान मालिक अपने किराएदारों के ऊपर अपना अधिकार जमाते हैं।

आर्थिक समस्या :

महानगरों में किराए के मकान कि आय बहुत अधिक होता है। महानगरों में नौकरी करने वाले मध्यवर्गीय व्यक्ति को अपने आय का बड़ा हिस्सा किराए में ही देना पड़ता है। दूसरा दबाव यह है कि हर साल किराए का बढ़ना अनिवार्य हो गया है। इस करण मध्य वर्ग में रहने वाले लोगों को महानगरों में जीवन यापन करना बहुत मुश्किल है। सस्ते और स्थिर आवास न मिलने के कारण, असुरक्षा और तनाव पैदा हो जाता है। पानी, बिजली जैसे बुनियादी सेवाओं में कमी होती है। काम और रहने की जगह के बीच में दूरी होने के कारण हर दिन की यात्रा में बहुत समय लगता है जिससे जीवन में अधिक कठिनाइयाँ बढ़ती जाती है। शहरों से दूर सस्ते दामों में किराए का मकान मिलने के कारण लोग अपने कामकाजी जगह की दूरी को परवाह न करके कुछ पैसे बचाने की कोशिश करते हैं।

"लेकिन वो तो इतना लालची निकला कि मकान की तो बात ही क्या, उसका बस चलता तो वो आस–पास की खाली सड़कों से भी किराया वसूल लेता।"[2]

किराएदार से ज्यादा रुपए किराए के पैसे के रूप में लेने के लिए मकान का मालिक कर्नल भी कम नहीं थे। उसे छोटे से कमरे के लिए वह और भी पैसा लेना चाहते थे।

कल्पना अपने आर्थिक स्थिति को ध्यान में रखकर अपने बच्चों की सुरक्षा के लिए तीन सौ या तीन सौ

पचास भी किराए के रूप में देने के लिए तैयार हुई थी। आर्थिक स्थिति को संभालने के लिए शहरों में एक ही कमरे में अपना घर बसाते हैं। साथ ही महँगाई और पैसा वसूलते हुए मकान मालिकों का शोषण होते हैं।

किराए के मकान पर रहने के कारण परिवार पर भी अधिक असर पड़ता है। बच्चों की पढ़ाई में अस्थिरता और माहौल का बदलाव के कारण भी प्रभावित हो जाते हैं। लगातार मकान बदलने के कारण पारिवारिक जीवन में समस्याएँ पैदा होते हैं प्रीत अपनी माँ कल्पना को आर्थिक सहायता देने हेतु पढ़ाई के साथ–साथ काम करना चाहती है। उसके लिए कोशिश करती है, अखबारों में विज्ञापन देखकर एक बड़े विद्यालय में साक्षात्कार देने जाती है, पर उसके मन में यह शंका थी कि उसकी शैक्षणिक योग्यताएँ बाकी लोगों से कम थी। नौकरी मिलती है, लेकिन उसे विद्यालय का मालिक उसे पर शारीरिक शोषण करते हैं। जब प्रीत उसे विरोध करती है, तो उससे विद्यालय के मलिक ऐसे बताते हैं कि प्रीत से भी ज्यादा पढ़ी–लिखी महिलाओं के साथ और अन्य कर्मचारियों के साथ भी उन्होंने ऐसा ही व्यवहार किया है और प्रीत को भी अपने जाल में फसाने के लिए उसको गेस्ट हाउस में मीटिंग का नाटक रचाकर उसके साथ बुरे व्यवहार करने की कोशिश करते हैं यह आने वाले पंक्तियों में पता चलता है।

'अरे तुम तो बेकार में भड़क रही हो... तुम क्या समझती हो, इतने बड़े संस्थान में वो इतनी बढ़िया पोस्ट मिलना कोई बच्चों का खेल है, कि बस चार अच्छर बाँचे तुमने और बन गयी प्रशासनिक अधिकारी... अरे तुम जैसी इंटरपास की औकात ही क्या, तुमसे लाख दर्जे बेहतर लड़कियाँ अपनी डिग्रियाँ लिए रोजाना कितनी ही सुन्दर–सुन्दर लड़कियाँ आगे–पीछे घूमती रहती हैं मेरे. तुम तो खुशनसीब हो जो मैं एक चांस दे रहा हूँ तुम्हें. ...."[3]

उसे घटना के बाद प्रीत नौकरी छोड़कर घर में ही बच्चों को सिर्फ ट्यूशन लेती है। अपनी माँ की आर्थिक सहायता देती है। वह पहले ही दसवीं कक्षा तक बच्चों को घर में ट्यूशन पड़ता है तो उसको स्कूल में पढ़ना उतना मुश्किल नहीं है लेकिन उसके लिए आयु और शैक्षणिक योग्यता होना जरूरी है।

असुरक्षा और अपमान की समस्या :

किराए के मकान में रहने वाले किराएदार खुद को हमेशा कमजोर और अस्थायी होते हैं क्योंकि मकान मालिक को उनका कोई अधिकार नहीं देते हैं। उपन्यास के इन निम्नलिखित पंक्तियों से हमें मालूम होता है कि प्रीत अपनी माँ को भी बहुत बड़ा विश्व को छुपाया है वह यह है कि जहाँ पर वह काम करती थी उस विद्यालय के मालिक प्रीत के साथ बुरा व्यवहार किया, उससे अपना मन बचाकर प्रीत घर आ गई।

"लेकिन प्रीत ने ये दर्दनाक वाकया किसी को भी नहीं बताया। अपनी माँ को भी नहीं। उसे तो बस यही इतमीनान था कि उस राक्षस के हाथ से उसकी इज्जत बची रह गयी"।[4]

मकान का मालिक कभी भी किराएदार को अपने मकान से निकाल सकते हैं और छोटे–छोटे विषयों पर उनको अपमानित करते रहते हैं। इस उपन्यास में कर्नल साहब के दूसरे मंजिल के मकान के अन्य किराएदारिन मिस मालती जो सरकार आयकर अधिकारी की पत्नी के द्वारा किए अपमान को सहने वाली प्रीत को हम आने वाले उन पंक्तियों में देख सकते हैं। जब प्रीत अपने घर का आंगन साफ कर रही थी ऊपर से मिस मालती ने झाड़ू लगाकर कूड़े को नीचे डाल दिया जहाँ प्रीत सफाई कर रही थी तब प्रीत के पूछने पर मिस मालती ने अमीरी गरीबी का फर्क दिखाकर कल्पना और प्रीत को और उसके परिवार को भला बुरा कहा है।

"मिस मालती की तो अब अपनी इज्जत तकरीबन मिट्टी में मिली हुई दिखने लगी। उसने आव देखा ना ताव, आगे बढ़कर प्रीत को थप्पड़ मारने दौड़ी और चीखने लगी, 'चुप्प कमीनी लड़की... तू मुझे औकात दिखाएगी. ..तेरी ये मजाल... नीच, कमीनी, हरामजादी, रंडी... जाहिल दिखती हूँ मैं तुझे... अभी मजा चखाती हूँ तुझे...'।[5]

यहाँ प्रीत को मिस मलती ने बहुत बुरे शब्दों अपमान करती है। अपने बुरे हरकतों से प्रीत के दिल को चोट पहुँचती है। मिस मालती प्रीत की माँ कल्पना और बच्चों को भी बहुत गलत शब्दों का प्रयोग करके डाँटकर अपमान करती है।

सामाजिक एवं सांस्कृतिक समस्या :

महानगरों में अन्य अलग–अलग संस्कृतियों से संबंधित भाषण और परंपराओं से संबंधित लोग एक साथ रहते हैं। किराएदार और मकान मालिक और अन्य किरायेदारों के साथ महानगरों के जीवन शैली, पहनावे, खानपान, विचारधारा आदि में टकराव भी हो जाती है। महानगरों में कई बार जाति धर्म और वर्ग के आधार पर ही स्वीकार या अस्वीकार किया जाता है। आधुनिक महानगरों में भी जाति, धर्म के नाम पर भेदभाव आज भी है। हर एक व्यक्ति को अपना खुद का मकान न होने की भावना उसकी मानसिक एवं भावनात्मक अस्थिरता में डाल देती है। एक तरह का असुरक्षा उसके मन में हमेशा रहता है। अपना खुद का घर न होने का खालीपन उसके आत्मसम्मान को चोट पहुँचाता है। कई बार यह अकेलापन और अपमान, मानसिक तनाव को जन्म देता है।

मकान मालिक और अन्य किराएदारों से संबंधित समस्याएँ :

हमारे देश के महानगरों में मकान मालिक और किराएदार का रिश्ता अच्छा नहीं रहता है। मकान का मालिक हमेशा किराएदार के घर का पानी, बिजली, यहाँ तक कि उनके घरेलू मामलाओं तक दखल देते रहते हैं।

यहाँ इस उपन्यास में देख सकते हैं कि मकान मालिक अमीर किराएदारों और गरीब किराएदारों में कैसे फर्क दिखाते हैं। अमीर लोगों को इज्जत और सम्मान से बात करना और व्यवहार करना और गरीब लोगों के साथ बुरे व्यवहार करना, इज्जत न देना, यह सब इस उपन्यास में है। कर्नल अपने दो किरायेदारों में भेदभाव न करने का दिखावा करते हैं पर वास्तव में भेदभाव करते हैं। यह हम आने वाले पंक्तियों में देख सकते हैं।

"कर्नल को मिस मालती से ये कहना कभी नहीं भूलता था कि वो उस पूरे भूखंड को एकदम अपना ही घर समझ कर रहे, उसे अमीरी–गरीबी या मकान–मालिक और किरायेदार जैसे भेदभाव पर जरा भी यकीन नहीं।

लेकिन साथ ही साथ दूसरी तरफ यही वो शख्स था, जो कल्पना शर्मा के साथ पूरी अमीरी और गरीबी रेखा का साफ–साफ विभाजन करके ही व्यवहार तय करता आया था।"[6]

इन निम्नलिखित पंक्तियों के द्वारा मिस मालती ने प्रीत को और उसके परिवार को, उसके माँ और छोटे भाई को भी कितना गलत, बुरे शब्दों से डाँटती है। मिस मालती अपने अन्य किराएदार कल्पना प्रीत के परिवार को उनकी स्थिति को और उनकी गरीबी को देखकर उनको बहुत सताती है।

"आज मिस मालती प्रीत को धूल चटाने पर आमादा थी। और प्रीत की कोई भी प्रतिक्रिया ना पाकर, मिस मालती के अन्दर पकता लावा और ज्यादा उबाल मारने लगा, दूसरी किस्त निकली, 'ऐई लड़की... तुस्से ही कह रही हूँ... सुन इधर... दिमाग के साथ साथ कान भी जवाब देने लगे हैं क्या तेरे... ये बाकी की सीढ़ी कौन बटोरेगा. ... तेरा बाप?'[7]

छोटे घर में रहने वालों को उनके हालात या स्थिति को देखकर उनकी गरीबी पर मिस मालती जैसी अन्य किराएदारों को उच्च स्तर या अमीर लोग सताते हैं।

निष्कर्ष :

महानगरीय जीवन में किराए का मकान केवल आवासीय समस्या नहीं है बल्कि मध्यवर्गीय जीवन की असुरक्षा अपमान और सत्ता का प्रतीक है। इस उपन्यास के द्वारा किराएदार जीवन हमें यह सिखाता है कि महानगरों के पीछे बहुत गहरी पीड़ा और असुरक्षा की भावना छिपी रहती है। अकेलापन भेदभाव आर्थिक दबाव और स्त्री अस्तित्व की तलाश आदि भी है। हर व्यक्ति को स्थिर और सम्मानजनक रहने का स्थान या आवास उपलब्ध होना चाहिए। जब तक वह नहीं मिलता तब तक महानगरीय जीवन उन लोगों के लिए अधूरा बन जाता है। यह उपन्यास महानगरीय जीवन की उन अदृश्य और उपेक्षित कठिनाइयों को सामने लाता है, जिसमें हर रोज लाखों लोग विशेषकर मध्यवर्गीय परिवार में रहने वाले महिलाएँ होते हैं। यह मानसिक और भावनात्मक संकटों को उत्पन्न करती हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची :

बाबासाहेब कोकाटे – हिंदी साहित्य में महानगरी नारी, समांथा प्रकाशन 2003

1. भूमिका द्विवेदी 'किराये का मकान' भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन 2019 (पृष्ठ संख्या–27)
2. भूमिका द्विवेदी 'किराये का मकान' भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन 2019 (पृष्ठ संख्या–27)
3. भूमिका द्विवेदी 'किराये का मकान' भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन 2019 (पृष्ठ संख्या–43)
4. भूमिका द्विवेदी 'किराये का मकान' भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन 2019 (पृष्ठ संख्या–48)
5. भूमिका द्विवेदी 'किराये का मकान' भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन 2019 (पृष्ठ संख्या–59)
6. भूमिका द्विवेदी 'किराये का मकान' भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन 2019 (पृष्ठ संख्या–65)
7. भूमिका द्विवेदी 'किराये का मकान' भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन 2019 (पृष्ठ संख्या–58)

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Sept. 2025 Page No. : 431-435

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

पर्यावरण विमर्श और 21वीं सदी के उपन्यास

संगीता कुमारी

पीएचडी हिंदी, शोधार्थी,

उच्च शिक्षा और शोध संस्था, दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा, मद्रास।

पर्यावरण विमर्श वर्तमान में मनुष्य के लिए सबसे चर्चित एवं आवश्यक विषय बना गया है। आज मनुष्य पर्यावरण के प्रश्नों से नजर नहीं छुपा सकते हैं, मनुष्य के लिए उपभोग की प्रवृत्ति इतनी अधिक बढ़ रही है कि इसका सारा प्रभाव प्राकृतिक पर ही पड़ रहा है। अपनी आवश्यकता पूर्ति के लिए प्रकृतिक संसाधनों का बहुत तेजी से प्रयोग कर रहे हैं। जल, वायु, जंगल, भूमि इत्यादि जैसे प्राकृतिक चीजों का बहुत दुरुपयोग कर रहे हैं। जिससे पर्यावरण प्रदुषित हो रहे हैं और प्राकृतिक आपदा का संकट भूमि पर रहने वाले सभी जीव प्राणी पर दुखों का पहाड़ टूट पड़ा है।

पृथ्वी पर्यावरण तत्वों से बनी है पर्यावरण के विभिन्न घटको और अव्यवो के बीच ही जीवन का अस्तित्व निर्भर है, क्योंकि पर्यावरण मनुष्य के चारों ओर उपस्थित प्रकृति और अप्राकृतिक परिस्थितियों का योग है। मनुष्य एवं पर्यावरण दोनों एक दूसरे से हमेशा जुड़े रहते हैं, पर्यावरण संतुलन न केवल मानव जाति के लिए बल्कि संपूर्ण पृथ्वी पर पाये जाने वाले समस्त जीवों के अस्तित्व को बनाये रखने के लिये बहुत उपयोगी हैं।

मानव ने प्रकृति के गोद में जन्म लिया है, उसी के द्वारा प्रदान किए गए पदार्थों का ग्रहण करके मानव पला–बढ़ा है। पर्यावरण शब्द 'परी' और आवरण शब्दों का मिलन है जैसे परि का अर्थ है चारो तरफ तथा आवरण का अर्थ है घिरा। प्राकृतिक के चारों तरफ मनुष्य जो कुछ भी देखता है, महसूस करते हैं जैसे–वायु, पेड़–पौधे, जल, जीव, प्राणी, आकाश, मिट्टी यह सभी पर्यावरण के ही अंग हैं। पर्यावरण में एक तरह का संतुलन है, जिसके कारण मानव इस भूमि पर सुरक्षित रह सकता है क्योंकि पर्यावरण के अंदर जल, वायु, पेड़–पौधे, जीव–जन्तु सब सम्मिलित हैं। इन सभी के बीच होने वाली विभिन्न क्रियाओ के कारण ही पर्यावरण का संतुलन बिगड़ रहा है। पर्यावरण मनुष्य का सुरक्षा कवच मानते हैं क्योंकि पर्यावरण के बिना मनुष्य एक पल के लिए जीवित नहीं रह सकता है, शुद्ध पानी, हवा के बिना मनुष्य की कल्पना भी नहीं कर सकते हैं इसलिए राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी जी ने कहा है कि– "प्राकृतिक के भंडार में हर किसी की जरूरते पूरी करने को यथेष्ठ संसाधन हैं पर किसी भी लालच को पूरा करने में असमर्थ है।"[1]

हिंदी साहित्य और प्राकृतिक का संबंध बहुत पुराना है।

छायावाद में प्रकृति के सुंदर चित्र बिखरे पड़े हैं, पेड़ पौधे पर्यावरण का एक बड़ा और प्रमुख हिंसा है क्योंकि यह कार्बन डाईओक्साइड को ग्रहण करके जीवनदायी ऑक्सीजन को वातावरण में छोड़ते हैं। मानव इसी

महत्वपूर्ण गैस के वजह से धरती पर जीवित रहता है यही वृक्ष वातावरण की नमी तापमान आदि का भी संतुलन बनाये रखते हैं। वृक्ष को पानी भांप बनकर ऊपर आकाश में जाकर बादल बनता है। बरसात से ही तपती धरती की प्यास बुझती है। वृक्ष अपनी जड़ों से भूमि को बांध कर रखते हैं जिससे पानी कम बहाव से बहता है जंगलों में ही जीव जंतु स्वास्थ्य एवं खुशहाली से जीवनयापन करते हैं।

वायु भी पर्यावरण का एक अमूल्य हिस्सा है धरती से करीब 20 से 23 मीटर की उचाई पर ओजोंन परत है। ओजोन परत सूरज से आने वाली अल्ट्रावायलेट किरणे को धरती पर आने से रोकती है। यह किरणे अन्यथा अनेक भयंकर बीमारियां पैदा कर सकती है लेकिन वर्तमान में मनुष्य अपने उपभोग के कारण पर्यावरण का संतुलन लगातार बिगड़ता चला जा रहा है। आज के स्वार्थी अधिकारी अपनी जेब गर्म करने के लिए पर्यावरण से हमेशा खिलवाड़ कर रहे हैं। आज के परिवेश में पहाड़ों, वनो में हरे भरे वृक्षो को काट कर घर, कारखाना, होटल इत्यादी बना रहे हैं। इसी वजह से पर्यावरण का संतुलन बिगड़ रहा है।

मनुष्य ने बढ़ते विज्ञान की उन्नति के वजह से अनेक प्रकार के वाहनों, मशीन आविष्कार किया है परंतु इसके कारण चारों तरफ प्रदूषण बढ़ता ही जा रहा है। प्रदूषण के वजह से ही ओजोन परत में भी एक छेद हो गया है, इससे भूमि पर रहने वाले समस्त जीव प्राणी को खतरा है। पर्यावरण के बारे में आधुनिक चिंतन मनन हुआ है। इसलिए 21वी सदी के हिंदी उपन्यासो मे भी इन खतरनाक समस्या पर चर्चा, विचार, विमर्श हुआ है।

21वी सदी के हिन्दी उपन्यासों में भी अनेक उपन्यासकारो ने ऐसे उपन्यास लिखें हैं जो पर्यावरण चिंतन संबंधी आधुनिक प्रश्न एवम् समस्या का वर्णन करते हैं। महुवा माजी का उपन्यास 'मरंग गोंडा नीलकंठ हुआ', नासीरा शर्मा का उपन्यास 'कुइयाजान', संजीव का उपन्यास 'पांव तले की दूव', जनेन्द्र का 'ग्लोबल गांव का देवता' शांता कुमार का उपन्यास 'वृंदा' इत्यादि उपन्यास में पर्यावरण को लेकर बहुत गंभीर चिंतन का वर्णन किया है। संपूर्ण विश्व के सामने पर्यावरण और संतुलन एक प्रमुख समस्या है। इसलिए वी.एन. एवं जनमेजय सिंह लिखते है कि– ''आधुनिक भौतिकता–वादी सांस्कृति और सभ्यता के विकास ने देश की संपदा में वृद्धि की है। औद्योगिककरण, नगरीकरण, यंत्रीकरण की प्रगति के साथ साथ विशालकाय मिल, फैक्टरी कारखाने भी स्थापित हुए हैं। कृषि में विज्ञान का प्रवेश हुआ है। वैज्ञानिक ढंग से खेती करने के कार्य में वृद्धि हुई। इन सबने मिलकर प्रकृति पर्यावरण को नष्ट भ्रष्ट कर दिया।''[2]

नसीरा शर्मा के हिंदी उपन्यास 'कुइयांजान' को नामवर सिंह ने वर्ष 2005 का सर्वश्रेष्ठ उपन्यास माना है। कुईयांजान उपन्यास पर्यावरण संबंधीत है जो मुख्यतः जल समस्या पर आधारित है। नासीरा शर्मा ने शहर में बढ़ती देखिये तरह पानी की किल्लत के बारे में कहती हैं कि– "मोहल्ले के कुएं बरसों पहले कुकुङे पाट दिए थे। एक दो घरों में हैंडपंप थे, जो खराब पड़े थे। मस्जिद वाली गली से मिली अंदर से पतली गली थीं। वहाँ पक्के के बड़े–बड़े घर थे। उनके यहाँ भी पानी की हाय तौबा मची थी। शिव मंदिर के पुजारी भी बिना नहाए परेशान बैठे थे। उन्होंने न मंदिर धोया था, न भगवान को भोग लगाया था। उनके सारे गगरे लोटे खाली लुढके पड़े थे। नल की टोटी पर कई बार कौवा पानी की तलाश में आकर बैठ उड़ा चुका था। गर्मी ऐसी कि पसीना पानी की तरह शरीर से बह रहा था।"[3]

आज के परिवेश में भारत देश पानी की गंभीर किल्लत का सामना कर रहा है। वर्ष 2030 में देश में पानी मांग की उपलब्ध जन वितरण से दोगुनी हो जाएगी। इससे करीब 2,00000 से अधिक लोग स्वच्छ पानी न मिलने

पर हर वर्ष जान से हाथ धो बैठता है। भविष्य में करोड़ों लोग के लिए पानी का गंभीर संकट पैदा हो जाएगा। कुईयांजान उपन्यास हमारे समक्ष अनेक सवाल खड़े करता है। भारत में पानी की समस्या से निपटने के लिए मौजूदा जल संकट की बुनियादी वजह को समझना होगा सच यही है कि सरकार की अनोखी गलत आदतों और जन संसाधनो के दुरुपयोग की वजह से ही यह जाल संकट इतने बिकराल रूप में हमारे सामने खड़ा रहा है। नासीरा शर्मा ने यह दिखाया है कि यहाँ एक ओर की जलस्तर नीचे चला गया है। वहीं दूसरी ओर पानी पीने लायक भी नहीं रहा है। इसलिए लेखिका कहती हैं कि "कई जिलों में पानी की जांच से पता चला है कि नलकूप से आने वाला पानी पीने योग्य नहीं हैं। भोजपुर जिले में आरसेनिक (संखिया) की मात्रा बहुत अधिक पाई गई है। जिसका सेवन स्वास्थ्य के लिए अत्यंत हानिकारक है। अब सारे नलकूप सील दिए गए हैं और उस इलाके में टैंकर की सहायता से जनता को सरकार जल उपलब्ध करवा रही है।"[4]

पानी की समस्या किसी एक मोहल्ले या शहर की समस्या नहीं है बल्कि संपूर्ण भारत की है। क्योंकि धीरे–धीरे तालाब पोखर का जलाशय खत्म हो रहे हैं। किसान अधिक फसल के लालच में रासायनिक खाद एवं कीटनाशक दवाई का प्रयोग अत्यधिक कर रहे हैं। जिसे मिट्टी के अंदर पानी में घुल मिलकर पानी को जहरीला बना दिया है। इस पानी का उपयोग करना बहुत ही हानिकारक है। डॉ कमाल उपन्यास का मुख्य पात्र है। डॉक्टर कमाल और पत्नी शमीना बढ़ती पानी की समस्या से बहुत परेशान रहती हैं। डॉक्टर कमाल गरीबों को मुफ्त में इलाज करता है और पानी की समस्या के समाधान पर राष्ट्रीय व अंतरराष्ट्रीय सेमिनार में भाग लेते हैं। कुईयांजान का अर्थ हैं कुआ जिसका पानी पोषण देता है, जीवन देता है, जब तक सामान्य जल का मनुष्य संरक्षण का महत्व नहीं समझेगा तब तक हम परिवर्तन नहीं ला सकते हैं। नासिरा शर्मा ने यह भी लिखा है कि– "पानी की किल्लत के पीछे बहुत बड़ा कारण हमारी जनसंख्या का है। अगर औद्योगिककरण की दौड़ में अपनी रासायनिक गंदगी नदी–नालों में डाल प्रदूषण फैलाया तो जनसंख्या की अधिकता ने भी जलपूर्ति के संतुलन को गड़बड़ाया है। फिर रोगों का प्रकोप दूषित जल से शरीर में क्या क्या विकार उत्पन्न होते हैं।"[5]

नासिरा शर्मा पानी की समस्या से बहुत गुस्सा होती हैं। क्योंकि पानी प्रकृति पर्यावरण का उपहार है फिर भी मनुष्य पर्यावरण के साथ खिलवाड़ कर रहे हैं। जंगल व पहाड़ को काटकर अपनी इच्छा पूर्ति कर रहे हैं। नदी में कूड़ा–कचरा सब को जलाना एवं नाले का पानी बहाकर दूषित कर रहे हैं। दूषित पानी पीने से अनेक बिमारी जैसे– हैजा, मलेरिया, पीलिया, दस्ता जैसे खतरनाक बीमारी उत्पन्न लेते हैं। सच में मनुष्य अपने ही पांव में कुलहाड़ी मारकर प्राकृतिक आपदा को चुनौती दे रहे हैं।

इसलिए प्राकृतिक संसाधन झरनों नदियों, नहरों को स्वच्छ रखना होगा। रासायनिक से बचाना होगा, वन कटाई को रोकना होगा तभी मनुष्य पानी की समस्या से बचा जा सकता है और समाज खुशहाल जीवन व्यतीत करेगा।

संजीव का उपन्यास "पांव तले की दूब" में भी पर्यावरण समस्या का वर्णन किया है कि कैसे उच्चाधिकारी गांव के आदिवासी को फुसला बहला कर पैसे के लालच में कामकाज का झांसा देकर आदिवासी को सुंदर गांव की वातावरण में प्लांट बनाते हैं, जिससे कि यह दिखाया गया है कि "जब से प्लांट बना है चीमनी से उड़ने वाली राख और गैंसों के चलते प्रदूषण बढ़ा है, और जमीन बंजर होती चली गई अब गांव के खेतों में पहले का एक चौथाई अनाज भी पैदा नहीं होता हैं।"[6] आदिवासी का खुशहाल जीवन में आग लग गई क्योंकि ऊपजाऊ भूमि

बंजर बन गई जिससे भूख मरी और गरीबी छा गई, साथ ही साथ मनसा नाला से निकलने वाला धुआं से गांव के लाग बहुत बीमार रहने लगे। आदिवासी लोग जादू टोना से बीमारी का उपचार करते थे और पाप पुण्य का फल समझकर अनेक विमारी जैसे लकवा, सांस, फूलना, हैजा, चेचक इत्यादि बिमारी कष्ट झेलते थे।

गांव में जांच पड़ताल के बाद पता चला कि "यह रोग मनसा नाले के पानी के चलते है। बिजली के कारखाने का सारा गंदा पानी बहता है। इसमें और उससे भी जहरीली है हवा। चिमनियों का सारा जहर फेकती रहती है इधर।"[7] उपन्यासकार संजीव ने बताने का प्रयास किया है कि हवा पानी मानव स्वास्थ्य के लिए अति आवश्यक है, लेकिन हवा भी जहरीली बहे और पानी पीने योग्य भी नहीं रहा तो केवल आदिवासी ही नहीं बल्कि धरती पर रहने वाले समस्त जीव प्राणी अस्वस्थ रहेगा।

भगवतीशरण मिश्र का उपन्यास "लक्ष्मण रेखा" पर्यावरण की समस्या पर आधारित महत्वपूर्ण उपन्यास है। बढ़ती जनसंख्या एवं भौतिक विकास के फलस्वरूप प्रकृति का सीमित दोहन हुआ, भूमि से अपार खनीज संपदा डीजल, पेट्रोल आदि निकालकर धरती माता की कोख उजाड फेंका है। हरे–भरे पेड़ों को काटकर भूमि को नग्न कर दिया है। अधिक औद्योगिककरण के कारण वायुमंडल बिसैला बन गया है। सभ्यता संस्कृत की पावन पूज्यनीय नदी में गंदे नाले का रुप लेती जा रही है। पर्यावरण प्रदूषण वर्तमान में मानव सभ्यता के अस्तित्व को बहुत चुनौती दे रहा है। उपन्यासकार ने चर्चा किया है कि झील, नदी, पहाड़ी, वन और समाज सभी पर प्रदूषण का काला साया मंडरा रहा है। क्योंकि मानव अपनी लक्ष्मण रेखा का उल्लंघन कर बैठे हैं, और इनके भीषण परिणाम मान के सामने साफ–साफ झलक रहा है।

महुवा माजी के उपन्यास "मरंग गोड़ा नीलकंठ हुआ" में भी बताया गया है कि प्राकृतिक से लगातार दोहन से किस प्रकार गाव मरंग गोंडा नीलकंठ हो गया है। वहाँ के जंगल नदियां सभी यूरेनियम के कारण ही प्रदुषित हो गए हैं। महूवा माजी कहते हैं कि यूरेनियम खदानों से निकली पीली धूल से लोग बीमार हो रहे हैं, वहाँ विचित्र बच्चे का जन्म हो रहा है किसी का सिर असम्मान रूप से बड़ा है। गाय, बकरी के सर सड़–गल कर गिरने लगे हैं। समाज में विकास के नाम पर कैसे आदिवासी लोगों के जीवन में जहर घोला जा रहा है। लेकिन फिर भी लोग जादू टोना में विश्वास करते हैं। महुआ माजी मानव को आने वाले खतरों से सावधान करना चाहती है। जिससे कि वर्तमान और भविष्य खुशहाल रहे।

निष्कर्ष –

इस प्रकार पर्यावरण विमर्श और 21वीं सदी के हिंदी उपन्यासों का मूल्यांकन करने के बाद इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि पर्यावरण विमर्श धरती पर रहने वाले समस्त जीव प्राणीयों के हक अधिकारी की चर्चा का विषय बन गया है क्योंकि साहित्य और पर्यावरण एक–दूसरे से जुड़े हुए हैं। साहित्य समाज का न केवल दर्पण होता है बल्कि यह समाज का शुभचिंतक एवं दीपक होता है। इसलिए पर्यावरण को प्रदुषित देखकर अपने भावों विचारों को किताबों में व्यक्त किए हैं।

संदर्भ सूची :

1. डॉ नामदेव एम. गोडा, डॉ. शकुन्तला पाटिल, समकालीन हिन्दी साहित्य में पर्यावरण बोध– पृष्ठ संख्या 121, visit us;www.saptaraindia.com

2. वही, पृष्ट संख्या 122
3. नासिरा शर्मा : कुईयाजान पृ सं 11, सामायिक प्रकाशन 3320–21, जटवाड़ा, नेताजी सुभाष मार्ग दरियागंज नई दिल्ली 110002, संस्करण 2023
4. वही, पृष्ट संख्या 83
5. संजीव– पांव तले की दूब, पृ. सं. 70, वांगदेवी प्रकाशन विनायक शिखर पॉलेटेक्निक कॉलेज के पास बीकानेर–3, संस्करण 2005, 2009, 2013, 2016
6. वहीं, पृष्ठ संख्या 66

ईमेल आईडी : sangitabic205@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Sept. 2025 Page No. : 436-442

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

समकालीन साहित्य में किसान विमर्श

इ. जाक्कुलिन, शोधार्थी
डॉ. अनुराधा पाकलपाटि, शोध निर्देशिका
सहायक प्रध्यापक, हिन्दी विभाग
वेल्स इंस्टिट्यूट ऑफ साइंस टेक्नोलॉजी एंड एडवांस्ड स्टडीज (विस्टास), पल्लावरम, चेन्नई–600117, भारत

सार :

भारतवर्ष एक कृषिप्रधान समाज है और गावों का देश है। यहाँ पर लगभग 65 से 70 प्रतिशत आबादी कृषक हैं। इसी कारणवश हमारे देश को 'किसानों का देश' कहा जीता है, क्योंकि किसान देश की 'रीढ़ की हड्डी' है। किसान ही सारी दुनिया के लिए भोजन हेतु अनाज, फल, सब्जियाँ और चारे का उत्पादन करते आ रहे हैं। यदि किसान खेती नहीं करेंगे तो अनाज का उत्पादन नहीं होगा और जब अनाज का उत्पादन नहीं होगा तो हमारे भोजन की भी व्यवस्था नहीं होगी। बिना भोजन के हमारा जीवित रहना असंभव है। यदि कृषक लोग कीचड़ में पैर नहीं रखें तो हमरा खान-पान का व्यवस्थ पूर्ण नहीं होता। हमारे भूतपूर्व नेता लोग ने जैसे गाँधीजी, नेहरूजी, पटेलजी कृषक लोगों को अपार प्रोत्साहन दिए एवं उनके विकास में महत्वपूर्ण सहयोग दिये।

मूल शब्द : किसान, साहित्य, आर्थिक दशा, समाज, परिवार, परेशान, सरकार

प्रस्तावना :

मानव सभ्यता के विकास में कृषि की अमूल्य भूमिका रही है। मानव का अस्तित्व ही कृषि पर टिका है। खेती लोगों का मुख्य व्यवसाय था। खेती और खेती से जुड़े व्यवसाय लोगों के जीवन स्तर को निर्धारित करते थे। सभी व्यवसाय खेती पर ही केंद्रित थे। समाज में किसानों का बहुत सम्मान किया जाता था। लेकिन फसल का लाभ उसके लिए पर्याप्त नहीं था। कृषि कार्यों में लगे किसानों को अपना और अपने आश्रितों का पेट पालने के लिए कर्ज में रहना पड़ता

था। यद्यपि किसान कड़ी मेहनत करते थे, फिर भी वे गरीबी का जीवन जीते थे। समकालीन परिदृश्य को समझने के लिए जब तक हम प्रेमचंद के समय के किसान आन्दोलन को नहीं समझेंगे तब तक हम समकालीन साहित्य में किसान विमर्श को नहीं समझ सकते। इसका प्रसंग प्रेमचंद के गोदान, रंगभूमि, दो बैलों के गाथा, पूस की रात आदि में देखने को मिलता है।

किसान शब्दार्थ :

"हल चलाना" शब्द "श्रम" और "मज़दूर" शब्दों से संबंधित है। इसका अर्थ है परिश्रम और मेहनत। इसलिए, हम देखते हैं कि "हल चलाना" शब्द विशेष रूप से हल चलाने के पेशे के लिए प्रयोग किया जाता है। इन धरतीपुत्र किसानों को 'कृषक, काश्तकार, खेतिहर, भूमिपुत्र, अन्नदाता, हलधर और क्षेत्रजीवी' भी कहा जाता है।

हिन्दी साहित्य और किसान :

किसानों की समस्या को लेकर अनेक रचनाकारों ने अपनी रचनाओं में अपने अपने विचारनुसार प्रस्तुत किये हैं। साहित्यकार संजीव ने 'फांस' उपन्यास में गरीब किसान परिवार का चित्रण किया है, जिन्होंने खेती के लिए कर्ज लिया था और कर्ज बढ़ जाने पर निराश होकर आत्महत्या कर लिया। ऐसे किसान परिवारों के बीच घूम-घूम कर लेखक संजीव ने उनके दुख दर्द को अनुभव किया और उनकी पीड़ा को शब्दों और पात्रों के जरिए उपन्यास में प्रस्तावित किया। संजीव की उपन्यास लेखन की यह भूमिका उनकी सामाजिक प्रतिबद्धता की निशानी है। तभी तो 'फांस' एक जीवंत कृति बनी है। वैसे ही सूर्यदीप यादव के उपन्यास 'जमीन', पंकज सुबीर के उपन्यास 'अकाल में उत्सव' आदि में भी कृषक के समसामयिक हालात का वर्णन मिलता है।

प्राचीन तमिल साहित्य और किसान :

तमिल के कई साहित्यकारों ने कृषि और कृषक को श्रेष्ठ स्थान देकर उन्हें सम्मान दिया हैं जैसे कि तोल्काप्पियर, तिरुवल्लुवर, सुब्रमण्यभारती आदि उल्लेखनीय हैं।

बहुत प्राचीन तमिल साहित्य तोल्काप्पियम, खेती और खेती-बाड़ी स्थान को 'मरुदम' कहता है। (வயலும் வயல் சார்ந்த இடமும் மருதம் எனப்படும்)

तमिल के संत कवि तिरुवल्लुवर अपने दोहे में किसान को सम्मान देते हुए कहा कि "जो जीवित हैं हल चला, उनका जीवन धन्य।

झुक कर खा पी कर चलें, उनके पीचे अन्य ॥"[1] (1033)

(உழுதுண்டு வாழ்வாரே வாழ்வார்மற் றெல்லாம்

தொழுதுண்டு பின்செல் பவர்.)

अर्थात जो व्यक्ति खेती करता है और उससे जो प्राप्त होता है, उसी पर जीवनयापन करता है, वही व्यक्ति सम्मानपूर्वक जीवन जीता है, जबकि बाकी सभी लोग उसका अनुसरण करते हैं और दूसरों की पूजा करते हैं।

तमिल के क्रांतीकारी कवि सुब्रमण्यभारती ने कहा कि 'कृषि एवं धंधों को वंदना करें (உழவுக்கும் தொழிலுக்கும் வந்தனை செய்வோம்)'

कृषक जीवन के आधार :

कृषक जीवन के आधार भूमि, प्रकृति, बैल-गाय, कृषि संबंधित उपकरण, मेहनत और समाज हैं। कृषक भूमि से भावनात्मक और आर्थिक रूप से जुड़ा होता है, जिसे वह अपने जीवन का केंद्र मानता है। प्रकृति का निरंतर संघर्ष और उसके साथ तालमेल बिठाना, कृषि उत्पादन (फसलें और पशुधन), और अपने समाज के साथ जुड़ाव कृषक के जीवन को आधार प्रदान करते हैं।

सूर्यदीप यादव ने अपने उपन्यास 'जमीन' में उल्लेख किया है कि "जमीन किसी की निजी बपौती नहीं होती वह सार्वजनिक सर्व राष्ट्रीय बल्की विश्व की धरोहर होती है। धरती या जमीन की गोद और आकाश की छत्रछाया के बिना हवा की कोख से असंख्य जीव सृष्टि में जन्म लेते हैं और उसे हम मान्य रखते हैं। स्विकार करते हैं जिसे गैर की नाजायज चीज समझ कर अस्विकार करते हैं उस जमीन की उपज यह कृति है।"[2]

पारिवारिक परिदृश्य :

पूरी दुनिया में सबसे ज्यादा दुर्दशामय पारिवारिक परस्थिति किसानों की ही है। किसान सबके लिए तो अनाज उगा रहे हैं पर खुद भूखे मरने के लिए विवश हैं। किसान अपनी खेती से इतना नहीं कमा पाते कि वे अपने परिवार का ठीक-ठाक प्रबंध कर न सकें। किसान जितना परिश्रमी है पर उतना धैर्यवान नहीं है। उनके जीवन-यापन सुखदायी नहीं है। कभी वे भयानक अकाल की मार से मारा जाता है और कभी प्रलयकारी बाढ़ से। इन सभी आपदाओं से ज्यादा तो किसान पीडित हैं। किसान हमेशा से अभावग्रस्त और समस्याओं से जूझता रहा है। इसके बावजूद भी वह अपने कर्तव्य के प्रति ईमानदार रहा है। पंकज सुबीर ने अपने उपन्यास 'अकाल में उत्सव' में कृषक के पारिवारिक परस्थिति का जिक्र किया कि "कमला की तोडी बिक गई। बिकनी ही थी। छोटी जात के किसान की पत्नी के शरीर पर जेवर क्रमशः घटने के लिए ही होते हैं। और हर घटाव का एक भौतिक अंत शून्य होता है। जब परिवार की महिला के पास इन

धातुओं का अंत हो जाता है तब तय हो जाता है कि किसानी करने वाली बस यह अंतिम पीढी है, इसके बाद अब जो होंगे वह मजदूर होंगे। यह धातुएं बिक बिक कर किसान को मजदूर बनने से रोकती है।"[3]

आर्थिक परिदृश्य :

भारतीय किसानों की आर्थिक परिस्थिति चुनौतीपूर्ण है, जिसमें छोटे और सीमांत किसानों को अक्सर वित्तीय संकट और आय में कमी का सामना करना पड़ता है, जबकि कृषि क्षेत्र का सभी घरेलू उत्पाद में योगदान घट रहा है और गैर-कृषि क्षेत्र तेजी से बढ़ रहे हैं। इसका प्रसंग संजीव द्वारा लिखित 'फांस' उपन्यास में मिलता है। शिबू एक गरीब किसान है। उसके परिवार में उसकी पत्नी शकुन और दो जवान बेटियाँ सरस्वती और कलावती है। उसके पास दों बैल थे। लेकिन एक बैल मर जाने पर हल के एक तरफ बैल और दूसरी तरफ भैंस बांध कर शिबू जुताई करता था। जमीन के कर्ज़ से छुटकारा पाने के लिए अपनी पत्नी के गले से चाँदी की हँसूली निकाल कर कर्ज चुकाने को शिबू प्रयत्न करता है पर आर्थिक समस्याओं को सामना करते-करते अंत में निराश होकर कुएं में कूद कर अपना प्राण त्याग करता है। यह वर्तमान भारतीय किसान की दयनीय स्थिति है। प्राण त्याग करने से पहले शिबू ने कहा कि "इस देश का किसान कर्ज में ही जन्म लेता है, कर्ज़ में ही जीता है और कर्ज में ही मर जाता है।"[4] किसान देश की रीढ़ की हड्डी है, अन्नदाता है, पर सबसे बड़ी विडंबना यह है कि सब की भूख मिटाने वाला यह किसान स्वयं भूख से तड़पता हुआ आत्महत्या करने पर मजबूर हो रहा है। इसका सूक्ष्म विश्लेषण संजीव ने अपने उपन्यास 'फांस' में किया है।

शोषणग्रस्त जीवन :

आज किसान सरकार से विदेशी गाय, विदेशी बीज, विदेशी पौधे, विदेशी दवाइयां, विदेशी खाद नहीं, बल्कि खेती की सिंचाई के लिए थोड़ा-सा पानी चाहते हैं। पानी के बिना भारतीय कृषि व्यवस्था नष्ट हो रही है। किसान कर्ज लेकर फसल उगाने के बावजूद भी कभी खरीददार नहीं मिलता, अगर खरीददार मिलें तो उनसे कम दाम में खरीदकर वे अधिक मुनाफा कमाते हैं। किसान मिट्टी के मोल माल बेचने को मजबूर हो जाता है। न तो किसान कर्जा चुका पाता है, न अपने सपनों को साकार कर सकता है। इसी का संदर्भ संजीव द्वारा लिखित 'फांस' उपन्यास में शक्कर फैक्टरी का मालिक, माधव से गन्ने की खेती करने के लिए कहता है। उसे लाभ उठाने का सपना दिखाता है। मालिक फसल ले जाने का वादा करता है। गन्ने की खेती के लिए कर्ज देता है। लेकिन फसल तैयार होने पर न आता न गन्ने खरीदता है। फैक्टरी बंद हो जाती है। किसान माधव असहाय हो जाता है। माधव कर्जदार होने के कारण गन्ने की फसल को आग

लगा देता है और उस जलते खेत में खूदकर मर जाता है। फैक्टरी मालिक के लिए सरकार फैक्टरी बंद होने का ज्यादा मुआवजा घोषित करती है। लेकिन खेत बर्बाद होने के बाद प्राण त्यागने वाले किसान के परिवार को कम क्षतिपूर्ति देता है। यह है हमारे देश की विडंबना। इस संदर्भ में डॉ. विजय शिंदे कहते हैं कि - "किसानों की आत्महत्या अब आत्महत्याएँ नहीं है। यह सारी हत्याएँ हैं। इसका कोई ना कोई अपराधी है। किसी न किसी को इसकी सज़ा का पात्र मानना जरूरी है। दलाल, दुकानदार, ट्रांसपोर्ट, खरीददार, उद्योगी, नौकरीपेशा, प्रशासक, अधिकारी, अफसर, बैंकर, साहूकार, राजनेता, बिजनेसमैन, आदि । बहुत लंबी फेहरिस्त है। इन्हें किसानों का हत्यारा ठहराया जा सकता है। क्या देश के किसी कोर्ट में, न्यायालय में और न्यायमूर्ति में यह शक्ति है कि इन अपराधियों को हत्याओं का अपराधी मान सजा दें? न्यायालय और न्यायमूर्ति भी सरकारी मुलाजिम किसानों का पक्षधर नहीं है।"[5]

सरकार की सहायता :

किसान को आज भी राजनेता, साहूकार और प्रशासनिक अधिकारी धोखा दे रहे हैं। उन्हें कर्ज की समस्या के साथ-साथ बिजली, खाद, पानी आदी की समस्याओं से भी परेशान है। कभी भी किसानों की समस्याओं को समाप्त करने का प्रयत्न नहीं करते हैं। इसे गिरीश मिश्र, किसान और दूसरे संघर्षशील जन की आर्थिक दशा-दिशा, शीर्षक में उभार कर हंस पत्रिका में उल्लेख करते हुए कहा कि "1960-70 के दशक में हरित क्रांति आयी जिसमें खेती के क्षेत्र में रोजगार के अवसर बढ़े। पंचवर्षीय योजनाओं के तहत नई कृषि नीति को बढ़ावा मिला। कृषि के उत्पादों में वृद्धि हुई। इसका फायदा हर श्रेणी को प्राप्त हुआ। वर्ष 1969 में इंदिरा गाँधी द्वारा बड़े बैंकों, बिमा कम्पनियों के राष्ट्रीयकरण से गांवों में ऋण आसान शर्तों पर उपलब्ध होने लगा। नाबार्ड ने वाणिज्यिक बैंकों की सहायता से ग्रामीण बैंकों की देशव्यापी श्रृंखला स्थापित की। मृतप्राय दस्तकारियों को जिन्दा किया गया। अनाज, उर्वरक, बिजली आदि पर सरकारी सब्सिडी तथा जवाहर रोजगार योजना से काम के अवसर पैदा हुए। इंदिरा आवास योजना के अंतर्गत दलितों तथा अन्य कमजोर श्रेणियों को सस्ते मकान उपलब्ध कराए गये।"[6] इस प्रकार 70 का दशक किसानों के लिए शुभ संकेत रहा। किसान खुशहाल जीवन बिताने लगे, शहरों की ओर किसानों का पलायन रुका।

वर्तमान में किसान प्राकृतिक आपदाओं, दलाली करने वाले लोग, सरकार की नई नीति आदि से त्रस्त हैं। किसानों के फसलों के उचित मूल्य न मिल पाना उनके लिए बहुत बडी समस्या है। किसानों के ऐसी समस्याओं को लेकर नयी आर्थिक नीति और कृषि क्षेत्र के नये नियम जिससे उत्पादों के दामों में वृद्धि और खेती की साख में गिरावट ने किसानों पर कर्ज का बोझ बढ़ाया। इस बोझ ने किसानों को आत्महत्या के लिए मजबूर किया। आज भी किसान बड़ी संख्या में

आत्महत्या कर रहे हैं। समस्याओं से परेशान होकर, जीवन में घोर हताशा के शिकार होकर अपनी जान दे रहे हैं। देविंदर शर्मा अपनी रचना 'वालमार्ट खुद एक बड़ा बिचौलिया है' में लिखते हैं - "हमारी सरकार का मानना है कि रिटेल में एफ डी आई के आने से कृषि व्यवस्था व कृषक जीवन में सुधार होगा। किसानों की आमदनी बढ़ेगी, बिचौलिए खत्म होंगे, उपभोक्ताओं को कम कीमत में सामान मिलेगा। साथ ही कृषि उपज की आपूर्ति में होने वाली बर्बादी पर अंकुश लगेगा।"[7]

कृषि का आधुनिक दशा :

भारत देश को हम कृषि प्रधान देश कहते है, लेकिन भारत देश के किसानों की दुर्दशा को देख कर उनके बच्चों ने खेती से मुंह मोड़ लिया है। वह पढ़ाई-लिखाई करके नौकरी की तलाश में महानगरों की ओर बढ़ रहे हैं। उनके खर्च के लिए किसान अपनी खेती बेच कर उनकी पढ़ाई और नौकरी पाने के लिए खर्च करके, खुद मजदूरी कर रहे हैं। इस संदर्भ में संजीव ने 'फांस' उपन्यास में जिक्र किया है। मोहन जब नाना से कोई काम की बात करता है, तब नाना उसे कहता है - "काम तो इन दिनों एक ही है। बालू, मिट्टी, ईट या खाद की ढूलाई सड़कों के किनारे सारी खेती वाली ज़मीन बिक चुकी है। मकान बन रहे हैं। आने वाले दिनों में सिर्फ बिल्डिंगे होंगी, चमचमाती सड़कें होंगी, चमचमाती गाड़ियाँ न हमारे तुम्हारे जैसे लोग होंगे। न खेती, न हमारी तुम्हारी बैल गाड़ियाँ ।"[8]

निष्कर्षतः समय के परिवर्तन, तकनीकी विकास के कारण उत्पादन साधन एवं जुताई तरीके में भी बदलाव आ गया है। इस नवीनतम प्रणाली को सीखकर कृषि में लागू करें तो अग्रसर आ सकते हैं। इसके कारण किसानों को समय के साथ फलों की खेती, सब्जी की खेती तथा दुग्ध उत्पादन को बढ़ाना होगा। किसानों की हालात सुधारने के लिए सरकारों को विशेष प्रयास करना होगा। किसानों की कर्ज माफी को लेकर पूरे देश में कदम उठाने का वक्त आ गया है। अगर किसान बर्बाद हुए तो देश के चमकते महानगर भी बर्बाद हो जायेंगे। इस प्रकार इन तमाम सुझावों और विचार-विमर्शों के माध्यम से किसान के बदहाल जीवन को खुशहाल बनाया जा सकता है।

संदर्भ ग्रंथ :

1. https://www.thirukkural.net
2. डॉ.सूर्यदीप यादव, जमीन, सरिता प्रकाशन, नाडियाद, 2006, पृ-भूमिका से उद्धृत है।
3. पंकज सुबीर, अकाल में उत्सव, शिवाना प्रकाशन, पृष्ठ -78
4. संजीव, फांस, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2015, पृष्ठ- 15

5. डॉ. विजय शिंदे, अपनी माटी (त्रैमासिक ई-पत्रिका), 'फांस' से उठाता सवाल: खेती से किसान मन क्यों लगाये?, वर्ष-4, अप्रैल-सितम्बर - 2017, पृष्ठ - 12-13,.
6. गिरीश मिश्र, किसान और दूसरे संघर्षशील जन की आर्थिक दशा-दिशा, "हंस पत्रिका अगस्त 2006", पृष्ठ - 108
7. देविंदर शर्मा, वालमार्ट खुद एक बड़ा बिचौलिया है, अस्सी चौराहा, ई-पत्रिका, 04 .10. 2012
8. संजीव, 'फांस', पृष्ठ- 72, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2015.

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
Sept. 2025 Page No. : 443-446

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

इक्कीसवीं शताब्दी में उपन्यास-साहित्य के समक्ष चुनौतियाँ

डॉ. के आनंदी

डीन ऑफ रिसर्च, असिस्टेंट प्रोफेसर

श्रीकृष्णस्वामी महिला महाविद्यालय, चेन्नई–600 040, तमिलनाडु।

इक्कीसवीं सदी में उपन्यास साहित्य को भूमंडलीकरण, बाजारवाद डिजिटल मीडिया के प्रभुत्व और उपभोक्तावादी संस्कृति जैसी प्रमुख चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है। इसके अलावा, वृद्धजनों की उपेक्षा, किन्नर समुदाय के हाशिए पर होने की समस्या, विस्थापन, पर्यावरण प्रदूषण, आदिवासी समुदायों का शोषण, सामाजिक अन्तविरोध और विभिन्न अल्पसंख्यक समुदायों के विमर्श को सही मंच न मिल पाना, आदि भी इक्कीसवीं सदी के उपन्यास साहित्य के समक्ष प्रमुख चुनौतियाँ हैं। उपन्यासों में जीवन के प्रति कामिक, कुंठाहीन और सहज एप्रोच हमें सर्वत्र मिलेगी, जो इनको अपने से मुक्त होकर जीवन को देखने की क्षमता देती है। अकेलेपन, असहायता, निरर्थकता और अस्तिव पीड़ा के बोध में दर्दाती हुई केवल यंत्रणा देता है, समाधान नहीं। आज का आदमी व्यक्ति रूप में अपमानित और समूह रूप में दमित है। अपमान और दमन का यह दुष्चक्र कैसे समाप्त होगा...?[1] यह है उपन्यासकारों की पीड़ा और इस पीड़ा से मुक्त न हो पाने की छटपटाहट उसके लेखन में स्पष्ट रूप से ध्वनित है।

इक्कीसवी शताब्दी की चुनौतियों पर बात करने से पहले इक्कीसवीं सदी की बनावट एवं कुनावट एवं बुनावट को समझ लेना आवश्यक है। यह सदी आधुनिकतावादी चिन्तन और समाजवादी सपने की राख पर खड़ी है। अब पिछले युग की तरह मनुष्य के पास न तो लोक कल्याणकारी राज्य का सपना है जो प्रजातन्त्र के माध्यम से देखा गया था और न ही समाजवादी, समतामूलक समाज का सपना उसके पास है जिसे समाजवादी क्रान्ति ने सरकार करना चाहा था। आज का युग अर्न्तराष्ट्रीय व्यापार के युग में, बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ हवा, पानी, मिट्टी और जीवन तक का निजीकरण कर इसे औद्योगिक उत्पादन में बदलने में लगी हैं।

बाजारवाद और भूमंडलीकरण :

इक्कीसवीं सदी ग्लॉबलाइजेशन की सदी है। इस सदी का यथार्थ हमारे बीसवीं सदी के यथार्थ से पूर्णतया अलग है। आज का ग्लॉबलाइजेशन 'वसुधैव कुटुम्बकम्' न होकर बहुराष्ट्रीय कम्पनियों का कुटुम्ब है जो सम्पूर्ण विश्व को एक बाजार मानता है। इक्कीसवीं सदी में बाजारवाद ने साहित्य को एक वस्तु में बदल दिया है, जहाँ बहुराष्ट्रीय कंपनियों का प्रभाव पारंपरिक मूल्यों और संस्कृति पर हावी हो रहा है। भूमंडलीकरण की

प्रक्रिया ने विस्थापन और सांस्कृतिक पहचान के संकट जैसी समस्याएँ उत्पन्न की हैं, जिन्हें उपन्यासकारों के लिए विश्वसनीय ढंग से चित्रित करना एक चुनौती है। प्रसिद्ध समाज वैज्ञानिक अभय कुमार दुबे अपनी प्रसिद्ध भारत का भूमंडलीकरण में लिखते हैं कि "ग्लॉबलाइजेशन का प्रधान अर्थ है– एक विश्व–अर्थतंत्र और विश्व बाजार का निर्माण जिससे प्रत्येक राष्ट्र की अर्थव्यवस्था को अनिवार्य तौर से जुड़ना होगा।... कम्प्यूटर, इंटरनेट और संचार के अन्य आधुनिकतम साधनों के जरिये दुनिया में राष्ट्रों, समुदायों संस्कृतियों और व्यक्तियों के बीच फासलों का कम से कमतर होते चले जाना है।"[2]

आज का समय भूमंडलीकरण का है, जिसमें सब लोग अपनी स्थानीयता का परित्याग करके ग्लोबलाइजेशन का शिकार हो रहे हैं, जिससे संपूर्ण विश्व पर बाज़ारवाद और उपभोक्तावादी संस्कृति हावी हो रही है। हमारे लाख कोशिश करने पर भी बाज़ार हमारे जीवन में जबरदस्ती घुसता जा रहा है या यूं कहें कि घुसाया जा रहा है। इस बारे में प्रभा खेतान कहती हैं – "बाजार हर जगह है – दुनिया के हर कोने में और यह बाज़ार चौबीसों घंटे सक्रिय रहता है।"[3]

सामाजिक अन्तविरोध :

समाज में जब कई प्रकार की विसंगतियाँ उत्पन्न हुई हैं तब साहित्यकारों को विघटित मूल्यों पर व्यंग्य करने की कला को दर्शाने का अवसर प्राप्त होता है। इक्कीसवीं सदी के उपन्यास साहित्य में समाज में व्याप्त भ्रष्टाचार, शोषण, आतंक, साम्प्रदायिकता, पक्षपातपूर्ण प्रशासन राजनीतिक, भाई–भतीजावाद आदि विघटित मूल्यों में जुड़ी परिस्थितियों पर दृष्टिपात किया गया है तथा समाज की अनेक कुरीतियाँ और समस्याओं का अवलोकन करके उनकी समीक्षा प्रस्तुत की गई है। आधुनिकता के इस युग में सांस्कृतिक विघटन के संदर्भ में विवेचित कर सकते हैं। उपन्यासकारों ने सामाजिक परिस्थितियों को विघटन का आधार बनाया है।

आज साहित्यकार अपने लेखन में अपना ही मजाक उड़ाता है। अपने तिरस्कार से जुड़ा अधिकांश साहित्य हमें एक फेंटेसी के रूप में ही आज के आदमी और उसके विसंगत परिवेश में छटपटाते हुए विघटन बोध के स्वरूप से सामना कराता है। "उपन्यास दहशतगर्द समाज में भ्रष्टाचार फैलानेवाले कर्मचारी, अधिकारी, शिक्षक, व्यापारी राजनेता, पुजारी, सामाजिक कार्यकर्ता, नेता–अभिनेता, विद्यार्थी आदि सब की सही तकलीफ को पकड़ लेते हैं।"[4]

बाल मजदूरी एक जघन्य अपराध है जो हमारे भारतीय समाज पर एक बहुत बड़ा कलंक है। कहने को तो यह नारा दिया जाता है कि 'आज के बच्चे कल के नेता' है लेकिन जिस बच्चे को रहने को घर नहीं, खाने को भोजन नहीं वह कैसा नेता होगा? कैसे समाज का नव–निमार्ग करेगा? 'ज्ञानप्रकाश विवेक' का लेखक अपने मित्र के घर जाता है तो नौकर की हालत देखकर उसकी सहायता करना चाहता है लेकिन नौकर स्पष्ट मनाकर देता है वह कहता है – मैं इनके घर का नौकर नहीं गुलाम हूँ।" "गुलाम?"[5]

उत्तर–आधुनिक भावबोध को व्यक्त करने वाले उपन्यास :

भूमण्डलीकरण और आर्थिक उदारीकरण की आँधी के साथ ही भारतीय समाज कम्प्यूटीकरण, संचार–क्रान्ति और नव–उपनिवेशवाद की गिरफ्त में आ गया। कुछ आन्तरिक अनिवार्यता और कुछ फैशन के स्तर पर हिन्दी उपन्यास साहित्य में गत बीस वर्षों में उत्तर–आधुनिक स्थितियों का चित्रण होने लगा। इस प्रकार के साहित्य लेखन में चार प्रकार के उपन्यासकारों की गणना की जा सकती है।

(क) उत्तर–औद्योगिक युग की विकेन्द्रित, मूल्यहीन व्यवहारवादी, पॉप–संस्कृति को आधार बनाकर लिखने वाले उपन्यासकार। इनमें मुख्य रूप से मनोहर श्याम जोशी और सुरेन्द्र वर्मा का नाम आता है। जोशी के चार उपन्यास 'कुरू कुरू स्वाहा' 'हमजाद', 'कसप' तथा 'हरिया हरकयुलिस की हैरानी' को लिया जा सकता है। सुरेन्द्र वर्मा का 'मुझे चाँद चाहिए' भी ऐसा ही उपन्यास है।

(ख) दूसरे प्रकार के उपन्यासकार वे हैं जो उत्तर–आधुनिक विकास की अवधारणा को गरीबों/ग्रामीणों/पिछड़े वर्गों के लिए विनाशकारी मानते हैं। वीरेन्द्र जैन के दो उपन्यास 'पार' और 'डूब' को इस श्रेणी में रखा जा सकता है।

(ग) तीसरे प्रकार के वे उपन्यासकार हैं जोकि आधुनिकता के दौर में साहित्य में उपेक्षित, अनुपस्थित अथवा बहिष्कृत पात्रों, परिस्थितियों अथवा कथानकों को साहित्य में ला रहे हैं। नारीवादी, दलित तथा अन्य जनजातीय क्षेत्रों जुड़े उपन्यासों को इसमें लिया जा सकता है। मैत्रेयी पुष्पा का 'इदन्नमप', प्रभा खेतान का 'छिन्नमस्ता' तथा कृष्णा सोबती का 'दिलो दानिश' लिया जा सकता है।

(घ) चौथी तरह के उपन्यासकार वे हैं जोकि मिथकों को तोड़ कर उनमें नए अर्थ भर रहे हैं या फिर मिथकों का नए ढंग से विश्लेषण कर रहे हैं। भगवान सिंह का 'अपने–अपने राम' तथा नरेन्द्र कोहली के रामायण और महाभारत पर आधारित उपन्यास ऐसे ही हैं।

नई सदी के उपन्यासों ने अपनी बनावट और बुनावट में कथा शिल्प के सारे पुराने मानदंडों – कथानक, चरित्र, कथवाचन, वर्णन पात्र–चित्रण परिस्थिति, परिवेश का समानुपातिक संयोजन आदि को भाषा के ताने–बाने समेत नकार दिया है। पाठक और कथावाचक का संबंध बदल गया है। प्रेमचंद के नेरेशन और रेणु के नेरेशन से आधुनिक उपन्यासकारों के नेरेशन बहुत भिन्न होते हैं। भगवान सिंह ने अपने अपने राम में के पौराणिक मिथक को तोड़ कर नष्ट करके एक कॉमरेड के रूप में चित्रित किया है जो प्रयोग की दृष्टि से नूतनता लिए है। परन्तु जनग्राह्य नहीं है।

आज लोकप्रिय साहित्य का महत्व संचार माध्यमों के कारण बढा है और साहित्यकार तथा आलोचक महत्वपूर्ण नहीं रहे। मीडिया में लेखक के पाठ की अपेक्षा प्रस्तुति शिल्प अधिक महत्वपूर्ण हो गया है। इस प्रकार हम देखते हैं कि इक्कीसवी शताब्दी का भौतिक जीवन और वैचारिक चिन्तन पर्याप्त रूप से वर्तमान सदी से भिन्न होगा। साहित्य एक पठनीय विधा या कला है, यद्यपि उसकी मंचीय या दृश्य–श्रव्य प्रस्तुति भी सम्भव है। मूलतः पठनीय होने के नाते साहित्य का जितना महत्व आधुनिक युग में था उतना उत्तन–आधुनिक युग में नहीं है। उत्तर–आधुतिक युग में एक ओर साहित्य या लेखन के मुकाबले दृश्य–श्रव्य माध्यमों को उपस्थित किया है तो दूसरी ओर अर्थ और सार जैसी मूल्य आधारित धारणा के स्थान पर मनोरंजन की प्रतिष्ठित किया है। इस कारण एक ओर साहित्य की केन्द्रीयता टूटी है तो दूसरी ओर लेखन में केन्द्रीयता भी टूटी है। लेखन की केन्द्रीयता के टूटने का सम्बन्ध मैक्लूहन के अनुसार इलैक्ट्रॉनिक मीडिया के विकास से है। पाठक की भूमिका केन्द्रीय होने से पाठकीय पाठ को प्रामाणिक तथा महत्वपूर्ण माना जाने लगेगा। पाठ क्या कह रहा है कि अपेक्षा क्या छुपा या दबा रहा है उसकी खोज महत्वपूर्ण है।

आज इक्कीसवीं शताब्दी में साहित्य के अस्तित्व को खतरा है, उसके कथ्य और शिल्प के नष्ट होने का खतरा है, साहित्य के वस्तु बनकर बिकने का खतरा है। साहित्यकार व्यापारी न बन जाए और साहित्य सस्ते

मनोरंजन और कुत्सित वासनाओं की तृप्ति का उत्पाद न बन जाए यह खतरा है। अपमिश्रित भाषा और संस्कृति उसे भ्रष्ट कर सकती है। मूल्यहीनता प्रिन्ट मीडिया का अस्तित्व कब तक बना रह सकेगा, यह भी खतरा है। सचमुच हमारे युग में साहित्य के सम्मुख जो चुनौतियाँ खड़ी हैं वे यक्ष–प्रश्नों से कम नहीं। उन सबका उत्तर देकर साहित्य अपनी जययात्रा की घोषणा करेगा अथवा निरूत्तर होकर मृत्यु का वरण करेगा, यह तो भविष्य के गर्भ में छुपा है।

सन्दर्भ ग्रंथ :

1. खुली हुई खिड़की' डॉ. अजय शर्मा, मनप्रीत प्रकाशन, 2002, पृ. 79
2. अभय कुमार दुबे (सं.), भारत का भूमंडलीकरण, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2007, पृ. 439–440
3. प्रभा खेतान : भूमंडलीकरण ब्रांड संस्कृति और राष्ट्र, संयाइक प्रकाशन, 2007, पृष्ठ – 16
4. देशदीपक त्रिपाठी दहशनमर्द, पृ. 45–46।
5. ज्ञान प्रकाश 'विवेक', गली नम्बर तेरह, पृ. 103

संपर्क : skcwhindi@gmail.com

देवानां भद्रा सुमतिर्ऋजूयताम्।। ऋ० १/८९/२

ISSN : 2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

Publisher : Gugan Ram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Table 2

Methodology for University and College Teachers for calculating Academic/Research Score

(Assessment must be based on evidence produced by the teacher such as: copy of publications, project sanction letter, utilization and completion certificates issued by the University and acknowledgements for patent filing and approval letters, students' Ph.D. award letter, etc,.)

S.N.	Academic/Research Activity	Faculty of Sciences /Engineering / Agriculture / Medical /Veterinary Sciences	Faculty of Languages / Humanities / Arts / Social Sciences / Library /Education / Physical Education / Commerce / Management & other related disciplines
1.	**Research Papers in Peer-Reviewed or UGC listed Journals**	08 per paper	10 per paper
2.	**Publications (other than Research papers)**		
	(a) Books authored which are published by ;		
	International publishers	12	12
	National Publishers	10	10
	Chapter in Edited Book	05	05
	Editor of Book by International Publisher	10	10
	Editor of Book by National Publisher	08	08
	(b) Translation works in Indian and Foreign Languages by qualified faculties		
	Chapter or Research paper	03	03
	Book	08	08
3.	**Creation of ICT mediated Teaching Learning pedagogy and content and development of new and innovative courses and curricula**		
	(a) Development of Innovative pedagogy	05	05
	(b) Design of new curricula and courses	02 per curricula/course	02 per curricula/course

202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021
www.bohalsm.blogspot.com grsbohal@gmail.com 8708822674 9466532152

PRINTED MATTER/PRINTING BOOK CLAUSE 121 (A) P & T GUIDE

गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वैलफेयर सोसायटी (रजि.)
द्वारा भिवानी (हरियाणा), काठमाण्डू (नेपाल) से प्रकाशित

ISSN : 2395-7115
Impact Factor 8.642

बोहल शोध मंजूषा

Bohal Shodh Manjusha

AN INTERNATIONAL MULTI DISCIPLINARY, MULTIPLE LANGUAGES
PEER REVIEWED, REFREED RESEARCH JOURNAL

UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 2018)

Website :
www.bohalshodhmanjusha.com
Email : grsbohal@gmail.com

Editor :
Dr. Naresh Sihag, Advocate
HOD Hindi, Tantia University
M. : 8708822674, 9466532152

गीना देवी शोध संस्थान
द्वारा श्रीगंगानगर, (राजस्थान), पटियाला (पंजाब) व नेपाल से प्रकाशित

ISSN : 2321-8037
Impact Factor 7.834

Gina Shodh SANGAM

A Peer Reviewed & Refereed International Research Journal
Journal of Literature, Arts, Culture, Humanities and Social Sciences

UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 2018)

Website : www.ginajournal.com
Email : grngobwn@gmail.com
Office : 8708822674

Editor :
Dr. Rekha Soni, Vice Principal
Education, Tantia University
M. 9828531975

गिरधारीलाल घासीराम शोधपीठ
द्वारा नई दिल्ली, आगरा, गाजियाबाद एवं नेपाल से प्रसारित

ISSN : 2348-5639
Impact Factor 6.521

SHODH SAMALOCHAN

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES QUARTERLY RESEARCH JOURNAL

UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Website : https://ginajournal.com/shodh-samalochan/

Executive Editor : Dr. Varsha Rani M. 9671904323
Managing Editor : Dr. Mukesh Verma M. 9627912535

Editor :
Dr. Naresh Sihag, Advocate
M. 8708822674

स्वामी, प्रकाशक, मुद्रक गुगनराम सोसायटी रजि. के लिए डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट ने मनभावन प्रिन्टर्ज, भिवानी से छपवाकर गीना प्रकाशन, 202, पुराना हाऊसिंग बोर्ड भिवानी-127021 (हरि.) से वितरित की।

ISSN 2395-7115